॥ श्रीः ॥

श्रीमन्माधवकराचार्य प्रणीतं

रोग विनिश्चयापरनामकं

माधव निदानम्

वैद्यराज पाठकोपाह्व पं० पूर्णचन्द्र तनूज वैद्यराज
कलाकलाभि कविसूनुना दाराशिनरत्न वाणी
भूषण विद्याभूषणादि विविधोपाधि धारिणा
काशीस्थ राजकीय विद्या-मन्दिरादलब्ध
श्रेष्ठताप्रमाणपत्रेण श्री सोहनलाल शा-
स्त्रिणा सुबोधिन्यां भाषाटीकया
समलंकृतम्

तच्च

मथुरायां

श्रीश्यामलाल हीरालाल इत्येतैः

स्वकीये "श्री श्यामकाशी यन्त्रालये"

मुम्बई

सीसकाक्षरै र्मुद्रयित्वा प्रकाशितम्

प्रथमावृत्तिः ११०० सम्वत् १९७३ वि०

उपोद्घात ।

आज कल सर्व सज्जन इस बात से भली भांति परिचित हैं कि संस्कृत समाज में बहुमान पूर्वक जीविका निर्वाहार्थ ज्योतिष वैद्यक के अतिरिक्त तीसरी विद्या प्रचलित नहीं है ऐसी दशा में ऐसा कौन मनुष्य होगा कि जो अपने हाथों को मिठाई से भरना छोड़कर रूखे सूखे पदार्थों पर पड़ा रहेगा परन्तु वैद्यक-ज्योतिष जिस प्रकार आनन्द देने वाले शास्त्र हैं वैसे क्लिष्ट भी बहुत ही हैं उनके मर्मों का पहिचान लेना भी सामान्य नहीं है ।

साथही आजकल के समय में जब कि मनुष्य आलस्य के वश हो पठन पाठन में श्रम करना छोड़ रहे हैं ऐसी दशा में उन से शास्त्रों का मर्म पहिचान लेना यह सामान्य बात नहीं इस लिये वैद्यक के ग्रन्थों में प्रसिद्धि प्राप्त इस माधव-निदान की अर्थों को स्पष्ट करने वाली यद्यपि और भी संस्कृत में मधुकोष व आतंक दर्पण नाम की दो टीका प्रचलित हैं तथापि थोड़ ज्ञान वालों के लिये वह मूल से भी क्लिष्ट तर प्रतीत होती हैं तथा एक आदि भाषा टीका भी जो हैं उनमें प्रायः बहुतसा वास्तविक वैपरीत्यहै इस कारण मथुरा निवासी लालाश्यामलाल हीरालालजी के इस प्रकार की इच्छा प्रकट करने पर कि संस्कृत की दोनों टीकाओं के मर्म के साथ मूल का अर्थ अच्छे प्रकार खोलने वाली भाषाटीका यदि बन जावै तब मनुष्यों को इस ग्रन्थसे बहुत लाभ होसक्ता है अतः मैंने विद्वज्जनों के विनोद के लिये व विद्यार्थियों के लाभ के लिये प्रायः मधुकोष व आतंक दर्पण का सार लेते हुए इस माधव निदान की सुबोधिनी नाम की भाषाटीका को लिखकर रचनाकी है यदि इस से वैद्य महोदयों व विद्यार्थियों तथा सर्व साधारण को कुछ भी लाभ होगा तो मैं अपने श्रम को सफल समझूंगा, और सर्वतो भाव से इस के छापने छपाने का अधिकार लाला श्यामलाल हीरालालजीको देदिया है इससे इसके छापने व छपाने का कोई सज्जन साहस न करें। अलम्

आपका
वैद्य सोहनलाल पाठक
मथुरा ।

॥ श्रीः ॥

अथ माधवनिदानस्थविषयाणामनुक्रमणिका ।

अजीर्ण निदानम् ॥

विषय ... ... पृष्ठांक

विषय ... ... पृष्ठांक

बकलेल माधुदेव पंडोल

॥ श्रीगणपतये नमः ॥

अथ

भाषाटीकासहितम्

माधवनिदानम् ।

सर्वांग आयुर्वेद शास्त्र के जानने में जिनकी शुद्ध बुद्धि ऐसे श्री माधवाचार्य रोग समूह के हेत्वादि के तत्त्व जानने की इच्छा वाले वैद्यों के अनुग्रह की इच्छा से विधान किये जाने वाले इस ग्रन्थ के आदि में, विघ्न विघात के लिये और इस ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये) अपने इष्ट देव श्रीशिवजी को प्रणाम करते हैं (यह नमस्कारात्मकमंगल जानना) ।

प्रणम्य जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारणम् ॥
स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं त्रैलोक्यशरणं शिवम् ॥ १ ॥
नानामुनीनां वचनैरिदानीं समासतः सद्भिषजां नियोगात् ॥
सोपद्रवारिष्टनिदानलिङ्गो निबध्यते रोगविनिश्चयोऽयम्

श्रीराधामाधवं प्रीत्या झल्लास्वामिविदो गुरून् ॥
नत्वा चाहं मुदा टीकां रचयामि सुबोधिनीम् ॥

भाषा- जगत् की उत्पत्ति पालन और प्रलयके प्रधान कारण, स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) के द्वार स्वरूप तथा त्रिलोकी के रक्षा करने वाले श्री शिवजी को प्रणाम करके अनेक चरक सुश्रुत वाग्भट आदि मुनियों के वचनों के अनुसार श्रेष्ठ वैद्यों की आज्ञा से अब मैं संक्षेप से उपद्रव (१) अरिष्ट, (२) निदान(३)और चिह्न (४) इनका लक्षण जिसमें ऐसा रोग विनिश्चय नामक ग्रन्थ रचता हूं ।

यह निदान पंचक ऋषिमुनियों के जानने योग्य है उनके वाक्यों का अनादर कर मनुष्य के ग्रन्थ में मनुष्यों की क्यों प्रवृत्ति होगी ? इस कारण

---

* (१) उपद्रवो रोगारम्भक दोष प्रकोपजन्यो विकारः। (२) नियतमरणख्यापकालिंगमरिष्टम्।(३) निदानं रोगोत्पाद को हेतुः।(४) लिंगं रोगव्याप को हेतुः। तेन लिंग्यते ज्ञायते व्याधिरनेनेति व्युत्पत्त्या पूर्व रूप रूपोपशयसंप्राप्तयो विज्ञायंते ।

ग्रन्थकर्त्ता ने "नानामुनीनां वचनैः" इस पदको रक्खा है यानी अनेकमुनियों के वचनों से संग्रह कर मैंने यह ग्रन्थ रचा है ॥

पूर्व में बहुतसेग्रन्थ बने हुएहैं फिर इसके बनाने से क्या लाभ इस ही से "इदानीं" पद यहांपर रक्खा हुआ इस बातका ज्ञान कराताहै कि यह ग्रन्थ इस समय अलौकिक होगा और "सद्भिषजां नियोगात्" से यह प्रयोजन है कि अच्छे २ वैद्यों ने इच्छा कर मुझे आज्ञा दी कि ऐसा कोई निदान विषयक उत्तम ग्रन्थ बनाओ इससे यह ग्रन्थ रचना की है

अब निदान ग्रन्थों से इसकी उत्तमता बताते हैं।

नानातंत्रविहीनानां भिषजामल्पमेधसाम् ॥
सुखं विज्ञातुमातंकमयमेव भविष्यति ॥ ३॥

भाषा—वैद्यक सम्बन्धी अनेक तन्त्रों से हीन ऐसे मन्द बुद्धि वाले वैद्यों को सुख पूर्वक रोगज्ञान (१) के निमित्त यह ही ग्रन्थ कारण होवेगा। यह माधवाचार्य ने एक प्रकार प्रतिज्ञा सी की है ॥

रोग जानने के पांच उपायों को बताते हैं।

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा ॥
संप्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पंचधा स्मृतम् ॥ ४ ॥

भाषा-निदान, पूर्वरूप, रूप तथा उपशय और संप्राप्ति यह पांच प्रकार से रोगों का पहिचानना कहा है,इनसे पृथक पृथक और समस्त व्याधि का बोध होता है यह कोई शंका करै कि क्योंजी सबही से बोध होना ठीक है अलग २ भला कैसे व्याधिका ज्ञानहो क्योंकि जब सब बातें न मिलैंगी तो कैसे विश्वास होगा कि यह अमुकव्याधि है क्यों कि वहां सब प्रमाण इकठे नहीं मिलते हैं उत्तर देते हैं किजब एकही बातसे कार्य निकल जाय तब भला सबकी क्या जरूरत है जो अग्नि अनुमान से प्रतीत होता है वह क्या प्रत्यक्ष व शाब्द से नहीं मालूम होगा किन्तु अवश्यही होगा इस वास्ते कहीं अनुमान से कहीं प्रत्यक्ष से कहीं उपमान से कहीं शाब्द से प्रतीत होती है इन सब को मिलाकर ज्ञान करना असमंजस मालूम होताहै और ठीक भी नहीं पड़ता इस

१ रोग मादौ परीक्षेत तदनन्तर मौषधम् ततः कर्म भिषक् पश्चात् ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥ रोग ज्ञानाय पूर्वस्मिन् यत्नःकार्यो भिषग्वरै. । सति तस्मिन् क्रियारम्भः पुण्याय यशसे श्रिये ॥ इसप्रकार इसविद्या में सबसे पूर्व रोग ज्ञानका ही क्रम है ॥

वास्ते यथायोग्य विचारना चाहिये, कोई कहतेहैं जब इन चार प्रकारसे व्याधिका तत्व ज्ञान होताहै तब भला फिर इन निदानादिक पांच बातोंका ग्रहणकरना व्यर्थ हीहै सो नहीं क्योंकि जो आचार्य इस वैद्यक शास्त्रके मार्मिक विद्वान्‌हैं वे इस बात को नहीं मानते बल्कि यह ही कहतेहैं कि बिना निदान आदि पांच बातोंके रोग का तत्वज्ञान कभी प्रत्यक्ष आदि से नहीं होगा जो कोई ऐसा कहतेहैं कि इन पांचों में से एक २ से ही जब ज्ञान हो जाता है तब पांचों की क्या जरूरत है क्योंकि चरक में लिखा है कि मृत्तिका खाने से पाण्डु रोग होता है मक्खी मुंह में चली जावे तो वमन हो जाता है तो यह निदान हुए फिर और बातों की क्या आवश्यकता है इस में हमको श्रद्धा नहीं होती क्यों कि यदि एक निदान से ही काम चलजायतो " वातिकज्वरपूर्वरूपेघृतपानम् " बादी के ज्वरके पूर्वरूप में घी पीना चाहिये यहां पूर्वरूप का ज्ञान कैसे होगा ॥ इस वास्ते पांचों से ही वह ठीक ज्ञान होताहै क्यों कि पांचों के कार्य अलाहिदा २ होते हैं. निदान से रोग किस कारण से हुआ पहचानाजाता है, पूर्वरूप से जब रोग पैदा होने लगता है दोष भी पूरे नहीं होते और लक्षण ही सब नहीं मिलते थोड़े २ मिलते हैं,रूप से जैसा रोग होता है उसका यथार्थ स्वरूप मालूम होता है, उपशयसे हेतु विपरीत व्याधि विपरीत औषध अन्न विहार आदि का ज्ञान होता है जिससे चिकित्सा विषय में बड़ा लाभ होता है सम्प्राप्ति से जैसे २ अंशांश करके रोगादिकी प्राप्ति होती है वह जान लिया जाता है इससे इनके भिन्न २ प्रयोजन होने से पांचों का ग्रहण करना सर्व सम्मत मालूम होता है इनका पृथक् २ विवरण आगे कहेंगे ॥

निदान शब्दके पर्याय वाचक शब्द

निमित्तहेत्वायतनप्रत्ययोत्थानकारणैः ॥
निदानमाहुः पर्यायैः-

भाषा—निमित, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान और कारण ये निदानके पर्यायवाचक शब्द शास्त्रव्यवहारके लिये आचार्य कहते हैं । इनके कहने का प्रयोजन यह है कि,व्यवहारके वास्ते अर्थात् शास्त्रमें इन छः शब्दोंमेंसे कोई शब्द आवे उसको निदानवाचकही समझना चाहिये ।

व्याधि के पूर्व रूप का लक्षण ।

-प्राग्रूपं येन लक्ष्यते ॥ ६ ॥

उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणानधिष्ठितः ॥
लिंगमव्यक्तमल्पत्वाद्व्याधीनां तद्यथायथम् ॥ ६ ॥

भाषा–दोष विशेष की जिसमें स्थिति न हो ऐसा उत्पन्न होने वाला रोग व्याधियों के थोड़ेपनसे उस का चिह्न यथायोग्य प्रकट न होय उसको पूर्व रूप ऐसा कहते हैं पूर्वरूप दो प्रकार के हैं एक सामान्य एक विशेष जो दोष करके दूषित मूर्छा आदि अवस्था होने से उत्पन्न होने वाले से आदि लेकर व्याधि मात्र की प्रतीत होती है जैसे "श्रमोऽरति विंवर्णत्वं वैरस्यंनयनप्लवः" और देवगुरु विप्र इनके द्वेष से जो व्याधि का पूर्वरूप होता है वह जैसे और तन्त्रों में लिखा "व्याधेजातिबुभूषाच पूर्वरूपेण लक्ष्यते॥ भावः क्रियात्मकत्वं च लक्ष्यते लक्षणेनहि ॥ तथा पाराशर ने जैसे कहा पूर्वरूपं नामयेनभाविव्याधि विशेषो लक्ष्यते नतु दोषविशेषः इत्यादि सामान्य पूर्व रूप जानने और विशेष पूर्व रूपका इस प्रकार विधान है जैसे सुश्रुतमें लिखा है सामान्यतो विशेषात्तु जृम्भात्यर्थं समीरणात् ॥ पित्तान्नयनयोर्दाहः कफा दन्नारुचिर्भवेत्–तथा यहांभी आगे इसही लक्षणको माधवाचार्य भी कहेंगे विशेषता यहही है कि वायु से उत्पन्न होने वाले ज्वर के पूर्व में जंभाई आती है पित्त ज्वर का पूर्व रूप नयनों में दाह होना कफ ज्वर का पूर्व रूप अन्न में अरुचि होना इत्यादि लक्षण विशेषपूर्व रूप के जानने। रूप तथा पूर्व रूप में भेद इतनाही है कि अस्पष्ट लिंग वाला पूर्वरूप होता है और स्पष्ट लिंग वाला रूप होता है ॥

रूप का लक्षण ।

तदेव व्यक्ततां यातं रूपमित्यभिधीयते ॥
संस्थानं व्यञ्जनं लिंगं लक्षणं चिह्नमाकृतिः ॥ ७ ॥

भाषा-जब पूर्वरूप अच्छी तरह उस दोषके लक्षणों से युक्त हो प्रगट हो जाय तब उसको रूप कहते हैं और संस्थान, व्यंजन, लिंग, लक्षण, चिह्न और आकृति यह रूप के पर्यायवाचक शब्द हैं।

उपशय का लक्षण ।

हेतुव्याधिविपर्य्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम् ॥
औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम् ॥ ८ ॥
विद्यादुपशयं व्याधेः स हि सात्म्यमिति स्मृतः ॥ ८ ॥

भाषा—उपपश का लक्षण इस पकार जानै । हेतुविपरीत, व्याधिविपरीत, हेतुव्याधिविपरीत, हेतुविपरीतार्थकारी, व्याधिविपरीतार्थकारी, हेतुव्याधिविपरीतार्थकारी, ऐसे जो औषध, अन्न, विहार इनका सुखके देने वाला सेवन उसको व्याधिका उपशय कहते हैं । इस का तात्पर्य यह है कि, रोग और रोग का हेतु इनको सुखकारक जो औषधि पथ्य आचारण रूप प्रयोग उसको उपशय कहते हैं । और व्याधिसात्म्य भी उपशय ही को कहते हैं यह उसका पर्याय समझना सुखावहम् उपयोगम् व्याधेः उपशयं विद्यात् ॥ इससे दाहतृष्णा जनित नूतन ज्वर में ठंडे जलका पानकरना व्याधि को बढ़ाता है इससे वह सुखावह उपयोग नहीं हुआ तब ही उसको उपशय नहीं कहसक्ते यहां आगे हेतु व्याधि विपरीत आदि को उदाहरण सहित बताते हैं जैसे हेतुविपरीति औषधि—शीत कफ ज्वरमें सोंठ, तो इस में प्रथम यह समझै कि यहां हेतु कौन है कफ (सर्दी), उस कफ का शीतल धर्म है तो अब शीत, कफ, यह कब शान्त होयकि जब सर्दी (कफ) के विपरीत औषध मिले ऐसी औषध कौन कि शुंठी, यह सर्दी को और कफ दोनों को शान्त करे है तो शीत कफ ज्वर में हेतुविपरीत औषध सोंठ हुई । ऐसे ही हेतुविपरीत अन्न । जैसे श्रम और सर्दीसे प्रगट ज्वर में मांस का रस और चावल इस में हेतु कौन कि श्रम और सर्दी यह कब शान्त होगा कि श्रम और सर्दी हरण करने वाला पथ्य मिले ऐसापथ्य कौन कि मांस रस और चावलों का भात ये श्रम और सर्दी के विपरीत हैं अर्थात नाश करने वाले हैं ॥ ऐसे ही हेतुविपरीत विहार कहिये आचरण कौन, जैसे दिनके सोनेमें प्रगट कफका रात मेंजागना यहां हेतु कौन हुआ कि दिन का सोना, उससे प्रगट दोष कौन कि कफ, यह कफ कब शान्त होय कि जिस हेतु से प्रगट हुआ उस हेतु से विपरीत, आचरण किया जाय तो, दिन के सोने पर उलटा आचरण कौन कि रात में जागना, तो यह हेतुविपरीत आचारण हुआ । इस ही प्रकार और उदाहरण व्याधिविपरीत के आगे लिखे हुए चक्रके अनुसार पण्डित समझ लेंगे ।

नाम.	औषध.	अन्न.	विहार
हेतुविपरीति.	शीतकफ ज्वरमेंओषधि सोंठ	श्रम और वादीसे प्रगट रोगपर मांसका रस और चांवल.	दिनके सोनेसे प्रगट कफरोगमेंविपरीत आचरण रातमें जागना.
व्याधिविपरीत.	अतिसारमें दस्त बन्द करनेवाली औषधि पाठा आदि.	दस्तोंमें दस्तको बंद कारक पथ्य मसूर.	उदावर्तरोगमें शब्दपूर्वक अधोवायुका निकलना। मन्त्र औषध धारण देव गुरुकी सेवा करनी.
हेतुव्याधिविपरीत	वातकी सूजनमें दशमूलका काढा वात और सूजन दोनों को दूर करने वाला है.	कफकी संग्रहणीमें तक्रका पीना वात नाशक कफ नाशक और संग्रहणी नाशक है.	स्निग्ध औरदिनकेसोनेसे उत्पन्न तंद्रा तिसमें रूक्ष तंद्रासेविपरीतिऔरस्निग्धनाशकरात्रिमेंजागना
हेतुविपरीतार्थकारी	जैसे पित्त प्रधान व्रणसूजनमें पित्तकारक उष्ण बांधना आदि.	पित्तकी सूजनमें दाह नाशक अन्नका भोजन करना.	जैसे वातसे पैदाउन्माद में त्रासका देना.
व्याधिविपरीतार्थकारी.	जैसे कफरोगसे वमन कारक मैनफल आदि.	अतिसाररोगमें दस्त कारक दुग्ध देना.	छर्दिरोगमें किसी प्रकार कमलनाल आदिसे उलटी लाना.
हेतुव्याधिविपरीतार्थकारी.	जैसे अग्निमें जलेपर गरम अगर आदि लेप अथवा विषपर विष.	जैसे मद्यपानके करने से प्रगट मदात्ययरोगमें मदकारक फिर मद्यपीना	दण्ड कसरतसे प्रगट वात में जलका तैरने रूप व्यायामकाकरना

अनुपशयके लक्षण ।

विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसात्म्याभिसंज्ञितः ॥ ९ ॥

भाषा—उपशयके लक्षणों से जो विपरीत हो वह अनुपशय जानना इसही को व्याध्यसात्म्य कहते हैं ।

सम्प्राप्तिके लक्षण ।

यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता ॥
निर्वृत्तिरामयस्यासौ सम्प्राप्तिर्जातिरागतिः ॥ १० ॥

भाषा–दोषों (वात, पित्त, कफ) के दूषित होने से दुष्ट होना नाम कुपित होना अनेक प्रकारकाहै अर्थात् अपने कारण या दूसरेके कारणसे कुपित दोष अपने स्थानको छोड़कर देहमें ऊपर नीचे तिरछे विचरते हैं। उस विचरनेसे जो रोग प्रगट हो उसको सम्प्राति कहते हैं और जाति तथा आगति ये सम्प्राप्ति के पर्याय हैं । प्रयोजन यह है कि मनुष्य के शरीर में वात

पित्त, कफ ये सम्पूर्ण दोष बढ़कर जैसे रोगकोप्रगट करते हैं उसकोउसरोगकी तैसेही सम्प्रातिकहते हैं। जैसे कुपित दोषों का आमाशय में प्रवेश होने से और उस स्थान में इधर उधर करने से तथा रसकी बहने वाली नाड़ियों के मार्गों को रोकने से और पक्वाशय में रहनेवाली अग्निको बाहिर निकालने से तथा उसी जठराग्नि से सब देहके तपायमान होने से यह ज्वर है ऐसा जो निश्चय किया जाताहै उसी को संप्राप्ति कहते हैं इस प्रकार ही सब रोगों की संप्राप्ति जाननी चाहिये॥

सम्प्राप्ति के भेद कहते हैं॥

संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः॥
साभिद्यते-

भाषा-१संख्या, २ विकल्प, ३ प्राधान्य, ४ बल,५ काल इन भेदोंसे पाँच प्रकार की सम्प्राप्ति जाननी॥

संख्यारूप संप्राप्ति के लक्षण कहते हैं।

यथात्रैवं वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति॥ ११॥

भाषा-जैसे यहांही अर्थात् इस माधवनिदान नामक ग्रन्थमें आठ प्रकारका ज्वर कहेंगे इसतरह सर्वत्र रोग गणना का नाम संख्या संप्राप्ति है॥

विकल्परूप संप्राप्ति के लक्षण कहते हैं।

दोषाणां समवेतानां विकल्पोऽंशांशकल्पना॥

भाषा-समवेत (परस्पर मिले हुए) दोषोंकी अंशांश करके जो कल्पना करना। अंश जैसे वायु आदि से प्राप्त रूखापन आदि इनसे एक दो तीन आदि वा समस्त अंशोंसे वायु आदि के कोप का निश्चय करना जैसा सुश्रुत में लिखा है "सर्वैर्भावैस्त्रिभिर्वापिद्वाभ्यां मेकेन वापुनः। संसर्ग कुपितः शुद्धं दोष दोषोऽनु धावति" इस प्रकार दोष कोप निदान की विचित्रता से होता है जैसे, रूखापन, ठंडापन, हलकापन, फैलावट आदि गुण वाले वायु के ऐसे ही गुणवाला कषेलारस सबप्रकार के अंशोंसे बढ़ाने वाला ही होता है तैसे ही रूखापन ठंडापन हलकापन इन से चौलाई, रूखे ठंडे इन से गन्ना केवल रूखे से सीधु (सेंधी मदिरा) आदि अशांशकी बढ़ोतरी घटोतरी (कल्पना) ऐसेही पित्तादि की भी यथायथ अंश कल्पना करनी चाहिये।

प्राधान्यरूप संप्राप्ति के लक्षण ।

स्वातंत्र्यपारतंत्र्याभ्यां व्याधेः प्राधान्यमादिशेत् ॥ ॥ १२॥

भाषा-व्याधिकी स्वतंत्रता और परतंत्रता करके प्राधान्यता कही है । जैसे स्वतंत्र ज्वरको प्रधानता है और ज्वराधीन श्वासआदि रोगोंकी अप्रधानताहोतीहै

बलरूप संप्राप्ति के लक्षण ।

हेत्वादिकात्स्नावयवैर्बलाबलविशेषणम् ॥

भाषा-हेतु आदि संपूर्ण अवयव लक्षण) मिलनेसे व्याधिको बलवान जानै और थोड़े लक्षण मिलने से निर्बल जानै जैसे रोग के प्रति जो निदान कहा वह निदान संपूर्ण रोगको उत्पन्न करने वाला है कि एकदेश को ऐसेही पूर्व रूपभी समस्त अवयवोंसे व्याधिका प्रकाश करताहै या एक देशसे इत्यादिजानै

कालरूप संप्राप्ति के लक्षण ।

नक्तंदिनर्तुभुक्तांशैर्व्याधिकालो यथामलम् ॥ १३ ॥

भाषा-नक्त (रात) दिन,ऋतु बसन्तादिक, भुक्त (अहार) इनका अंश कहिये एक देश उसको यथा दोष (बात,पित्त,कफ) के अनुसार व्याधिका काल अर्थात् रोग के घटने व बढ़ने के हेतुका समय जानै। जैसे रात्रिके तीन भाग प्रथम, मध्य और अन्त इस प्रकार करै तौ रात्रि का प्रथम भाग कफ का है, मध्यभाग पित्तका, अन्तभाग बात का है । ऐसेही दिन के भी तीन भाग करै तो पूर्वाह्णै कफका, मध्याह्न पित्तका, अपराह्न बातका । ऐसे ही ऋतु जैसे बसंतऋतु में कफ, ग्रीष्मऋतु में पित्त और बर्षा में बात कुपित होता है। ऐसेही भोजनका जैसे भोजन करने के समय कफका काल और अन्न के पचने के समय पित्तका काल और जब अच्छी तरह परिपाक होगया हो तब बातका काल। इसके जानने से यह प्रयोजन है कि, जिस दोष (बात पित्त कफ) का जो काल कहा उसका उसीर कालमें जान लेना कठिन नहीं पड़ता ॥

निदानपंचकका उपसंहार ।

इति प्रोक्तो निदानार्थस्तंद्व्यासेनोपदेक्ष्यते ॥ १४ ॥

भाषा-यह जो निदानार्थ कहा है वह अग विस्तार से कहा जायगा।

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ॥

तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाऽहितसेवनम् ॥ १५ ॥

भाषा-दो प्रकार का रोगका कारण जाने विप्रकृष्ट और सन्निकृष्ट विप्रकृष्ट विरुद्ध आहार आदि, सन्निकृष्ट वायु आदि, उस वायु आदिके व्यभिचार रहित कारणों से सब रोगों में समावेश होता है सो कहते हैं कुपित हुए जो मल (वात, पित्त, कफ) ये सम्पूर्ण रोगों के कारण होते हैं और उन वात पित्त, कफ दोषों के कोपका कारण अनेक प्रकारके कुपथ्य सेवन करनाहीहै

निदानार्थकरो रोगो रोगस्याप्युपजायते ॥
तद्यथा ज्वरसंतापाद्रक्तपित्तमुदीर्यते ॥ १६ ॥
रक्तपित्ताज्ज्वरस्ताभ्यां श्वासश्चाप्युपजायते ॥ ॥
प्लीहाभिवृद्ध्या जठरं जठराच्छोफ एव च ॥ १७ ॥
अर्शोभ्यो जाठरं दुःखं गुल्मश्चाप्युपजायते ॥
• दिवास्वापादिदोषैश्च प्रतिश्यायश्च जायते ॥
प्रतिश्यायादथो कासः कासात्संजायते क्षयः ॥
क्षयो रोगस्य हेतुत्वे शोषस्याप्युपजायते ॥ १८ ॥

भाषा-रोगका रोगभी निदान होता है अर्थात् जो निदान से कार्य होता है वही रोगसे भी होता है इसवास्ते सदृष्टांत बताते हैं। जैसे ज्वर संताप से रक्त पित्त प्रकट होता है और रक्तपित्त से ज्वर और रक्तपित्तज्वर से श्वास प्रगट होता है और प्लीहाके बढ़ने से जैसे उदर रोग और उदररोग से सूजन और बवासीरसे जैसा उदररोग और गुल्म (गोला) रोग और दिन के सोने आदि दोषों से जुकाम होता है और जुकामसे खांसी और खांसी से ओजप्रभृति धातुओं का क्षय होता है और यह क्षय रोग शोषरोग के पैदा होने में कारण होता है नाम इससे शोषरोग पैदा होता है ॥

ते पूर्वं केवला रोगाः पश्चाद्धेत्वर्थकारिणः ॥ १९

भाषा-वे रोग पहिले केवल आपही उत्पन्न होते हैं पीछे जब बली होतेहैं तब और रोगों के कारण यानी पैदा करने वाले होजाते हैं जैसे ज्वर में जब ज्यादा बल होजाता है और विशेष गरमी पहुंचती है तो वही ज्वर रक्त पित्तको पैदा करता है जैसा ऊपर कहचुके हैं ॥

कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा प्रशाम्यति ॥

न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेतुत्वं कुरुतेऽपि च ॥
एवं कृच्छ्रतमा नृणां दृश्यंते व्याधिसंकराः ॥ २० ॥

भाषा—अब उसी रोग उत्पन्न करनेवाली व्याधिकी विचित्रता दिखाते हैं जैसे कोई एक दूसरे का कारण हो अर्थात् दूसरे रोगको प्रगट कर आप शांत होजाता है। जैसे जुकाम आप शांत नहीं होने पाता और खांसी उत्पन्न होती है और कोई रोग दूसरे रोगको प्रकट कर आप जैसाका तैसा बना रहता है। जैसे बवासीर नहीं जाय और गुल्म तथा उदर रोग पैदा होते हैं इस प्रकार मनुष्यों को अत्यन्त दुःख देनेवाले रोगोंके संकर (दस्सा) रोग पैदा होते हैं और चिकित्सा में बड़े कठिन होते हैं ॥

तस्माद्यत्नेन सद्वैद्यैरिच्छद्भिः सिद्धिमुत्तमाम् ॥
ज्ञातव्यो वक्ष्यते योऽयं ज्वरादीनां विनिश्चयः ॥ २१ ॥

भाषा—अब कहे हुए निदानादिपंचकद्वारा रोगनिवृत्तिरूप सिद्धिकी जिन सद्वैद्योंकी इच्छा है उनको ज्वरादिकों का निश्चय जिसमें आगे वर्णित है ऐसा यह ग्रन्थ जानना चाहिये ॥

इति श्री वैद्यराज झल्ला स्वामि सुरिसुत शा० सोहनलाल विद्या भूषण विरचितायां सुबोधिन्यां पञ्च लक्षण विवरणं समाप्तम् ॥

अथ ज्वरनिदानम्

ज्वर की उत्पत्ति।

दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्रनिःश्वाससम्भवः ॥
ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वंद्वसंघातागंतुजः स्मृतः ॥ १ ॥

भाषा-दक्षप्रजापति के अपमान करने से क्रोधित श्री रुद्र (महादेव) भगवान् के श्वास से उत्पन्न जो ज्वर सो आठ प्रकार का है। वात का पित्त का कफ का ३, द्वंद्वज यथा वातपित्तका, वातकफका पित्तकफका यह ६ सन्नि. पात से १ और आगंतुज १ऐसे मिलकर संक्षेपसे ज्वर आठ प्रकारकाहै ॥ यह ज्वर रोग सब रोगों में प्रधान है ॥

तदुक्तं चरके।

देहेन्द्रियमनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली ॥

ज्वरः प्रधानो रोगाणा मुक्तो भगवता पुरा ॥

भाषा-देह इन्द्रिय मनको तपायमान करनेवाला रोगोंमें प्रथम प्रगट होनें वाला बलवान् ज्वर भगवान् महादेवजी ने सब रोगोंके बीच प्रधान कहा है ॥

ज्वर का स्वरूप हरिवंश में ।

ज्वरस्त्रिपादस्त्रिशिराः षड्भुजो नवलोचनः ।
भस्म प्रहरणोरौद्रः कालान्तकयमोपमः ॥ १ ॥

भाषा-ज्वर तीन पांव का होताहै तीनशिर वाला छः भुजावाला नौ नेत्र वाला होता है भस्म लपेटे हुए बड़ा भयंकर रूप साक्षात् काल २ मृत्यु व यमराज के तुल्य जानना ॥ २ ॥

माधव करने निःश्वास (श्वास) से इस ज्वर की उत्पत्ति कही है ॥

किन्तु सुश्रुत में इस प्रकार लिखा है ॥

• रुद्रकोपाग्निसंभूतः सर्वभूत प्रतापनः
सर्व रोग प्रधानोऽयं ज्वरोज्वलयति तनुम् ॥ २ ॥

भाषा-रुद्रकी क्रोधाग्नि से उत्पन्न हुआ सब प्राणियों को तपानें वाला सब रोगों में प्रधान यह ज्वर देहको जलाया करता है और चरक में—

स्टष्ट्वा ललाटे चक्षुर्वै दग्ध्वातानसुरान्प्रभुः ॥
वाणं क्रोधाग्निसंतप्तमसृजच्छत्रु नाशनम् ॥ ३ ॥

भाषा-ललाट में चक्षु को पैदा कर उन राक्षसों को प्रभु जलाकर क्रोधानल से संतप्तवाण जो शत्रुओं को नाश करनेवाला है उसको पैदा करते हुए तो इन वाक्यों में परस्पर भेद आता है इसकारण यहां यह बात प्रधान जानना कि निश्वास से प्रयोजन यहां क्रोधानल से ही स्पष्ट होता है ॥ क्रोध से उत्पन्न हुए निश्वास से उत्पन्न हुए इत्यादि वाक्य ही जो सब ग्रन्थों में आचार्यों ने लिखे हैं इससे यह स्पष्ट होता है कि गरमी से ही ज्वर पैदा हुआ और गरमी पित्त के बिना नहीं होती जैसा वाग्भट में लिखाहै -

ऊष्मा पित्तादृतेनास्तिनास्त्यूष्माणंविनाज्वरः ॥
तस्मात्पित्तविरुद्धानि त्यजेत्पित्ताधिकेऽधिकम् ॥ ४ ॥

भाषा-गरमी बिना पित्त के नहीं होती और बिना गरमी के ज्वर नहीं

होता इससे मालूम होता है कि ज्वर रोग में पित्त प्रधानता से रहता है इस ही से आगे के दोनों पादों में कहा है इससे ज्वर में पित्त विरोधी पदार्थों को छोड़ देय और जो पित्त प्रधान ज्वर हो उसमें तो अवश्य ही त्याग देवै ॥

ज्वर की सम्प्राप्ति ।

मिथ्याहार विहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः ॥
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः ॥ २ ॥

भाषा—मिथ्या आहार (देश काल प्रकृति आदि से विरुद्ध) और संयोग विरुद्ध (वेमोके बहुत और असाध्य और विषम पदार्थ का खाना) मिथ्याविहार (देहके पुरुषार्थ से विशेष काम करना वा सामर्थवान् होकर श्रम न करना) इन कारणों से दुष्ट हुए जो दोष) वात, पित्त, कफ) सो आमाशय में प्राप्त हो रसको बिगाडकर और कोष्ठस्थान में रहने वाले अग्नि को देहके बाहर निकाल करकें ज्वर पैदा करते हैं ॥

उपरोक्त ज्वरकी संप्राप्ति शरीर जन्य रोगोंकीहै आगतुजोंकी नहींहै क्यों कि आगंतुज रोगोंका तौ कष्ट पूर्वक वातादि दोषोंके रोकने से प्रयोजन समझना । जैसे सुश्रुत में श्रम और चोटके लगने से देहधारियोंके देहमें कुपित हुआ वात सब देह को परिपूर्णकर ज्वरको पैदा करताहै यह लिखा है । और चरकमेंभी है कि चोटके लगनेसें प्रगट वात रुधिरको बिगाड व्यथा और शोष तथा विवर्णयुक्त वातज्वर को प्रगट करता है ऐसा लिखा है । यहां यह शंका होती है कि आगंतुकभी शरीररोगही है क्योंकि आगंतुकज्वर में भी गरमी रहती है । क्योंकि " ऊष्मा पित्तादृते नास्ति " इत्यादि वाक्य प्रमाण हैं । तब उत्तर देते हैं कि शंका करना इस विषयमें ठीक मालूम होता है परन्तु इस आगंतुक रोगोंमें पित्तकी पूर्वकालसेही उत्पत्ति नहीं होतीहै पीछे उत्पत्ति होती है इन आगंतुकरोगोंको दैहिकत्व नहींहै । यहांजो 'कोष्ठाग्निम् ।' यहजो पद रखा है सो धातुकी अग्निके निवारणार्थहै अर्थात् जब धात्वग्नि बाहर आ जावैगी तौ दोषों का पचना नहीं हो सकता और दोष पचे बिना ज्वर शांत नही होवेगा । इसलिये बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निम् इसका वास्तविक अर्थ यहहै कोठे की अग्नि ही दोषों से जिकडी हुई बाहर आकर गरमी के रूप में प्रकाशित होती है ।

ज्वरके लक्षण।

स्वेदावरोधःसंतापः सर्वांगग्रहणं तथा ॥
युगपद्यत्र रोगे तु स ज्वरो व्यपदिश्यते ॥ ३ ॥

भाषा-जिस रोगमें पसीना न आवे, देहमें सन्ताप और सर्वांगमें पीडा ये एकही समय हों उसको ज्वर ऐसे कहते हैं । यहां यह शंका होती है-कि पित्तज्वरमें तो पसीने आते हैं तो इस श्लोकमें विरोधदीखता है । इसपर जेज्जट कार्तिक कुण्डादि आचार्यों का यह समाधान है कि "स्विद्यते अनेनेति स्वेदः" इस व्युत्पत्ति से स्वेद नाम अग्नि उसका अवरोध यथाक्रम परिपाकादि क्रियाओं की गति का मन्द होना तथा दोषकी व्याधि ऐसा अर्थ करने से श्लोकार्थ में विरोध नहीं पडैगा ॥

ज्वर का पूर्वरूप।

श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनेप्लवः ॥
इच्छाद्वेषौ मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥ ४ ॥
जृम्भांगमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः ॥
अप्रहर्षश्च शीतं च भवेत्युत्पत्स्यति ज्वरे ॥ ५ ॥
सामान्यतः –

भाषा-कारण विनाही थकावट, कर्म करनेमें उत्साह न हो अथवा खेलनेमें अरुचि, देहमें मलीनता मुखमें विरसता, नेत्रों में जल भरा रहै, सर्दी, गर्मी, पवन इनकी बारंबार इच्छा होना और बारंबार द्वेष हो इसमें जो आदि शब्द है उससे जल (१) और अग्निका ग्रहण है अर्थात् इनकी बार२ इच्छा और द्वेष होना । जंभाई अंगोंका टूटना, देह भारी, रोमांचों का खड़ा होना, अन्नमें अरुचि अंधेरे का आना, आनन्दकी निवृत्ति, सरदीका लगना । पूर्व में जो कह आये कि सरदी गरमी की बार २ इच्छा हो और बार बार द्वेष हो फिर शीत पदके रखनेसे सरदीकी अधिकता दिखाई

(१) चरके- "ज्वलनातपवाय्वम्बुभक्तद्वेषाभिलाषिता।" इति । "अन्ये तु शैत्योष्मसाधर्म्याज्जलानलौ गृह्णंति ते तु आदिशब्देन शयनासनादिकं मन्यंते"

है अर्थात् सरदी विशेष लगे ये लक्षण ज्वरके पूर्वमें होते हैं ॥ इस को ही ज्वर का पूर्वरूप कहते हैं ॥

–विशेषात्तु जृंभात्यर्थं समीरणात् ॥
पित्तान्नयनयोर्दाहः कफादन्नारुचिर्भवेत् ॥ ६ ॥

भाषा–विशेषकरके वातज्वरमें जंभाई बहुत आती है, पित्तज्वरमें नेत्रोंमें दाह होताहि और कफज्वरमें अन्नमें अरुचि होती है ॥

रूपैरन्यतराभ्यां तु संसृष्टैर्द्वन्द्वजं विदुः ॥
सर्वलिंगः समावायः सर्वदोषप्रकोपजे ॥ ७ ॥

भाषा–दो दो रूपों से मिले हुए लक्षणों से द्वन्द्वजन्य जानें सब दोषों के चिह्न जिसमें होंय उसको सर्व दोषों के प्रकोप से जानना ॥

वातज्वरके लक्षण ॥

वेपथुर्विषमो वेगः कंठौष्ठपरिशोषणम् ॥
निद्रानाशः क्षवस्तंभो गात्राणां रौक्ष्यमेव च ॥ ८ ॥
शिरोहृद्गात्ररुग्वक्त्रवैरस्यं गाढविट्कता ॥
शूलाध्माने जृंभणं च भवत्यनिलजे ज्वरे ॥ ९ ॥

भाषा–कंप होना, ज्वरका विषमवेग, कण्ठ होठ इनपर ज्यादा खुश्कीहो निद्राका नाश, छींकका न आना, देहका रूखापना, और मस्तक, हृदय, शरीर इनमें पीडा । गात्रपदके आनेसे ही मस्तक हृदय आदिका ज्ञान हो गया फिर मस्तक और हृदय पदके रखनेसे इनमें दर्दका आधिक्य दिखायाहै अर्थात् मस्तक हृदयमें बहुत पीडा होय, मुखकी विरसता मलका गाढापन, शूल, अफरा, जम्भाई ये लक्षण वातज्वर में होते हैं ॥

पित्तज्वरके लक्षण ।

वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्राल्पत्वं तथा वमिः ॥
कंठौष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥ १० ॥
प्रलापो वक्त्रकटुता मूर्च्छा दाहो मदस्तृषा ॥
पीतविण्मूत्रनेत्रत्वं पैत्तिके भ्रम एव च ॥ ११ ॥

भाषा—ज्वरका तीक्ष्णवेगहो, अतिसार (यानी पित्तके वेगसे दस्त का पतला होना नकी वमन आदि रोग हो) , थोडी निद्रा आवे, पित्तको कफके स्थानमें पहुंचने से वमनका होना, कंठ होठ मुख नाक इनका पकना और पसीनोंका आना, बड़बडाना मुखमें कड़वापन, मूर्च्छा, दाह, उन्मत्तपना, प्यास, विष्ठा मूत्र नेत्र इनका पीला होना, तथा भ्रम ये लक्षण पित्तज्वर में होते हैं। भ्रमको वातविकारमें लिखने से मालूम होता है कि यह वायु का धर्म है फिर पित्तके विकारमें भ्रमशब्द रखनें का प्रयोजन यहहै कि रोग एक ही दोषसेही नहीं प्रगट होवे किंतु अनेक दोषोंसे वलिक वात का सम्बन्ध तो प्रायः सर्वत्र ही रहता है यथा—पित्तं पंगु कफः पंगुः पंगवो मलधातवः ॥ वायुना यत्रनीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत् ॥ इसके सिवाय और भी कहा है॥ "न रोगोऽप्येकदोषजः" इति और "पैत्तिके भ्रम एव च" यहा उस बात विकारसे पूर्ण सम्बन्धनहोजाय इससे भ्रमएव नाम केवल भ्रमही यह लक्षण पित्तज्वरमें होते हैं ऐसा कहा है ॥

कफज्वरके लक्षण ।

स्तैमित्यं स्तिमितो वेग आलस्यं मधुरास्यता ॥
शुक्लमूत्रपुरीषत्वं स्तम्भःस्तृप्तिरथापि च ॥ १२ ॥
(नात्युष्णगात्रता छर्दिरंगसादोऽविपाकिता)
गौरवं शीतमुत्क्लेदो रोमहर्षोऽतिनिद्रता ॥
प्रतिश्यायोऽरुचिः कासः कफजेऽक्ष्णोश्च शुक्लता ॥१३॥

भाषा—स्तैमित्य (गीले कपडेसे देहको आच्छादित कर देनेसे जैसा हां ऐसा मालुम हो) ज्वरका मंद वेग, आलस्य, मुखका मीठापन, मल मूत्र सफेद, देहका जकडना, तृप्ति सी रहै, शरीर बहुत गरम न होय, वमन होय, अंग जकड जाँय, अन्न परिपाक न होय, देह भारी, शीत लगे, उबाकी आवे। रोमांचका होना, अतिनिद्रा जुकाम का होना सा मालूम होय अन्न में अरुचि, खांसी, नेत्र श्वेत हों ये लक्षण कफज्वर में होतेहैं। "स्तंभस्तृप्तिरथापि च" इस पद में जो चकार है उससे देहमें पीडा, शीतका लगना, लारका गिरना वमन, हृदय लिहसासा, गरमी प्यारी लगे, मन्दाग्नि इत्यादिभी जाननेचाहिये।

वातपित्तज्वरके लक्षण ।

तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः शिरोरुजा ॥

कंठास्यशोषो वमथू रोमहर्षोऽरुचिस्तमः ॥
पर्वभेदश्च जृम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः ॥ १४ ॥

भाषा-प्यास, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, निद्रानाश, मस्तकपीडा, कंठ, मुख का सूखना, थुकथुकी, रोमांच, अरुचि, अंधकारसाछाना, हड़फूटन, और जंभाई ये वातपित्तज्वर के लक्षण हैं ॥

वातकफज्वर के लक्षण ।

स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रा गौरवमेव च ॥ १५ ॥
शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः स्वेदाप्रवर्त्तनम् ॥
संतापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ १६ ॥

भाषा-स्तैमित्य (नाम गीले कपडे से देहको जिकडना जैसा हो ऐसा मालूम हो) हड़फूटन, निद्रा, देह भारी, माथा बंधासा, नाकसे पानी गिरे, खांसी, पसीने का न आना; शरीर में दाह, ज्वर का मध्यमवेग ये वात श्लेष्मज्वरके लक्षण हैं ॥ हारीत ने इस प्रकार कहे हैं शिरोग्रहः स्वेद भवश्च कासो ज्वरस्या लिंगं कफ वातजस्य इत्यादि ॥

पित्तकफज्वर के लक्षण ।

लिप्ततिक्तास्यता तंद्रा मोहः कासोऽरुचिस्तृषा ॥
मुहुर्दाहो मुहुः शीतं श्लेष्मपित्तज्वराकृतिः ॥ १७ ॥

भाषा-मुख कफसे लिप्त सा रहै और कडुआ रहै, तंद्रा, मूर्च्छा, खांसी अरुचि, प्यास, बारंबार दाह हो और बारंबार शीतका लगना ये कफपित्त ज्वरके लक्षण हैं, चरक में इस प्रकार कहाहै तथा स्तम्भश्च संस्वेदः कफ पित्त प्रवर्तनम ॥ स्तंभ (देहका जकडना), पसीना, कफ, पित्तका गिरना इससे यह चरकके कहे लक्षण और साथ में जानने ॥

सन्निपातज्वरके लक्षण ।

क्षणे दाहः क्षणेशीतमस्थिसंधिशिरोरुजा ॥
सास्रावे कलुषेरक्ते निर्भुग्ने चापि लोचने ॥ १८ ॥
सस्वनौ सरुजौ कर्णौ: कंठः शूकैरिवावृतः ॥

तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासःश्वासोऽरुचिर्भ्रमः ॥ १९ ॥
परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्रस्तांगता परम् ॥
ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च ॥ २० ॥
शिरसो लोठनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा ॥
स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिरादर्शनमल्पशः ॥ २१ ॥
कृशत्वं नातिगात्राणां प्रततं कण्ठकूजनम् ॥
कोष्ठानां श्यावरक्तानां मण्डलानां च दर्शनम् ॥ २२ ॥
मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च ॥
चिरात्पाकश्च दोषाणां सन्निपातज्वराकृतिः ॥ २३ ॥

भाषा- क्षणमें दाह, क्षणभरमें शीत लगे, हाड संधि मस्तक इनमें शूल, अश्रुपात युक्त गदले लाल तथा फटेसे नेत्र होजावें यह जेज्जट और टेढे नेत्र हों यह चक्रपाणि का मतहै) कानोंमें शब्द और पीडा हो, कंठमें कांटे पड जाय तंद्रा, (झपनी) बेहोशी हो, अनर्थ बोले, खांसी, श्वास, अरुचि, भ्रम ये हों, जीभ जली सी काली हो और खर्दरी (गौ जीभ के समान) तथा शरीर अत्यन्त शिथिल हो, पित्त और रुधिर मिला हुआ कफ थूके, शिरको इधर उधर पटके, तृषा बहुत लगे, निद्राका नाश हो, हृदयमें पीडा, पसीना मूत्र मल इनका बहुत काल में थोडा २ आना दोषोंके पूर्ण होने से देहका अत्यन्त कृश न होना कंठमें कफका निरंतर बोलना, रुधिरसे काले लाल फुंसियों के झुग्गा और चकत्ता दिखाई देवें, शब्द बहुत मंद निकले, कान नाक मुख आदि छिद्रों का पकना पेटका भारी होना वात, पित्त, कफ का बहुत काल में परिपाक होना यह सन्निपात ज्वरके लक्षण हैं ॥

सन्निपातों के भेद चरक में १२ लिखे हैं ॥

वात पित्तोल्वण सन्निपातके लक्षण ॥

भ्रमः पिपासा दाहश्च गौरवं शिरसोऽतिरुक् ॥
वात पित्तोल्वणे विद्याल्लिङ्गं मन्दकफेज्वरे॥ १ ॥

भाषा–वात पित्तोल्वण सन्निपात में भ्रम, प्यास, दाह, शरीर में व

माथे में भारापन अत्यन्त पीड़ा होना यह लक्षण होते हैं ॥ इसमें कफ मंद होता है ॥

बात कफोल्वण सन्निपातके लक्षण ॥

शैत्यं कासोऽरुचिस्तन्द्रा पिपासा दाहहृद्व्यथाः ॥
बात श्लेष्मोल्वणे व्याधौ लिंगं पित्तानुगे विदुः ॥ २ ॥

भाषा—सरदी लगै या खांसी होय, अन्नमें अरुचि होय, झपनी सी लगी रहै, प्यास, जलन, हृदयमें पीडा यह लक्षण बात कफोल्वण सन्निपात के हैं इसमें पित्त इनके पीछे रहता है ॥

पित्त कफोल्वण सन्निपातके लक्षण ।

छर्दिः शैत्यं मुहुर्दाहस्तृष्णा मोहोऽस्थिवेदना ॥
मन्दवाते व्यवस्यन्ति लिंगं पित्तकफोल्वणे ॥ ३ ॥

भाषा—वमन होना, सर्दी लगना, बार २ दाह होना और प्यास लगना मोह, हड़फूटन बात जहां मन्द होय पित्त कफ जहां बढ़े हों उस सन्निपात के यह लक्षण जानै ॥ ३ ॥

बातोल्वण सन्निपातके लक्षण ॥

सन्ध्यस्थि शिरसः शूलं प्रलापो गौरवं भ्रमः ॥
वातोल्वणे स्याद्व्यनुगेतृष्णा कण्ठास्य शुष्कता ॥ ४ ॥

भाषा—हाड़ों में व जोड़ों में शिर में पीडा हो, अनर्थ की बात बोले, शरीर में भारापन, भ्रम, तृष्णा, कण्ठ, मुख का सूखना, बात जिसमें प्रधानता से रहै पित्त कफ उस में अप्रधानता से रहै ऐसे वातोल्वण सन्निपात के लक्षण जाने ॥

पित्तोल्वण सन्निपातके लक्षण ।

रक्त विण्मूत्रता दाहः स्वेद स्तृष्णा बलक्षयः ॥
मूर्च्छाचेति त्रिदोषे स्याल्लिङ्गं पित्ते गरीयसि ॥ ५ ॥

भाषा—लाल विष्टा मूत्र आवै, दाह हो, पसीना आवै, प्यास, बलका नाश होना और मूर्च्छा होना यह लक्षण पित्त जिसमें प्रधान हों और बात कफ उसके साथ अप्रधानता से रहै ऐसे पित्तोल्वण के जाने ॥

कफोल्वण सन्निपातके लक्षण ।

आलस्या रुचि हृल्लास दाह वम्य रति भ्रमैः ॥
कफोल्वणं सन्निपातं तन्द्रा कासेनचादिशेत् ॥ ६ ॥

भाषा-आलस्य, अरुचि, उबाकी आना, दाह, वमन, कोई चीज़ अच्छी न लगै, भ्रमहो, झपनी सी रहै, खांसी रहै यह लक्षण कफोल्वण सन्निपात के जाने ॥

हीन बात पित्त मध्य कफ अधिक ऐसे सन्निपातके लक्षण ॥

प्रतिश्या छर्दिरालस्यं तंद्रा रुच्याग्निमार्दवम् ॥
हीनबाते पित्तमध्ये लिंगं श्लेष्माधिके मतम् ॥ ७ ॥

भाषा—नाक टपकै, वमन, आलस्य, झंपनी, अरुचि, मंदाग्नि यह लक्षण जिसमें बात हीनहो पित्त मध्यमहो कफ जहां अधिकहो ऐसे सन्निपातके हैं ॥

हीन बात, मध्यकफ, पित्ताधिक, सन्निपातके लक्षण ॥

हार्द्रिमूत्रनेत्रत्वं दाहस्तृष्णा भ्रमोऽरुचिः ॥
हीनबाते मध्यकफे लिङ्गं पित्ताधिके मतम् ॥ ८ ॥

भाषा—पीला पेशाब उतरै तथा नेत्र पीरे हों दाह, तृष्णा, भ्रम अरुचि, यह लक्षण हीन बात, मध्यकफ, पित्ताधिक सन्निपातके जाने ॥

हीन पित्त मध्यकफ, बाताधिक, सन्निपातके लक्षण

शिरोरुग् वेपथुः श्वासप्रलापच्छर्घरोचकाः ॥
हीनपित्ते मध्यकफे लिङ्गं बाताधिके मतम् ॥ ९ ॥

भाषा—शिरमें पीड़ा, कँपकपी, श्वास, बड़बडाहट, वमन अरुचि, यह लक्षण हीन पित्त मध्यकफ, बाताधिक सन्निपातके कहे हैं ॥

हीनपित्त, बातमध्य, कफाधिक सन्निपातके लक्षण ॥

शीतकं गौरवं तन्द्रा प्रलापोऽस्थि शिरोऽतिरुक् ॥
हीनपित्ते बातमध्ये लिङ्गं श्लेष्माधिके विदुः ॥ १० ॥

भाषा—सर्दी लगना, भारापन, झंपनी, बिना प्रयोजन की बात हड़फूटन व शिर में अत्यन्त पीड़ा यह लक्षण हीन पित्त, बातमध्य, कफाधिक सन्निपात के कहते हैं ॥

कफहीन वातमध्य पित्ताधिक सन्निपात के लक्षण ॥

वर्चोभेदोऽग्निदौर्बल्यं तृष्णा दाहोऽरुचिर्भ्रमः ॥
कफहीने वातमध्ये लिंगे पित्ताधिके विदुः ॥ ११ ॥

भाषा-फटा २ दस्त आवैं मन्दाग्नि, तृष्णा, दाह, अरोचक, भ्रम, यह लक्षण कफहीन, वातमध्य, पित्ताधिक सन्निपातमें कहते हैं ॥

कफहीन पित्तमध्य, वाताधिक सन्निपात के लक्षण ।

श्वासः कास प्रतिश्यायौ मुख शोषोऽतिपार्श्वरुक् ॥
कफहीने पित्तमध्ये लिंगं वाताधिके मतम् ॥ १२ ॥

भाषा-खांसी, श्वास, नाकटपकना, मुखसुखना, पांसुओंमें अत्यन्त पीड़ा यह लक्षण कफहीन पित्तमध्य वाताधिक सन्निपात के कहे हैं ॥

विकृति में नियम नहीं रखागया है इससे विकृति विषम समवाय वाले सन्निपात अनेक प्रकारके होते हैं इससे सुश्रुताचार्य ने और प्रकार से सन्निपात ज्वर लक्षण कहा है ॥

नात्युष्णशीतोऽल्पसंज्ञो भ्रान्तप्रेक्षी हतप्रभः ॥
खरजिह्वः शुष्ककण्ठः स्वेदविण्मूत्र वर्जितः ॥ १ ॥
साश्रुनिर्भुग्ननयनो भक्तद्वेषी हतस्वरः ॥
श्वसन्निपतितः शेते प्रलापोपद्रवान्वितः ॥ २ ॥
अभिन्यासं तु तं प्राहुर्हतौजसमथापरे ॥
सन्निपातज्वरं कृच्छ्रमसाध्यमपरे जगुः ॥ ३ ॥

भाषा-न बहुत गरमी न बहुत ठंड मालूम हो बहुत कम ज्ञानहो आंख घुमाता रहे चेष्टा नष्ट होजाय जीभ खरखरी हो कण्ठ सूखा रहै पसीना विष्टा मूत्र यह न आवैं, फटे २ आसुओं से भरे नेत्रहों खाने में इच्छा न हो स्वर झीना पड़जाय पड़ा २ श्वास लेय सोता २ बर्रावे उसको अभिन्यास कहते हैं कोई हतौजा कहते हैं उसही को सन्निपात कहते हैं कोई इसको कृच्छ्र साध्य और कोई असाध्य कहते हैं ॥ ३ ॥

पूर्व में जो चरक मतसे उल्वणादि भेद सान्निपात के कहे अब भालुकि तंत्र में और प्रकार से कहे हुए उनही उल्वणादिकों को वर्णन करतेहैं । जैसे

बात पित्ताधिकोयस्य सन्निपातः प्रकुप्यति ॥
तस्यज्वरोऽङ्गमर्दस्तृट् तालुशोषप्रमीलकाः ॥
आध्मानतन्द्रावरुचिश्वासकासभ्रमश्रमाः ॥

भाषा-जिस सन्निपातमें बात पित्त अधिक बलवान् ऐसा जिसमनुष्यके कोप करै उसके ज्वर, अंगडाई, प्यास, तालुका सुखना, तन्द्रा, अफरा, झंपनी, अरुचि, श्वास, खांसी, श्रम, भ्रम, इतने विकार होतेहैं ॥

पित्त श्लेष्माधिकोयस्य सन्निपातः प्रकुप्यति ।
अन्तर्दाहो बहिः शीतस्तस्य तन्द्रा विवर्धते ॥
तुद्यतेदक्षिणं पार्श्वमुरः शीर्षगलग्रहाः ।
निष्ठीवेत्कफापित्तं च तृष्णा कण्ठश्च दूयते ॥
विड्भेद श्वासहिक्काश्च बाध्यन्ते सप्रमीलकाः ।
विधुफल्गूच तौ नाम्ना सन्निपातावुदाहृतौ ॥

भा०—पित्त कफाधिक सन्निपात का कोप जिसके हो उसके भीतर जलन, बाहर ठण्ड, झंपनी बढती जाय, दाहिनी पांसु में चवका चलै, छाती, मस्तक गला यह जिकड़ा रहै कफ, पित्त थूके, प्यास लगै कण्ठ दूखै दस्त खराब होजाय श्वास हिचकी तंद्रा यह सब तकलीफ हैं यह विकार होंय इन दोनों सन्निपातों के नाम क्रम से विधु, फल्गु ऐसे कहे हैं ।

मर्करी सन्निपात के लक्षण।

श्लेष्मानिलाधिकोयस्य सन्निपातः प्रकुप्यति ।
तस्यशीतज्वरोनिद्रा क्षुत्तृष्णा पार्श्वसंग्रहः
शिरोगौरवमालस्य मन्यास्तम्भ प्रमीलकाः ।
उदरं तुद्यतेचास्य कटिर्वास्तिश्च दूयते ॥
सन्निपातः सविज्ञेयः मर्करीति सुदारुणः ।

भा०-कफ वात अधिक वाला सन्निपात जिसके देह में कोप करै उसको शीत ज्वर, निद्रा, क्षुधा, तृषा न लगे पांसु बंधीसी रहै माथेमें भारापनरहै आलस्य मन्यास्तम्भहो तंद्रा रहै पेट दूखै कमर वस्ती दूखै यह विकार होते हैं यह सन्निपात मर्करी संज्ञक सन्निपात जानना चाहिये यह बहुत कठिनहोताहै ।

विस्फुरक सन्निपात के लक्षण ।

वातोल्बणः सन्निपातो यस्य जन्तोः प्रकुप्यति ।
तस्य तृष्णाज्वरग्लानिपार्श्वरुग्दृष्टिसंशयाः
पिण्डिकोद्वेष्टनं दाह उरुसादोवलक्षयः ।
सरक्तं चास्य विण्मूत्रं शूलनिद्राविपर्ययः ॥
निर्भिद्यते गुदंचास्य वस्तिश्चपरिकृष्यति ।
आयम्यते भिद्यते च हिक्कते विलपत्यपि ॥
मूर्छतिस्फार्यते रौतिनाम्ना विस्फुरकःस्मृतः

भा०—वात का जिसमें आधिक्य हो ऐसा सन्निपात जिसके कोप करै उसके प्यास, ज्वर, ग्लानि, पांसुओं में पीड़ा, निगाह में फर्क फुन्सीओं से देह भरजाय, दाह, छाती दूखै, बल घटजाय विष्टा मूत्र में रक्त आवै पीड़ा होय नींद न आवै गुदा की बलिचर्का सी खाय वस्ति खिचै शरीर तनै और टूटै हिचकी ले और रोवै मर्छित [illegible] पुकार यह विकार हो वह सन्निपात नाम विस्फुरक ऐसा कहा है ।

शीघ्रकारी सन्निपात के लक्षण ।

पित्तोल्वणः सन्निपातो यस्यजन्तोः प्रकुप्यति ।
तस्यदाहज्वरोघोरो वहिरन्तश्चवर्धते ॥
शीतं च सेव्यमानस्य कुप्यतः कफमारुतौ ।
ततश्चैनंप्रधावन्ते हिक्काश्वासप्रमीलकः ॥
विसूचिका पर्वभेदः प्रलापो गौरवंक्लमः ।
नाभि पार्श्वरुजातस्य स्विन्नस्याशु विवर्धते ॥
स्विद्यमानस्य रक्तंच स्रोतोभ्यः संप्रपद्यते ।
शूलेन पीड्य मानस्य तृष्णादाहश्चवर्धते ॥
असाध्यः सन्निपातोऽयं शीघ्रकारीति कथ्यते ।
नहि जीवत्यहोरात्रमेतेनाविष्टविग्रहः ॥

भा०-पित्तोल्वण सन्निपात का कोप जिसके देह में हो उसके दाह पूर्वक ज्वर घोर रूप धारण करै भीतर बाहर एकसी घोर जलन पैदा करै ठंडे पदार्थ सेवन करने से कफ वात कोप करते हैं तब पित्त को तरक्की देकर चढ़ाते हैं तब यह पित्तोल्वण होता है उसमें हिचकी श्वास तन्द्रा विसूचिका हड़ फूटन बर्राहट देह का भारी होना पीड़ा होना नाभि और पासुओं में पीडा हो और पसीना खुब बढ़े पसीना आने में रोम सोताओं मेंसे लहू आने लगे दर्द से छटपटाता होय तृष्णा और दाह बढ़े यह सन्निपात शीघ्रकारी है और असाध्य कहा जाता है। जिस के देह में यह होता वह एक दिन रात भी नहीं जीता ॥

कफोल्वण सन्निपात के लक्षण।

कफोल्वणःसन्निपातो यस्य जन्तो प्रकुप्याति।
तस्य शीतज्वरस्वप्नगौरवालस्यतान्द्रिकाः ॥
छर्दिमूर्च्छातृषादाहतृष्णारोचकहृद्ग्रहाः ॥
ष्ठीवनं मुखमाधुर्यं श्रोत्रवाग्दृष्टिनिग्रहः ॥

भाषा-कफोल्वण सन्निपात जिस प्राणी के कुपित हो उसके सर्दी लगै ऐसा ज्वरहो नींदआवै शरीर में भारापन, आलस्य, झंपनी, वमन, मूर्च्छा, प्यास, अरुचि, हृदय का जिकड़ना कफ थूकना मुख में मीठा पन कान में बहिरापन, बोली बंद होना यह लक्षण होते हैं ॥

श्लेष्मणो निग्रहंचास्य यदाप्रकुरुतेभिषक्।
तदातस्य भृशं पित्तं कुर्यात्सोपद्रवंज्वरम् ॥
निगृहीते तु पित्ते च भृशं वायुः प्रकुप्याति।
निराहारस्य सोत्यर्थं मेदो मज्जास्थि बाधते ॥
तथाचस्नाति भुङ्क्ते वात्रिरात्रं नहि जीवति।
मेदोगतः सन्निपातः कप्फणः स उदाहृतः ॥
कामान्मोहाच्च लोभाचा भयाचायं प्रपद्यते।
मध्यहीनाधिकैर्दोषैः सन्निपातो यदाभवेत् ॥

तस्य रोगास्त एवोक्ताः प्रायो दोष बलाश्रयाः ॥

भा०–जब कफका निग्रह [शमन] वैद्य करै तब उसके अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुआ पित्त उपद्रवों से युक्त ज्वर को पैदा करै जब पित्तको शमन करै तब अत्यन्त वायु कुपित होजाय तब वह वायु अत्यन्त जिसने कुछ खाना न खाया होय ऐसे उस मनुष्य को मेद तथा मज्जा हाड़ों में पीड़ा करै उस में जो न्हाय वा खाने को खाय तो तीन रात्रि में मर जाय यह मेदोगत सन्नि-पात कम्पण कहलाता है यह काम से मोह से और लोभ से भयसे पैदा होता है। मध्य हीन अधिक दोषों से जब सन्निपात होय तो उसके विकार उस प्रधान दोषके अनुरूप प्रधान रूप तथा मध्य दोषके अनुरूप मध्य वाले हीन दोष के हीन ही रूप उसमें मिलते हैं यह दोष के अनुरूप जानै इसके अति-रिक्त और आचार्योंके मत से इस प्रकार जानै "कुम्भीपाक, पौर्णनाव, प्रलापी अंतर्दाह, दंडपात, अंतक, एणीदाह, हारिद्र, अजघोष, भूतहास, यन्त्रापीड़, सन्यास संशोषी १३ सन्निपात हैं।

किसी ने १३ प्रकार के सन्निपात कहे हैं।

विस्फारकश्चाशुकारी कंपनो बभ्रु संज्ञकः।
शीघ्रकारी तथा भल्लुः सप्तमः कूटपालकः ॥
संमोहकः पाकलश्च याम्यःक्रकच इत्यपि।
ततः कर्कटकः प्रोक्त स्ततो वैदारिकाभिधः ॥

ग्रन्थ बढ़ने के भय से इनके लक्षण मूल श्लोकों से भाव प्रकाश से उद्धृत किये हैं ॥

श्वासः कासो भ्रमो मूर्छा प्रलापो मोह वेपथुः।
पार्श्वस्य वेदना जृम्भा कषायत्वं मुखस्यच ॥
वातोल्बणस्य लिंगानि सन्निपातस्य लक्षयेत्।
एष विस्फार को नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥

पित्तोल्बण आशुकारी के लक्षण

अतिसारो भ्रमो मूर्छा मुखपाकस्तथैवच।

गात्रे च विदंवोरक्ता दाहोतीव प्रजायते
पित्तोल्वणस्य लिंगानि सन्निपातस्य लक्षयेत्
भिषग्भिः सन्निपातोऽयमाशुकारी प्रकीर्तितः ॥

कफोल्वण कंपन सन्निपात के लक्षण

जडता गद्गदवाणी रात्रौ निद्रा भवत्यपि ॥
प्रस्तब्धे नयने चैव मुखमाधुर्य मेवच ॥
कफोल्वणस्य लिंगानि सन्निपातस्य लक्षयेत् ॥
मुनिभिः सन्निपातोऽय मुक्तः कंपन संज्ञकः ॥

बात पित्तोल्वण बभ्रु सन्निपात के लक्षण

बातपित्ताधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति ॥
तस्यज्वरो मदस्तृष्णा मुखशोष प्रमीलकाः ॥
आध्मानारुचितंद्राश्च कासश्वास भ्रमश्रमाः ॥
मुनिभिर्बभ्रुनामायं सन्निपात उदाहृतः ॥

बातकफोल्वण शीघ्रकारी के लक्षण ॥

बात श्लेष्माधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति ॥
तस्य शीतज्वरो मूर्छा क्षुत्तृष्णापार्श्व निग्रहः ॥
शूलमस्विद्यमानस्य तंद्रा श्वास श्चजायते ॥
असाध्यः सन्निपातोऽयं शीघ्रकारीति कथ्यते ॥
नहि जीवत्यहोरात्रमनेनाविष्टविग्रहः ॥

पित्त कफोल्वण भल्लु सन्निपात के लक्षण ।

पित्त श्लेष्माधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति ॥
अतर्दाहो बहिः शीतं तस्य तृष्णा प्रवर्धते ॥
तुद्यते दक्षिणे पार्श्वे उरः शीर्षगलग्रहाः ॥
ष्ठीवति श्लेष्मपित्तंच कृच्छ्रात्कोठश्च जायते ॥

विड्भेदश्वास हिक्काश्च वर्धंते सप्रीमलका॥
ऋषिभिर्भल्लुनामायं सन्निपात उदाहृतः॥

त्रिदोषोल्वण कूट पालक ।

सर्वे दोषोल्वणो यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति॥
त्रयाणामपि दोषाणां तस्य रूपाणि लक्षयेत्॥
व्याधिभ्यो दारुणश्चैव वज्र शस्त्राग्नि सन्निभः॥
केवली च्छासपरमः स्तब्धाङ्गः स्तब्धलोचनः॥
त्रिरात्रात्परतो तस्य जंतो र्हरति जीवितम्॥
तदवस्थंतु तंदृष्ट्वा मूढो व्याहरतेजनः॥
धर्षितोराक्षसैर्नून मवेलायां चरंतिये॥
अंवया व्रुवते केचिद्यक्षिण्या ब्रह्मराक्षसैः॥
पिशाचै र्गुह्यकैश्चैव तथान्यैर्भस्तके हतम्॥
कुल देवार्चना हीनं धर्षितं कुलदेवतैः॥
नक्षत्र पीडा मपरे गरकर्मेति चापरे॥
सन्निपात मिमंप्राहु र्भिषजः कूटपालकम्॥

प्रवृद्ध मध्य हीन वातादिजनित सन्निपात ज्वरों के लक्षण इनही में ऊपर की गणना में ८ वे संमोहक सन्निपात के लक्षण।

प्रवृद्ध मध्य हीनै स्तु वातपित्तकफैश्चयः
तेनरोगास्तएवोक्ता यथादोषवलाश्रयाः॥
प्रलापायास संमोहकंपमूर्च्छारतिभ्रमाः॥
एकपक्षाभिघातश्च तत्राप्येते विशेषतः॥
एष संमोहकोनाम्ना सन्निपातः सुदारुणः॥

पाकल सन्निपातके लक्षण॥

मध्य प्रवृद्ध हीनैस्तु वात पित्त कफैश्चयः

तेनरोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥
मोहप्रलापमूर्च्छाः स्युर्मन्यास्तंभः शिरोग्रहः ।
कासश्वासो भ्रमस्तंद्रा संज्ञानाशो हृदिव्यथा ॥
खेभ्योरक्तं विसृजति संरक्तस्तब्धनेत्रता ॥
तत्राप्येते विशेषाः स्युर्मृत्युरर्वाक् त्रिवासरात् ।
भिषग्भिः सन्निपातोऽयं कथितः पाकलाभिधः ॥

यास्य सन्निपातके लक्षण ।

हीन प्रवृद्ध मध्यैस्तु वात पित्त कफश्चयः ॥
तेनरोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥
हृदयं दह्यते चास्य यकृत्प्लीहां च फुप्फुसाः ।
पच्यंते त्यर्थ मूर्द्धाधः पूय शोणित निर्गमः ॥
शीर्णदन्तश्च मृत्युश्च तत्राप्येतद्विशेषतः ।
भिषग्भिः सन्निपातोऽयं याम्यो नाम्ना प्रकीर्तितः ॥

क्रकच सन्निपातके लक्षण ॥

प्रवृद्धहीन मध्यैस्तु वात पित्त कफैश्चयः ॥
तेनरोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥
प्रलापायास संमोहाः कंपमूर्च्छा रतिभ्रमाः ।
मन्या स्तम्भेन मृत्युःस्यात्तत्राप्येतद्विशेषतः ॥
भिषग्भिः सन्निपातोऽयं क्रकचःसंप्रकीर्तितः ॥

कर्कटक सन्निपात के लक्षण ॥

मध्यहीन प्रवृद्धैस्तु वात पित्त कफैश्चयः ।
तेनरोगास्त एवोक्ताः यथादोषबलाश्रयाः ॥
अंतर्दाहो विशेषोत्रनचवक्तुं स शक्यते ।
रक्त मालक्त के नैव लक्ष्यते मुखमण्डलम् ॥

पित्तेना कर्षितः श्लेष्मा हृदयान्न प्रसिच्यते ।
इषुणेवाहतं पार्श्वं तुद्यते खन्यते हृदि ॥
प्रमीलकः श्वास हिक्का वर्धंते तु दिने दिने ।
जिह्वादग्धाखरस्पर्शागलः शूकैरिवावृतः ॥
विसर्गं नाभिजानाति कूजेचापिकपोतवत् ॥
अतीवश्लेष्मणापूर्णः शुष्कवक्रौष्ठतालुकः ॥
तंद्रानिद्राति योगार्तो हतवाणी हतद्युतिः ॥
नरतिंलभतेनित्यं विपरीतानि चेच्छाति ॥
आयम्यते च बहुशोरक्तंष्ठीवतिचाल्पशः ॥
एषकर्कटकोनाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥

वैदारिक सन्निपातके लक्षण ॥

हीन मध्यप्रवद्धैस्तु वात पित्त कफै श्चयः ॥
तेन रोगास्त एवोक्ता यथा दोषवला श्रयाः ॥
अल्प शूलं कटीतोदो मध्यो दाहो रुजा भ्रमः ॥
भृशं क्लमः शिरोवस्ति मन्या हृदय वा ग्रुजः ॥
प्रमीलकः श्वासकास हिक्का जाड्यं विसंज्ञिता ॥
प्रथमात्पन्नमेनं तु साधयंति कदाचन ॥
एतास्मिन् सन्निवृत्तेतु कर्ण मूले सुदारुणः
पिडिका जायते जंतोर्यया कृच्छ्रेणजीवति
सवैदारिक संज्ञोऽयं सन्निपातः सुदारुणः
त्रिरात्रात्पर मेतस्य व्यर्थ मौषध कल्पनम् ॥

कोई आचार्य ने इस प्रकार १३ सन्निपात कहे हैं ॥

शीतांगस्त्रिमलोद्भव ज्वर गणे तंद्री प्रलापीततो ॥
रक्तष्ठीवयिता च तत्रगणितःसंभुग्ननेत्रस्तथा ॥

साभिन्यासक जिह्वकश्च कथितः प्राक्संधिकोथांतको ॥
रुग्दाहःसहचित्तविभ्रम इह द्वौकर्ण कंठ ग्रहो ॥

भाषा-त्रिदोष से प्रगट हुए शीतांग, तंद्रिक, प्रलापक, रक्तष्ठीवी, भुग्न नेत्र, अभिन्यासक, जिह्वक, संधिक, अंतक, रुग्दाह, चित्तभ्रम, कर्णक, और कण्ठ कुब्जक ये तेरह सन्निपात हैं इनके लक्षण विस्तार पूर्वक अन्यान्य ग्रन्थों में लिखे हैं परन्तु ग्रन्थ विस्तार के भय से हम ने यहां नहीं लिखे हैं इन के अतिरिक्त ग्रन्थान्तर में कुंभी पाक, प्रोर्णुनाव, प्रलापी, अन्तर्दाह, दण्डपात, अन्तक, एणीदाह, हारिद्र, अजघोष, भूतहास, यंत्रापीड, सन्यास संशोषी इस प्रकार और भी ११ सन्निपात जानने ॥

सन्निपाते उपद्रवाः

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः ॥
[1]शोथः संजायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥

भाषा-सन्निपात ज्वरके अन्तमें कानोंकी जड़में बड़ा कठिन शोथ कर्णमूल] (सुजन) होती है उससे कोई ही बचता है परन्तु आचार्यों का मत इस विषयमें इस प्रकार लिखा है ॥

ज्वरस्यपूर्वं ज्वरमध्यतो वा ज्वरांततोवा श्रुतिमूल शोथः
क्रमादसाध्यःखलुकष्टसाध्यःसुखेनसाध्योमुनिभिः प्रदिष्टः

भाषा—यहही कानकी जड़ में सुजन (गांठ) ज्वर के पूर्व में होय तो असाध्य है बीचमें होय तो कष्ट साध्य है ज्वरके अन्त में होय तो साध्य है ऐसा मुनियों ने कहा है ॥

सन्निपात की मर्यादा

सप्तमे दिवसे प्राप्ते दशमे द्वादशे पिवा ॥
पुनर्घोर तरो भूत्वा प्रशमं याति हन्ति च ॥
सप्तमी द्विगुणा चैवनवम्येकादशी तथा ॥
एषात्रिदोषमर्यादा मोक्षाय च वधाय च ॥

---

१ पित्तकफानिलवृद्ध्या दशदिवसद्वादशाहसप्ताहात् - हंति विमुंचति पुरुषं त्रिदोषजो धातुमलपाकात् ।

भाषा—सातवे दिन दशमें दिन वा बारहवें दिन एक वेर खुब घोर रूप धारण करके यातो शान्त हो होता है वा उसके प्राणों को हरण ही करता है सात दिन वा चौदह दिन नौ दिन वा ग्यारह दिन तथा इनके दूने अठारह वा वाईस दिन यह त्रिदोषकी मर्यादा बांधी है इनमें यातो शान्त होजाता है वा उस मनुष्य को नष्ट कर देता हैं ॥

मूल माधव में और सब प्रकार के सन्निपातों का स्वरूप न लिखकर विशिष्ट रूपसे अभिन्यास सम्बधीकुछ श्लोकप्रक्षिप्त हैंउनका हमभीअनुवादकरतेहैं.

त्रयः प्रकुपिता दोषा उरः स्रोतो ऽनुगामिनः ॥
आमाभिवृद्ध्या ग्रथिता बुद्धीन्द्रिय मनोगताः ॥
जनयन्ति महा घोर मभिन्यासं ज्वरं दृढम् ।
श्रुतो नेत्रे प्रसुप्तिः स्यान्नचेष्टां कांचिदीहते ॥
नच दृष्टिर्भवेत्तस्य समर्था रूपदर्शने ।
नघ्राणं नच संस्पर्शं शब्दं वानेव बुध्यते ॥
शिरो लोठयते ऽभीक्ष्ण माहारं नाभि नन्दति ॥
कूजति तुद्यते चैव परिवर्तन मीहते ॥
अल्पं प्रभाषते किंचि दभिन्यासः सउच्यते ॥
प्रत्याख्यातः सभूयिष्ठः कश्चिदेवात्र सिध्यति ॥

भाषा—तीनों दोष (वात, पित, कफ) कुपित हुए वक्षः स्थल के स्रोतो में अनुगमन करते हुए आमकी वढोतरी से जिकड़े हुए ज्वर को पैदा करते हैं उसमें कानों में सुन्नता आजाय आंखों में सुन्न होजावे न कोई शरीर की चेष्टा करै (हाथपैर न हलावै) आंख रूप देखने में समर्थ न हो नाक से सुंघाई न परै कोई छीवै तबभी कुछ मालूम न हो और कोई की बोली भी न पहिचाने माथे को इधर उधर पटकै खाने में रुचि नहो गुन २ करता रहै पीडा होय करवट बदले बोले तो थोडा बोले यह विकार होते हैं ऐसा अभिन्यास ज्वर बड़ा कठिन स्व रूप का वर्णन किया है उससे कोई ही बचता है ॥

सन्निपात के असाध्य कृच्छ्र साध्य के लक्षण ॥

दोषे विवद्धे नष्टेऽग्नौ सर्व सम्पूर्ण लक्षणः ॥

सन्निपात ज्वरो ऽसाध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा ॥

भाषा-अग्नि के शान्त होने पर सब प्रकार के लक्षणों से युक्ति जो सान्नि पात ज्वर है वह असाध्य है इससे जो विपरीत हो अर्थात् थोडे लक्षण जिस में मिलते हो दोष भी ज्यादान बढेहों अग्नि भी विशेषतया शान्ति न हुई हो वह सन्निपात ज्वर कृच्छ्र साध्य जानना ॥

सन्निपात नाशक वैद्यका महत्त्व

सान्निपातार्णवे मग्नं योऽभ्युद्धरति मानवम् ॥
कस्तेननकृतो धर्मो कांच पूजांनसां ऽर्हति ॥
मृत्युना सहयोद्धव्यं सन्निपातं चिकित्सता ॥
यश्चतत्र भवेज्जेता सजेता मय संकुले ॥

भाषा-जो सन्निपात समुद्र में डूबे हुए मनुष्य को उद्धार करता है उसने कौनसा धर्म नहीं किया और वह कोनसी पूजा के योग्य नहीं हैं अर्थात् वह धर्म मात्र कर चुका है चिकित्सा करने वाला प्राणी मृत्यु के साथ युद्ध करता है जिसने इस सन्निपात को जीता उसने सब कुछ जीत लिया ॥

मृत्युना सह योद्धव्यं सन्निपातं चिकित्सता ॥
यस्तु तत्र भवेज्जेता स जेताऽमयसंकुले ॥ ११ ॥

भाषा—जो वैद्य सन्निपात की चिकित्सा करे है वह मौत के साथ संग्राम करता है ॥ जो इस सन्निपात को जीते अर्थात् शांत करे वह सर्व रोगके गणों का जीतने वाला है ॥

आगतुकज्वर के लक्षण।

अभिघाताभिचाराभ्यामाभिषंगाभिशापतः ॥
आगंतुर्जायते दोषैर्यथास्वं तं विभावयेत् ॥ २१ ॥

भाषा-छुरी, घूंसा, तलवार, लकडी आदि शस्त्र आदिकी चोट लगने से प्रगट हुए ज्वरको अभिघातज जानना चाहिये। विपरीतमंत्र के जपने से, लोहके सुकूसे, मारण के निमित्त सरसों आदिके हवन करना अथवा मूठ घात आदि चलाने के प्रयोगसे उत्पन्न हुए ज्वरको अभिचारज कहते हैं।

काम, शोक, भय, क्रोध, भूतादिकोंके आवेशसे उत्पन्न ज्वर को अभिषंगज कहते हैं ॥ ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध, और महात्माओं के शाप देनेसे प्रगट हुए ज्वर को अभिशापज कहते हैं । यह चार प्रकार से आगंतुक ज्वर उत्पन्न होते हैं इस ज्वरके आरंभसे पूर्व कोई दोषका प्रकाश नहीं होता पीछे जैसे दोष कुपित हों वे उनको उन्हीं उन्हीं दोषों के लक्षण युक्त जाने। जैसे "कामशोक भयाद्वायुः" अर्थात् काम से शोक से भय से वायु कुपित होता है तब वात दोष का उपचार लाभदायक होता है ॥

विषसे उत्पन्न आगंतुकज्वरके लक्षण ॥

श्यावास्यता विषकृते दाहोऽतीसार एव च ॥
भक्तारुचिः पिपासा च तोदश्च सह मूर्च्छया ॥ २२ ॥

भाषा-अब आगंतुकज्वरों के कारणों के भेद द्वारा लक्षण कहते हैं। स्थावर जंगम विष खाने से जो ज्वर होता है उससे मुखमें कालौंच और दाह तथा दस्तों का होना, अन्नमें अरुचि, प्यास, मूच्छा के साथ पीड़ा होना ये लक्षण होते हैं ॥

औषधगंधजनित ज्वर के लक्षण।

औषधगन्धजे मूर्च्छा शिरोरुग्वमथुः क्षवः ॥

भाषा तीक्ष्ण औषधके सूंघने से जो ज्वर होता है उसमें मूर्च्छा, शिरमें पीड़ा, वमन, छींक ये लक्षण होते हैं ॥

कामज्वरके लक्षण ॥

कामजे चित्तविभ्रंशस्तन्द्राऽलस्यमभोजनम् ॥
हृदये वेदना चास्य गात्रं च परिशुष्यति ॥

भाषा—सुरूपा स्त्री के देखने से मनुष्य के मनमें अत्यन्त कामकी बाधा उत्पन्न हुए ज्वर के यह लक्षण है । चित्तकी अस्थिरता, तंद्रा, आलस्य, भोजन में अरुचि, और हृदयमें पीड़ा रहै और शरीर सूखता जाय ॥

भय शोक और कोप ज्वर के लक्षण ॥

भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः ॥ २३ ॥

भाषा-भयसे और शोक से उत्पन्न ज्वर में अनर्थ वाणी बोले (जिसका मतलब न समझने में आवे) कोपसे उत्पन्न हुए ज्वरमें कंप होय ॥

अभिचार और अभिशाप ज्वरके लक्षण ॥

अभिचाराभिशापाभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते ॥ २९ ॥

भाषा-अभिचार और अभिशाप से प्रगट होने वाले ज्वरमें मोह और तृष्णा होते हैं ॥

भूताभिषंगज्वर के लक्षण।

भूताभिषंगादुद्वेगो हास्यरोदनकंपनम्

भाषा-भूतबाधा से उत्पन्न हुए ज्वरमें चित्तमें उद्वेग, हँसना, रोना, और कम्प ये लक्षण होते हैं।

कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात्पित्तं त्रयो मलाः ॥

भूताभिषंगात्कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः॥ ३० ॥

भाषा-काम शोक और भय इनसे वायुकुपित होता है, क्रोधसे पित्त कुपित होता है और भूताभिषंग से भूतोंकी तुल्य लक्षण वाले तीनों दोष कुपित होते हैं ॥

विषमज्वरकी संप्राप्ति कहते हैं

दोषोऽल्पोऽहितसंभूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः ॥

धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम् ॥ ३१ ॥

भाषा-जिस मनुष्य का ज्वर, औषधादि सेवन करने से शांत होगयाहो उसके पीछे और प्रारंभ से इकीस दिन व्यतीत होनेपर तथा जीर्ण होनेपर कुपथ्य पदार्थोंके सेवन करने से वातपित्तादि दोष पुनः थोड़ा प्रकुपित हुआ रसरक्तादि धातुओं में से किसी धातुमें प्राप्त हो और उनको दूषित करविषम ज्वर को पैदा करते हैं तथा विषम के जो भेद हैं वह उन्हें पैदा करदेते हैं इस श्लोक में जो वा शब्द पड़ा है उससे यह ज्ञात होता है कि प्रथमसे ही विषम ज्वर होता है जैसे "आरम्भाद्विषमो यस्तु" इत्यादि पदों से स्पष्ट होताहै विषमज्वर के सामान्य लक्षण भालुकिने कहे हैं सो ऐसे यःस्यादनियतात्काला च्छीतोष्णाभ्यां तथैवच। वेगतश्चापि विषमोज्वरः स विषमः स्मृतः ॥

धातुगत ज्वरों के नाम भेद कहतेहैं

संततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ ॥ संततं रसरक्तस्थः सोऽन्येद्युः पिशिताश्रितः॥ ३२॥ मेदोगतस्तृतीयेऽह्नि

अस्थिमज्जगतः पुनः ॥ कुर्य्याच्चतुर्थकं घोरमंतकं रोगसंकरम् ॥ ३३ ॥

भाषा-संतत, सतत, अन्येद्यु (इकतरा) तृतीयक जिसको तिजारी कहते हैं और चतुर्थक जिसको चौथैया कहते हैं ऐसेपांच प्रकार के विषमज्वर हैं। संतत के कहने से सन्तत व सतत दोनों का बोध होता है वे दोनों क्रम से रस और रक्त नामक धातु में रहते हैं जैसा चरक (१) में लिखा है। और वह जो अन्येद्यु [इक आंतरा] कहा है वह मांस में आश्रित होता है और मेद में प्राप्त हुआ दोष तृतीयक (तिजारी) ज्वर पैदा करता है और वही दोष अस्थिमज्जा में प्राप्त हुआ दुःसह मृत्युकारक अनेक रोगों से व्याप्त ऐसे चतुर्थक ज्वर को प्रगट करता है ॥

संतत ज्वर ।

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ॥
संतत्या यो विसर्गी स्यात्संततः स निगद्यते ॥३४॥

भाषा-सात दिन तक वा दश दिनतक वा बारह दिनतक एकसा जो ज्वर बना रहै और उतरे नहीं उसका नाम सन्तत ज्वर यह कहा जाता है सात, दश, बारह ये जो कहैं सो अनुक्रम करके बात, पित्त, कफ इनके प्राधान्य सें कहे हैं यह जो विकल्प कहे हैं वे वातोल्वण पित्तोल्वण, कफोल्वण, इस प्रकार से जानना जैसा कहा है:-

पित्त कफानिल वृद्धया दश दिवश द्वादशाह सप्ताहात्-
हन्ति विमुंचति वाशु त्रिदोषजो धातुमलपाकात् ॥

इसके कहने से त्रिदोष का बोध होता है यहां तो सन्तत की बात है तहां कहते हैं कि यह भी सन्तत बारह दिन की अवधिवाला माना है इससे त्रिदोषजही समझना चाहिये चरक में कहा भी है यथाधातूंस्तथा मूत्रपुरीषंचानिलादयः युगपच्चानुपद्यन्ते नियमात्सन्तते ज्वरे इति ।

---

(१)—रक्तधात्वा श्रयः प्रायो दोषःसततकं ज्वरम् इति चरके पठितम् प्रायो ग्रहणा त्सतत को रक्त व्यतिरिक्तं रसधातुमाश्रयते । रसग्रहणं चात्र विशेषपरं सर्वज्वरे पुरसस्यावश्यक दूष्यत्वात् । अन्येतु सतत गृहणार्थं सन्ततौ रसरक्तस्थौ इति पठन्ति तन्नाति युक्तम् अत्रहि सन्तत सतत शब्दौ संग्रापरौ नतुसातत्य वाचिनौ तेन सन्तत शब्देन सततकस्यानाभिधानात् कथमेक शेष इति दोषः ।

अहोरात्रे सततको द्वौ कालावनुवर्त्तते ॥ अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्रमेककालं प्रवर्त्तते ॥ ३५ ॥ तृतीयकस्तृतीयेऽह्नि चतुर्थेऽह्नि चतुर्थकः॥ केचिद्भूताभिषंगोत्थं ब्रुवते विषमज्वरम् ॥३६॥

सततक ज्वर दिनरात में दो दो कालों में आता है किसी के मत में एक समय में भी आता है पर दिन और रात में जरूर एकदफे वा दो दफे आता है ऐसा नियम है अन्येद्यु (इकतरा) १ दिन रातमें एकवार आताहै तृतीयक (तिजारी) तीसरे दिनमें आता है चौथे दिन चतुर्थक (चौथैया) आता है कोई आचार्य भूतवाधासे उत्पन्न हुए ज्वर को भी विषम ज्वर कहते हैं ।

उल्वणदोष भेदसे तृतीयकचतुर्थकोंके दूसरे लक्षण कहते हैं ।

कफापित्तात्रिकग्राही पृष्ठाद्वातकफात्मकः । वातपित्ताच्छिरोग्राही त्रिविधः स्यात्तृतीयक : ॥ ३७ ॥ चतुर्थको दर्शयाति प्रभावं द्विविधं ज्वरः ॥ जंघाभ्यां श्लैष्मिकः पूर्वं शिरस्तोऽनिलसंभवः ३८

तृतीयक ज्वर (तिजारी) तीनप्रकार का जानना कफ, पित्तसे जो पैदा होता है वह त्रिक को ग्रहण कर आता है त्रिकको वातकी स्थानता होने से उस स्थान में प्राप्त हुए पित्तकफ अन्य नाम वातके स्थान में प्राप्त होने से दुर्बल होते हुए तीसरे दिन में वेग करते हैं और जो कहीं यहही अपने स्थान ही में स्थिति वाला होवै तो सन्तत ही होजाय तृतीयक नरहै इसप्रकार ही दूसरा भेद यथा वात कफके दोषसे पीठ भाग को ग्रहण कर ज्वर पैदा होता है यानी पहिले पीठ में दर्द व भारापन होता है फिर बुखार आता है तथा वात पित्त के दोषसे माथे को दर्द कर और भारी कर ज्वर पैदा होता है एक दोनों में भी ऊपर के लिखने के अनुसार कफस्थान शिरमें और पित्तस्थान पीठ में अन्यान्य स्थान वाले दोष जब निर्बल होते हुए उपस्थित होते हैं तब पीठ व माथे में पीड़ा होते हुए ज्वर होता है शंका—क्यों जी यदि त्रिक वातका स्थान है तब वहां पित्त कफ कैसे प्राप्त होते हैं अपने नियत स्थानोंको छोड़ना तो असम्भव है उत्तर देते हैं कि जब दोष प्रकृतिस्थ यानी दूषित नहीं होते तबतो स्थान को नहीं छोड़ते अन्यथा प्रकुपित होने

पर तो सब देह में व्यापक होजाते हैं जैसे सुश्रुताचार्यने लिखा है—कुपिता नांहि दोषाणां शरीरे परिधावतां यत्रसंगः॥स्ववैगुण्यात् व्याधिस्तत्रोपजायते॥ ऐसे ही चातुर्थक—(चोथैया) दो प्रकार के प्रभाव दिखाता है यानी शरीर में दो प्रकार से आता है जैसे कफाधिक्य वाला चतुर्थक पहिले जंघाओं में भड़कन करता है फिर सब देह में तकलीफ पहुंचाता है दूसरा जो वाताधिक्यवान् चौथैया है वह पहिले शिरसे आता है अर्थात् माथे में भारी पीड़ा पहिले होती है फिर सब शरीर में आता है ॥

विषमज्वर के भेद कहते हैं ॥

विषमज्वर एवान्य श्चतुर्थकविपर्ययः ॥
मध्येऽहनी ज्वरयति ह्याद्यावन्ते च मुंचति ॥३९॥

भाषा—चतुर्थक (चोथैया) ज्वरको विपरीत यह दूसरा विषमज्वरहै यह पहिले और पीछे के दिन छोड़ फिर बीचके दो दिन आता है। जैसे यह चतुर्थकका विपरीत [उलटा है] तैंसेही तृतीयक आदिकाभी विपरीत होता है उनको कहते हैं जैसे बीचके एक दिन ज्वर आवे और आदि अन्ति के दिन नहीं आवे यह तृतीयकका विपरीत औरजो एक काल छोड़कर सब दिन रात्रि ज्वर रहे वह अन्येद्युष्क (इकतरा) का विपरीत जानै ।

नित्यं मन्दज्वरो रूक्षः शूनकस्तेन सीदति ॥
स्तब्धांगः श्लेष्मभूयिष्ठो नरो वातबलासकी ॥३९॥

भाषा—नित्य मन्दा २ ज्वर बनारहै शरीरमें रूखापनहो सूजन आजाय उससे बड़ी तकलीफ हो शरीर जिकड़ा सा होजाय कफ बहुत बढ़ जाय उस मनुष्य को वात बलासक ज्वर वाला जानै ॥

प्रलेपक ज्वर के लक्षण ।

प्रलिंपन्निव गात्राणि घर्मेण गौरवेण च ॥
मन्दज्वरविलेपी च स शीतः स्यात्प्रलेपकः ॥४१॥

भाषा-जिस ज्वरमें पसीने से तथा रविकी गरमीसे अथवादेहके भारापन से शरीर को लिपासा कर दिया मालूम पड़ै इसही कारणसे मन्द ज्वरहो ठंड लगने लगे । यह ज्वर कफपित्तसे पैदा होता है और प्रायः राजयक्ष्मारोगमें यह होताहै । कोई इसको त्रिदोषजन्य कहते हैं यहही प्रलेपक ज्वर कहलाता है ॥

विषमज्वर की बिशेषता।

विदग्धेऽन्नरसे देहे श्लेष्मपित्ते व्यवस्थिते ॥
तेनार्धं शीतलं देहेचार्धंचोष्णं प्रजायते ॥ ४२ ॥

भाषा–अन्न रस के दूषित होने पर और देहमें कफ पित्त दूषित हो स्थित रहै तब अर्धांग ज्वर प्रगट करै है अर्थात् आधा शरीर कफसे शीतल और आधा शरीर पित्तसे गरम रहता है॥

काये दुष्टं यदा पित्तं श्लेष्मा चान्ते व्यवस्थितः ॥
तेनोष्णत्वं शरीरस्य शीतत्वं हस्तपादयोः ॥४३॥

भाषा–जिस मनुष्य के शरीरमें पित्त दुष्ट हो और कफ अन्तमें (हाथपैर में) स्थित होवै उससे सब देह उष्ण रहै और हाथ पांव शीतल रहैं ॥

इनसे उलटा द्वितीय ज्वर कहतेहैं।

काये श्लेष्मा यदा दुष्टः पित्तं चांते व्यवस्थितम् ॥
शीतत्वं तेन गात्राणामुष्णत्वं हस्तपादयोः ॥४४॥

भाषा–जिस समय शरीरमें कफ दूषित हो और पित्त अन्तमें [हाथ पैर में] रहै तब शरीर शीतल होता है और हाथ पैर गरम होतेहैं ॥

शीतपूर्वज्वरके लक्षण।

त्वक्स्थौ श्लेष्मानिलौ शीतमादौ जनयतो ज्वरम् ॥
तयोः प्रशांतयो पित्तमन्ते दाहं करोति च ॥४५॥

भाषा—कफ और वायु ये दूषित होकर त्वचामें प्राप्त होतेहुए अर्थात् रस धातुका आश्रय कर प्रथम शीतज्वर उत्पन्न करतेहैं और जब इनका वेग शांत होजाता है तब पीछे पित्त दाह करता हैं अर्थात् जो ज्वर ठंड लगकर आताहै उसके यह प्रकार हैं ॥

दाहपूर्वज्वरके लक्षण ॥

करोत्यादौ तथा पित्तं त्वक्स्थं दाहमतीव च ॥
तस्मिन्प्रशान्ते त्वितरौ कुरुतः शीतमंततः ॥४६॥
द्वावेतौ दाहशीतादिज्वरौ संसर्गजौ स्मृतौ ॥

दाहपूर्वस्तयोः कष्टः कृच्छ्रसाध्यतमश्चसः ॥४७॥

भाषा-उसी ही तरह पहिले पित्त त्वचामें स्थित रसगत होकर अत्यंत दाह करता है पीछे उसका वेग शांत होनेपर वात कफ ये शीत करते हैं।दाहपूर्वक और शीतपूर्वक ये दोनों ज्वर संसर्ग अर्थात् त्रिदोषोके संबंध से होते हैं ऐसे आचार्यों के वाक्य से सिद्ध होता है उन दोनों में जो दाहपूर्वक ज्वर है वह दुःखप्रद हैं और कृच्छ्रसाध्य तम है ऐसा कहने से हीं मालूम होता है कि शीतपूर्व ज्वर जो है वह सुख साध्य है।

सप्तधातुगत ज्वरों के लक्षणोंम रसधातुस्थ ज्वर के लक्षण।

गुरुता हृदयोत्क्लेशः सदनं छर्द्यरोचकौ।
रसस्थे तु ज्वरे लिंगं दैन्यं चास्योपजायते ॥४८॥

भाषा-रसधातुमें स्थित जब ज्वर होता है तब देह में भारापन, दोषोंके हृदय में स्थित होने से उपस्थित वमनसीं मालूम हो यानी उबाकी आवे ग्लानि वमन अरुचि और दैन्य नाम उदासी ये चिह्न होते हैं ॥

रक्तधातुगत ज्वर के लक्षण।

रक्तनिष्ठीवनं दाहो मोहश्छर्दनविभ्रमौ ॥
प्रलापः पिड़िका तृष्णा रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥४९॥

भाषा- रुधिर थूकना, दाह, मोह वमन, भ्रम, [घुमेर] अनर्थ शब्द बोले देहमें फुन्सी प्यास ये लक्षण, जब ज्वर रक्त धातु में प्राप्त होता है तब होते हैं ॥

मांसधातुगत ज्वर के लक्षण।

पिडिकोद्वेष्टनं तृष्णा सृष्टमूत्रपुरीषता ॥
ऊष्मांतर्दाहविक्षेपौ ग्लानिःस्यान्मांसगे ज्वरे ॥ ५० ॥

भाषा-पीडरियों में लकड़ी मारने की सी पीड़ाहो प्यास, दस्तभी हों और पेशाबभी विशेष हो गरमी, अंतर्दाह, हाथ पैरों का इधर उधर पटकना और ग्लानि जब मांसमें ज्वर पहुंच जाता है तब यह लक्षण होते हैं।

मेदधातुगत ज्वरके लक्षण।

भृशं स्वेदस्तृषा मूर्च्छा प्रलापश्छर्दिरेव च ॥

दौर्गन्ध्यारोचकौ ग्लानिर्मेदःस्थे चासहिष्णुता ॥ ५१ ॥

भाषा—अत्यंत पसीने आना, प्यास, मूर्च्छा, प्रलाप, वरांइट, वमन, देहमें दुर्गंध अन्नमें अरुचि, ग्लानि और वेदना न सही जाय ये लक्षण मेदगत ज्वर में होते हैं।

अस्थिधातुगत ज्वर के लक्षण।

भेदोऽस्थ्नां कूजनं श्वासो विरेकश्छर्दिरेव च ॥
विक्षेपणं च गात्राणामेतदस्थिगते ज्वरे ॥ ५२ ॥

भाषा—हड़फूटन तथा गुनगुनाहट, श्वास दस्त व वमन का होना, हाथ, पैरों का फेंकना ये अस्थिगत ज्वरके लक्षण हैं।

मज्जाधातुगत ज्वरके लक्षण।

तमः प्रवेशनं हिक्का कासः शैत्यं वमिस्तथा ॥
अन्तर्दाहो महाश्वासो मर्मच्छेदश्च मज्जगे ॥ ५३ ॥

भाषा—अँधेरेसे में डूबना हिचकी, खांसी शीत का लगना, वमन, अंतर्दाह [भीतरदाह होना] महाश्वास लम्बे२ श्वासलेना और मर्म स्थानोंमें पीड़ा यहां पर कार्तिकाचार्य का मत केवल मर्म के ग्रहण से हृदय ग्रहण करनाही है वहां हृदय में पीड़ा ऐसा अर्थ समझना यह लक्षण मज्जागत ज्वर के हैं।

शुक्रधातुगत ज्वरके लक्षण।

मरणं प्राप्नुयात्तत्र शुक्रस्थानगते[1] ज्वरे।
शेफसः स्तब्धता मोक्षःशुक्रस्य च विशेषतः ॥ ५४ ॥
(रसरक्ताश्रितःसाध्योःमांस मेदो गतश्चयः ॥
अस्थिमज्जगतः कृच्छ्रो शुक्रस्थस्तुन सिध्यति) ॥

भाषा—वह ही ज्वर जो क्रमशः और धातुओं में प्राप्त हुआ शुक्र[वीर्य]

---

१ शुक्रस्थान शरीर में कहां है क्योंकि मूल में लिखाहै "शुक्रस्थानगते ज्वरे" शुक्र का स्थान उसमें जब ज्वर जाय यह शंका होती है। उत्तर देते हैं कि वहां शुक्रस्य स्थान ऐसा अर्थ नहीं करते किन्तु शुक्र जो है वहही ठहरने का मुकाम उसको शुक्र स्थान समझना क्योंकि सब धातुओं के स्थान निर्देश जहां किये हैं वहीं वीर्यका इस प्रकार लिखा है कि वीर्यका कोई स्थान निश्चित नहींहै यथा - यथा पयासि सर्पिस्तु गुडश्चेक्षुरसे यथा। शरीरेषु तथा नृणां शुक्रं विद्याद्भिषग्वरः॥

धातु में प्राप्त हो तब वह मनुष्य मरजाता है तहां शिश्नेन्द्रिय का कड़ापन अर्थात् लिंग हरसमय खड़ा रहे और कड़ा बना रहे और उस में से वीर्य विशेष कर हर समय बहता रहता है यह लक्षण होते हैं कोई कहते हैं रक्त आदि बहता रहै ॥

प्राकृत ज्वर और वैकृत ज्वरके लक्षण कहते हैं ।

वर्षाशरद्वसंतेषु वाताद्यैःप्राकृतःक्रमात् ॥
वैकृतोऽन्यःस दुःसाध्यःप्राकृतश्चानिलोद्भवः॥ ५५ ॥

भाषा-वर्षाऋतु शरदऋतु और बसंतऋतु इनमें वातादि के क्रम से जो ज्वर होता है वह प्राकृत ज्वर कहा जाता है। जैसे वर्षाऋतुमें बातज्वर शरद ऋतु में पित्तज्वर और वसंतऋतुमें कफज्वर। इनसें विपरीत जो ज्वर होता है उसको वैकृतज्वर कहते हैं। जैसे वर्षाऋतुमें पित्तसे शरदऋतु में श्लेष्मासे और बसंतऋतुमें वातसे ये वैकृत ज्वर दुःसाध्य हैं वातजन्य प्राकृत ज्वरभी दुःसाध्य है और रोगोंमें प्राकृतत्व दुःसाध्य है परन्तु ज्वरमें व्याधिस्वभाव से सुखसाध्यता कही है ॥

प्राकृतज्वरोंकी चिकित्साके निमित्त उत्पत्तिक्रम कहते हैं ।

वर्षासु मारुतो दुष्टःपित्तश्लेष्मान्वितो ज्वरम् ॥
कुर्यात् पित्तं च शरदि तस्य चानुबलः कफः ॥ ५६ ॥
तत्प्रकृत्या विसर्गाच्च तत्र नानशनाद्भयम् ॥
कफो वसन्ते तमपि वातपित्तं भवेदनु ॥ ५७ ॥

भाषा-ग्रीष्मकाल में संचित हुआ वायु वर्षाकालमें कुपित (१) हो पित्तकफयुक्त हो ज्वरको प्रगट करता है ॥ उसी प्रकार वर्षाकाल में संचित हुआ पित्त शरदऋतु में दुष्ट होकर ज्वरको उत्पन्न करता है, उसके अनुवल कफ होता है अनुवल उसको कहते हैं जो एक प्रधान अपनी सेवा आदिसे सश्रित होकर आगे चले उसके पीछे और जो उस के सम्बन्धी हों वहभी आप बल लेकर चलै उसका नाम अनुबल होताहै उस ज्वरमें कफ पित्तके स्वभावसे और विसर्ग (मोक्ष) से लंघन करने से भय (२) नहीं होय । तैसेही हेमंत-

नोट- १ यदुक्तम् भूवाष्पान्मेघ निष्यन्दात्पाकादम्लाज्जलस्यच । वर्षास्वाग्निवलेक्षीणेकुंप्यंन्ति पवनादयः ग्रीष्मे संचीयतेवायुः प्रावृट् काले प्रकुप्यति—वर्षासुचीयतेपित्त शरत्काले प्रकुप्यति। २ कफपित्ते द्रवेधातू सहेते लंघनं महत्।

कालमें संचित हुआ कफ वसंतकालमें ज्वर उत्पन्न करे है तिसके पिछाड़ी बातपित्त सहायक होते हैं ॥

काले यथास्वं सर्वेषां प्रवृत्तिर्वृद्धिरेव वा ॥
निदानोक्तानुपशयो विपरीतोपशायिता ॥५८॥

भाषा-वातादिकों की आप अपने काल में उत्पत्ति और वृद्धि होती है। जैसे काल यह दोषविशेष जानने का लक्षण है। उसी प्रकार उपशय और अनुपशयभी रोग जानने के कारण हैं सो इस प्रकार जानना। निदानस्व करके जो आहार बिहार कहेहैं उनके सेवन करने से अनुपशय कहिये दुःखकी उत्पत्ति होती है और दोषों के विपरीत जो आहार बिहार उन्हों से उपशायिता कहिये सुखकी उत्पत्ति होती है ॥

उक्त ज्वरोंके बीच संप्राप्ति वश (भेद) से कोई अन्तर्वेग कोई बहिर्वेग होता है उन दोनों के लक्षण कहते हैं।

अंतर्दाहोऽधिकस्तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः ॥ सन्ध्यस्थिशूलमस्वेदो दोषवर्चोविनिग्रहः ॥ ५९ ॥ अंतर्वेगस्य लिंगानि ज्वरस्यैतानि लक्षयेत् ॥ संतापोऽह्यधिको बाह्यस्तृष्णादीनां च मार्दवम् ॥ ६० ॥ बहिर्वेगस्य लिंगानि सुखसाध्यत्वमेव च ॥

भाषा- अंतर्दाह अधिक हो, तृषा,बर्राहट, श्वास, भ्रम, संधि और हाड इनमें तकलीफ, पसीना का आना, हवा और मलका बाहर न निकलना ये अंतर्वेग ज्वर के लक्षण जानने। शरीर के बाहर संताप अधिक मालूम होय, उपरोक्त लक्षण थोड़े होय ये बहिर्वेगज्वर के लक्षण हैं। यह ज्वर सुखसाध्य कहाहै। इस ज्वरकै सुखसाध्य कहने से अंतर्वेगज्वर कृच्छ्रसाध्य और असाध्य जानना चाहिये जैसे सुश्रुत में लिखा है "गंभीरतीक्ष्णवेगार्त ज्वरितं परिवर्जयेत्" इत्यादि।

चिकित्सा निमित्त आम, पच्यमान, और निराम,ज्वर के लक्षण कहते हैं।

लालाप्रसेकोहल्लासहृदयाशुद्ध्यरोचकाः ॥ ६१॥ तंद्रालस्याविपाकास्यवैरस्यं गुरुगात्रता ॥ क्षुन्नाशो बहुमूत्रत्वं

स्तब्धता बलवान्ज्वरः ॥६२॥ आमज्वरस्य लिंगानि न दद्यात्तत्र भेषजम् ॥ भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो ज्वलयति ज्वरम् ॥ ६३ ॥

भाषा-लारका झरना, उबाकी का आना, हृदय भरा २ मालूम होय अरुचि, तन्द्रा, आलस्य, अन्नका परिपाक न होना, मुखका जायका, बिगड़ना देहमें भारापन, भूखका नाश, वारम्वार पेशाब करना, देहका जकडना, देहमें बलवान ज्वर हो ये अपक्क ज्वर के लक्षणहैं इस ज्वर की ऐसी अवस्थामें वैद्य औषधि नदेय । अपक ज्वरमें औषधि देनेसे ज्वरकी वृद्धि होतीहै ॥

पच्यमानज्वर के लक्षण ॥

ज्वरवेगोऽधिकस्तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः ॥
मलप्रवृत्तिरुत्क्लेशः पच्यमानस्य लक्षणम् ॥६४॥

भाषा-ज्वरका वेग अधिक, प्यास, प्रलाप, श्वास, भ्रम, मलकी प्रवृत्ति, मालूम होय ये पच्यमान ज्वरके लक्षण हैं ॥

पक्कज्वर किंवा निरामज्वरके लक्षण ।

क्षुत्क्षामता लघुत्वं च गात्राणां ज्वरमार्दवम् ॥
दोषप्रवृत्तिरष्टाहो निरामज्वरलक्षणम् ॥ ६५ ॥

भाषा-भूखका लगना, देहका कृश होना, अंगों का हलकापना, कम ज्वरका आना अधोवायुकी प्रवृति होना, आठ दिन आते होगये हो ये निराम ज्वरके लक्षण जानने जैसा सुश्रुत में लिखा है "सप्तरात्रात्परम्" वाग्भट में "सप्ताहादौषधंकेचिदाहु" ऐसा लिखा है इसमें स्पष्ट है आठ दिन में निराम होजाता है ॥

जीर्णज्वरके लक्षण तन्त्रान्तरमें लिखे हैं ॥

त्रिसप्ताहव्यतीतेतु ज्वरो यस्तनुतां गतः ॥
प्लीहाग्निसादं कुरुते स जीर्णज्वर उच्यते ॥

भाषा-२१ दिन निकलजाने पर जो ज्वर महीन हुआ देहमें रहकर प्लीहा अर्थात् तापतिल्ली रोग और मंदाग्नि को पैदा करता है उसको जीर्ण ज्वर कहते हैं ॥

साध्यज्वरके लक्षण।

बलवत्स्वल्पदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः ॥

भाषा—थोडे दोष वाले बलवान् पुरुषों के विषय उपद्रवों से रहित ज्वर जो होता है उसे साध्य समझना ॥

ज्वरके दश उपद्रव तन्त्रान्तरमें लिखे हैं॥

कासो मूर्च्छा रुचिस्तृष्णा छर्द्यतीसारविड्ग्रहाः ॥
हिक्का श्वासोऽगदाहश्च ज्वरस्योपद्रवा दश ॥

भाषा-खांसी, मूर्च्छा, अरुचि, प्यास, वमन, आतिसार, मलका रुकना, हिचकी, खांसी, देहमें दाह ये दश ज्वरके उपद्रव हैं ॥

असाध्यज्वरके लक्षण ॥

हेतुभिर्बहुभिर्जातो बलिभिर्बहुलक्षणः ॥६६॥
ज्वरः प्राणान्तकृद्यश्च शीघ्रमिंद्रियनाशनः ॥

भाषा-जो ज्वर बहुत प्रबल कारणोंसे उत्पन्न हुआ हो और जिसमें सब लक्षण मिलते हों वह ज्वर प्राणोंका हरने वाला जानना और जो ज्वर प्रगट होते ही चिकित्सा करते २ इन्द्रियों की शक्ति नष्ट करदे अर्थात आंख से देखा न जाय कानसे सुना न जाय नाकसे सुंघा न जाय स्पर्श त्वचासे मालूम नहो वहभी ज्वर असाध्य जानना ॥

और भी असाध्यज्वरके लक्षण कहते हैं।

ज्वरः क्षीणस्य शूनस्य गंभीरो दैर्घरात्रिकः ॥६७॥
असाध्यो बलवान् यश्च केशसीमंतकृज्ज्वरः॥

भाषा—जो मनुष्य ज्वरसे क्षीण हो गया हो और सुजन जिसके देह में आगई होवे उसके जो ज्वर होता है वह गंभीर संज्ञक है और दैर्घरात्रिक भी उसही को कहते हैं जेज्जटाचार्य ने उसका लक्षण "दीर्घां मरणरूपां रात्रि मनुवर्तते इति दैर्घ रात्रिकः" ऐसा कहाहै सो असाध्यहै और जिसके ज्वर धातु के भीतरहो अथवा धातुओं के अंतर्गत ज्वर अथवा जिसमें वातादि दोषोंका निश्चय न हो सके और बहुत दिन तक रहनेवाला ऐसा ज्वर असाध्य होयहै और ज्वर बलवान् हो तथा जिसमें केशोंकी गुच्छी अपने आप बँधजाय गुल झटपड़जाय वह ज्वर भी असाध्य हैं ॥

गंभीरज्वरके लक्षण ।

गंभीरस्तु ज्वरो ज्ञेयो ह्यंतर्दाहेन तृष्णयो ॥ ६८ ॥
आनद्धत्वेन चात्यर्थं श्वासकासोद्गमेन च ॥

भाषा-अंतर्दाह से प्यास से मलके रुकने से तथा श्वास खांसी से उत्पन्न होनेसे गंभीर ज्वर जानना चाहिये ॥

दूसरे असाध्यज्वर के लक्षण ।

आरंभाद्विषमो यस्तु यश्च वा दैर्घरात्रिकः ॥ ६९ ॥
क्षीणस्य चातिरूक्षस्य गंभीरो यस्य हंतितम् ॥
विसंज्ञस्ताम्यते यस्तु शेते निपतितोऽपि वा ॥ ७० ॥
शीतार्दितोंऽतरुष्णश्च ज्वरेण म्रियते नरः ॥

भाषा--जो ज्वर पैदा होतेही विषम पड़जाय और जो ज्वर बहुत दिनसे आतारहै और क्षीण तथा अतिरूक्ष देहवालि पुरुषके जो गम्भीर ज्वर होता है वह मृत्युकरने वालाहोताहै और जो बदहवाश होकर अंधेरेसेमें डूबताहै तथा गिरकर जिससे उठा न जाय पड़ाही रहे अथवा बाहरजाड़ा लगे और देहके भीतर दाह हो ऐसे ज्वरवाला पुरुष उस ज्वर से मर जाता है ॥

और भी असाध्य लक्षण कहते हैं ।

यो हृष्टरोमा रक्ताक्षो हृदि संघातशूलवान्॥७१॥ वक्त्रेणचैवो-
च्छ्वसति तं ज्वरो हंति मानवम् ॥ हिक्का श्वासतृषा-
युक्तं मूढं विभ्रांतलोचनम् ॥७२॥ संततोच्छ्वासिनं क्षीणं नरं
क्षपयति ज्वरः ॥ हतप्रभेन्द्रियं क्षीणमरोचकनिपीडितम् ॥
गंभीरतीक्ष्णवेगार्त्तं ज्वरितं परिवर्जयेत् ॥ ७३ ॥

भाषा--जिसके देहमें रोमांच खडे रहे, लाल नेत्र हों, हृदयमें गांठ होने कीसी पीडा हो और संघात इस पदका यह अर्थ है कि चोटसी लगे, मुख के द्वारा श्वासले, वह ज्वर रोगी मनुष्यको मार डाले । हिचकी श्वास प्यास इनकरके व्याप्त हो, मोहयुक्त हो, चलायमान नेत्र हों, निरंतर श्वास लेवै ऐसे लक्षणवाले मनुष्यको ज्वर मार देताहै । इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट होगई हो और देह जिसका क्षीण हो जाय अरुचि से जो अत्यंत पीडित हो । गम्भीर व तीक्ष्ण वेगों से पीडित हो ऐसे ज्वरवाले पुरुषको वैद्य त्याग देय ॥

ज्वरछूटने के पूर्वरूप कहते हैं ।

दाहः स्वेदो भ्रमस्तृष्णा कंपविड्भेदसंज्ञिता ॥
कूजनं चस्यवैगंध्यमाकृतिर्ज्वरमोक्षणे ॥ ७४ ॥

भाषा-जलन, पसीना, भ्रम, तृष्णा, कपकपी, मल खगाब फटार माल्रूमहों संज्ञाका नाश(होशहवाशदुरुस्तन होना,) गुनगुनाहट(१)देहमें, अत्यत दुर्गंधिआने लगे ये लक्षण जब ज्वर छोडता है तब होते हैं ॥

दोषों (बात, पित्त, कफ (के नाशके बिना रोगकी निवृत्ति नहीं होती और जब दोष क्षीण होगये तब उक्त दाहादिलक्षण कैसे होते हैं इस प्रकारके सन्देह के विषयमें इस प्रकार समाधान है कितनी ही वस्तुओं का स्वभाव ऐसा होता है कि नष्ट होनके समय अपनाबल अधिक दिखातांहैं जैसे दीपक में जब तेल नहीं रहता और बुझनेको होता है तब एक दम पहिलेकी अपेक्षा अत्यन्त जलने लगता है और थोडीसी देर जलकर बुझ जाता है । ऐसेही जब दोष शांत होनेको होतेहैं तब अपनी शक्ति बदाहादिकों पैदा करते हैं या यों समझना चाहिये कि कि जैसे बंदर पेड़की डारी की झड़झड़ाकर दूसरी डालीपर कूदता है तौ वह वृक्षकी डाली जिसको उसने छोड़दीहै बहुत देर तक वैसेही हिला करती है इसी तरह ज्वर छोड़ने की लतमें भी हा उसके असरसे दाहस्वेद भ्रम आदि होते हैं ॥

ज्वरमुक्तिके लक्षण कहते हैं ।

स्वेदो लघुत्वं शिरसः कंडूः पाको मुखस्य च ॥
क्षवथुश्चान्न लिप्साच ज्वरमुक्तस्य लक्षणम् ॥ ७५ ॥

भाषा--पसीनाका आना, देहका हलकापन, माथे में खुजली का चलना, मुखका पाक अर्थात् होठों में पपडी पड़जाना, छींक आना भोजन करने की इच्छा होना ये लक्षण ज्वरमुक्तके हैं यानी जब ज्वर मनुष्यको छोड़ता है तब यह बात मालूम पडती है *

इतिश्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसूनु शा० सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधव निदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां ज्वरनिदान समाप्तम ।

कूजनं अस्फुटध्वनिः यदुक्तं ज्वरप्रमोक्षे पुरुषः कूजन्वमति चेष्टते इ ति- वाग्भटोप्याह —धातून्प्रक्षो भयन् दोषो मोक्षकाले वलीयते ॥ ततोनरः श्वसन्स्विद्यन् कूजन् वमति चेष्टते ॥

* इस में भालुकी आचार्य ने अपना मत इस प्रकार प्रगट कियाहै " त्रिदोषजे ज्वरे ह्येतदन्तर्वेगे च धातुजे । लवर्ण मोक्तकाले स्यादन्यस्मिन्स्वेद दर्शनम् ॥ "

अथातिसारनिदानम्।

पित्त ज्वर में अतिसार के पाठ होने से ज्वर और अतिसारके अन्योन्य उपद्रवत्वसे ज्वर के बाद अतिसार का वर्णन करते हैं।

गुर्वतिस्निग्धरूक्षोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः॥
विरुद्धाध्यशनाजीर्णैर्विषमैश्चापि भोजनैः॥ १॥
स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विषैर्भयैः॥
शोकाद्दुष्टाम्बुमद्यातिपानैः सात्म्यर्तुपर्य्ययैः॥२॥
जलाभिरमणैर्वेगविघातैः कृमिदोषतः॥
नृणां भवत्यतीसारो लक्षणं तस्य वक्ष्यते॥ ३॥

भाषा-गुरु (मात्रामें गुरु) तथा स्वभावमें गुरु उड़द आदि अथवा गुण वा पाक से गुरु, अत्यन्त चिकनाई अत्यन्त रूखापन अत्यन्त गरम अत्यन्त तरल पदार्थ अत्यन्त स्थूल पदार्थ (लड्डूपेठा) अत्यन्त स्पर्श से ठंडा तथा वीर्य से अत्यन्त ठंडा संयोग (देश काल मात्रा आदि से विरुद्ध क्षीरमछली आदि) विरुद्ध ऐसे विरुद्ध पदार्थों का वर्णन बहुत प्रकारसे सुश्रुतमें लिखाहै। (हिताहितीय अध्याय में देखो) और चरक में आत्रेय भद्रकाप्यीयाध्याय में देखना चाहिये, अध्यशन (पहिले दिनका आहार अच्छीतरह जीर्णभी न हुआहो और उससमय फिर खाय चरकेयथा-भुक्तं पूर्वान्नशेषेतुपुनरध्यशनंमतम् " अजीर्ण अन्न (कच्चापदार्थ) विषम (वेवक्त बहुत और थोडा भोजन करना सुश्रुतेयथा- वहुस्तोक मकालेचतज्ज्ञेयं विषमाशनम् ") भोजनादिसे स्नेह (चिकनाई लिये हुए पदार्थों का पान) आदिमें जिनके ऐसे स्वेद वमन विरेचन अनुवासन निरूह आदिक जानने इनके अत्यन्त इस्तेमाल में लानेसे और हीनयोगों के प्रयोग करने से विषके खाने आदि से भय आदि से शोकसे दुष्ट जल तथा मदिरा के बहुत पीनेसे अहित पदार्थों के सेवन से ऋतुके विपरीतता से जलक्रीड़ा बहुतकरनेसे शोकसे वेगोंके रोकने से तथा उदरमें जो कीड़ेमलमें पड़जातेहैं उससे मनुष्योंके अतिसार रोग पैदा होताहै जिस के लक्षण आगे कहेंगे॥

साधारणतथा सब अतिसारों की सम्प्राप्ति कहते हैं ।

संशम्यापां धातुरग्निंप्रवृद्धः शकृन्मिश्रो वायुनाधः प्रणुन्नः ॥
सरत्यतीवातिसारं तमाहु र्व्याधिं घोरं षड्विधं तं वदन्ति ॥

भाषा—दूषितहुआ जलोंका धातु (रसजल मूत्र स्वेद भेद रक्तादि अग्निको शान्त करके यानी मन्द करके वायु के द्वारा नीचे को फका गया दस्त मिलाहुआ अत्यन्त सरने लगे यानी दस्तके मार्ग होकर ज्यादा जल्दी जल्दी निकलने लगे उस रोगको अतिसारनामक घोर व्याधि कहते हैं और यह व्याधि छः प्रकारकी होती है सरति गच्छति अतीवेत्यनेनेति अतिसारः यह इस की निरुक्ति कही है ॥

एकैकशः सर्वशश्चापि दोषैः॥शोकेनान्यःषष्ठ आमेन चोक्तः॥५॥

वात, पित्त, कफ , इनसे १- १ प्रकारका इस प्रकार तीन प्रकार का १ सन्निपातसे, १ शोकसे इस प्रकार पांच प्रकार से और छठा आमसे होता है क्योंजी चरक आदिके मतमें तो वात पित्त कफ सन्निपात और भयतथा शोक इस तरह से छः प्रकार का कहा है यहां पर उपरोक्त ढंग से छः प्रकार का कहा इसका क्या मतलब है तहां कहते हैं कि चरक में तो लक्षण और संज्ञा इनके कार्य भेद होने से भयजन्य और शोकजन्य अलग २ कहे हैं आमजन्य जो नहीं कहा इसका कारण तो यह है कि वह तो अन्नके अजीर्ण से कुपित त्रिदोष जन्य होने से सान्निपात में हीगिन लिया है इससे इस की संख्या और नहीं लिखी और सुश्रुत में तो वात जन्य और सन्निपातजन्य के अभेद होनेपर हेतुविपरीत चिकित्सा के शोक जन्य और आमजन्य लिखे हैं जैसे वात आदि से जिसकी उत्पत्ति के भेद भाव न होने पर भी मृत्तिकासे उत्पन्न हुआ पाण्डुरोग । ऐसेही भयज और शोकज दोनों भी चरक में हेतु विपरीत चिकित्सा के लिये ही अलग २ कहे हैं और सुश्रुतमें भयज केवल वातसे उत्पन्न हुए अतिसार और मनोजन्यही शोकज अतिसार है इससे दोनों में विशेषता न होने से शोकके अतिसार में ही इसको जेज्जटाचार्यने मानाहै क्योंजी 'षष्ठ आमेन चोक्तः' यह छठाआमसे अतिसार कहा है यहजो अलग बताया यह क्या बात है यहतो कुछ असंगत सा मालूम पड़ता है क्यों कि सब अतिसारों की पहिली अवस्था जब तक

वहजर्णि न होजावै आम शब्द से यानी अपक्वअजीर्ण इत्यादि व्यवहार में कही जाती है और जीर्णावस्था पक्व शब्द से कही जाती है इस से आमको तो सब अतीसारों के अन्तर्गत समझे जैसाकि लिखा है "आम- पक्वक्रमंहित्वा नातिसारे क्रिया यतः ॥ अतः सर्वातिसोरषु ज्ञेयं पक्वाम लक्षणं" तब उत्तर देते हैं कि नहीं ऐसा नहीं समझना चाहिये वहां तो यह बात है कि आमसे हीजो पैदा हो उसको आमज कहते हैं वहही छठा है दोष जो हैं वहतो संसर्गी है और प्रेरणा करने वाले हैं किन्तु उत्पन्न करने वाले नहीं है आमजो है वह दुष्ट अन्नका कार्य है दोषधातुमल इनसे अलग बात आदि कोस मिला हुआ वायु आदिके द्वारा प्रेरण किया वातरक्तादि की तुल्य व्याधि को उत्पन्न करने वाला जानना ।

सब अतिसारोंका पूर्वरूप कहते हैं ।

हृन्नाभि पायूदरकुक्षितोदगात्रावसादानिलसन्निरोधाः
विट्संग आध्मानमथाविपाको भविष्यतस्तस्यपुरःसराणि

भाषा-हृदय नाभि गुदा पेट कूख इनमें सुई चुभने कीसी पीड़ा होना शरीर में खेद होना अपान वायु का रुकना दस्त न आना अफरावना रहना अन्नका परिपाक न होना यह अति सार के पूर्वरूप जानने ॥

वातजन्य अतिसार के लक्षण ॥

अरुणं फेनिलं रूक्षमल्पमल्पं मुहुर्मुहुः ।
शकृदामं सरुक्शब्दं मारुतेनातिसार्यते ॥ ६ ॥

भाषा—लाल २ झगीला रूखापन लीये बार थोडा २ दर्द और शब्द युक्त आम सहित विष्ठा होयं इस प्रकार जो हो वह बात के दूषित होने पर उसके द्वारा अतिसार को प्राप्त होता है यह बात जन्य अतिसार का लक्षण जानना ।

पितज अतिसार के लक्षण ।

पित्तात्पीतं नीलमालोहितंवा तृष्णा मूर्च्छादाहपाकोपपन्नम् ॥

भाषा-पीला नीला लाली लिये हुए दस्त आवै प्यास लगे मूर्छा [मोह] हो सब शरीर वा गुदा में दाह होय और गुदापकी सी होय जैसा और तंत्रों मे लिखा है तृष्णा दाहस्वेद मूर्च्छा ब्रध्नसंतापपाकपरीतः । यह पित्तातिसार के लक्षण जानै ॥

कफ जन्य अतिसार के लक्षण ।

शुक्लं सान्द्रं श्लेष्मणा श्लेष्मयुक्तं विस्रंशीतं हृष्टरोमा मनुष्यः॥७॥

भाषा—सफेद चमकदार घना कफमिला हुआ स्पर्श में ठंडा आमकी सी गंध आवे दस्त आनेके समय मनुष्य के रोमांच खड़े होजावें इस प्रकार के जिसमें लक्षण मिलें वह अतिसार कफसे समझना चाहिये ॥

सान्निपातोद्भव अतिसार के लक्षण ।

वराहस्नेहमांसांबुसदृशं सर्वरूपिणम् ॥
कृच्छ्रसाध्यमतीसारं विद्याद्दोषत्रयोद्भवम् ॥८॥

भाषा—सूअर की चरबी व मांसके धोने के जलके तुल्य वात पित्तकफ इन तीनों के लक्षण जिसमें मिलते हों यह त्रिदोष से उत्पन्न हुआ अतिसार जाने यह कष्टसे आराम होता है ॥

शोकजन्य अतिसार के लक्षण ।

तैस्तैर्भावैःशोचतोऽल्पाशनस्य वाष्पोष्मा वैत्रह्निमाविश्यजंतोः॥
कोष्ठंगत्वाक्षोभयेत्तस्यरक्तं तच्चाधस्तात् काकणन्ती प्रकाशम्॥९॥
निर्गच्छे द्वै विड्विमिश्रं ह्यविड्वा निर्गंधंवागन्धवद्वातिसारः ।
शोकोत्पन्नोदुश्चिकित्स्योऽतिमात्रं रोगोवैद्यैः कष्ट एष प्रदिष्टः॥१०॥

भाषा—धन वन्धु इत्यादिकं नाश आदि की बातोंसे शोक करते हुए तथा शोकसेही थोड़ा खाने वाले वाष्प (दुःखसे नेत्र नाक गले आदि में प्राप्त हुआ जल (उसके साथ जो गरमी यानी शोकजन्य देहका तेज वह कोष्ठ में प्राप्त होकर जठराग्निको व्याकुलकर उस आदमी के रक्तको क्षुब्ध करै तब वह रुधिर चिरमिठी के समान गुदाके मार्ग होकर दस्तकी तरह आने लगे कभी मलमिला हुआ कभी मलन आवै कभी वास आवे कभी न आवै ऐसा जो अतिसार है वह शोकोत्पन्न कहा है और अत्यन्त दुश्चिकित्स्य यह रोग वैद्योंने अति कष्ट कर कहाहै ॥

आमातिसार को कहते हैं ।

अन्नाजीर्णात्प्रद्रुताः क्षोभयन्तः कोष्ठं दोषाधातुसंघान्मलांश्च।
नानावर्णं नैकशः सारयन्ति शूलोपेत षष्ठमेनं वदन्ति ॥११॥

भाषा—अन्न और अजीर्ण इनसे क्षोभको प्राप्त हुए और बिमार्गों में प्राप्त

हुए दोष धातु समूह जो रक्त आदि तथा मल इनको अनेक रंग युक्त अनेक बार दस्तके मार्ग होकर बहावें और उन होने वाले दस्तों में दर्द हो उसको आमातिसार कहते हैं ॥

सब अतिसारों के चिकित्सा में उपयोगी की वजह से आमलक्षण और पक्वलक्षण कहते हैं ।

संसृष्टमेभिर्दोषैस्तु न्यस्तमप्स्ववसीदति ।
पुरीषं भृशदुर्गन्धि पिच्छिलं चामसंज्ञितम् ॥१२॥
एतान्येवतु लिङ्गानि विपरीतानि यस्यवै ॥
लाघवं च विशेषेण तस्य पक्वं विनिर्दिशेत ।१३॥

भाषा—इन ऊपर के दोषों से दूषित वातादि अतीसारों के लक्षणों से (मिले हुए) अतिसार रोगके मध्य जो मल (दस्त) वह जलके बीच डालने पर डूबजाय डूबनेका कारण यहां आमका भारापन समझना अत्यन्त दुर्गन्धवाला तथा अत्यन्त चमकदार हो वह आमसंज्ञित है यानी उसमल को अपक्व कहते हैं यहही चिह्न जिस मल में न हों और उसके बिलकुल विपरीत हों और मल में हलकापन हो उसको पक्व कहते हैं यहांपर " लाघवंच विशेषण " इस लिखनेका प्रयोजन विशेषताकर केवल मलसे नहीं है किन्तु कोठेका हलकापन व शरीर का हलकापन जानना और समुच्चयार्थ चकारके ग्रहण से यह बात जाहिर होती है कफ दुष्टि आदिके विना जलमें डूबना आदि लक्षण करना क्योंकि कहा है "मज्जत्यामा गुरुत्वाद्विट् पक्वातूत्प्लवतेजले ॥ विनाति द्रवसंघातशैत्यश्लेष्मप्रदूषणात्" इत्यादि इससे अथवा आम लिङ्गकी विपरीतता से ही हलकापन सिद्ध होता है फिर जो लाघवंच विशेषण, ऐसा कहा है इससे सिद्ध होता है कि कफ दुष्टि आदि से व्यतिरिक्त कोही होता है हलकापन कफके दोषमें नहीं होता है ॥

अतिसार के असाध्य लक्षणों को कहते हैं ।

पक्व जाम्ववसंकाशंयकृत्तपिण्डनिभंतनु ।
घृततैलवसामज्जा वेशवारपयोदधि ॥
मांस धावन तोयाभं कृष्णं नीलारुण प्रभम् ।
मेचकं स्निग्धकर्बुरंचन्द्रकोपगतं घनम् ॥

कुणपंमस्तुलुङ्गाभं सुगन्धि कुथितं बहु ॥
तृष्णादाहतमः श्वासहिक्का पार्श्वास्थिशूलनम् ॥१६॥
संमूर्च्छारतिसंमोहयुक्तं पक्ववलीगुदम् ॥
प्रलापयुक्तं चभिषग् वर्जयेदतिसारिणम् ॥ १७ ॥
असंवृतगुदं क्षीणं दूराध्मातमुपद्रुतम् ॥
गुदे पक्वे गतोष्माण मतिसारकिणं त्यजेत् ॥ १८ ॥

भाषा-पके हुए जामन के फल के सदृश (चिकनाई लिये हुए काले) यकृत् के पिण्ड की तुल्य (लाली लिये हुए काला (साफ घी तेल बसा:चरबी, मज्जा वेशवार (निरस्थिपिशितं पिष्टम् बिना हड्डी का कूटा हुआ मांस) दूध दही मांस के धोने के जल आदिकों के तुल्य जिस का रूप हो काला नीला लाल कान्ति वाला (चाष पक्षी के रंग के सदृश) पिसे हुए अञ्जन पिण्ड की तुल्य कुछ रूखापन लिये काला चितकबरा चिकना मोर पंख में जैसे चंदवा होता है उसके रंगों के तुल्य हो जैसा कि करवीराचार्य ने भी अपने ग्रन्थ में असाध्य लक्षण में कहा है ॥ चन्द्रकैः शिखिपिच्छाभैर्नीलपीतादिराजिभिः ॥ आवृतं वेशावाराम्बु मज्ज क्षीरोपमं त्यजेत् " ॥ वहही सघन घना हो, मुर्दे की सी वास जिसमें आवै मस्तुलुंग (माथे के भीतर जो स्नेह घीसा एक पदार्थ होता है) के तुल्य भारी जिस में गन्ध हो सड़ा हुआ बहुत ऐसा जिस के मल आता हो प्यास दाह अन्धकार सा छाना श्वास हिचकी पांसू और हाड़ों में जिस के दर्द हो मोह हो किसी बात में इच्छा नहो इन्द्रिय मूर्च्छित सी हो जावें गुदा की वलि जिसके पकी सी हो, और अस्त व्यस्त अनर्थकी बात बोले ऐसे अतिसार वाले रोगीको वैद्य त्याग देय जिसकी गुदा दस्त होनेके पीछे भीतरको सिकुड़े नहीं और क्षीण होगयाहो अत्यन्त अफरा जिसके होता होय कहीं२ "दुरात्मानम्,, ऐसा पाठ है वहां दुष्ट अन्तःकरण वाला जेज्जट कहते हैं अजितेन्द्रिय मनुष्य अतिसार सब उपद्रवों से युक्त गुदा जिस की पक जाय शरीर ठण्डा पड़ जाय ऐसे अतिसार वाले मनुष्यों को वैद्य छोड़ देय ।

अतिसार के उपद्रव ।

शोथं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासं कासमरोचकम् ॥

छर्दिं मूर्छांच हिक्कांच दृष्ट्वातीसारिणं त्यजेत् ॥

भाषा-शोथ शूल, ज्वर, प्यास, श्वास, कास, अरुचि, वमन मूर्छा होना, हिचकी आना यह अतिसारके उपद्रव हैं इन उपद्रवों युक्त अतिसार वाले को त्याग देय ॥

श्वास शूल पिपासार्तं क्षीणं ज्वरनिपीड़ितम् ॥
विशेषेण नरं वृद्ध मतीसारो बिनाशयेत् ॥ १९ ॥

भाषा-श्वास, शूल और प्यास इनसे पीड़ित हो क्षीण होगया हो ज्वर से पीडित हो विशेष करके वृद्ध मनुष्य को (विशेष कहने से बालक को भी असाध्यता जाननी जैसा सुश्रुत में लिखा है । कृछ्रश्चायं बालवृद्धेष्वसाध्यः (अतिसार रोग नाशकर देता है ॥ रक्तज अतिसार भी उसको सात वाँ अतिसार कहने से कहे जो अतिसार उसमें विरोध पड़ेगा इस बात को दूर करने के लिये यह रक्तातिसार पित्तातिसार की तरह है केवल अवस्था विशेष जाननी चाहिये ॥

पित्तकृन्ति यदात्यर्थं द्रव्याण्यश्नाति पैत्तिके ॥
तदोपजायतेऽभीक्ष्णंरक्तातीसार उल्वणः ॥ २० ॥

भाषा-पित्त के अतिसार में अथवा पूर्व रूप से मालूम हो कि अब पित्तातिसार होगा ऐसी दशामें जब अत्यन्त पित्त कारक पदार्थों को खाय तब उस के निरन्तर भारी रक्तातीसार पैदा होता है यहां लाल काला पीला रंग जैसा मल का होय उससे समझलेना चाहिये कि इसमें वात तथा कफ लक्षणानुसार दूषक हैं जैसा कहा है "दोष लिङ्गेन मतिमान्" संसर्गतत्र लक्षयेत् इस प्रकार ही स्नेह, अजीर्ण, विसूचिका, विष, अर्श, क्रिमि इत्यादि से उत्पन्न हुए अतिसारों में छहों से ज्यादा कल्पना करना ठीकनहीं बल्कि इनके अन्तर्गत ही मानना चाहिये ॥

द्रव तथा सरने वाले आमपक्व लक्षण योग से प्रवाहिका
और अतिसार की समान धर्मता बताते हैं

वायुः प्रवृद्धो निचितं वलासं, नुदत्यधस्तादहिताशनस्य ॥

प्रवाहितोल्पं बहुशोमलाक्तं प्रवाहिकांतां प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥२१॥

भाषा-बढ़ा हुआवात दोष अहित पदार्थ सेवन करने वाले पुरुष के इकट्ठे हुए कफको प्रेरित करता है [दस्त के द्वारसे निकालता है] इसमें और अतिसार में भेद इतनाही कि अतिसार में अनेक तरहका मल निकलता है और प्रवाहिका में केवल कफ ही निकलता है बहुत वारमें थोड़ा मल आताहै उसको इसबात को जानने वाले प्रवाहिका नाम रोग कहते हैं॥ भोज आदिके ग्रन्थों में इस नाम विस्रंसी ऐसा कहा है,परा शरने इसको अन्तग्रन्थि कहा है हारीत इसको निश्चारक कहते हैं जैसा " प्रवाहि केति साज्ञेया कैश्चिन्निश्चारकस्तु सः । इत्यादि श्लोकों में कहा है।

प्रवाहिकाका वातादि भेदसे रूप कहते हैं

प्रवाहिका वातकृता सशूला पित्तात्सदाहा सकफा कफाच्च ॥
सशोणिता शोणितसम्भवा च ताः स्नेहरूक्षप्रभवा मतास्तु ॥
तासामती सारवदादिशेच्च लिङ्गं क्रमं चाम विपक्वतां च ॥२२॥

भाषा—वातकी प्रवाहिका शूल युक्त होती है क्यों जी तुमने तो पहिले कहा है "वायुःप्रवृद्धो निचितं बलासं" फिर इसके भेद करते हो कि वात कृत से शूल होता है पित्त से दाह सहित होती है,कफ से कफ युक्त होती है,रुधिर से रुधिर युक्त होती है,यह क्या बात है यहां यह समझना चाहिये कि वायुका आधिक्य है यह मतलब है अच्छा यदि ऐसा है तो तबभी बतलाओ कि पित्त और रक्त से फिर कैसे उत्पन्न हुई उत्तर देते हैं कि वहांहि जो लिखा है कि अहिताशनस्य,, इसका प्रयोजन यह है कि विरुद्ध जो आहार करना है सो उस अवस्था में पित्त तथा रक्त को कोप कराता है वे दोनों अनुबल होते हुए जब अपनेरलक्षणों को दिखाते हैं उनसे ही मतलब जाने यह जो प्रवाहिका कही गई है वह कफकी स्नेह से पैदा हुई वात की रूखे पदार्थ के सेवनसे कही हुई है तु जो पड़ा है उससे तीखे व गरम पदार्थ सेवन से पित्तजन्य व रक्तजन्य जानना उनके वातादि भेदकरके लक्षण आमपक्व भेद से चिकित्सा क्रम अतिसार की तुल्य करे॥

अतिसार की निवृत्ति के लक्षण

यस्योच्चारं विना मूत्रं सम्यग् वायुश्चगच्छति ॥
दीप्ताग्ने र्लघुकोष्ठस्य स्थितस्तस्योदरामयः ॥२३॥

भाषा—जिसका मूत्र बिना दस्त के उतरे अर्थात् पेशाब करते समय दस्त न आवे अधोवायु अच्छी तरह सरै अग्नि चैतन्य होय कोठे में हलकापन है। उस मनुष्यका पेटका विकार शांत होगया ऐसा जाने ॥

ज्वरातिसारयोरुक्तं निदानं यत्पृथक् पृथक् ॥
(तत्स्याज्ज्वरातिसारस्य तेन नात्रोदितंपुनः ॥)

भाषा-ज्वराति सारका भिन्न जो लक्षण नही कहा इसका प्रयोजन यह है ज्वरका और अतिसारका जो निदान अलाहिदा २ कहाहै वहही ज्वरातिसार का होता है यह जानना।

इतिश्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसुनु शा० सोहनलाल
विद्याभूषण विरचितायां माधवनिदानस्य
सुबोधिन्यामतिसारनिदानम् समाप्तम्

:-(*)-:

अथ ग्रहणी निदानम्

पतला दस्त अतिसार में आता है और पतला दस्त ग्रहणी में भी आता है इससे दोनों में साधर्म्य होनेसे और परस्पर अनुबन्धि होने से अतिसार के अनन्तर ग्रहणी का वर्णन करते हैं प्रथम उसकी सम्प्राप्ति कहते हैं।

अतिसारे निवृत्तेऽपिमन्दाग्नेराहिताशिनः ॥
भूयः संदूषितो वह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत् ॥१॥

भाषा-अतिसार रोग जिस मनुष्य के पाहिले होकर शांत होगया होवे (इसमें जो अपिशब्द पड़ा हुआ है उससे बोध होता है कि कहीं बिना अतिसार के भी ग्रहणी रोग होता है) अग्नि जिसकी मन्द हो (मन्दाग्नि से

जान पड़ता है कि दीप्ताग्नि को अहित पदार्थ भी विकार नहीं करता) कुपथ्य करने वाले मनुष्य के फिर दुष्ट हुआ अग्नि छठी पित्तधरा नामक कला जिसका दूसरा नामग्रहणी है उसको दूषित करता है इससे यह भी स्पष्ट होता है कि जिस मनुष्य का अतिसार रोग दूरभी हो जाय तबभी अहित आहार न करना चाहिये जबतक कि उसकी अग्नि ठीक न होजाय जैसा कि सुश्रुत में लिखा है ।

तस्मात्कार्यः परीहारस्त्वतीसारे विरक्तवत् ॥
यावन्न प्रकृतिस्थः स्याद्दोषतः प्राणतस्तथा ॥

भाषा-इससे अतिसारमें विरक्त की नाई सब चीजोंका त्याग करना चाहिये जबतक दोष से तथा प्राण से मनुष्य प्रकृतिस्थ यानी बिलकुल नीरोग न होजाय ।

ग्रहणी सम्प्राप्ति पूर्वक सामान्य लक्षण कहते हैं ॥

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः ॥
सादुष्टा बहुशो भुक्त माममेवं विमुञ्चति ॥२॥
पक्कं वा सरुजं पूति मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवम् ॥
ग्रहणीरोगमाहुस्तमायुर्वेदविदो जनाः ॥ ३ ॥

भाषा-एक २ वासम्पूर्ण कुपथ्य आदि पदार्थ संसेवन से, अत्यन्त क्रुद्ध हुए दोषों से वह ग्रहणी दूषित हुई बहुत करके खाये हुए आहारको पक्व व अपक्व त्याग देती है वापक्व को पीड़ा सहित दुर्गन्धयुक्त बार २ बंधा हुआ बार २ पतला ऐसा त्याग उस रोगको आयुर्वेद के जानने वाले ग्रहणी * रोग कहते हैं ॥

पूर्व रूप कहते हैं ॥

पूर्वरूपं तु तस्येदं तृष्णालस्यं बलक्षयः ॥
विदाहोऽन्नस्य पाकश्च चिरात्कायस्य गौरवम् ॥४॥

---

* ग्रहणी चाग्न्यधिष्ठानं नाडी यदाहचरकः-अग्न्यधिष्ठान मन्नस्य ग्रहणात् ग्रहणी मता ॥ नाभे रुपरि सा ह्यग्निवलोपस्तम्भबृंहिता ॥ अपक्कं धारयत्यन्नं पक्कं सृजति चाप्यधः ॥ सुश्रुतेप्येतदुक्तं-षष्ठी पित्त धरानाम या कला परिकीर्तिता ॥ पक्वामाशयमध्यस्था ग्रहणी सा प्रकीर्तिता ॥

भाषा-प्यास, आलस्य वलकाक्षय अन्नकादाह (परिपाककालमें जलन) और अन्नका देरमें पाक होना शरीरका भारापन होना यह उस ग्रहणी रोग का पूर्व रूप जानै ॥

वातजन्य ग्रहणी के निदान सम्प्राप्ति पूर्वक रूपका लक्षण ॥

कटुतिक्तकषायातिरूक्षसंदुष्टभोजनैः ॥
प्रमितानशनात्यध्ववेगनिग्रहमैथुनैः ॥ ५ ॥
मारुतः कुपितो वह्निं संछाद्य कुरुते गदान् ॥
तस्यान्नं पच्यते दुःखं शुक्तपाकं खराङ्गता ॥६॥
कण्ठास्यशोषः क्षुत्तृष्णा तिमिरं कर्णयोः स्वनः ॥
पार्श्वोरुवंक्षण ग्रीवारुगभीक्ष्णं विसूचिका ॥७॥
हृत्पीड़ा कार्श्यं दौर्बल्यं वैरस्यं परिकर्तिका ॥
गृद्धिः सर्वरसानां च मनसः सदनं तथा ॥८॥
जीर्णे जीर्यति चाध्मानं भुक्ते स्वास्थ्य मुपैतिच ॥
सवात गुल्म हृद्रोगप्लीहाशङ्कीच मानवः ॥९॥
चिराद्दुःखं द्रवं शुष्कं तन्वामं शब्दफेनवत् ॥
पुनः पुनः सृजेद्वर्चः कासश्वासार्दितोऽनिलात् ॥१०॥

भाषा-चिरपिरा कडुआ कषैला अत्यन्त रूखा संयोगादि विरुद्ध भोजन इनसे थोड़ा खाना न खाना बहुत रस्ता चलना मलमूत्रादिका वेग रोकना और बहुत मैथुन इनसे कुपित हुआ वात अग्निको आच्छादित करके (ढांक करके) रोगोंको पैदा करता है उस वातविकार जन्य ग्रहणी रोग में अन्न दुःख से पचता है, पाक में खट्टापन हो शरीर खरखरासा हो कंठ का और मुंहका सूखना,क्षुधा तृषणा अंधेरीसी छाई रहै, कानों में गुनगुनाहट हो, पार्श्व जाव वंक्षण (मर्म) ग्रीवा इनमें पीड़ा निरन्तर होय, पेटमें सुई सी चुभै हृदय में पीड़ा शरीर में कृशता दुर्वलता मुख में विरसता (बदज़ायका) गुदा में कतरनी सी चलै सब रसों की इच्छा मन में ग्लानि अन्न के पचने के समय व परिपाक होने पर अफरा हो भोजन करनेपर स्वस्थता सी मालूम होय पेटमें वायगोलासा, हृद्रोग, तापातिल्ली आदिकी आशंका वाला मनुष्य

होय बहुत काल में बड़े कष्टसे कभी पतला कभी सूखा थोड़ा आम [कच्चा] शब्दयुक्त झागदार । बार २ दस्त आवै (त्यागे) खांसी श्वास इनसे पीडित होय यह लक्षण वादी से युक्त जो ग्रहणी रोग होय उससे होते हैं ॥

पित्तजन्य ग्रहणी के लक्षण ॥

कट्वजीर्णविदाह्यम्लक्षाराद्यैः पित्तमुल्वणम् ॥
आप्लावयद्धन्त्यनलं जलं तप्तमिवानलम् ॥ ११ ॥
सोऽजीर्णंनीलपीताभंपीताभः सार्यतेद्रवम् ॥
सधूमाद्गारहृत्कण्ठदाहारुचितृडर्दितः ॥ १२ ॥

भाषा—चिरपरे अजीर्ण के जलन पैदा करने वाले खट्टे खार आदि पदार्थों से बढ़ा हुआ पित्त वह जठराग्निको बुझावै जैसेगरम जलभी आगको बुझा देताहै जिसके यह दशा हो वह अपक्व नीले पीले रंगवाले द्रव (पतले) दस्तको त्यागे अर्थात् उसके उपरोक्त प्रकार का दस्त आवै और वह स्वयं पीला पड़जाय धूंआंसा और जलन सहित डकार आवै हृदय कण्ठ इन में दाह हो अरुचि हो और प्यास से पीडित रहै यह पित्त जन्य संग्रहणी के लक्षण होते हैं।

कफ जन्य संग्रहणी की उत्पत्ति और लक्षण।

गुर्वतिस्निग्धशीतादिभोजना दतिभोजनात् ॥
भुक्तमात्रस्य च स्वप्नाद्धन्त्यग्निंकुपितःकफः ॥ १३ ॥
तस्यान्नंपच्यते दुःखं हृल्लासश्छर्द्यरोचकाः ॥
आस्योपदेहमाधुर्यं कासष्ठीवनपीनसाः ॥ १४ ॥
हृदयं मन्यते स्त्यानमुदरं स्तिमितं गुरु ॥
दुष्टो मधुर उद्गारः सदनं स्त्रीष्वहर्षणम् ॥ १५ ॥
भिन्नामश्लेष्मसंसृष्ट गुरुवर्चःप्रवर्तनम् ॥
अकृशस्यापि दौर्बल्य मालस्यं च कफात्मके ॥ १६ ॥

भाषा–भारी पदार्थ अत्यन्त चिकना और ठण्डे आदि पदार्थ के भोजन

से तथा अत्यन्त भोजन से और खाकर शीघ्रही सो जाने से कुपित हुआ कफ अग्नि को नष्ट कर देता है तब उस मनुष्य का अन्न (खाया हुआ पदार्थ) दुःख से पचता है उवाकी आवैं वमन हो अरुचि हो मुँह लिसासा रहै और मिठाई घुरीसी रहै खाँसी पीनस थूकना द्रव पदार्थसे पूरितसा हृदयहो उदर निश्चलसा हो भारी हो दूषित बुरी २ डकार आवें ग्लानि होय स्त्रियों के सम्बन्ध में रमण आदि में रुचि न होय फटा २ कच्चा, कफ मिला हुआ भारी ऐसा दस्त आवे शरीर न थकने पर भी कमजोरी होय और आलस्य बहुत होय यह संग्रहणी के लक्षण हैं ।

त्रिदोष जन्य संग्रहणी के लक्षण ।

पृथग्वातादिनिर्दिष्टहेतुलिंगसमागमे ॥
त्रिदोषं लक्षयेदेवं तेषांवक्ष्यामि भेषजम् ॥ १७ ॥

भाषा-अलग २ वातादि तीनों दोषों के जो लक्षण कह आये हैं सब वह जिसमें मिलतेहों उसको त्रिदोष जन्य जानैउनकी औषधि कहूंगा यह चौथा पाद पाद पूर्ति के लिये है अथवा माधव करके चिकित्सा ग्रन्थ विषयक है अर्थात् इनका रचित जो चिकित्सा ग्रन्थ है उनसे सम्बन्ध रखता है ॥ १७ ॥

आम वात संग्रहणी का लक्षण प्रक्षिप्त किया है
उन क्षेपकों से उसका लक्षण कहते हैं ।

अन्त्र कूजन मालस्यं दौर्बल्यं सदनं तथा ॥
द्रवं शीतं घनंस्निग्धं सकटीवेदनं शकृत् ॥ १ ॥
आमं वहु सपैच्छिल्यं सशब्दं मन्द वेदनम् ॥
पक्षान्मासाद्दशाहाद्वा नित्यं वाप्यथमुञ्चति ॥ २ ॥
दिवाप्रकोपो भवति रात्रौ शान्ति व्रजेच्चसा ॥
दुर्विज्ञेयादुश्चिकित्स्या चिरकालानुबन्धिनी ॥ ३ ॥
साभवेदामवातेन संग्रह ग्रहणी मता ॥
स्वपतः पार्श्वयोः शूलं गलज्जलघटीध्वनिः ॥
तंवदन्ति घटीयन्त्रमसाध्यं ग्रहणीगदम् ॥ ४ ॥

भाषा—आंतोंमें घुरघुराहट शब्द आलस्य दुर्बलता तथा ग्लानि पतला ठंढा घना चिकना कमर में दर्द करता हुआ आम बहुत चमकदार शब्द युक्त मन्दा दर्द जिसमें हो ऐसा दस्त पक्षमें मासमें दश दिनमें अथवा नित्य आवे (उसके होवे) दिनमें उसका कोप हो रात्रि में वह शान्ति को प्राप्त हो वह कष्ट से पहचानने में आती है बहुत कालसे पैदा हुई ग्रहणी चिकित्सा करने में भी कठिन है वह संग्रहणी आम वात से होती है। सोते हुए के पेरों में दर्द जल में डूबते हुए घड़ाकीसी ध्वनि पेट में होवे उसको घटी यन्त्र कहतेहैं वह ग्रहणी रोग असाध्य है।

दोषं सामं निरामं च विद्यादत्रातिसारवत् ॥१८॥

भाषा—जैसें अतिसार में जलमें पटकनें से डूबने पर आम मल और तिरने पर निराम मल जाना जाता है ऐसे यहां भी जानना चाहिये।

लिंगै रसाध्यो ग्रहणीविकारोयैस्तैरतीसारगदोन सिध्येत्
वृद्धस्यं नूनंग्रहणोविकारो हत्वातनूं नैव निवर्तते च॥१९॥

भाषा—जिन चिह्नोंसे अतिसार रोग सिद्ध नहींहोता उनसे ग्रहणी विकार भी सिद्ध नहीं होता वृद्ध पुरुषका निश्चय ग्रहणी विकार देहको नष्ट करके भी फिर आराम होजाय सो भी नहीं अर्थात् कभी आराम नहीं होता है।

वृद्धेत्वसाध्या विज्ञेया मतं धन्वन्तरेरिदम् ॥

भाषा—वृद्ध पुरुष के तो ग्रहणी रोग असाध्य है यह धन्वन्तरि का मत है॥

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरि सुनु शा० सोहनलाल
विद्याभूषण विरचितायां माधव सुबोधिन्यां
ग्रहणी निदानम् समाप्तम्

अथार्शोनिदानम्।

भाषा-अतिसार संग्रहणी अर्श [बवासीर] इनके परस्पर सम्बन्ध से

अतिसार संग्रहणी के अनन्तर बवासीर को कहते हैं अर्श शब्द का अर्थ इस प्रकारहै अरिवत् प्राणान् शृणाति हिनस्ति इति अर्शः वैरी की नाई प्राणों का नाशकरै उसरोग का नाम अर्श है इसही को बवासीर कहते हैं

अर्श की संख्या रूप सम्प्राप्ति का वर्णन ।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च शोणितात्सहजानि च ॥
अर्शांसि षट् प्रकाराणि विद्या द्गुदवलित्रये ॥१॥

भाषा-पृथक २ वात, पित्त, कफ, इनदोषोंसे वा सब का जिसमें समावेश हो ऐसे, सन्निपातसे रुधिर से और सहज अर्थात् शरीर के साथ पैदा हुए यह गुदवलीके पैदा करने वाले बीज भाग के दोषों के द्वारा दूषित होने से होते हैं यहांपर द्वन्द्वज प्रकृति के समान समवाय द्वारा आरब्ध होने से गणना नहीं किये गयेहैं जैसा सुश्रुत में लिखा है "अर्शःसु दृश्यते रूपं यदा वै दोषयो र्द्वयोः ॥ संसर्गं तं विजानीयात् संसर्गः षड्विधश्चसः,,इस प्रकार संसर्ग जन्य वात आदिके दो २ करके जान लैने और रक्त के योगसे ३ प्रकार के इस तरह जानने एक २ दोष जन्य जो हैं उनमैं अदृष्ट के असाध्यता के सम्बन्ध से विकृति विषम समवाय द्वारा आरम्भ कियागया है इससे संख्या मैं सन्निपात जन्य अलग गणना किया है इस प्रकार अर्श [बवासीर] छः प्रकार के होते हैं यह गुदा मैं जो तीन वली होती हैं एक जो ऊपर होती है उसका नाम प्रवाहणी जिसका काम मल पवन आदिकोबाहर प्रेरितकरनाहै जो बीच में होती है उसका नाम विसर्जनी जो मलपवन को बिलकुल बाहर निकालती है जो तीसरी आंट सबसे नीची होती है उसका नाम संवरणी हैजिसका काम जबमलपवन बाहर निकल जाय तब गुदाको सिकोड़ देना है यह तीनों वलियों का क्रम इस प्रकार है यानी गुदा द्वार से आधे अँगुल ऊपर पहिली वली होती है जो एक अँगुल प्रमाण होती है ऐसा सुश्रुता चार्य नेकहा है और भोजने भी कहा है " रोमान्तेभ्यो यवाध्यर्धं गुदौष्ठ परिचक्षते॥ गुदोष्ठादंगुलं चैकं प्रथमां तां वलीं विदुः " दूसरी वली डेढ़ अँगुल मोटी होती हैं इसही प्रकार डेढ़ अंगुल मोटी तीसरी बली होती हैं इनतीनों वलियों में बवासीर होती है ॥

सम्प्राप्ति पूर्वक अर्शका स्वरूप कहते हैं

दोषास्त्वङ् मांसमेदांसि संदूष्य विविधाकृतीन् ॥
मांसाङ्कुरानपानादौ कुर्वन्त्यर्शांसिताम् जगुः ॥२॥

भाषा-वात पित्त कफ दोष त्वचा मांस मेद इनको दूषित करके तथा त्वचा और मांस के आश्रित रक्त को भी दूषित करके अपान वायु आदि का स्थान जो गुदा आदि उन में मांस के कुराह (टोआ) से अनेक आकृति वाले ऐसे पैदा करते हैं उनको अर्श कहते हैं अर्श नाम मसों का जानै गुदा आदि में जो कहे हैं उनसे जाना पड़ता है कि नासिका आदि में भी अर्श होतेहै किन्तु उनका नाम बवासीर नहीं समझे क्योंकि अच्छे चिकित्सक उसको अधिमांस कहते हैं अर्श नहीं कहते हैं चरक में भी अधिमांस ही कहे हैं सुश्रुत का मत है उन जगहो परभी बवासीर (अर्श) (नासार्श लिंगार्श) होते हैं इससे उनको भी अर्श ही कहाहैजैसे तिलका तेलऔरसरसोंकातेल भीतैलकहाता है तिलतैलम् सार्षप तैलम् न कहकर तैलम् इतने से तिल और सरसों आदि बहुत पदार्थो के तेलका बोध होता है वाग्भट भी सुश्रुत की तरह अपना मत दिखलाते हैं कि उनको अर्श ही कहना चाहिये परन्तु यथार्थ दृष्टि में वा लौकिक प्रचार में लिंग में वा नाक में किसी के बवासीर है ऐसा सुन नही पडा और कहने वाला असम्भव बोलता है इस कारण अर्श शब्द रूढि बवासीरका वाचक ही समझना यह मत ठीक मालूम होता है इस विषय में चरक का मत ही सुन्दर मालूम होता है ॥

वातकी बवासीर का निदान कहते हैं ॥

कषायकटुतिक्तानि रूक्षशीत लघूनि च ॥
प्रमिताल्पाशनं तीक्ष्णं मद्यं मैथुनसेवनम् ॥३॥
लंघनं देशकालौ च शीतौ व्यायामकर्मच ॥
शोको वातातपस्पर्शो हेतुर्वातार्शसांमतः ॥४॥

भाषा-कषीला चिरपिरा कडुआ रूखा ठण्डा हलका ऐसे पदार्थोके सेवन से तथा प्रमाण से थोड़ा खाने से जेज्जटाचार्य का मत है कि भोजन काल निकल जाय उस वक्त खाने से और थोड़ा खाने से तीक्ष्ण पदार्थ मदिरा और ज्यादा मैथुन करने से उपवास शीतदेश (जिसके चारों तरफ जल भरा हो उसका नाम अनूप है उसही को शीत देश कहते हैं) और शीत काल (हेमन्त शिशिर आदि ऋतु) इन का ज्यादा सेवन करने से अत्यन्त व्यायाम [कसरत] करने से शोक से हवा धुप में डोलना इनसे वातार्श पैदा होता है यह उनके पैदा होने में कारण कहे हैं ॥

पित्तकी बवासीर के कारण कहते हैं ॥

कट्वम्ललवणोष्णानि व्यायामाग्न्यातपश्रमाः ॥
देशकालावशिशिरौ क्रोधोमद्यमसूयनम् ॥५॥
विदाहि तीक्ष्ण मुष्णंच सर्वं पानान्नभेषजम् ॥
पित्तोल्वणानां विज्ञेयः प्रकोपे हेतुरर्शसाम् ॥६॥

भाषा—चिरपरा, खट्टा, नोनका, गरम, कसरत, अग्निका बहुत पासरहना बहुत धूप में रहना, श्रम (मिहनत) गरम देश. मारवाड़ आदि गरम काल शरद् और ग्रीष्म, क्रोध, मदिरा, दूसरे को देखकर कुढ़ना, जलन करने वाली तीखी गरम सब पीने की खाने की चीज और दवा पित्तसे बढ़ने वाले (होने वाले) अर्श(बवासीर) के कारणजानने "पित्तोल्वणानां इस पाठसे सब अर्शोंको त्रिदोष जन्यता है ऐसा सिद्ध होता है अधिक से व्यपदेश (नामनिर्देश) होता है यह चरकने दिखलाया है यथा "अर्शांसि नाम जायन्ते नाऽसन्नि-पतितैस्त्रिभिः । दोषैर्दोषविशेषात्तु विशेषःकथ्यतेऽर्शसाम्" इत्यादि जिसका कि कुछ अंश पहिले भी वर्णन करचुके हैं ।

कफ की बवासीर के कारण कहते हैं ।

मधुरस्निग्धशीतानि लवणाम्लगुरूणिच ॥
अव्यायामो दिवास्वप्नः शय्यासन सुखे रतिः ॥७॥
प्राग्वातसेवा शीतौ च देशकालावचिंतनम् ॥
श्लैष्मिकाणां समुद्दिष्टमेतत्कारण मर्शसाम् ॥८॥

भाषा--मीठा पदार्थ, चिकना, ठण्डा, लवणका, खट्टा, भारी इन पदार्थोंका सेवन करना कसरत न करना दिन में सोना शय्या आसन (गद्दा) इनके सेवन करने में इच्छा रहे पूर्वकी हवा का सेवन करना ठण्डे देश काल में किसी बात का विचार न करना श्लेष्म जिनमें अधिक ऐसे अर्शों (बवासीर) के कारण कहे हैं ।

द्वन्द्व जन्य बवासीर के कारण कहते हैं ।

हेतु लक्षण संसर्गाद्विद्याद्द्वन्द्वोल्बणानि च ॥

भाषा--दोदो दोषों के हेतु और लक्षण मिलने से दो दो दोष जिस में बढ़े हों ऐसा अर्श जानें ।

त्रिदोषज अर्श का निदान कहते हैं।

सर्वो हेतु स्त्रिदोषाणां सहजै र्लक्षणं समम् ॥९॥

भाषा--एक २ करके जो वात आदि अर्शों के कारण कहे हैं वह ही त्रिदोष के कारण होते हैं और सहज बवासीरके लक्षण त्रिदोषार्श के समान जानै।

निदान बताकर अब वात आदि भेदसे उस रोगका लक्षण कहतेहैं तहां पहिले वातकी बवासीर का लक्षण कहते हैं

गुदांकुरा वह्वानिलाः शुष्काश्चिमचिमान्विताः ॥
म्लानाः श्यावारुणाः स्तब्धा विशदाःपरुषाःखराः ।१०।
मिथो विसदृशा वक्रास्तीक्ष्णा विस्फुटिताननाः ॥
बिम्बीखर्जूरकर्कन्धू कार्पासीफलसन्निभाः ॥११॥
केचित्कदम्बपुष्पाभाः केचित्सिद्धार्थकोपमाः ॥
शिरःपार्श्वांस कट्यूरुवंक्षणाद्यधिकव्यथाः ॥१२॥
क्षवथूद्गारविष्टम्भहृद्ग्रहारोचकप्रदाः ॥
कासश्वासाग्निवैषम्यं कर्णनादभ्रमावहाः ॥१३॥
तैरार्तो ग्रथितं स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकम् ॥
रुक्फेनपिच्छानुगतं विबद्धमुपवेश्यते ॥१४॥
कृष्णत्वङ्नखविण्मूत्रनेत्रवक्रश्च जायते ॥
गुल्मप्लीहोदराष्ठीला संभवस्तत एव च ॥१५॥

भाषा-वायुदोष जिस अर्श में अधिक हो उसमें गुदा के अंकुर नाम मस्से सूखे चिमचिमाहट युत (यह एक वेदना विशेष का नाम है जिसमें चिम २ शब्द होता है और भीतर टसिसी मारती हैं) कुमलाये हुए काले लाल २ कड़े स्वच्छ कठोर खरखरे परस्पर एक से न होंय टेढ़े पैने फटे हुए मुँहवाले बिम्बी [कंदूरी] खजूर बेर कपास के फल के तुल्य कोई कदम्ब के फूल जैसे कोई सरसों के तुल्य होते हैं और शिर पांसू कंधा कमर जांघ वंक्षण (मर्म स्थान पेड़ू) इत्यादि स्थानों में अधिक तकलीफ देनेवाले होतेहैं वे छींक डकार कबजियत हृद्ग्रह (छाती जिकड़ीसी) अरुचि इनको पैदा करते हैं तथा खांसी श्वास अग्निकी विषमता कानों में घुन घुनाहट

घुमेर इनको पैदा करते हैं उन मस्सों से दुखी हुआ मनुष्य गुंधा हुआ थोड़ा शब्द जिसमेंहोय प्रवाहिकाके लक्षणोंसे युक्त होता हुआ पीड़ा झागचमकइन से युक्त व द्रव (विना बंधा) दस्त करै त्वचा नख विष्ठा मूत्र नेत्रऔरमुखकारंग कालाहोजाताहै कफकेअर्शसे वायगोलातापतिल्ली,उदर,विकार अष्ठीला [वायु रोग विशेष] इनके होनेका सम्भवहो अधिकन्तु पैदा हो होजांय यह कफ के अर्श के लक्षण जानें ॥

पित्तकी बवासीर के लक्षण कहते हैं ॥

पित्तोत्तरा नीलमुखा रक्तपीतासितप्रभाः ॥
तन्वस्रस्राविणो विस्रास्तनवो मृदवः श्लथाः ॥१६॥
शुकजिह्वा यकृत्खण्डजलौकोवक्त्रसंनिभाः ॥
दाहपाकज्वरस्वेद तृण्मूर्छारुचिमोहदाः ॥१७॥
सोष्माणो द्रवनीलोष्णपीतरक्तामवर्चसः ॥
यवमध्या हरित्पीतहारिद्रत्वङ्नखादयः ॥१८॥

भाषा-पित्तजिन में प्रधान हों ऐसे मस्से मुखपर नीलापन लियेहों रक्त लाल पीरे काले रंग की कान्ति वाले थोड़ा जिनमें रुधिर झड़ै दुर्गंधवाले छोटे २ कोमल लम्बापन लिये हुए तोते की जीभ यकृत् का टुकड़ा जौंक का मुंह इनके तुल्य होते हैं इनके होने से दाह गुदा का पकना ज्वर पसीना प्यास,मूर्छा अरुचि और मोह यह होते हैं स्पर्श करने से गरम मालूम हो पतला नीला गरम पीला लाल तथा आमका दस्त आवै जौकी सी मुटाई वाले हरे पीले हल्दीके रंगके त्वचा और नख आदि होजाते हैं ॥

कफ जन्य बवासीर के लक्षण ।

श्लेष्मोल्वणा महामूला घना मन्दरुजःसिताः ॥
उत्सन्नोपचितस्निग्धस्तब्धवृत्तगुरुस्थिराः ॥१९॥
पिच्छिलाः स्तिमिताः श्लक्ष्णाः कण्ड्वाढ्याःस्पर्शनप्रियाः॥
करीरपनसास्थ्याभास्तथा गोस्तनसंनिभाः ॥२०॥
वंक्षणानाहिनः पायुबस्तिनाभिविकर्षिणः ॥

सश्वासकासहृल्लास प्रसेकारुचिपीनसाः ॥ २१ ॥
मेहकृच्छ्रशिरोजाड्यशिशिरज्वरकारिणः ॥
क्लैब्याग्निमार्दवच्छर्दिरामप्रायाविकारदाः ॥ २२ ॥
वसाभसकफप्रायपुरीषाः सप्रवाहिकाः ॥
नस्रवन्ति न भिद्यन्ते पाण्डुस्निग्धत्वगादयः ॥ २३ ॥

भाषा-कफ दोष से बढ़े हुए जो अर्श (बवासीर के मस्से) जड़ जिन की गहरी सघन मन्द२ दर्द जिनमें हो सफेद लम्बे, मोटे, चिकने करड़े, गोल, भारी, स्थिर, चमकदार निश्चल, मणि के समान स्वच्छ खुजार होय छीने में सुख मालूम हो करील कटहल की अस्थि (गांठ) के तुल्य तथा गाय के थन के समान, वंक्षणस्थान में अफरा करने वाले गुदा वस्ति नाभि इन को खेंचने वाले होते हैं और श्वास खांसी उबाकी लार टपकना अरुचि और पीनस यह उनके साथ होते हैं प्रमेह मूत्र कृच्छ्र माथेमें जड़ता (भारापन) शीत ज्वर करने वाले नपुंसकता अग्निमान्द्य वमन और आम जिन में बहुत ऐसे दस्त, आदि पैदा करते हैं वसा के तुल्य कफ सहित मिला हुआ दस्त जिन में हो प्रवाहिका के लक्षण जिन में हो उन में से कुछ झरै नहीं न फटै और पिलाई चिकनाई लिये त्वचा नखनेत्रादि उन के होने पर मनुष्य के होते हैं यह कफ जन्य बवासीर के लक्षण होते हैं ।

सन्निपातजन्य और सहज बवासीर के लक्षण कहते हैं ।

सर्वैः सर्वात्मकान्याहुर्लक्षणैः सहजानिच ॥

भाषा-सब जो पूर्व में वातादि जनित अर्शों के लक्षण कहे वे जहां सब ही मिलते हों उस को सन्निपात जन्य बवासीर कहना चाहिये और सहज के लक्षण भी त्रिदोषज के तुल्य होते हैं ।

रुधिरार्श (खूनी बवासीर) के लक्षण ।

रक्तोल्वणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः ॥ २४ ॥
वटप्ररोहसदृशा गुञ्जाविद्रुमसन्निभाः ॥
तेत्यर्थं दुष्टमुष्णं च गाढ़विट्कप्रपीडिताः ॥ २५ ॥
स्रवन्ति सहसा रक्तं तस्य चाति प्रवृत्तितः ॥

भेकाभः पीड्यते दुःखैः शोणितक्षय संभवैः ॥ २६ ॥
हीनवर्णवलोत्साहो हतौजाः कलुषेन्द्रियः ॥
विट्श्यावं कठिनं रूक्षमधोवायुर्न वर्तते ॥ २७ ॥

भाषा–रक्त की जिन में प्रधानता होय नाम खूनी बवासीर के यह लक्षण जानने गुदा में जो मस्से हैं वह पित्त की बवासीर के लक्षणों से युक्त होंय बड़के अँकुर (टोंआं) के समान होंय चिरमिटी वे मूंगा के समान होंय और वे मस्से अत्यन्त गाढ़े दस्त के उतरते समय भिचैं तब दूषित गरम २ रक्त छौड़ैं यानी उस वक्त गरम २ लोहू टपके और रुधिर के बहुत टपकने से मनुष्य का रंग मेंडक के समान पीला पड़जाय लोहू के बहुत निकलनें से उत्पन्न हुए जो सुश्रुत में कहे विकार यथा त्वचा कड़ी पड़ जाय खट्टी तथा ठण्डी वस्तु की इच्छा रहे नाड़ियों में शिथिलता होय इत्यादि वर्ण और बल तथा उत्साह हीन होजाय शक्ति नष्ट होजाय इन्द्रियां व्याकुल सी दीख पड़ै काला कड़ा और रूखा दस्त आवे अपान वायु सरे नहीं वह खुनी बवासीर के लक्षण जानने ।

अब उसही रक्तार्श के निदान सम्बन्धी रक्त का बात
आदि भेद से लक्षण कहते हैं ।

तनुचारुणवर्णंच फेनिलं चासृगर्शसाम् ॥
कट्यूरु गुदशुलंच दौर्बल्यं यदि चाधिकम् ॥ २८
तत्रानुबंधो वातस्य हेतुर्यदिच रूक्षणम् ॥

भाषा–थोड़ा लाल रंग का झागदार रुधिर जिस रक्त की बवासीर में आवे कमर जंघा गुदा इन में शूल होय और दुर्बलता यदि अधिक हो और उस के पैदा होने में रूखे पदार्थों का सेवन ही कारण हो तब इस का बात से सम्बन्ध है यह जानै ।

कफानुबंधिरक्तार्श के लक्षण ।

शिथिलं श्वेतपीतंच विट्स्निग्धंगुरुशीतलम् ॥ २९ ॥
यद्यर्शसांघनंचासृक् तन्तुमत्पाण्डु पिच्छिलम् ॥
गुदं सापिच्छं स्तिमितं गुरुस्निग्धंचकारणम् ॥

श्लेष्मानुबंधो विज्ञेयस्तत्ररक्तार्शसांबुधैः ॥ ३० ॥

भाषा-शिथिल श्वेत पीत चिकना भारी ठण्डा ऐसा मल जिस में उतैर और मस्सों का रुधिर यदि गाढ़ा हो तार उस में निकलता हो पीला चमकदार हो ऐसा निकले और गुदा चमकीली होय निश्चल भारापन युक्त चिकनाई लिये हुए इत्यादि कारण दीख पड़े तौ उस खूनी बवासीर को कफ से सम्बन्ध रखने वाली विद्वानों को जाननी चाहिये पित्तानुबन्धि जो रक्तार्श नहीं कहा इस का कारण रक्त और पित्त का प्रायः करके समान लक्षणता है जैसा कि पहिले कह चुकेहैं"रक्तोल्वणा गुदे कीलाःपित्ता कृति सम न्विताः इससे यहां शंका करना ही निमूर्ल है

अर्श का पूर्वरूप कहते हैं ॥

विष्टम्भोऽन्नस्य दौर्वल्यं कुक्षेराटोप एवच ॥
कार्श्यमुद्गारवाहुल्यं सक्थिसादोल्प विट्कता ॥ ३१
ग्रहणीदोषपांडुवर्त्तेराशंका चोदरस्य च ॥
पूर्वरूपाणि निर्दिष्टान्यर्शसामभिवृद्धये ॥३२

भाषा-खायाहुआ पदार्थ अच्छी तरह परिपाक नहीं होय अर्थात् अन्न आमाशय में रुका रहै शरीर में कमजोरी हो कूख में गुडगुडाहट शब्द सुन पड़े शरीर कृश होजाय डकार बहुत आवैं सक्थि जांघ) में पीड़ा हो थोडा दस्त आवै संग्रहणी पाण्डुरोग तथा उदर विकार के होनेकी सी शंका बनी रहै यह पूर्वरूप बवासीर रोग के जानने (शंका) क्यों जी गुददेश के खराब होने से सब देहमें कैसे कृशता व कालापन होजाताहै इसका उत्तर आगे देतेहैं॥

पञ्चात्मा मारुतः पित्तकफो गुदवलीत्रयम् ॥
सर्व एव प्रकुप्यन्ति गुदजानां समुद्भवे ॥ ३३
तस्मादर्शांसि दुःखानि वहुव्याधिकराणि च ॥
सर्व देहोपतापीनि प्रायःकृच्छ्रतमानि च ॥३४॥

भाषा-प्राण अपान समान उदान तथा व्यान इन पांच प्रकार के नाम वालीवायु जिसके इसप्रकारस्थान कल्पनाकियेगयेहैं हृदिप्राणो गुदेऽपानःसमानो नाभि संस्थितः ॥उदानः कण्ठ देशस्थो व्यानःसर्व शरीरगः ॥ ऐसेही लिङ्ग

विपरिणाम से पञ्चात्मा यह शब्द पित्तका भी विशेषण मानते हैं वह क्रमसे नेत्र,यकृत् और प्लीहा,हृदय,पक्वाशय व आमाशय, त्वचा इनमें आलोचक रञ्जक साधक पाचक भ्राजक इन नामसे व्यवस्थित जानै ऐसेही कफको भी पञ्चात्मा मानकरहृदय आमाशयजिह्वाशिरसन्धि इनस्थानोंमें क्रमसे अवलम्बक क्लेदक बोधक तर्पक श्लेष्मक इन नामों से स्थित जानना जैसा गौतमाचार्य ने कहाहै" श्लेष्मा च पञ्चधोरःस्थः श्लेष्मकादिस्वकर्मणा॥कफ धाम्नांच सर्वेषां यत्करोत्यवलम्बनम् ॥ अतोऽवलम्बकः, श्लेष्मा यस्त्वामाशय संश्रितः क्लेदकः सोऽन्न संघात क्लेदना द्रसबोधनात् ॥ बोधको रसनास्थस्तु शिरःसंस्थोऽक्षि तर्पणात् तर्पकः श्लेष्मकः सम्यक् श्लेषणात्सन्धिषु स्थितः,इसप्रकार अर्थ स्पष्ट होने से और ग्रन्थ विस्तार भयसे नही लिखाहै इन पांच २ भेद करके वात पित्त और कफ यह सबही बवासीर होनेपर गुदाकी त्रिवली में कुपित होतेहैं इससे यह अर्श (बवासीर के मस्से) बहुत दुःखदेने वाले हैं बहुत रोगों के पैदा करने वाले होतेहैं और सबरी देहको ही दुखी करते हैं और प्राय करके कृच्छ्र साध्य होतेहैं इस प्रायशब्द से यह भी ज्ञात होताहैकि असाध्यहीहोतेहैं

पूर्वोक्त जो वातादि अर्श उनके साध्य कृच्छ्र साध्य तथा असाध्य होनेका वर्णन करते हैं ॥

वाह्यायांतुवलौ जातान्येकदोषोल्वणानिच ॥
अर्शांसि सुखसाध्यानि न विरोत्पातितानि च । ३५
द्वन्द्वजानि द्वितीयायां वलौयान्याश्रितानिच ॥
कृच्छ्र साध्यानि तान्याहुः परिसम्वत्सराणिच ॥ ३६
सहजानि त्रिदोषाणि यानिचाभ्यन्तरांवालिम् ॥
जायन्तेऽर्शांसि संश्रित्य तान्यसाध्यानिनिर्दिशेत् ॥३७

भाषा—बाहर की वलिमें हुए एक दोष से पैदा हुए और वर्षभर से ज्यादा समय जिनको पैदा हुए न हुआ होय ऐसे अर्श (बवासीर के मस्से) सुखसाध्य हैं और जो दो दोषों से प्रगट हुए हों वह दूसरी वलीमे हों और वर्षसे ज्यादा समय होगया होयऐसे अर्शों[बवासीरके मस्सों]को कृच्छ्र साध्य कहते हैं और जन्म के साथ पैदा होनेवाले और तीन दोषों से प्रकट हुए वह भीतर की वलिमें स्थित हों उनको असाध्य कहते हैं ॥

असाध्य दो प्रकार के होतेहैं याप्य तथा प्रत्याख्येय इन भेदोंसे उनको ही आगे कहते हैं ॥

शेषत्वादायुषस्तानि चतुष्पादसमन्विते ॥
याप्यन्तेदीप्तकायाग्नौ प्रत्याख्येयान्यतोऽन्यथा ॥३८॥

भाषा-अवस्था शेष हो और चतुष्पाद सम्पति श्रेष्ठवैद्य औषध परिचारक सद्वृत रोगी) जहां हो तथा देहकी अग्नि प्रस्फुरित जिसमनुष्य की हो तब वह मस्से यत्न से साध्य होते हैं अन्यथा उक्तदशा से भिन्न दशामें प्रत्याख्येय हैं नाम त्याग देना चाहियें चतुष्पाद सम्पत्ति ग्रन्थातरमें देखो विस्तार भय से नही लिख सके हैं ॥

उपद्रव से असाध्यता का वर्णन करते हैं ॥

हस्ते पादे मुखेनाभ्यां गुदे वृषणयोस्तथा ॥
शोथो हृत्पार्श्वशूलं च यस्यासाध्योऽर्शसोहि सः॥३९
हृत्पार्श्वशूलं संमोहश्छर्दिरङ्गस्यरुग्ज्वरः ॥
तृष्णागुदस्य पाकश्च निहन्यु गुंदजातुरम् ॥४०
तृष्णारोचकशूलार्तमति प्रसृतशोणितम् ॥
शोथातिसारसंयुक्तमर्शांसि क्षपयन्ति हि ॥४१

भाषा—हाथ पांव मुँह नाभि गुदा तथा अण्डकोश इन में सूजन हृदय और पांसुओं में तकलीफ जिसके हो वह ववासीर वाला असाध्य होता है। हृदय पांसुओं में दर्द मनमें मोह वमन अंगों में तकलीफ ज्वर प्यास गुदा का पकना यह बवासीर वाले को मार लेते हैं प्यास अरुचि पीड़ा इनसे पीडित हो और जिसके अत्यन्त रुधिर झड़ता हो सूजन और अतिसार इन कर युक्त हो तो ऐसे रोगी को अर्श (बवासीर के मस्से) नष्ट करदेते हैं ॥

जो मस्से लिंगमें होते हैं उनका स्वरूप कहते हैं।

मेढ्रादिष्वपि वक्ष्यन्ते यथास्वं नाभिजानि च ॥
गण्डूपदास्यरूपाणि पिच्छिलानि मृदूनि च ॥४२॥

भाषा-शिश्न आदि में यहां आदिपद से नाक आदिका भी व्यपदेश है

यथा योग्य दोष करके आगे कहेंगे और नाभिमें भी होते हैं वह केचुओं के समान होते हैं चमकदार व कोमल होते हैं ।

चर्मकील की सम्प्राप्ति कहते हैं ।

व्यानोगृहीत्वा श्लेष्माणं करोत्यर्शस्त्वचोबहिः ॥
कीलोपमं स्थिरखरं चर्मकीलंतुतद्विदुः ॥४३॥

भाषा—व्यानवायु कफको लेकर त्वचा से बाहिर कील के समान स्थिर खरदेरे अर्श (मस्सों) को पैदा करता है उसको चर्मकील ऐसे नाम वाला माने।

चर्मकीलका वातादि भेद से लक्षण कहते हैं ।

वातेन तोदपारुष्यं पित्तादसितवक्रता ॥
श्लेष्मणा स्निग्धता तस्य ग्रथितत्वं सवर्णता ॥४४॥

भाषा—वायुके कोप से सुई के चुभने की सी पीड़ा होय और कठोरता होय पित्तसे मुखपर कालोंचसी हो और कफसे सचिक्कणता तथा गाठ के समान हो और देहके रंगके समान उनका रंग होताहै ।

इतिश्री वैद्यराज ब्रह्मास्वामि सूरिसूनु शा० सोहनलाल विद्याभूषण
विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां
टीकाया मर्शोनिदानं समाप्तम्

:-(*)-:

अथाग्निमान्द्याजीर्णाविसूचिकालसकविलम्बिकानिदानानि

अर्श रोगका कार्य अग्निमान्द्यादि हैं इससे उसका वर्णन करते हैं ।

मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्चेतिचतुर्विधः ॥
कफपित्तानिलाधिक्यात्तत्साम्याज्जाठरोऽनलः ॥१॥

भाषा–मन्द तीक्ष्ण, और विषम, तथा सम, यह चार प्रकार काजठर का अग्नि कहा है सो कफाधिक्य से मदाग्नि होता है पित्ताधिक्य होने से मनुष्य के तीक्ष्णाग्नि होता है वाताधिक्य होने से विषमाग्नि होता है जिस मनुष्य के वात, पित्त, कफ, समानता से रहै वहां समाग्नि रहता है ऐसेचार प्रकार का अग्नि होता है ।

उनका रूप कहते हैं ॥

विषमो वातजान् रोगान् तीक्ष्णःपित्तनिमित्तजान् ॥
करोत्यग्निस्तथा मन्दो विकारान् कफसंभवान् ॥२॥

भाषा–विषमाग्नि वात जन्य ८० रोगों की तीक्ष्ण पित्त के कारण से उत्पन्न हुए ४० विकारों को और मदाग्नि कफसे उत्पन्न हुए २० विकारों को तथा इनमें से किसी रोग को पैदा करता है यह विकार इन दोषों के चरक में महा रोगाध्याय में देखो ।

सम आदिकों के लक्षण ।

समा समाग्नेराशिता मात्रा सम्यग्विपच्यते ॥
स्वल्पापिनैव मन्दाग्नेर्विषमाग्नेस्तु देहिनः ॥३॥
कदाचित्पच्यते सम्यक्कदाचिच्चनपच्यते ॥
मात्राति मात्राप्यशिता सुखं यस्य विपच्यते ॥
तीक्ष्णाग्निरिति तं विद्यात्समाग्निः श्रेष्ठ उच्यते ॥४॥

भाषा–समाग्नि वाले पुरुष के उचित आहार की मात्रा अच्छीतरह पाक को प्राप्त होती है और मंदाग्नि वाले पुरुष के थोड़ी भी आहार की मात्रा अच्छी तरह नहीं पचती और विषम अग्निवाले पुरुष के कभी अच्छी तरह परिपाक होजाय और कभी नहीं पचै और प्रमाण का तथा प्रमाणसे अधिक भी खाया हुआ अन्न जिसके सुख पूर्वक पचजाय उसको तीक्ष्ण अग्निवाला कहते हैं इन सब अग्नियों में सम अग्नि श्रेष्ठ कहा है । जैसा अन्यत्र कहा है

अतिमात्रमजीर्णेपि गुरुचान्नमथाश्नतः ॥
दिवापि स्वपतो यस्य पच्यते सोग्निरुत्तमः ॥

भाषा–अजीर्ण में भी मात्रा से ज्यादा तथा भारी अन्नको खानेवाले पुरुष के दिन में भी सोने वाले पुरुष का अन्न जिस अग्नि से पचै वह उत्तम जानना तीक्ष्ण के कहने से भस्मक नहीं समझना जो अत्यन्त तीक्ष्ण अग्नि होती है वह भस्मक समझना जिसके कि लक्षण चरक में इस प्रकार वर्णन किये गये हैं ॥

नरे क्षीणकफे पित्तं कुपितं मारुतानुगम् ॥

स्वोष्मणा पावक स्थाने बलमग्नेः प्रयच्छति ॥
तदालब्धबलो देहं विरुजेत् सानिलोऽनलः ॥
अभिभूय पचत्यन्नं तैक्ष्ण्यादाशु मुहुर्मुहुः ॥
पक्त्वाचान्नं ततो धातून् शोणितादीन् पचत्यपि ॥
ततो दौर्बल्यमातंकान् मृत्युञ्चोपनयेन्नरम् ॥
भुक्तेऽन्ने लभते शान्तिं जीर्णमात्रे प्रताम्यति ॥
तृट्कासदाहमूर्च्छाः स्युर्व्याधयोऽत्यग्नि संभवाः ॥

भाषा-क्षीण कफ वाले मनुष्य के कुपित हुआ पित्त वायुके साथ अपनी गरमी से अग्नि स्थान में प्राप्त हो आग्नि को बलदे तब बलपाया हुआ अग्नि वायु के साथ शरीर को पीडित करै तीक्ष्णता से जल्दी बार २ खूब अन्नको पकाकर रुधिर आदि धातुओं को भी पकादेवै इसके बाद दुर्बलता रोग और मृत्यु इनको प्राप्त करै भोजन करने पर तो वह मनुष्य शान्ति लाभकरै और जीर्ण होनेपर फिर तकलीफ पावै तृष्णा खांसी दाह (जलन) मूर्छा इत्यादि जो व्याधि अग्नि से प्रकट होती हैं वह होवै ।

अग्निमान्द्य और अजीर्ण को परस्पर कारणता है ।
इससे उसके बाद अजीर्णों का वर्णन है ।

अजीर्णनिदानम् ।

आमं विदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिलैस्त्रिभिः ॥
अजीर्णं केचिदिच्छन्ति चतुर्थ रसशेषतः ॥५॥
अजीर्णं पञ्चमं केचिन्निर्दोषं दिनपाकिच ॥
वदन्ति षष्ठं चाजीर्णं प्राकृतं प्रतिवासरम् ॥६॥

भाषा-कफ, पित्त और वात इनतीनों से यथाक्रम आम, विदग्ध, विष्टब्ध, अजीर्ण होते हैं कोई आचार्य रसशेष होनेसे उसको चौथा अजीर्ण कहते है रस शेष नाम रसवाले आहार से हो यह जेज्जटाचार्य का मत है कि रसका शेष रहना अर्थात् उसका पाकन होना उसको रसशेष कहते हैं यहां शंका होती है कि क्योंजी जो ऐसा मानते हो तो आम विदग्ध विष्टब्ध इनके और २ रूप अवश्य होते होंगे इससे उनसे इसका भेद नहीं होना चाहिये क्योंकि उसके चिह्न जो खट्टी डकार आदि हैं वह यहां भी होतेहैं तथा उद्गार शुद्धि (डकार साफ आना] वाले रसशेष नाम अजीर्ण के लक्षण के उत्पत्तिका प्रसंग नहीं होता जैसा सुश्रुतमें लिखा है (१) उद्गार शुद्धावपि भक्त कांक्षा न जायते हृद्गुरुता च यस्य ॥ रसावशेषेण तु सप्रसेकं चतुर्थमेतत्प्रवदन्त्य जीर्णम्" ऐसाही आरोग्यता मञ्जरी में नागार्जुनने भी कहा है (२) उद्गारेपि विशुद्धतामुपगते कांक्षा न भक्तादिषु ॥ स्निग्धत्वं वदनस्य सन्धिषुरुजा कृत्वा शिरोगौरवम् ॥ मन्दाजीर्णरसेतु लक्षणमिदं तत्रातिवृद्धे पुनर्हृल्लासज्वर मूर्छनादि च भवेत् सर्वामयक्षोभणम्„ इससे साफ हुआ कि इनही अजीर्णोंका एक अंग है भिन्न नहीं है ॥ तब उत्तर देते हैं यह बात नहीं है क्योंकि अवश्य होने वाले जो विदग्ध आदि स्वरूप वाले आहाराशेष [अजीर्ण] उनके बहुत थोड़े होने से उसके कम असर से उसके द्वारा जो डकार आदिका खराब होना सो और बेवक्त में भूख जैसे लगती है उसकी नाई नहीं होता जैसा सुश्रुत में लिखा है "स्वल्पं यदा दोषविबद्धमामं लीनं न तेजः पथमावृणोति ॥ भवत्यजीर्णेपि तदा बुभुक्षा सा मन्दबुद्धिं विषवन्निहन्ति ॥ " इत्यादि जानना तन्त्रान्तरों में भी आहारापाकज ही रस शेष का लक्षण कहा है "आमं विदग्धं विष्टब्धं रसशेषमथापिच ॥ चतुर्विधमजीर्णं च आहारापरिपाकतः " इससे इन तीनों में इस रस शेष का समावेश हो नहीं सक्ता इस वास्ते यह रस शेष अजीर्ण चौथा समझना ही उचित है और दिन में जिस का परिपाक

(१) डकार साफ आने पर भी खाने में रुचि न होय और जिस मनुष्य के कलेजे पर भारापन रहै कै और लार टपकती हो उस अजीर्ण को रस शेष से कहते हैं यह चौथा अजीर्ण है ॥

(२) डकार के होने पर भी खाने में इच्छा न हो मुख में चिकनाई (साबुनसा घुला रहै) जोडों में दर्द माथा भारी रहै जहां मन्दाजीर्ण रस में (जहां कुछ रस जीर्ण न हुआ हो) यह लक्षण होते हैं उसही अजीर्ण के बढने पर फिर उबाकी ज्वर मूर्छा आदि होय यह सब रोगों को क्षुब्ध करते हैं ।

हो और अफरा हड़ फूटन आदि कुछ भी उपद्रव नहीं होय उस को कोई पांचवा अजर्णि कहते हैंऔर जो प्रकृति से सम्बन्ध रखने वाला नित्य ही स्वभावतः अजीर्ण रहे उस को छटा अजीर्ण कहते हैं उस अजीर्ण के परिपाक के लिये सुश्रुत में जो विधान लिखे हैं उस के करने से वह शान्त हो जाता है ॥

अजीर्ण के कारणों का वर्णन करते हैं ।

अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्च संधारणात्स्वप्नविपर्ययाच्च ॥
कालेऽपिसात्म्यं लघु चापि भुक्त मन्नं न पाकं भजतेनरस्य७
(ईर्ष्याभयक्रोधपरिप्लुतेन लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन ॥
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक् परिपाकमेति) ॥

भाषा-बहुत जल के पीने से विषम (अहित वा समय का उल्लंघ करने बाद) पदार्थों के खाने से वेगों के रोकने से सोने में विपरीतता करने से यथा रात में जागने और दिन में सोने आदि कारणों से समय पर भी हित करै तथा हलका भी खाया हुआ अन्न मनुष्य के परिपाक नहीं होता ईर्ष्या (डाह) करने से भय तथा क्रोध से युक्त होने से लोभ रोग दीनता इनसे दुःख होने से और द्वेष युक्त होने से सेवन किया हुआ जो अन्न सो मनुष्य को अच्छे प्रकार परिपाक नहीं होता है ॥

कहे जो आमजीर्ण आदि उनके लक्षण कहते हैं ।

तत्रामेगुरुतोत्क्लेदःशोथोगण्डाक्षिकूटगः ॥
उद्गारश्चयथाभुक्त मविदग्धःप्रवर्त्तते ॥ ८
विदग्धेभ्रमतृण्मूर्छाः पित्ताच्च विविधारुजः ॥
उद्गारश्च सधूमाम्लः स्वेदोदाहश्चजायते ॥ ९ ॥
विष्टब्धेशूलमाध्मानं विविधावातवेदनाः ॥
मलवाताप्रवृत्तिश्च स्तम्भो मोहाङ्गपीडनम् ॥ १० ॥
रसशेषेऽन्नविद्वेषो हृदयाशुद्धिगौरवे ॥

भाषा-तत्र नाम इन अजीर्णों में जो आमाजीर्ण है उसमें भारापन उ-

वाकी आना कपोल और आंखों में सूजन और जैसा अन्न खाया होय वैसी ही डकार आवै (इस में खट्टी डकार नहीं आती है) यह लक्षण होते हैं और विदग्ध अजीर्ण में भ्रम (घुमेर) तृष्णा मूर्च्छा ये उपद्रव होतेहैं और पित्तके अधिक होने से अनेक प्रकार की तकलीफ होती है खट्टी डकार आवै और मुँहमें उसके साथ धूँआंसा छुटै पसीना आवै जलन होय यह लक्षण होते हैं विष्टब्धअजीर्ण में दर्द अफरा अनेक प्रकार की वायु की पीड़ा मल और अधोवायु का न आना शरीरका स्तम्भन (जिकड़ना) मोह और अंगों में तकलीफ यह लक्षण होते हैं रसशेष अजीर्ण में अन्न में द्वेष इच्छा न होना हृदय में शुद्धि न होना अर्थात् कलेजा भारी रहै यह लक्षण होते हैं।

अजीर्ण से जो उपद्रव होते हैं उनको कहते हैं।

मूर्च्छा प्रलापोवमथुःप्रसेकः सदनं भ्रमः॥ ११ ॥
उपद्रवा भवन्त्येते मरणं वाप्यजीर्णतः ॥

भाषा—मोह होना बिना प्रयोजन की बात बर्बराना थुकथुकी लार ट. पकना, ग्लानि भ्रंम (घुमेर) ये अजीर्ण के उपद्रव हैं अथवा कहीं अजीर्ण से मृत्यु भी होजाती है।

कहे हुए अजीर्ण के कारणों से बहुत भोजन करना ही सबसे विशेष कारण है इससे उसही को कहते हैं।

अनात्मवंतः पशुवद्भुञ्जते येऽप्रमाणतः
रोगानीकस्यते मूलमजीर्णं प्राप्नुवंतिहि ॥ १२ ॥

भाषा—अनात्मवान् (दुष्टमनवाले लोभके वश खूब खाकर उसके सुख की इच्छा करने वाले) पशुकी नांई जो बे प्रमाण खाते हैं वे रोगों के समूह विसूचिका आदि के मूल रूप जो अजीर्ण उसको प्राप्त होते हैं ॥१२॥

अजीर्ण सेविसूचिकाकी उत्पत्ति होने को वजह से अजीर्ण के बाद विसूचिका का वर्णन करते हैं।

अजीर्णमामविष्टब्धं विदग्धं च यदीरितम् ॥
विसूच्यलसकौ तस्माद्भवेच्चापि विलम्बिका ॥१३॥

भाषा-आम विष्टब्ध और विदग्ध यह अजीर्ण के भेद कहे हैं उनसे वि- सूचिका अलसक और विलम्बिका पैदा होती है कार्तिक कुण्डाचार्य का

मत है यथा क्रम जैसे आमसे विसूचिका विष्टब्ध से अलसक और विदग्धसे विलम्बिका पैदा होती है परन्तु वकुलकर महात्मा का यह मत है कि यह ऐसा नहीं कहना चाहिये क्योंकि यथा क्रम करनेपर विदग्ध से विसूचिका होता है ऐसा जब मानेंगे तो उसकी आगे कफ वात से उत्पत्ति कहेंगे और विदग्धाजीर्ण की उत्पत्ति पित्तसे है तब पारस्परिक भेद आजायगा इससे यह विचार ठीक मालूम होता है कि तीनों प्रकार के अजीर्णों से चाहे जिससे विसूचिका आदि उत्पत्ति होती है।

विसूचिका की निरुक्ति कहते हैं।

सूचीभिरिवगात्राणि तुदन् संतिष्ठतेऽनिलः ॥
यत्राजीर्णेन सा वैद्यैर्विसूचीति निगद्यते ॥१४॥
नतां परिमिताहारा लभन्ते विदितागमाः ॥
मूढास्तामजितात्मानो लभन्तेऽशनलोलुपाः॥१५॥

भाषा-जिस अजीर्ण में वायु सुइओं से चुभाने की सी पीड़ा) पाण्डुरोग की तरह सुइयों की तुल्य पीड़ा को छोड़कर और भी विविध प्रकार के वेदनाओं के भेद होते हैं उनको शरीर में) करता हुआ स्थित होवे वह वैद्यों ने विसूचिका रोग ऐसा कहा है प्रमाणका आहार करने वाले तथा शास्त्र को जानने वाले उसको प्राप्त नहीं करते और जिनने अपने मनको नहीं जीता पशुकी नांई अप्रमाण का भोजन करने वाले है वह उस विसूचिका(हैजा) रोगको प्राप्त करते हैं अर्थात् उनके यह रोग पैदा होता है ॥

विविधवेदनादि युक्त लक्षण तन्त्रान्तरों में लिखे हैं उनको कहते हैं

विविधैर्वेदनाभेदै वाय्वदोर्भृशकोपतः ॥
सूचीभिरिव गात्राणि भिनत्तीति विसूचिका ॥

भाषा—अनेक प्रकार की वेदना के भेदों से और वायु आदिके अत्यन्त कोप से सूइयों की नांई शरीरों को छेदै उसको विसूचिका कहते हैं।

विसूचिका के लक्षण कहते हैं।

मूर्छातिसारो वमथुः पिपासा शूलो भ्रमोद्वेष्टनजृम्भदाहाः॥
वैवर्ण्यकम्पौ हृदयेरुजश्च भवन्ति तस्यां शिरसश्चभेदः।१६

भाषा-मूर्छा अतिसार वमन प्यास पीड़ा भ्रम (घुमेर) जांघोंका बंधेज

सा होना जंभाई दाह विवर्ण कम्प हृदय में तकलीफ और शिरमें फटनेकी सी पीड़ा यह लक्षण जिस रोग में होय उसको विसूचिका (हैजा) कहतेहै।

अलसक का वर्णन करते हैं।

कुक्षिरानह्यतेऽत्यर्थं प्रताम्येत् परिकूजति ॥
निरुद्धो मारुतश्चैव कुक्षावुपरिधावति ॥१७॥
वातवर्चोनिरोधश्च यस्यात्यर्थं भवेदपि ॥
तस्यालसकमाचष्टे तृष्णोद्गारौ च यस्यतु ॥१८॥

भाषा-कुक्षि(कूख) अत्यन्त बंधीसी रहे यानी अफरा होजाय वा खिचावट सी रहै ग्लानि होय कराहना लगै अजीर्ण से नीचे की पवन चलने से रुककर कुक्षि में ऊपर दौड़े गुदाकी पवन तथा दस्त जिसके बिलकुल रुके और प्यास तथा डकार जिसको आवै जिसमें यह लक्षण होवें उसको अलसक कहतेहैं

विलम्बिका को कहते हैं ॥

दुष्टं तु भुक्तंकफमारुताभ्यां प्रवर्ततेनोर्ध्वमधश्च यस्य ।
विलम्बिकां तांभृशदुश्चिकित्स्या माचक्षतेशास्त्रविदःपुराणाः१९

भाषा—भोजन किया हुआ जिस मनुष्य का अन्न कफ वातोंसे दूषित हुआ न तो ऊपर को जाय न नीचेही को जाय यानी न वमन हो और न दस्तही हो उसको शास्त्र के वेत्ता प्राचीन वैद्य कठिनाईसे जिसकी चिकित्सा हो ऐसा बिलम्बिका रोग कहते हैं शंका क्योंजी बिलम्बिका और अलसक यह दोनों वात कफके प्रावल्य से ऊपर तथा नीचे की तरफ प्रवृत्त होते हैं इन दोनों में तो कुछ भेद नहीं फिर अलग २ क्यों कहे उसका उत्तर यह है कि अलसक मे दर्द आदिकी भारी तकलीफ होतीहै और बिलम्बिका में वह नहीं होती भेद इतनाहीहै इससे ही अलग वर्णन करना ठीक मालूम पड़ताहै।

अजीर्ण से प्रगट विसूचिका आदिको कहकर अजीर्णजन्य आमके और कार्य कहते हैं।

यत्रस्थमामं विरुजेत्तमेव देशं विशेषेण विकारजातैः ॥
दोषेण येनावततं शरीरं तल्लक्षणैरामसमुद्भवैश्च ॥१८

भाषा-जिस जगह पर आमकी स्थितिहै उस ठिकाने पर जिस दोषसे वह

स्थान घिराहुआ हो उसके लक्षणों से [पीडा, दाह, भारापन आदि] और आमजन्य विकार से [आमवातादिक की] विशेष पीडा होती है, इससे स्पष्टहुआ कि और स्थानों पर थोड़ी पीड़ा होती है और "यत्रस्थमामं" इस पदके लिखने से मालूम होताहै कि कुपित हुये वायुआदिकोंके तुल्य आमका कोई स्थान नहीं है ॥

अब विसूचिका और अलसक इनके असाध्य लक्षण।

यः श्यावदंतोष्ठनखोऽल्पसंज्ञो वम्यर्दितोऽभ्यंतरयातनेत्रः
क्षामस्वरःसर्वविमुक्तसंधिर्यायान्नरोऽसौ पुनरागमाय।१९।

भाषा-जो रोगी काले दांत, नख,तथा होंठ वालाहो [होशहवाश] और संज्ञा जाती रहे,वमनसे पीडित होवे और नेत्र भीतरको बैठ जांय,क्षीनास्वर हो तथा हाथ पैर आदि सब जगह की सन्धि ढीली पड जांय वह मनुष्य मरजाता है ॥

अजीर्ण के नाश होने पर उसके लक्षण।

उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः ॥
लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥२२॥

भाषा-शुद्ध डकार आवे, शरीर में उत्साह हो फुरसतसी दीखे यथा योग्य वेगोत्सर्ग यानी समय २ पर मलमूत्र का उतरना अच्छी हालत में जैसा आता हो वैसा आन लगे, शरीर हलका होय परन्तु कोठा अच्छी तरह हलका हो, भूख और प्यास लगे यह अन्न परिपक्व यानी अजीर्ण रोगके शांत होनें के लक्षण हैं ॥

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरि सुनु शा० सोहनलाल
विद्याभूषणविरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां
टीकायामजीर्णनिदानम् समाप्तम्

अथ कृमिरोगनिदानम्।

अजीर्ण रोगसे भी कृमि रोग होताहै इससे उसके
बाद कृमिनिदान कहते हैं ॥

कृमयस्तु द्विधा प्रोक्ता बाह्याऽभ्यंतरभेदतः ॥

बहिर्मलकफासृग्विड्जन्मभेदाच्चतुर्विधाः ॥१॥
नामतो विंशति विधाः ॥

भाषा—कृमि (कीड़ा) दो प्रकार कहे हैं एक बाहर के दूसरे भीतर के वे बाहरके मल (पसीना आदि) और कफ, रुधिर, विष्ठा इन कारणोंसे भिन्न२ उत्पन्न होनेसे चार तरह के होते हैं वहकृमिरोग नाम से वीस प्रकार के हैं ॥

बाह्यकृमियों के नाम कहते हैं।

बाह्यास्तत्र मलोद्भवाः ॥
तिलप्रमाणसंस्थानवर्णाः केशांबराश्रयाः ॥ २ ॥
बहुपादाश्चसूक्ष्माश्च यूकालिक्षाश्चनामतः ॥
द्विधा ते कोठपीडकाकंडूगंडान्प्रकुर्वते ॥ ३ ॥

भाषा— तहां बाहर के मलसे प्रगट हुए कृमि तिलके प्रमाण श्वेत और काले केश और वस्त्रमें रहनेवाले होतेहैं तथा बहुत पैर वाले और छोटी जूंआ लीख इन नामसे प्रसिद्ध दो प्रकारकेहैं। ये कृमि चकत्तरा, (फुन्सी) खुजली गांठ इत्यादि रोग प्रगट करती हैं ॥

कृमिरोग के कारण कहते हैं।

अजीर्णभोजीमधुराम्लनित्यो द्रवप्रियःपिष्टगुडोपभोक्ता ॥
व्यायामवर्जीच दिवाशयानो विरुद्धभुक्संलभते कृमींस्तु॥

भाषा-अजीर्णमें भोजन करने वाला प्रतिदिन मीठा खट्टा खाने वाला तथा पतला पदार्थ जिसको बहुत प्याराहो पिठीके सतुआ आदि तथा गुडके पदार्थ खानेवाला और भोजन करके परिश्रम न करे, दिनमें सोनेवाला विरुद्ध भोजन जैसे दूध मछली आदिको मिलाकर खाने वाला ऐसे पुरुषके कृमि रोग उत्पन्न होता हैं ॥

किस कारण से कौनसी कृमि पैदा होती है।

माषपिष्टान्नलवणगुडशाकैः पुरीषजाः ॥
मांसमत्स्यगुडक्षीरदधिशुक्तैः कफोद्भवाः ॥
विरुद्धाजीर्णशाकाद्यैः शोणितोत्था भवंति हि ॥ ५ ॥

भाषा-उड़द, पिट्ठी बनाकर सेका अन्न (कचोरी गूंझया आदि), नोनके

गुड़के तथा शाक आदि ऐसे पदार्थ खानेसे मलकी कृमि प्रगट होती है। मांस मच्छी, गुड, दूध, दही, अचार ऐसे पदार्थ खाने से कफकी कृमि पैदा होती है। विरुद्ध पदार्थ जैसे दूध मछली और आधा कच्चा आधा पक्का शाक जैसे हरा चनेका आदि ऐसे भोजन से रुधिरजन्य कृमि पैदा होती है ॥

पेट में जो कृमि पड जाती है उसके लक्षण ।

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः सदनं भ्रमः ॥ ॥
भक्तद्वेषोऽतिसारश्च संजातकृमिलक्षणम् ॥६ ॥

भाषा-ज्वर रहै, शरीर का रंग औरही तरह का भद्दासा हो जाय, शूल, हृदय दूखे, ढवाकी आने लगै घुमेर, भोजन अच्छा न लगने लगे, दस्तहोय ये लक्षण जिसके पेटमें गिंडोए आदि कृमि पड़ जाते हैं उसके होते हैं।

कफजन्य कृमिके लक्षण ।

कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पंतिसर्वतः ॥
पृथूब्रध्ननिभाः केचित्केचिद्गंडूपदोपमाः ॥ ७ ॥
रूढधान्यांकुराकारास्तनु दीर्घास्तथाणवः ॥
श्वेतास्ताम्रावभासाश्च नामतः सप्तधातु ते ॥ ८ ॥
अंत्रादा उदरावेष्टा हृदयादा महारुजः ॥
चुरवो दर्भकुसुमाः सुगंधास्ते च कुर्वते ॥ ९ ॥
हृल्लासमास्यस्रवणमविपाककमरोचकम् ॥
मूर्च्छा च्छर्दिज्वरानाहकार्श्यक्षवथुपीनसान् ॥ १० ॥

भाषा—कफसे आमाशयमें प्रगट हुई कृमि जब बढ जाती है तब चारों ओर घूमती है, को। वर्त के तुल्य कोई केचुआके आकार, कोई धान्यके अंकुर के समान होती है, कितनीही छोटे, बडे, चौडे होते हैं और कोई श्वेत, कोई तामेके समान होते हैं वे सात प्रकार के हैं उनके सात नाम हैं सो इस प्रकार १ अंत्राद, २ उदरावेष्ट, ३ हृदयाद, ४ महारुज, ५ चुरु, ६ दर्भकुसुम, और ७ सुगंध ये नाम वाले हैं यह कृमि ढवाकी मुख से पानी गिरना, अन्न का पाक न होना, अरुचि,मूर्छा, वमन ज्वर, अफरा, शरीर कालटना, छींक आना और पीनस इतने विकारें को पैदा करते हैं ॥

रुधिरकी कृमिके लक्षण ।

रक्तवाहिशिरास्थान रक्तजा जंतवोऽणवः ॥
अपादा वृत्तताम्राश्च सौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः ॥ ११
केशादा रोमविध्वंसा रोमद्वीपा उदुंबराः ॥
षट् ते कुष्ठैककर्माणः सहसौरममातरः ॥ १२ ॥

भाषा—रक्तकी बहनेवाली नाडियों के रुधिरसे प्रगट कृमि बारीक, पादरहित, गोल, तामेके रंगके होते हैं । कोई बहुत बारीक होतेहैं वे देखने से भी नहीं दीखते । ये कृमि छः प्रकार के हैं उनके नाम ये हैं। १ केशाद, २ रोमविध्वंस, ३ रोमद्वीप, ४ उदुंबर, सौरस और ६ मातर ये कुष्टको पैदा करते हैं ।

पक्वाशये पुरीषोत्था जायंतेऽधो विसर्पिणः ॥
प्रवृद्धाः स्युर्भवेयु श्च ते यदाऽमाशयोन्मुखाः ॥ १३ ॥
तदास्योद्गारानिःश्वासाविड्गंधानुविधायिनः ॥
पृथुवृत्ततनुस्थूला श्यावपीतसितासिताः ॥ १४ ॥
ते पंच नाम्ना कृमयः ककेरुकमकेरुकाः ॥
सौसुरादाः सशूलाख्या लेलिहा जनयंति च ॥ १५ ॥
विड्भेदशूलविष्टंभकार्श्यपारुष्यपाण्डुताः
रोमहर्षाग्निसदनंगुदकंडूर्विमार्गगाः ॥ १६ ॥

भाषा-पक्काशयमें विष्ठासे उत्पन्न कृमि गुदाके मार्ग होकर बाहरनिकलते हैं जब ये बढ़ जाते हैं तब आमाशयमें प्राप्त होकर डकार और श्वाससे विष्ठाकीसी वास आने लगतीहै । ये कृमि बड़े, छोटे, गोल, मोटे, रंगमें काले, पीले, सफेद, नीले होते हैं इनके पांच नाम हैं। १ ककेरुक, २ मकेरुक, ३ सौसुराद, ४सशूल, ५ लेलिह । जब ये कृमि मार्गको छोड़ अन्य मार्गमें जातेहैं दस्तका पतलाहोना, तथाफटाआना शूल अफरा देहमें कृशता तथा देहमेंकठारेता पाण्डुरोग, रोमांच, मंदाग्नि और गुदामें खुजली होना तब इतनेरोग प्रगट करेहैं।

इति श्री वैद्यराज झल्ला स्वामि सूरि सून शा० सोहनलाल
विद्याभूषण बिरचितायां माधव निदानस्य सुबोधिन्यां
टीकायां कृमिरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ पाण्डुरोगनिदानम् ।

पाण्डुरोगाः स्मृताः पंच वातापित्तकफैस्त्रयः ॥
चतुर्थः सन्निपातेन पंचमो भक्षणान्मृदः॥ १ ॥

भाषा—कृमि रोगसे भी पाण्डुरोगकी उत्पत्तिहै इस कारण कृमिरोग के अनन्तर पाण्डुरोगका निदान कहतेहैं । तहां प्रथम इसप्रकार पाण्डुरोगकी संरूपारूप सम्प्राप्ति जाननी वातसे, पित्तसे, कफसे, तीनप्रकारके सन्निपातसे चौथा और पांचवां माटीके खाने से । ऐसे पाण्डुरोग पांच प्रकारका कहाहै ।

पाण्डुरोगके कारण और सम्प्राप्ति का कहतेहैं ।

व्यायाममम्लंलवणानि मद्यंमृदांदिवास्वप्नमतीवतीक्ष्णम्॥
निषेवमाणस्य प्रदूष्य रक्तं दोषास्त्वचं पांडुरतां नयंति॥२॥

भाषा-ज्यादा कसरत, खट्टा पदार्थ भोजन, नोंनका पदार्थ खाना, बहुत मद्य पीना मिट्टी खाना, दिन में सोना, अत्यंत तीखा पदार्थ खाना, इनके, सेवन करनेवाले मनुष्यके रक्तको दूषित करके वात पित्त कफ जो दूषित दोष वह त्वचाको पीले रंगकी करते हैं यहां रक्त उपलक्षण मात्र जानना । रक्तके कहनेसे त्वचा, मांस इनको दूषित करते हैं ऐसा दृढ़बलका मतहै हारीतने रसको भी दूष्य कहा है ।

पाण्डरोगका पूर्वरूप कहतेहैं ।

त्वक्स्फोटनष्ठीवनगात्रसादमृद्भक्षणप्रेक्षणकूटशोथाः ॥
विण्मूत्रपीतत्वमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ३

भाषा-त्वचा का फटना, मुह से बारम्बार थूकना, अंगों का पीड़ायुक्त होना, माटी खाने की इच्छा, नेत्रों के पलक व नीचे सूजन, मल मूत्रों का पीला होना अन्नका परिपाक न होना ये लक्षण पाण्डुरोग के पूर्व रूप के हैं ॥

वात पाण्डुरोग के लक्षण ।

त्वङ्मूत्रनयनादीनां रूक्षकृष्णारुणाभता ॥
वातपाण्ड्वामये तोदकंपानाहभ्रमादयः ॥ ४ ॥

भाषा-वात जन्य पाण्डुरोग में त्वचा, मूत्र, नेत्र इनका रूखापन, काला

पन और ललाई हो तथा कंपकपी सुई छेदने कीसी पीड़ा अफरा, भ्रम, हों आदि पदसे भेद शूल आदि भी जानने ॥

पित्तजन्य पाण्डुरोग के लक्षण।

पीतमूत्रशकृन्नेत्रो दाहतृष्णाज्वरान्वितः ॥
भिन्नविट्कोऽतिपीताभः पित्तपाण्ड्वामयी नरः ॥ ३ ॥

भाषा-पित्तस उत्पन्न हुए पाण्डुरोग के ये लक्षण होते हैं। मूत्र मल और नेत्र पीलेहों, दाह, प्यास, ज्वर इनसे पीडित हो, मल फटा २ आवे और शरीर पर पीलापन छाजाय उस मनुष्य को पित्त जन्य पाण्डुरोगी जानना।

कफज पाण्डुरोग के लक्षण।

कफप्रसेकश्वयथुतन्द्रालस्यातिगौरवैः ॥
पाण्डुरोगी कफाच्छुक्लैस्त्वङ्मूत्रनयनाननैः ॥ ५ ॥

भाषा—मुह से कफ गिरै, सूजन, तन्द्रा (झपनी सी लगी रहै) आलस्य, शरीर का भारीहोना, त्वचा, मूत्र, नेत्र इनका सफेद होना इन लक्षणों से कफ से पाण्डुरोग हुआ पहिचानै ॥

सन्निपातजन्य पाण्डुरोग के असाध्य लक्षण।

ज्वरारोचकहृल्लासच्छर्दितृष्णाक्लमान्वितः ॥
पाण्डुरोगी त्रिभिर्दोषैस्त्याज्यः क्षीणो हतेन्द्रियः ॥ ७ ॥

भाषा—ज्वर, अरुचि, मिचलीसी होना, प्यास वमन इतने उपद्रवोंसे संयुक्त त्रिदोष से उत्पन्न पाण्डुरोग वाला क्षीण होगया हो इन्द्रिय ज्ञान जिसका नष्ट होगया हो वह रोगी वैद्यों को त्याग देना चहिये यानी उस की चिकित्सा असाध्य जानकर न करे ॥

मृत्तिका खाने से उत्पन्न हुए पाण्डुरोग के लक्षण।

मृत्तिकादनशीलस्य कुप्यत्यन्यतमोमलः ॥
कषाया मारुतं पित्तमूषरा मधुरा कफम् ॥ ८ ॥
कोपयेन्मृद्रसादींश्च रौक्ष्याद्भुक्तं च रूक्षयेत् ॥
पूरयत्यविपक्वैव स्रोतांसि निरुणद्ध्यपि ॥ ९ ॥

इन्द्रियाणां बलं हत्वा तेजोवीर्यौजसी तथा ॥
पाण्डुरोगं करोत्याशु बलवर्णाग्निनाशनम् ॥ १० ॥

भाषा-मिट्टी खाने के स्वभाव वाले मनुष्य के वातादि दोष कुपित हो, कषैली मिट्टी से वात कुपित होता है, खारी मिट्टी से पित्त और मीठीमिट्टी से कफ कुपित होता है । फिर वही मिट्टी पेट में जाकर रूखेपन से रसादिक धातुओं को रूखी करे और जो खाया हुआ अन्नादि है वह भी सूखा हो फिर वह मिट्टी पेट में बिना पके ही रसको रस बहने वाली नसों में पहुँचा कर रोके, इससे बहने वाली नसों का मार्ग जब रुक जाय तब इन्द्रियों का बल (अपने अपने विषय ग्रहण करनेकी शक्ति) नष्ट होय । शरीरकी कांति, तेज और ओज इनको क्षीण कर पाण्डुरोग को प्रगट करता हुआ बल, वर्ण और अग्नि इनका नाश करता है ।

पांडु रोग के विशेष लक्षण ।

शूनाक्षिकूटगंडभ्रूः शूलपान्नाभिमेहनः ॥
कृमिकोष्ठोऽतिसार्य्येत मलं चासृक्कफान्वितम् ॥ ११ ॥

भाषा-आंखें, कपोल, भृकुटी इनमें सूजन, पैर, नाभि और लिंग इनमें सूजन हो और कृमि युक्त कोठेवाले पुरुष के रक्त और कफ मिला हुआ मल उतरैं सब पाण्डुरोगोंमें जब पेटमें कृमि पड जांय हैं तब ये पूर्वोक्त लक्षण होते हैं यह जेज्जट आचार्य का मत है और कोई कहते हैं कि ये मृत्तिका के उत्पन्न हुए पाण्डुरोग के ही लक्षण हैं क्योंकि मृत्तिकाजन्य पाण्डुरोग के ही लक्षण कहीं दूसरी जगह नहीं लिखे परन्तु विदेहने तो ये मृत्तिकाजन्य पाण्डुरोग के लक्षण (१) स्पष्ट कहे हैं ॥

उसके असाध्य लक्षण कहते हैं ।

पण्डुरोगश्चिरोत्पन्नः खरीभूतो न सिद्ध्यति ॥
कालप्रकर्षाच्छूनांगो यो वा पीतानि पश्यति ॥
बद्धाल्पविट् सहरितं सकफं योऽतिसार्यते ॥१२॥
दीनः श्वेतातिदिग्धांगच्छर्दिमूर्च्छातृडर्दितः ॥

(१)मृद्भक्षणात् भवेत् पाण्डुस्तन्द्रालस्य निपीडितः । सश्वासकास शोषार्शः सदा रुचिसमन्वितः ॥ शूनपादाननकर : कृशाङ्गः कृशपावकः ॥ इति ॥

स नास्त्यमृक्क्षयाद्यस्तु पांडुः श्वेतत्वमाप्नुयात् ॥१३॥
पांडुदंतनखो यस्तु पांडुनेत्रश्च यो भवेत् ॥
पांडुसंघातदर्शी च पांडुरोगी विनश्यति ॥१४॥
अंतेषु शूनं परिहीणमध्यं म्लानं तथान्तेषु च मध्यशूनम्॥
गुदे च शेफस्यथ मुष्कयोश्च शूनं प्रताम्यंतमसंज्ञकल्पम॥
विवर्जयेत्पांडुकिनं यशोर्थी तथातिसारज्वरपीडितं च १५

भाषा-बहुत दिन से उत्पन्नहुआ पांडुरोग बहुत काल बीतने से ऐसी दशा में पुराना हो जाता है वह अच्छा नहीं होताहै अथवा सब देहमें सूजन आ गई उसे पदार्थ पीले दीखें वह भी असाध्य है अथवा जिस मनुष्य का बंधा हुआ होवैमल थोड़ी हरियाली लिये कफमिलाहुआ उतरै वह भी असाध्यहै । अथवा जो पुरुष दीन कहिये ग्लानियुक्त हो और जिस की देह का श्वेत वर्ण तथा चिपका सा चेप रहै और वमन, मूर्च्छा, प्यास इनसे पीड़ित होवे वह पांडुरोगी नष्ट होवै । तथा जो लोहू का क्षीण होनेसे पांडुरोग उत्पन्न होता है वह भी असाध्य है। जिसके पीले दांत, नख और नेत्र पीले हों जिसको सब पदार्थ पीले ही पीले दीखें वह रोगी मरता है । हाथ, पैर सिर इनमें सूजन हो और जिसका मध्य भाग दुर्बल हो, जिस रोगी के देहके मध्य में सूजन हो और हाथ, पग, शिर ये सूख जांय तथा गुदा, लिंग इनमें सूजन होय तथा मरे के समान हो गया होय ऐसे पांडुरोगी को यशकी इच्छा वाला वैद्य याग देवै । उसी प्रकार अतिसार और ज्वर इनसे पीड़ित रोगी को वैद्य त्याग देवै । परन्तु इस अंत के श्लोक में जो ' पांडुकिनं ' यह पाठ है इस जगह " पालकिनं " ऐसा पाठ कोई आचार्य मानते हैं सो ठीक हैं । क्योंकि ऐसा पढ़ने से पांडुरोग की अवस्था अर्थात् पांडुरोग का भेद जो पालकी है उसके भी लक्षण इस पाठ से आगये सो सुश्रुत में लिखा है ॥ सकामलापालकि पांडुरोगः कुम्भाह्वयो लाघवकोऽलसाख्यः ॥ इसही अभिप्राय से कोई अभियुक्त कहते हैं यथा ।

अंते शूनः कृशो मध्ये त्वन्यथा गुदेशेफसि ॥
शूनो ज्वरातिसाराद्यैर्मृतकल्पस्तु पालकी ॥

भाषा-जिस मनुष्य के हाथ पैरों पर सूजन आजाय और देह का मध्य

भाग कृश होगया हो अथवा गुदा लिंग पर सुजन हो और ज्वर अतिसार से मुर्दा के समान होगया हो यह लक्षण पालकी रोग वाले के हैं। पाण्डुरोग का भेद कामला है।

कामला (पीलिया) के लक्षण ।

पांडुरोगी तु योऽत्यर्थं पित्तलानि निषेवते ॥
तस्य पित्तमसृङ्मांसं दग्ध्वा रोगाय कल्पते ॥१६॥
हारिद्रनेत्रः स भृशं हारिद्रत्वङ्नखाननः ॥
रक्तपीतशकृन्मूत्रो भेकवर्णो हतेंद्रियः ॥१७॥
दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः ॥
कामला बहुपित्तैषा कोष्ठशाखाश्रया मता ॥

भाषा–जो पांडुरोग वाला अत्यन्य पित्त करने वाली वस्तुओं को सेवन करे उस मनुष्य का पित्त रक्त तथा मांस को जलाय दूषितकर कामला नाम रोग प्रगट करने को समर्थ होता है। उस मनुष्य के नत्र अत्यन्त पीले होंय त्वचा, नख और मुख ये पीले होंय, मल मूत्र लाल पीले होंय, वह मनुष्य मेंड़क के तुल्य मटिया रंगसा हो इन्द्रियों की शक्ति नष्ट होगयी हो, दाह अन्न न पचै, दुबर्लता, अंगग्लानि, अन्न से अरुचि, इन से पीडित हो जिसमें पित्त बहुत प्रबल हो ऐसी यह कामला एक कोष्ठाश्रय लाली और दूसरी शाखा (रक्तादि धातु) के आश्रय वाली कही है। कहीं कामला इन दोनों से अतिरिक्त स्वतंत्र भी होता है जैसे राजयक्ष्मा स्वतंत्र भी है परन्तु उपेक्षित कास आदि रोगों में भी होता है।

अब कुम्भकामला के लक्षण कहते हैं ।

कालांतरात्खरीभूता कृच्छ्रात्स्यात्कुंभकामला ॥१८॥

भाषा—बहुत काल से पुरानी पड़गयी जो कामला उसी का नाम कुम्भकामला है सो कृच्छ्रसाध्य होती है। कुम्भ कहिये कोष्ठ उस में प्राप्त जो कामला अर्थात् कोष्ठाश्रय कामला उसका नाम कुम्भकामला है।

कामला के असाध्य लक्षण कहते हैं।

कृष्णपीतशकृन्मूत्रो भृशं शूनश्च मानवः ॥
सरक्ताक्षिमुखच्छर्दिविंण्मूत्रो यश्च ताम्यति ॥ १९ ॥

भाषा-जिस मनुष्यका मल मूत्र काला पीला होगया हो और शरीर पर सूजन अत्यन्त हो और नेत्र, मुख, वमन, मल और मूत्र ये अत्यन्त लाल होंय, जो मोहसे में हो कामलावाला रोगी बचता नहीं ।

दाहारुचितृडानाहतंद्रामोहसमान्वितः ॥
नष्टाग्निसंज्ञः क्षिप्रं च कामलावान्विपद्यते। २० ॥

भाषा-दाह, अरुचि, प्यास, अफरा, तन्द्रा मोह इन लक्षणसेयुक्त तथा मन्दाग्नि और होशहवाशजिसका नरहै वह कामलावालारोगी तत्कालमरजाताहै। दाह इत्यादि से मरता है इत्यन्त से और भी असाध्य लक्षण जाने यह जेज्जटा चार्यका मत है ।

कुम्भकामला के आसध्य लक्षण ।

छर्द्यरोचकहृल्लासज्वरक्लमनिपीडितः ।
नश्यति श्वासकासार्तो विड्भेदी कुम्भकामली ॥ २१ ॥

भाषा-वमन, अरुचि, मिचली, ज्वर, खेद इनसे पीडित हो तथा श्वास खांसी इनसे दुखी हो और अतिसारयुक्त खराब दस्त आता हो ऐसा कुम्भ कामलावाला रोगी मरजाता है ।

पांडुरोगसेही हलीमक रोग प्रकट होता है उसको कहते हैं ।

यदा तु पांडोर्वर्णः स्याद्धरितः श्यावपीतकः ॥
बलोत्साहक्षयस्तन्द्रामंदाग्नित्वं मृदुज्वरः ॥ २४ ॥
स्त्रीष्वहर्षोऽगमर्दश्च दाहस्तृष्णारुचिर्भ्रमः ॥
हलीमकं तदा तस्य विद्यादनिलपित्ततः ॥ २५ ॥

भाषा—जिस समय पांडुरोगीका रंग हरा, काला, पीला हो और बल तथा उत्साह इनका नाश हो, तन्द्रा, मन्दाग्नि, मंहीन ज्वर हो, स्त्रीभोगकी इच्छाका नाश हो, अंगोंका टूटना, दाह, तृष्णा अन्नमें अरुचि और भ्रम ये उपद्रव हों तो बात पित्त से उत्पन्न हुए हलीमक रोगकोउसकेप्रगटहुआजाने

इतिश्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसूनु शा० सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां पाण्डरोग कामला कुम्भकामला हलीमकनिदानं समाप्तम्

—)*—*:(—

अथ रक्तपित्तनिदानम् ।

पांडुरोग के समान रक्तपित्त भी पित्तसे होताहै इससे अब रक्तपित्तनिदान का वर्णन करते हैं ।

घर्मव्यायामशोकाध्वव्यवायैरतिसेवितैः ॥
तीक्ष्णोष्णक्षारलवणैरम्लैःकटुभिरेव च ॥ १ ॥
पित्तं विदग्धं स्वगुणैर्विदहत्याशु शोणितम् ॥
ततः प्रवर्तते रक्तमूर्ध्वं चाधो द्विधापि वा ॥ २ ॥
ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्रयोनिगुदैरधः ॥
कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्त्तते ॥ ३

भाषा—बहुत धूप सेवन बहुत कसरत करने से शोकसे, बहुत, मार्ग च, लनेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे, तीखी कडुई आदिवस्तु खानेसे अग्निके तापनेसे, खारे पदार्थ, लवण के पदार्थ, खट्टी चिरपिरी ऐसी वस्तुके खानेसे कुपित हुआ जो पित्त वह अपने तीक्ष्ण द्रवप्रति प्रभृति गुणोंसे रुधिर को बिगाड़दे तब रुधिर ऊपरके अथवा नीचेके अथवा दोनों मार्ग होकर प्रवृत्त होकर निकल ने लगे । ऊपरके मार्ग नाक, कान, नेत्र, मुख इनके द्वारा निकले और अ. धोमार्ग कहिये लिंग, गुदा और योनि इनके मार्ग हो निकले और जब रक्त अत्यन्त कुपित हो तब सब मार्गोंसे निकलने लगै ।

रक्तपित्त का पूर्वरूप कहते हैं ।

सदनं शीतकामित्वं कण्ठधूमायनं वमिः ॥
लोहगंधिश्च निश्वासो भवत्यस्मिन्भविष्यति ॥ ४ ॥

भाषा-ग्लानि, शीतकी इच्छा, कंठमें धूआं सा भरासा रहै, वमन और तपे लोहे कीसी वास आवै और जल्दी २ श्वास ले जिस मनुष्य में यह लक्षणमिलते होंउसके रक्त पित्तका पूर्वरूप जानै

कफज रक्तपित्तके लक्षण ।

सांद्रं सपांडु सस्नेहं पिच्छिलं च कफान्वितम् ॥

भाषा—सघन, कुछ२ पीला और कुछ चिकना तथा चमकदार गाढ़ा ऐसा रक्तपित्त कफ दोषसे युक्त जानै ।

वातजन्य रक्तपित्त के लक्षण।

श्यामवारुणं सफेनं च तनु रूक्षं च वातिकम् ॥ ५ ॥

भाषा-कालावर्ण, लालवर्ण, कुछ झागयुक्त, पतला थोड़ा और रूखा ऐसा रक्तपित्त वातसे जाने।

पित्तजन्य रक्तपित्त के लक्षण कहते हैं।

रक्तपित्त कषायाभं कृष्णं गोमूत्रसंनिभम् ॥
मेचकागारधूमाभमंजनाभं च पैत्तिकम् ॥ ६ ॥

भाषा-जो रक्तपित्त वटपटोल आदि के काढ़ेके रंगके समानहो, काला गौ के मूत्रके समान हो अथवा रसोई घरके धूआं के समान हो सुर्माके समान होय ये पित्तके रक्तपित्त के लक्षण हैं। शंका-सबही रक्तपित्त जब पित्त दूषित होताहै तब होतेहैं फिर पैत्तिक रक्तपित्त क्या? उत्तर-ठीकहै पर जब अपने स्थानमें स्थित पित्त रक्तपित्त पैदा करता है वहां के लिये ही पैत्तिक जानों अन्यत्रनहीं।

द्विदोषज रक्तपित्त के लक्षण कहते हैं।

संसृष्टलिंगं संसर्गात्त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् ॥
ऊर्ध्वगं कफसंसृष्टमधोगं मारुतान्वितम् ॥
द्विमार्गंकफवाताभ्यामुभाभ्यामनुवर्त्तते ॥ ७ ॥

भाषा-दो दोषों के मिलने से जो रक्तपित्त होय है उसमें दोनों दोषोंके लक्षण मिलनेसे द्विदोषज जानना और जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको सन्निपातका रक्तपित्त जानना। ऊपरके मार्गसे जो आता है वह कफका और नीचे के मार्ग होकर आता है वह वातका और दोनों मार्गों से जो रक्तपित्त निकले सो वात और पित्त इन दोषोंसे प्रगट हुआ जानना चाहिये।

ऊर्ध्वगादिकों का साध्यासाध्य विचार।

ऊर्ध्वं साध्यमधो याप्यमसाध्यं युगपद्गतम् ॥ ८ ॥

भाषा-ऊपरके मार्गसे रुधिर निकले वह साध्य है क्योंकि कफसे प्रगट है सो कफ से रक्तपित्त में क्वाथ तीख रस कफ पित्तके हरणकर्त्ता होतेहैं और नीचेके मार्गसे जिसमें रुधिर गिरे सो याप्य (यत्नसाध्य) है। इसका कारण यह है कि पित्त हरणमें विरेचक मुख्य है और इसपर वात पित्त शमन करने वाला मधुर रस प्रधान है। वमन देने से विरुद्धमार्गीय होता है अर्थात् वेग

मात्रका अवरोध कहै परन्तु पित्तका हरण करनेवाला नहींहै और दोनों मार्गों से गिरनेवाला रक्तपित्त असाध्यहै, कारण इसपर विरुद्ध चिकित्सा करनी पड़तीहै

साध्य होनेके कारण कहते हैं।

एकमार्गं बलवतो नातिवेगं नवोत्थितम्॥

रक्तपित्तं सुखे काले साध्यं स्यान्निरुपद्रवम्॥ ९॥

भाषा-बलवान् पुरुषके एक मार्ग अर्थात् ऊपरके मार्गसे जाता होय, अतिसार नहीं होवै, नवीन प्रगट हुआ होय और हेमन्त शिशिर कालमें प्रगट हुआ हो और दुर्बलता आदि उपद्रवों सेही नहीं ऐसा रक्तपित्त साध्य होताहै।

दोष भेदसे साध्यासाध्य लक्षण।

एकदोषानुगं साध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते॥

त्रिदोषजमसाध्यं स्यान्मन्दाग्नेरतिवेगवत्॥ १०॥

व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यानश्नतश्च यत्॥ ११॥

भाषा-एक दोषका रक्तपित्त साध्य है, द्विदोषका याप्य (यत्नसाध्य) है और तीनों दोषका असाध्य है। मन्दाग्नि रोगसे क्षीण देहवालेका, बूढ़े मनुष्यका और जिसका आहार थक गया होय ऐसे मनुष्यका अत्यंत वेग से हुआ रक्तपित्त असाध्य होता है।

रक्तपित्त के उपद्रव।

दौर्बल्यश्वासकासज्वरवमथुमदाःपांडुता दाहमूर्छाः॥

भुक्ते घोरो विदाहस्त्वधृतिरपि सदा हृद्यतुल्या च पीडा॥

तृष्णा कोष्ठस्य भेदः शिरसि च तपनं पूतिनिष्ठीवनत्वं॥

भक्तद्वेषाविपाकौ विकृतिरपि भवेद्रक्तपित्तोपसर्गाः॥ १२

भाषा—दुर्बलता, श्वास, खांसी, ज्वर, वमन, नशीली चीज़ खाने जैसी अवस्था हो शरीरका पीलापन दाह मूर्च्छा, अन्नके खाने पर अत्यन्त दाह होय, धैर्यत्याग हरवेर हृदयमें भारी पीड़ा, प्यास, कोष्ठभेद अर्थात् मल पतला होय, मस्तकमें पीड़ा, दुर्गंधयुक्त थूकना, अन्नमें अरुचि, आहारका परिपाक न होना यह रक्तपित्तके उपद्रवहैं और इसीप्रकार उस रक्तपित्तकी विकृतिभी भी होय है सो आगे "मांसप्रक्षालनाभं" इत्यादि श्लोकों से कहैंगे।

असाध्य लक्षण कहते हैं ।

मांसप्रक्षालनाभं क्वथितमिव च यत्कर्दमांभोनिभं वा ॥
मेदःपूयास्रकल्पं यकृदिव यदि वा पक्वजम्बूफलाभम् ॥
यत्कृष्णं यच्च नीलं भृशमतिकुणपं यत्र चोक्ता विकारा॥
स्तद्वर्ज्यं रक्तपित्तं सुरपतिधनुषा यच्च तुल्यं विभाति ॥१३॥

भाषा-जो रक्तपित्त मांसके धोये हुए जलके समान हो अथवा क्वाथ के समान अथवा कीचके समान वासडे जलके समान, उसी प्रकार मेद राध रुधिर इनके समान, अथवा कलेजे के टुकडेके समान अथवा पकी जामन के समान किंवा काले रंग किंवा नील अथवा जिसमें मुर्दे कीसी गंधआवे और जिसमें पूर्वोक्त कहे श्वासकासादि विकार युक्त हों ऐसा रक्तपित्त वर्जित है और जो रक्तपित्त इन्द्रधनुषके वर्णसमान रंगका हो सोभी त्याज्य है अर्थात् ऐसे रक्तपित्त वैद्य को छोड़ देना चाहिये ॥

दूसरे असाध्य लक्षण ।

येन चोपहतो रक्तं रक्तपित्तेन मानवः ॥
पश्येद्दृश्यं वियच्चापि तच्चासाध्यमसंशयम् ॥१४॥

भाषा—जिस रक्तपित्तसे मनुष्य पीड़ित होगया होय वह दृश्य कहिये घटपटादि और अदृश्य कहिये आकाश इनको रक्तवर्णका देखे वह रोगी निःसन्देह असाध्य जानना ॥

दूसरे असाध्य लक्षण ।

लोहितं छर्दयेद्यस्तु बहुशो लोहितेक्षणः ॥
लोहितोद्गारदर्शी च म्रियते रक्तपैत्तिकः ॥१५॥

भाषा-जो वारंवार रुधिरका वमन करै और जिसके लाल नेत्र होंय तथा डकार में भी लोहूसा आता दीखै वह रक्तपित्तवाला रोगी मर जाता है ॥

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरि सूनु शा० सोहनलाल
विद्याभूषणविरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां
रक्तपित्तनिदानम् समाप्तम्

राजयक्ष्मा के रूपों के वर्णन में "पित्ता द्रक्तस्यचागमः ऐसा पाठ लिखा है इससे रक्त पित्त के अनन्तर यक्ष्माका निदान वर्णन करते हैं ।

अथराजयक्ष्मक्षतक्षीणनिदानम् ।

वेगरोधात् क्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात् ॥
त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतुचतुष्टयात् ॥

भाषा—चिकित्सा के उपयोगी चार प्रकार के विप्रकृष्ट कारण कहते हैं वात मूत्र पुरीष के वेगके रोकने से यहांपर इन वेगों का रोकनाही समझना चाहिये किन्तु वेग विधारणीय अध्याय में जो कहे जृम्भा आदि वेगों का रोकना यह न समझे जैसा चरक में "ह्रीमत्वाद्वा घृणित्वाद्वा भयाद्वा वेग मागतम् ॥ वात मूत्रपुरीषाणां निगृह्णातियदानरः" इत्यादि लिखनेसे जान पड़ता है जिससे क्षीण हो उसका नाम क्षय है उससे क्षय के कहने से यहां अत्यन्त मैथुन लंघन ईर्षा (डाह) आदि धातुओंके क्षयके हेतु जानने चाहिये साहस (बलवान से लड़ने से उरक्षतादि होते हैं विषम भोजन करने से सुश्रुत में कहे हुए जो बारह प्रकार के भोजन विचार के विधान उनसे विपरीत उपयोग करने से (क्योंकि विपरीत उपयोग शीघ्रही स्रोतों का अवरोध करता है) जैसा कि चरक में " विविधान्यन्नपानानि वैषम्येण समश्नताम्॥जनयत्यामयान् घोरान विषमा मारुतादयः॥रुद्ध्वा स्रोतांसि धातूनां वैषम्यपाद्विषमंगताः ॥ दोषा रोगाय कल्पन्ते पुष्यन्ति न च धातवः ॥" इसप्रकार लिखाहै आगे मूल में कहाहै कि " त्रिदोषो जायते यक्ष्मा " सो तीनों दोष इस यक्ष्मामें मिले रहते हैं और त्रिदोष सेही यह उत्पन्न होताहै कारण भेदसे अनेक विध नहीं समझना जैसा सुश्रुत ने "एक एव मतःशोषः सन्निपातात्मकोह्यतः ॥ उद्रेकात्तत्र लिंगानि दोषाणां निपतन्तिहि " लिखा है यहां कोई शंका करै कि क्योंजी वेगरोकने आदि जो कर्म हैं वह तो वायुको कुपित करते हैं फिर उससे उत्पन्न हुआ यक्ष्मा कैसे त्रिदोषज कहलाता है वह तो अलग २ दोषोंसे कहना त्रिदोष नहीं, तब उत्तर देते हैं इस विषय में वायुके कोपसे ही अग्नि के दूषित होनेके कारण स कफ पित्त का भी प्रकोप होता है आगे जो मूल में कहाहै कि यक्ष्मा रोग इन चार कारणों से होताहै इससे असंख्य भी कारण इन चार बातों के अन्तर्गत होसके हैं इसको कोई

शोष कोई क्षय कोई राजयक्ष्मा ऐसै अनेक नाम लेतेहैं इसका सुश्रुत ने निरूपण कियाहै यथा-संशोषणा द्रसादीनां शोष इत्यभिधीयते ॥ क्रियाक्षयकरत्वाच्च क्षय इत्युच्यते बुधैः ॥ राज्ञश्चन्द्रमसो यस्माद भूदेष किलामयः। तस्मात्तं राजयक्ष्मेति केचिदाहुर्मनीषिणः ॥ अर्थ—रस रुधिर आदि को सुखाने वाला है इसको शोष कहते हैं सब क्रियाओं को क्षीण करता है इससे यह पण्डितों द्वारा क्षय ऐसा कहा जाता है, राजा चन्द्रमा को जो यह पापी रोग पैदा हुआ इससे कोई बुद्धिमान् इसको राजयक्ष्मा कहते हैं।

केवल धातुओं के क्षय मात्र से केवल राजयक्ष्मा होता है ऐसा नहीं समझी बल्कि रसादि बहने वाले स्रोतों के रुकने से भी होते हैं इसको दिखाने के लिये इस रोग की बिशिष्ट सम्प्राप्ति को कहते हैं।

कफ प्रधानै र्दोषैस्तु रुद्धेषु रसवर्त्मसु ॥
अति व्यवायिनो वापि क्षीणे रेतस्यनन्तराः ॥
क्षीयन्ते धातवस्सर्वेंततः शुष्यतिमानवः ॥ २ ॥

भाषा—कफ जिनमें प्रधान ऐसे जो वायु आदि दोष उनसे रस जिसमें बहै ऐसी जो नाड़ी उनके जो मार्ग उनके रुकने से अथवा अत्यन्त मैथुन करने वाले पुरुष के भी वीर्य के क्षीण होनेपर उसके बाद समीप में स्थित सब धातु क्षीण होते हैं (जैसे शुक्र के क्षीण होनेपर मज्जाक्षीण होताहै और मज्जाके क्षीण होनेपर हड्डी क्षीण होती है इसही प्रकार सबको जानलेवे) तब मनुष्य सूखता है यहां कोई शंका करै कि वीर्य तो और छः धातुओं का उत्तरोत्तर कार्य समझा गया है और कार्य के नाश होने पर तो कारण नहीं नष्ट होता है हां कारण यदि नष्ट होवै तब तो कार्य नष्ट हो जाता है उलटी बात यह कैसे? तब उत्तर देते हैं कि शुक्र के नाश से वायु कुपित होता है जैसा कहा है "वायोर्धातुक्षयात् कोपो मार्गस्या वरणेन च" वह ही कुपित हुआ वायु सान्निध्यसे मज्जा को सुखाता है इसही प्रकार पूर्व पूर्वकी धातु सूखने लगती है जैसे अग्नि में तपाये हुए गोला के पहिले पासकी गीली जमीन सूखती हैं फिर धीरे २ उसके दूरकी उसके बाद उससे दूरकी सूखती यह ही दृष्टान्त इस विषय में समझना चाहिये ऐसे ही रस संचार पक्ष में सुश्रुत का " पूर्वपूर्वेति बृद्धत्वाद्वर्धयेद्धिपरंपरम्। तस्मादति प्रवृद्धानां धातूनां ह्रासनं हितम् ॥ यह वचन समझना चाहिये ॥

राजयक्ष्मा का पूर्व रूप कहते हैं ।

श्वासांगमर्दकफसंस्रवतालु शोषवम्याग्निसाद मदपीनस कास निद्राः ॥ शोषे भविष्यति भवन्ति सचापि जन्तुः शुक्ले क्षणो भवति मांस परोरिरंसुः ॥ ३ ॥ स्वप्नेषु काक शुकशल्लकिनीलकण्ठ गृध्रास्तथैव कपयः कृकलास काश्च ॥ तंवाहयन्ति स नदी विंजलाश्च पश्येच्छुष्कां-स्तरून् पवनधूमदवार्दितांश्च ॥ ४ ॥

भाषा-श्वास, अंगड़ाई, कफका गिरना, तालु सूखना, वमन अग्निमान्द्य उन्माद, पीनस, खांसी, नीद यह चिह्न होने वाले शेष रोग के पूर्व होते हैं और वह जीव सफेद नेत्रवाला होताहै अर्थात् उसकी सफेद आंख पड़जातीहै और मांस में रुचि वाला तथा रमण करने की इच्छा वाला होता है स्वप्नों में काग तोता सेह नीलकण्ठ गिद्ध तथा बन्दर और करकैंटा यह उसको लेजाते दीखें और और वह सूखी हुई नदियों कोदेखै सुखे हुए वृक्षोंको पवन धुआं दौकी अग्नि इन सें पीड़ित देखै तथा चकार जो इस श्लोक में पड़ाहै उससे तृण केशादिकोंका गिरना भी देखै जैसा चरकमें "पूर्वरूपं प्रतिश्याथो दौः शल्यं दोषदर्शनम् ॥ अदोषेष्वपि भावेषु काये बीभत्सदर्शनम् ॥ घृणित्वमश्नतश्चापि बलमांसपरिक्षयः ॥ स्त्रीमद्यमांस प्रियता प्रियताचाव-गुण्ठते ॥ यक्ष्मिणां घुणकेशानां तृणानां पतनानिच ॥ प्रायोऽन्नपाने केशानां नखानांचाति वर्धनम् ॥ पतत्रिभिःपतंगैश्च श्वापदैश्चाभिधर्षणम् ॥ इस प्रकार लिखा है यह राजयक्ष्मा के पूर्व रूप जाने ॥

त्रिरूप सम्पन्न क्षय के लक्षण ।

अंसपार्श्वाभितापश्च संतापः करपादयोः ॥
ज्वरः सर्वांगश्चेति लक्षणं राजयक्ष्मणः ॥ ५ ॥

भाषा-अंस [कन्धा] और पांसु इनमें पीड़ा, हाथ पांव में दाह और सर्वांग व्यापी ज्वर यह राजयक्ष्मा के लक्षण हैं, इसही को भोजने " कासो ज्वरो रक्तपित्तं त्रिरूपं राजयक्ष्माणि" इस प्रकार त्रिरूप सम्पति कहा है और आचार्योंका मत है कि राजयक्ष्मामें जो ज्वर होताहै उसके ही यह लक्षण

हैं त्रिरूप सम्पत्ति कुछ नहीं । जेज्जटाचार्य कहते हैं कि नहीं यह त्रिरूप स- सम्पत्ति ही है परन्तु निष्कर्ष यह है कि यह त्रिरूप सम्पत्ति ही मानना अ- च्छा मालूम होता है ।

त्रिदोषजन्य यक्षमा के एकादश रूप विभाग व्याधियों के प्रभाव होते हैं सन्निपातज्वरकी तुल्य सब दोषों सेही एक जगह सब नहीं होते हैं ।

स्वरभेदोऽनिलाच्छूलं संकोच श्चांसपार्श्वयोः ॥
ज्वरोदाहोऽतिसारश्चपित्ताद्रक्तस्य चागमः ॥ ॥ ६
शिरसः परिपूर्णत्वमभक्तच्छन्दएवच ॥
कासः कण्ठस्य चोध्द्वंसो विज्ञेयः कफकोपतः ॥ ७ ॥

भाषा-वायु के आधिक्यसे स्वर भेद. दर्द, कंधा और पांओं का सि- कुड़नां, (खिचना), होता है पित्तके प्रभाव से ज्वर, दाह. अतिसार, तथा मुखसे लोहू आता है कफके कोपसे शिरका परिपूर्ण होना (सिरमें गूदड़सा ठुसारहे), खाने में इच्छा न होय, खांसी, कण्ठ फटतासा रहै, यह चिह्न होते हैं यह सब मिलकर ग्यारह हुए हैं ।

असाध्य लक्षण कहते हैं ।

एकादशभिरेभिर्वा षड्भिर्वापि समान्वितम् ॥
कासातीसारपार्श्वार्तिस्वरभेदा रुचिज्वरैः ॥८॥
त्रिभिर्वापीडितं लिङ्गैःकासश्वासासृगामयैः ॥
जह्याच्छोषार्दितं जन्तुमिच्छन्सुविमलंयशः ॥९॥
सर्वैरर्द्धैस्त्रिभिर्वापि लिङ्गै मांसबलक्षये ॥
युक्तोवर्ज्यश्चिकित्स्यस्तु सर्वरूपोऽप्यतोऽन्यथा ॥१०॥
महाशनं क्षीयमाण मतिसार निपीडितम् ॥
शूनमुष्कोदरं चैव यक्ष्मिणं परिवर्जयेत् ॥११॥
शुक्लाक्षमन्नद्वेष्टारमूर्ध्वश्वासनिपीडितम् ॥
कृच्छ्रेण वह मेहन्तं यक्ष्मा हन्तीह मानवम् ॥ १२ ॥

भाषा—ऊपर जो स्वरभेदसे लेकर कण्ठध्वंसपर्यंत जो ग्यारह कहे उनसे और छह कास. अति सार. पांसुओं में दर्द, स्वरभेद, अरुचि.औरज्वर इनसे इन छओंके कहनेकामतलब यह है कि सुश्रुतने (१) छह रूपही लिखे हैं और तन्त्रा म भी कहीं छह (२) लिखेहैं उनकी छाया लेकरही माधवकरने यहलिखेहैं खांसी श्वास मुखसे रुधिर आना इन तीन चिह्नों से पीडित जो शोष रोग स पीड़ित मनुष्यको जो वैद्य अपना विमल यश चाहे तौ छोड़देवे सब नाम ग्यारहों चिन्ह आधे नाम छह और तीन इन लक्षणों से युक्त मांस बल (३) के क्षय होनेपर रोगी छोड़ देना चाहिये इनसे भिन्न अर्थात् बल मांसक्षयसे रहित जो हो वह चिकित्सा करने योग्य है बहुत खाने वाला क्षीण देहवाला अतिसार से पीड़ित हो अण्डकोष व उदरपर जिसके सूजन हो इस प्रकार के यक्ष्मा वाले को त्याग देय सफेद जिसकी आंख पड़गयी होंय अन्न में जिसकी अरुचि हो ऊपर को लम्बे२ श्वास लेनेवाला कष्ट करनेवाला ऐसे मनुष्य को राजयक्ष्मा नाशकर देता है ॥

किस रोगीकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥

ज्वरानुबंधरहितं बलवन्तं क्रिया सहम् ॥
उपक्रमे दात्मवन्तं दीप्ताग्निमकृशंनरम् ॥ १३ ॥

भाषा-ज्वरका सम्बन्ध जिस रोगी को न होवे बलवान हो औषध प्रभृति उपचारों का सहन करने वाला इन्द्रियां जिसकी बलवती हों और जठराग्नि जिसकी प्रज्वलित होय कृश न होय ऐसे रोगीकी चिकित्सा करै अकृश इस पाठके रखने का प्रयोजन यह है कि पुष्ट शरीर वाला भी इस रोगसे बचना मुश्किल है ऐसा कहकर ही चिकित्सा करै जैसा और जगह लिखा है परं दिनसहस्रंतु यदि जीवति मानवः॥ सुभिषग्भिरुपक्रान्त स्तरुणःशोष पीड़ितः॥ अर्थ इसका यह है कि शोष रोगसे पीडित तरुण मनुष्य अच्छे वैद्यों द्वारा चिकित्सा यदि किया गया हो तौ ज्यादा से ज्यादे हज़ार दिन तक जीता है इसप्रकार जानना ॥

---

(१) भक्त द्वेषो ज्वरः कासः श्वासः शोणित दर्शनम् ॥ स्वरभेद श्चजायेत षड्रूपं राजयक्ष्मणि ॥

(२) कासातिसारपार्श्वार्तिस्वरभेदारुचिज्वरैः

(३) तथा च चरकः वात व्याधिरपस्मारी कुष्ठी ब्रध्नी चिरज्वरी ॥ गुल्मी च मधुमेही च राजयक्ष्मी चयोनरःअचिकित्स्या भवन्त्येते बलमांसपरिक्षयात् ॥ स्वल्पेष्वपि विकारेषु भिषगेतान् विवर्जयेत् ॥

व्यवाय आदिसे उत्पन्न हुए धातुशोषमात्रमें राजयक्ष्माका संक्रम वर्णन करतेहैं।

व्यवायशोकवार्धक्यव्यायामाध्वप्रशोषितान् ॥
व्रणोरःक्षतसंज्ञौच शोषिणौलक्षणैःशृणु ॥ १४ ॥

भाषा-अत्यन्तमैथुनकरनेसेजिसको शोषरोगहुआहो वहव्यवायशोषी शोक शोषीवार्धक्यशोषी व्यायामशोषी अध्वशोषी व्रणशोषीउरःक्षतशोषी इनके लक्षण आगे कहता हूं सुन यह गुरूका शिष्यके प्रति उपदेश मालूम होताहै॥

अब व्यवायशोषी के लक्षण कहते हैं।

व्यवायशोषीशुक्रस्यक्षयालिंगैरुपद्रुतः ॥
पांडुदेहो यथापूर्वं क्षीयंते चास्यधातवः ॥ १६ ॥

भाषा- व्यवायशोषी (अत्यन्त मैथुनसे उत्पन्न हुए शोष वाला) शुक्र (वीर्य) के क्षयके चिह्नों से तथा शुक्रके क्षयहोने पर लिंग और अण्डकोशों में तकलीफ हो और मैथुन करनें में शक्ति न रहे और शक्ति भी होवै तो बहुत काल में और मैथुन करै तो बहुत कालमें वीर्य आवै या वीर्य की जगह रक्त आवै यहजो सुश्रुत में कहे लक्षण वह होवे तथा दुखी होय शरीर का रंग पीला पड़जाय और यथा पूर्व शुक्रसे मज्जा मज्जासे अस्थि इसप्रकार उसके धातु क्षीण होते हैं यह व्यवाय शोषी के लक्षण जानै ॥

शोकशोषी के लक्षण कहते हैं।

प्रध्यानशीलः स्रस्तांगः शोकशोष्यपि तादृशः ॥

भाषा-शोक शोषी यानी शोक करनेसे जिसको क्षय रोग हुआ होवै वह चिन्ता में मग्न रहै अंग शिथिल होजांय तादृशः ऐसा कहने से व्यवाय शोषी के तुल्य होता है यहां पर ऐसे समझना चाहिये कि शुक्रके क्षय होने वाले लक्षण को छोड़कर और शुक्र शोषके सब लक्षण मिलें जैसा सुश्रुतमें लिखा है " बिना शुक्रक्षयकृतैः क्षयलिंगैरुपद्रुतः " इससे स्पष्ट है ॥

वार्धक्य शोषी के लक्षण कहते हैं ॥

जराशोषी कृशोमंदवीर्यबुद्धिबलेन्द्रियः ॥१६॥
कम्पनोऽरुचिमान् भिन्नकांस्यपात्र हतस्वरः ॥
ष्ठीवति श्लेष्मणा हीनं गौरवाराति पीडितः ॥१७॥

संप्रस्रुतास्यनासाक्षिः शुष्करूक्षमलच्छविः ॥

भाषा-जरा नाम बुढ़ापे से जिसको शोष रोग होवे वह मनुष्य कृशहो वीर्य बुद्धि बल इन्द्रिय जिसकी शिथिल होजाय कांपै अरुचि वाला फूटे कांसीके बरतन में टंकोरा से जैसा शब्द निकले ऐसे स्वरवालाहो थूक में कफ जिसके न आवे अर्थात् कफ को निकालने का यत्न करने पर भी कफ उसके न निकले शरीर में भारापन हो किसी बातमें इच्छा नहो मुँह नासिका आंख इनमें से पानी झड़ता रहै मल सूखजाय देहकी कान्ति रूखी सी होवे

अध्वशोषी के लक्षण कहते हैं ॥

अध्वशोषीच स्रस्ताङ्गः संभृष्टपरुषच्छविः ॥ १७ ॥
प्रसुप्तगात्रावयवः शुष्क क्लोमगलाननः ॥ १८ ॥

भाषा-बहुत मार्ग चलने से जो शोष रोग वाला उसके अंग शिथिल हो जांय और देहकी कान्ति भुनी हुई तथा कड़ीसी होय सब देह में सन्नाटासा रहै प्यास का स्थान जो क्लोम वह और गला तथा मुख सूखने लगे यह लक्षण अध्व शोषी के जाने ।

व्यायाम शोषी के लक्षण कहते हैं ।

व्यायामशोषी भूयिष्ठमेभिरेवसमन्वितः
लिङ्गैरुरः क्षतकृतैः संयुक्तश्चक्षतं विना ॥ १९ ॥

भाषा-व्यायाम नाम बहुत कसरत करने से जो शोष रोग जिस मनुष्य के पैदा होता है वह जो अध्व शोषी क लक्षण कहे हैं उनकरके युक्त होता है और उरःक्षत के जो लक्षण होते हैं वह भी इसमें मिलते हैं केवल एक छाती के अन्दर घाव नहीं होते हैं

तीन कारणों से व्रणशोषका वर्णन करते हैं ॥

रक्तक्षयाद्वेदनाभिस्तथैवाहारयन्त्रणात् ॥
व्रणितस्य भवेच्छोषः सचासाध्यतमोमतः ॥ २० ।

भाषा—लोहू के क्षीण (नाश) होनें से व्रण (फोड़ाओं) की वेदना से तथा आहार के न मिलने से वा थोड़े मिलने से फोड़ावाले आदमी के शोष रोग पैदा होता है वह अत्यन्त असाध्य कहा है ॥

शोषकेनिदान जोसाहस आदिउनसेही उरःक्षत होताहै और उरःक्षतसेभी शोष होता है इससे शोषाधिकार में निदानसहित उरःक्षत का वर्णन करते हैं॥

धनुषायस्यतोऽत्यर्थं भारमुद्वहतो गुरुम् ॥
युध्यमानस्य बलिभिः पततो विषमोच्चतः ॥ २१ ॥
वृषं हयं वा धावंतं दम्यं वान्यं निगृह्णतः ॥
शिलाकाष्ठाश्मनिर्घातान् क्षिपतो निघ्नतःपरान् ॥२२॥
अधीयानस्य वाऽत्युच्चैर्दूरं वाव्रजतो द्रुतम् ॥
महानदीर्वा तरतो हयैर्वा सह धावतः ॥२३ ॥
सहसोत्पततो दूरात्तूर्णं वातिप्रनृत्यतः ॥
तथान्यैः कर्मभिः क्रूरैर्भृशमभ्याहतस्य च ॥ २४ ॥
तांडिते वक्षसि व्याधिर्बलवान्समुदीर्यते ॥
स्त्रीषु चातिप्रसक्तस्य रूक्षाल्पप्रमिताशिनः ॥ २५ ॥
उरोविरुज्यतेऽत्यर्थंभिद्यतेऽथविभज्यते ॥
प्रपीडयते ततः पार्श्वेशुष्यत्यङ्गं प्रवेपते ॥ २५ ॥
क्रमाद्वीर्यं बलं वर्णो रुचिरग्निश्च हीयते ॥
ज्वरो व्यथा मनोदैन्यं विड् भेदाग्निवधावपि ॥ २७ ॥
दुष्टः श्यावः सुदुर्गंधःपीतो विग्रथितोवहुः ॥
कास मानस्य चाभीक्ष्णंकफःसासृक् प्रवर्तते ॥ २८ ॥
सक्षती क्षीयतेऽत्यर्थं तथा शुक्रौजसोःक्षयात् ॥

भाषा-बहुत धनुष खीचने से अत्यन्त भारी बोझा उठाने से बलवान् पुरुषों के साथ युद्ध करने से अडवड ऊँची जगह से गिरने से दौड़ते हुए बैल को घोड़ा तथा अन्य बाहन को रोकने से पत्थर लकड़ी इनकी चोट सहने से तथा दूसरों को फेंककर मारने वाले से ऊँचे स्वरसे पढ़ने से दूरके मुकाम पर बहुत जल्दी चलकर पहुंच जाने से बड़े २ फांट की नदियों को

तैरकर पार जाने से घोड़ों के साथ दौड़ने से उछल कूद करने से फुरती से नाचने वाले के तथा और इस प्रकार के क्रूर कर्मों के करने वाले का वक्षःस्थल चोटीला होता है तब उसके वक्षःस्थल के चुटीले होनेपर बलवान् यह रोग पैदा होता है स्त्रियों में जो अत्यन्त आसक्त रहने वाले तथा रूखा और थोड़ा खाने वाले का उरः (वक्षःस्थल) अत्यन्त दुःखी हो फटने लगे तथा उसके टुकड़ा २ से होते प्रमाण से मालूम देते हैं उसमें दर्द होता है अंग सूखने तथा कांपने लगता है तब क्रम से बल वर्ण रुचि तथा पाःसुओं में अग्नि नष्ट होती है ज्वर पीड़ा मनमें ग्लानि दस्त फटा २ आवें अग्नि मन्द पड़जाती है दूषित काला बदबूदार पीला चिपटा हुआ बहुत कफ रुधिर समेत जिस समय खांसी आवै उस समय निकलता है वह क्षतवाला अत्यन्त क्षीण होने लगता है तथा केवल क्षतसे ही नहीं जीर्ण होता बल्कि स्त्री सेवनादि से शुक्र और ओज के क्षयसे भी ऐसी ही दशा होती है ।

उसका पूर्व रूप कहते हैं ।

अव्यक्तलक्षणं तस्य पूर्वरूप मितिस्मृतम् ॥ २९ ॥

भाषा—उस उरःक्षत के लक्षण जब तक अस्फुट मालूम हों उसको उस का पूर्वरूप कहा है ।

क्षत और क्षीण के असाधारण (असाध्य) लक्षण कहते हैं ।

उरोरुक् शोणितच्छर्दिःकासोवैशेषिकःक्षते ॥
क्षीणे स रक्तमूत्रत्वंपाश्वपृष्ठकटीग्रहः ॥ ३० ॥

भाषा—क्षत रोगी की छाती में पीड़ा होती है वमन तथा खांसी वि· शेषता करके होती है और क्षय रोग वाले के रुधिर युक्त मूत्रका उतरना पांसू पीठ कमर यह जिकड़ बन्ध सी होती हैं ।

क्षत और क्षीण के साध्य लक्षण कहते हैं ।

अल्प लिंगस्य दीप्ताग्नेः साध्यो बलवतोनवः ॥
परिसम्वत्सरो याप्यः सर्वलिङ्गंतुवर्जयेत् ॥ ३१ ॥

भाषा—थोड़े लक्षण जिसमें मिलें और जिसकी अग्नि प्रज्वलित हो तथा बलवान् पुरुष के हुआ थोड़े दिन जिसको पैदा हुए २ होंय वह साध्य

होता है और जो वर्ष के ऊपर होगया होय वह यत्न साध्य है और जिसमें सब चिह्न हों उसको असाध्य जानकर छोड़ देवै ।

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरि सूनु शा० सोहनलाल विद्याभूषणविरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां राजयक्ष्म क्षतक्षीणरोगनिदानम् समाप्तम्।

कासनिदानम्।

क्षयके रूपमें जो कास का पाठ किया है उससे तथा कास (खांसी) की लापरवाही कर चिकित्सा न करने से क्षयकी उत्पत्ति होती है इससे उसके अनन्तर कास निदान कहते हैं।

धूमोपघाताद्रजसस्तथैव व्यायामरूक्षान्ननिषेवणाच्च ॥
विमार्गगत्वाच्चहि भोजनस्य वेगावरोधात्क्षवथोस्तथैव॥१॥
प्राणो ह्युदानानुगतः प्रदुष्टः सभिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः ॥
निरेति वक्त्रात्सहसासदोषोमनीषिभिः कास इतिप्रदिष्टः॥२॥

भाषा-मुख नासिका में धूआं के रोकने से तथा वायु के द्वारा ऊपर को लायें हुए आम रससे दण्ड कसरत तथा रूखापन इनके नित्य सेवन करने से, अति शीघ्र भोजन करने आदि से भोजन के विमार्गगामी अर्थात् यथास्थान प्राप्त न होने से मलमूत्र के वेगको रोकने से, तैसेही क्षवथु अर्थात् (छींक) आती हुई के रोकने से अत्यन्य दुष्ट होकर और दुष्ट उदान वायु से मिलाहुआ प्राण वायु मुख से बाहर उसका शब्द निकले वह फूटे कांस्य पात्रके समान होय उसको विद्वांनों ने कास [खांसी] रोग ऐसा कहा है इसकी निरुक्ति कसतिशिरः कण्ठा दूर्ध्वंगच्छति वायुरितिकासः अर्थात् कण्ठसे ऊपर जो वायु शिर की तरफ जाय उसको कास कहते हैं "कसनात् कासः" ऐसे चरक में कहाहै कासनं कासः और भिन्नस्वरः कासति शुष्कमेव ऐसे सुश्रुतने की है।

पंच कासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः॥
क्षयायोपेक्षिताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम् ॥ ३ ॥

भाषा—वात, पित्त, कफ, क्षत और क्षय इनसे पांच तरहकी खांसी होती है। इनकी औषध न कीजाय तो वह क्षयके करने वाले होते हैं और इनमें एक से एक बलवान् होते हैं जैसे वातसे पित्तकी, पित्तसे कफकी, कफसे क्षतकी, क्षतसे, क्षयकी खांसी प्रबल है॥

पूर्वरूप कहते हैं।

पूर्वरूपं भवेत्तेषां शूकपूर्णगलास्यता ॥
कंठे कंडूश्च भोज्यानामवरोधश्च जायते ॥ ४ ॥

भाषा-कांटोंसे पुरा हुआ गला और मुख मालूम होय तथा कंठमें खुजली चले, भोजन किया न जाय या उसमें अरुचि होय ये खांसी होने वाले के पूर्वरूप जानने॥

वादीकी खांसी के लक्षण कहते हैं।

हृच्छंखमूर्धोदरपार्श्वशूली क्षामाननः क्षीणबलस्वरौजाः ॥
प्रसक्तवेगस्तु समीरणेन भिन्नस्वरः कासति शुष्कमेव॥५॥

भाषा-हृदय, कनपटी, माथा, पेट पांसू इनमें शूल हो मुँह मुरझायासा होजाय बल स्वर और पराक्रम ये क्षीण हो जाय, निरंतर खांसी का वेग रहै फटा २ स्वर होजाय सूखी खांसी खांसे अर्थात् कफ न आवे ये वातकी खांसी के लक्षण हैं॥

पित्तकी खांसी के लक्षण कहते हैं।

उरोविदाहज्वरवक्त्रशोषैरभ्यर्दितस्तिक्तमुखस्तृषार्तः ॥
पित्तेन पीतानि वमेत्कटूनि कासेत् सपांडुः परिदह्यमानः

भाषा—छातीमें दाहहो, ज्वर, मुखका सुखना इनसे पीडित हो पीले रंग वाकडुएस्वादकी वमन करै मुख कडुआ रहै, प्यास लगे, पीले वर्ण वाला होजाय और सब देह में दाह होय यह लक्षण पित्तसे जब कासरोग होताहै तब होतेहैं॥

कफकी खांसी के लक्षण कहते हैं।

प्रलिप्यमानेन मुखेन सीदञ्छिरोरुजाऽऽर्त्तः कफपूर्णदेहः ॥

अभक्तरुग्गौरवकंडुयुक्तःकासेद्भृशं सांद्रकफः कफेन ॥७॥

भाषा—कफकी खांसीसे मुख कफसे लिपटासा रहै दुखीसा रहै, माथेकी पीडासे दुःखी और सब देह कफसे परिपूर्ण रहै, खाने में रुचि रहै शरीर भारी रहै कंठमें खुजली और रोगी बांरबार खांसै, कफकी गांठसी बंधी हो यह लक्षण कफसे जानने ॥

क्षतज कास के लक्षण ।

अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजनिग्रहैः ॥
रूक्षस्योरःक्षतं वायुर्गृहीत्वा कासमाचरेत् ॥ ८ ॥
स पूर्वं कासते शुष्कं ततः ष्ठीवेत्सशोणितम् ॥
कंठेन रुजताऽत्यर्थं विरुग्णेनेव चोरसा ॥ ९ ॥
सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना ॥
दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीडाभितापिना ॥ १० ॥
पर्वभेदज्वरश्वासतृणावैस्वर्यपीडितः ॥
पारावत इवाकूजन्कासवेगात्क्षतोद्भवात् ॥ ११ ॥

भाषा—अत्यन्त मैथुन करने से, भारके उठाने से, बहुत मार्ग चलने से, युद्ध करने से, घोडा हाथीके दौड़ने को रोकनेसे इन कारणों से रूक्ष पुरुषका हृदय फूटकर वायुकोप होकर खांसीको प्रगट करै। वह पुरुष प्रथम सूखी खांसी खांसै, पीछे रुधिर सहित कफ थूकै, कंठ अत्यन्त दूखै, कलेजा फटनै लगे और तीखी सुइंकासी छिदावट मालूम होय और उसको हृदयका स्पर्श करने में दूखै ये स्पर्श करने में दुखी पार्श्वशूली ऐसा पाठ वाग्भटने भी किया है फटने जैसी पीड़ा से दुखी हो, दोनों पसवाडोंमें शूल होय उस रोगी के गांठ गांठमें पीड़ा हो, ज्वर श्वास, प्यास, स्वरभेद इनसे पीडित होय, क्षतजन्य खांसीके वेगसे रोगी कबूतरकी तरह घूँ घूँ शब्द करने लगता है ॥

क्षयजन्य खांसी के लक्षण ।

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्वेगनिग्रहात् ॥
घृणिनां शोचतां नृणां व्यापन्नेऽग्नौ त्रयो मलाः ॥

कुपिताः क्षयजंकासं कुर्युर्देहक्षयप्रदम् ॥ १२ ॥
स गात्रशूलज्वरदाहमोहान्प्राणक्षयं चोपलभेत कासी ॥
शुष्यन्विनिष्ठीवतिदुर्बलस्तु प्रक्षीणमांसो रुधिरं सपूयम् ॥
तं सर्वलिंगं भृशदुश्चिकित्स्यं चिकित्सितज्ञा क्षयजं वदंति १३

भाषा-कुपथ्य और कमवेश खाने पीनेसे, अति मैथुन करनेसे मलमूत्रादिकके वेग धारण करनेसे अति दया करनेसे, अति शोक करनेसे अग्नि मन्द होजानेसे अर्थात् आहार थककर वायु कुपित हो अग्निके नष्ट होनेपर तीनों दोष कोपको प्राप्त हुए क्षयजन्य देहको नाश करने वाला ऐसा खांसी को प्रगट करे तब वह खांसी देहको क्षीण करे । वह शरीरमें दर्द ज्वर, दाह और मोह प्राप्त करे तब यह प्राणी देहके नाशको प्राप्त हो सूखा खांसे दुर्बल होय मांस क्षीण होजाय राध रुधिर सहित थूके । ये सर्व लक्षणयुक्त और चिकित्सा करनेमें अति कठिन ऐसे इस खांसीको वैद्य क्षयज कहते हैं ॥

साध्यासाध्य विचार कहते हैं ।

इत्येषक्षयजःकासः क्षीणानां देहनाशनः ॥
साध्यो बलवतां वास्याद्याप्यस्त्वेवं क्षतोत्थितः ॥१४॥
नवौ कदाचित्सिध्येतामपिपादगुणान्वितौ ॥
स्थविराणां जराकासः सर्वोयाप्यः प्रकीर्तितः
त्रीन्पूर्वान्साधयेत्साध्यान्पथ्यैर्याप्यांस्तु यापयेत् ॥१७॥

भाषा-इस प्रकार यह क्षयजकास (खांसी) क्षीण पुरुषोंके देहको नष्ट करने वाला है बलवान् पुरुषोंके साध्य अथवा याप्य (यत्नसाध्य) होता है। क्षतज खांसी भी इसी प्रकारकी होती है । यदि वैद्यादि पादचतुष्टयसंपन्न हो और ये दोनों प्रकारकी खांसी नवीन होय तो कदाचित् साध्य होय, और बूढ़े पुरुषके जरानिमित्त अर्थात् धातुक्षीण होने से हुई जो खांसी सो सब प्रकार की याप्य है । अब कहते हैं कि वात, पित्त कफ ये तीन खांसी साध्य हैं इन की चिकित्सा करै पथ्यों द्वारा और बाकी तीन याप्य हैं ।

इति श्री वैद्यराज झल्ला स्वामि सूरि सून शा० सोहनलाल विद्याभूषण वि० माधव निदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां कासरोग निदानं समाप्तम् ।

समान कारणवाले होने की वजहसे कासके अनन्तर हिक्का और श्वास इनको कहते हैं।

अथ हिक्काश्वासनिदानम्।

विदाहिगुरुविष्टंभिरूक्षाभिष्यंदिभोजनैः॥
शीतपानाशनस्थानरजोधूमातपानिलैः॥ १॥
व्यायामकर्मभाराध्ववेगाघातापतर्पणैः॥
हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते ७२॥

भाषा—दाहकरने वाला, भारी, दस्तबन्द करनेवाले रूखे तरल पदार्थ ऐसे भोजन करनेसे, शीतल जल पीनेसे, शीतल अन्न खानेसे, शीतल जगह में रनहेसे, रज और धूएके मुख नाकमें जानेसे, गर्मी हवामें डोलने से, दण्डकसरतके करनेसे, भारके उठानेसे, बहुत मार्गके चलनेसे, मलादिक वेगके रोकनेसे और उपवासके करनेसे मनुष्यों के हिका (हुचकी), श्वास, और (खांसी) ये रोग होते हैं॥

हिक्काका स्वरूप और निरुक्ति कहते हैं।

मुहुर्मुहुर्वायुरुदेति सस्वनो यकृत्प्लिहांत्राणि मुखादिवाक्षिपन्॥
स घोषवानाशु हिनस्त्यसून्य तस्ततस्तु हिक्केत्यभिधीयते बुधैः२

भाषा-उदानवायु सहित प्राण वायु जब ऊपर को आवै जब निकले तब मनुष्य हिक् हिक् ऐसा शब्द करै और यकृत (जिगर) प्लीह इनको मुखकी तरफ खींच लावै और मुखमें आनकर बड़ा शब्द निकलै उसको वैद्यवर हिक्का (हिचकी) रोग कहते हैं इसकी निरुक्ति दो प्रकार कही है॥ हिनस्त्यसूनिति हिक्का तथा हिगितिकृत्वा कायति शब्दायते इति हिक्का इस प्रकार जानना॥

हिक्काओं के भेद और संप्राप्ति कहते हैं।

अन्नजां यमलां क्षुद्रां गंभीरां महतीं तथा॥
वायुः कफेनानुगतः पंच हिक्काः करोति हि॥ ४॥

भाषा-वायु कफके अनुगत होता हुआ अर्थात् मिलकर १ अन्नजा, २ यमला ३ क्षुद्रा, ४ गम्भीरा और ५ महती ऐसे पांच प्रकारकी हिचकीयों को प्रगट करै॥

हिचकीयों के पूर्वरूप कहते हैं ।

कंठोरसोर्गुरुत्वं च वदनस्य कषायता ॥
हिक्कानां पूर्वरूपाणि कुक्षेराटोप एव च ॥ ५ ॥

भाषा—कंठ और वक्षस्थलमें भारीपन और मुखका कसैलापन और कूखमें अफरा रहे गुड़ गुड़ाहटकर युक्तशब्द होय यह हिचकीके पूर्वरूप जानने।

अन्नजाके लक्षण कहते हैं ।

पानान्नैरतिसंयुक्तैः सहसापीडितोनिलः ॥
हिक्कयत्यूर्ध्वगो भूत्वा तां विद्यादन्नजां भिषक् ॥६॥

भाषा-पानीके अन्न और इनके बहुत सेवन करनेसे यकायक कुपित हुआ वात ऊर्ध्वगामी होकर मनुष्य के हिचकी प्रगट करै वह हिचकी अन्नजा है इस प्रकार वैद्य जानै ।

यमला के लक्षण कहतेहैं ।

चिरेण यमलैर्वेगैर्या हिक्का संप्रवर्त्तते ॥
कंपयंती शिरोग्रीवां यमलां तां विनिर्दिशेत् ॥७॥

भाषा-बहुत कालसे जो हिचकी आवै सिर कंधाको कंपावे उसको यमला हिचकी कहे दो दोषों के वेगसें । शिर ग्रीवा यह उपलक्षण मात्र है इससे चरकमें कहे हुए प्रलाप मूर्छा वमन प्यास वैचित्य जृम्भा आंखों में आंसुओं का भरा रहना मुख सूखना यह लक्षण भी जानने ऐसा गयदास का मत है।

क्षुद्राके लक्षण कहते हैं ।

विकृष्टकालैर्या वेगैर्मन्दैः समभिवर्त्तते ॥
क्षुद्रिकानाम सा हिक्का जत्रुमूलात्प्रधाविता ॥ ८ ॥

भाषा-जो हिचकी बहुत देरमें मेंसे जावड़ा कंठ हृदयकी (संधि) से मंद मंद चले उसको क्षुद्रिका नाम हिचकी कहते हैं ॥

गंभीराके लक्षण ।

नाभिप्रवृत्ता या हिक्का घोरा गंभीरनादिनी ॥
अनेकोपद्रववती गंभीरा नाम सा स्मृता ॥ ९ ॥

भाषा=नाभिके पाससे उठी जो हिचकी वह घोर गम्भीर शब्द करै और

जिसमें प्यास ज्वरादि अनेक उपद्रव हों उसकी गम्भीर नाम हिचकी कहते हैं ।

महती हिचकीके लक्षण ।

मर्माण्युत्पीडयंतीव सततं या प्रवर्तते ॥
महाहिक्केति सा ज्ञेया सर्वगात्रप्रकंपिनी ॥ १० ॥

भाषा—जो हिचकी मर्मस्थान (वस्ति हृदय और शरीर) में पीडा करती हुई और सब गात्रको कँपानेवाली होवें सर्वकाल प्रवृत्त होय निरंतर आती ही रहे उसको महाहिक्का कहते हैं ॥

हिक्काके असाध्य लक्षण कहते हैं ।

आयम्यतेहिक्कतोयस्यदेहोदृष्टिश्चोर्ध्वंनाम्यतेयस्यनित्यम्।
क्षीणोऽन्नद्विट्क्षौतियश्चातिमात्रंतौद्वौचान्त्यौवर्जयेद्धिक्कमानौ॥
अतिसंचितदोषस्य भक्तच्छेदकृशस्य च ॥
व्याधिभिःक्षीणदेहस्य वृद्धस्यातिव्यवायिनः ॥ १२ ॥
आसां या सा समुत्पन्ना हिक्का हंत्याशु जीवितम् ॥
यमिका च प्रलापार्तिमोहतृष्णासमन्विता ॥ १३ ॥
अक्षीणश्चाप्यदीनश्च स्थिरधात्विंद्रियश्च यः ॥
यस्य साधयितुं शक्या यमिका हंत्यतोऽन्यथा॥ १४ ॥

भाषा–जिसका हिचकीसे देह खिचने लगे, तथा जिसकी हरसमय ऊंची दृष्टि हो जावे और मोह होय,तथा बड़ा दुखी हो क्षीण पड जाय, भोजनमें अरुचि होय और छींक बहुत आवे ये दोनों हिचकीवाले रोगी अर्थात् जिसकी गम्भीरा और महतीहिचकी होयं वह वैद्यको छोड़ देना चाहिये यानी वैद्य उनको छोड़देवे॥अत्यन्त दोष जिसके इकट्टे होगये हों और अन्न छूटने से कृश हो गया हो, जिसका अनेक व्याधियों से देह क्षीण हो गया होय और जो वृद्ध हो अति मैथुन करनवाला हो एसे पुरुषकेये दोनोंहिचकी उत्पन्नहोय तो तत्क्षण उस रोगीके प्राणनाश करे ॥ और बकवाद करै, पीडा होय, मोह प्यास इन लक्षणोंसे युक्त जो यमिका नामकी हिचकी सो भी तत्काल प्राणों का हरण करती है ॥ क्षीण न हुआ हो दीन जो न हुआ होय जिसकी धातु इन्द्रिय स्थिर होय ऐसे पुरुषकी यमिका हिचकी उसकी सिद्ध करनी चाहिये

और इससे विपरीत अर्थात् क्षीण. दीन इत्यादि पुरुषका तत्कालही नाशकरे। अन्नजा क्षुद्रा ये दोनों साध्यही है।

इतिश्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसुत शा० सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां हिक्कारोगनिदानं समाप्तम्.

श्वासनिदानम्।

हिचकियों के अनन्तर श्वास का वर्णन करते हैं पहिले उसके भेद कोन२ नाम किस २ दोषसे होता है यह क्षेपकों द्वारा कहेंगे।

महोर्ध्वच्छिन्नतमकक्षुद्रभेदैस्तु पञ्चधा॥
भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः॥ १९॥
(वाताधिको भवेत् क्षुद्र स्तमकस्तु कफोद्भवः॥
कफवाताधिक श्चैव संसृष्ट श्छिन्नसंज्ञकः
श्वासो मारुतसंस्टष्टो महानूर्ध्वस्ततो मतः॥ १॥)

महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास, तमकश्वास, औरक्षुद्रश्वास और इन भेदोंसे यह एक ही श्वास रोग विशेषता करके पांच प्रकार भेदको प्राप्त होताहै यह महा व्याधि है बड़ा कठिन रोग है। जिसमें वात अधिक होता है वह क्षुद्र कह-लाता है और कफ के प्राधान्य वाला तमक होता है कफ वात जिसमें दोनों मिलकर अधिक हो उसको छिन्न श्वास कहते हैं वायु और दोषों के साथ मिला होवे तो महान् नामक श्वास होताहै उससे ही ऊर्ध्व श्वास होताहै॥

श्वासके पूर्वरूप को कहते हैं॥

प्राग्रूपंतस्य हृत्पीडा शूलमाध्मानमेव च॥
आनाहो वक्त्रवैरस्यं शंखनिस्तोद एव च॥ २०॥

भाषा—हृदय में पीड़ा होय, शूल होय, अफरा होय, पेट तना सा रहै, मुखमें रसका स्वाद आवे नहीं कनपटी फटने लगें यह श्वास रोगका पूर्वरूपहै॥

श्वास रोगकी सम्प्राप्ति कहते हैं।

यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफपूर्वकः ॥
विष्वग्व्रजति संरुद्धस्तदा श्वासान्करोति सः ॥ १७ ॥

भाषा—जब कफसे मिलाहुआ वायु प्राणअन्न उदक रुधिर की बहनेवाली नसों के मार्गको रोक देवे तब पवन फिरनेसे रुककर श्वासरोगको प्रगट करे ॥

महाश्वास के लक्षण कहते हैं ॥

उद्धूयमानवातो यः शब्दवद्दुःखितो नरः ॥
उच्चैः श्वसिति संरुद्धो मत्तर्षभ इवानिशम् ॥ १८ ॥
प्रनष्टज्ञानविज्ञानस्तथा विभ्रांतलोचनः ॥
विष्टब्धाक्षाननो बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक् ॥ १९ ॥
दीनः प्रश्वसितं चास्य दूराद्विज्ञायते भृशम् ॥
महाश्वासोपसृष्टस्तु क्षिप्रमेव विपद्यते ॥ २० ॥

भाषा-जिसका वायु ऊपरकों उठै ऐसा मनुष्य दुःखित होकर मुख से शब्दयुक्त श्वासको निकाले, ऊंचे स्वर से मतवाले बैलके शब्द करै इसप्रकार रात्रिदिन श्वास से पीडित होय, उसका ज्ञान विज्ञान जाता रहे, नेत्र चंचल होंय और जिसके श्वास लेतेमें नेत्र और मुख फटजांय, मल मूत्र बन्द हो जांय, बोला जाय नहीं अथवा बोले तो मन्द बोले, मन खिन्न होय और जिसका श्वास दूर से सुनाई देय यह महा श्वास जिस पुरुषको होय वह तत्काल मरणको प्राप्त होय ॥

ऊर्ध्वश्वासके लक्षण कहते हैं।

ऊर्ध्वं श्वसिति यो दीर्घं न च प्रत्याहरत्यधः ॥
श्लेष्मावृतमुखस्रोताः क्रुद्धगंधवहार्दितः ॥ २१ ॥
ऊर्ध्वदृष्टिर्विपश्यँश्च विभ्रांताक्ष इतस्ततः ॥
प्रमुह्यन्वेदनार्तश्च शुष्कास्योऽरतिपीडितः ॥ २२ ॥

भाषा-बहुत देरपर्यंत ऊंचा श्वास लेय और वह वायु नीचेकी तरफ न बैठे, कफसे मुख भरजाय तथा सब नाडियों के मार्ग कफसे बन्द हो जांय कुपित वायुसे पीडित होय, ऊपरको नेत्र कर चंचल दृष्टिसे चारों और देखे,

मूर्च्छाकी पीड़ासे अत्यन्त पीडित होय, मुख सूखे तथा बेहोश होय ये ऊर्ध्व श्वास के लक्षण हैं ॥

ऊपरकोही श्वास लेवै नीचेको नहीं आवै यह जो कहा उसमें कारण कहते हैं।

ऊर्ध्वश्वासे प्रकुपिते ह्यधः श्वासो निरुध्यते ॥
मुह्यतस्ताम्यतश्चोर्ध्वं श्वासस्तस्यैव हंत्यसून् ॥२३॥

भाषा-ऊपरको श्वास कुपित होनेपर नीचेका श्वास बन्द होताहै अर्थात् हृदय में रुक जावै अथवा श्वास कहिये वायु सो नीचे नहीं उतरै तब मनुष्य को मोह होय और ग्लानि हो ऐसा श्वास पुरुषके प्राणको हरण करलेता है॥

छिन्न श्वास के लक्षण।

यस्तु श्वसिति विच्छिन्नं सर्वप्राणेन पीडितः ॥
न वा श्वसिति दुःखार्तो मर्मच्छेदरुगर्दितः ॥२४॥
आनाहस्वेदमूर्च्छार्तो दह्यमानेन बस्तिना ॥
विप्लुताक्षः परिक्षीणः श्वसन्रक्तैकलोचनः ॥२५॥
विचेताः परिशुष्कास्यो विवर्णः प्रलपन्नरः ॥
छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः स शीघ्रं विजहात्यसून् ॥२६॥

भाषा-जो मनुष्य रुक २ कर जितनी शक्ति उतनी शक्ति से श्वास को त्याग कर अथवा क्लेशको प्राप्त हो, श्वास नहीं होय और मर्म कहिये हृदय बस्ति (मूत्रस्थान) और नाड़ियोंको काटने कीसी पीडा होय, पेटका फूलना, पसीना और मूर्च्छा इनसे पीडित हो, बस्ति (मूत्रस्थान) में जलन होय, नेत्र चलायमान होय अथवा नेत्र आंसुओंसे भरे होय, श्वास लेते लेते थक जाय तथा श्वास लेते लेते एक नेत्र लाल हो जाय दोषके उद्विग्न चित्त हो जाय, मुख सूखारहै, देहका वर्ण पलट जाय, बकबाद करै, जोडके सब बंध शिथिल होजांय इस छिन्नश्वास करकै मनुष्य शीघ्र प्राणोंको त्याग देता है ॥

तमक श्वासके लक्षण।

प्रतिलोमं यदा वायुःस्रोतांसि प्रतिपद्यते ॥
ग्रीवां शिरश्च संगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च ॥ २७ ॥
करोति पीनसं तेन रुद्धो घुर्घुरकं तथा ॥
अतीव तीव्रवेगेन श्वास प्राणप्रपीडकम् ॥२८॥

प्रताम्यति स वेगेन त्रस्यते सन्निरुद्ध्यते ॥
प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति मुहुर्मुहुः ॥ २९ ॥
श्लेष्मणा मुच्यमानेन भृशं भवति दुःखितः ॥
तस्यैव च विमोक्षांते मुहूर्तं लभते सुखम् ॥ ३० ॥
तथास्योद्ध्वंसते कंठः कृच्छ्राच्छक्नोति भाषितुम् ॥
न चापि निद्रा लभते शयानिः श्वासपीडितः ३१ ॥
पार्श्वे तस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरणः ॥
आसीनो लभते सौख्यमुष्णं चैवाभिनन्दति ॥ ३२ ॥
उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमार्तिं मान् ॥
विशुष्कास्यो मुहुः श्वासो मुहुश्चैवाव धम्यते ॥ ३३ ॥
मेघांबुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्द्धते ॥
स याप्यस्तमकश्वासःसाध्यो वा स्यान्नवोत्थितः ३४॥

भाषा—जिस कालमें शरीर का पवन उलटी गतिसे नाडियों के छिद्र में प्राप्त होकरमस्तक तथा कंठकाआश्रय करकफ संयुक्त होयतब कफसे रुककर अतिवेगपूर्वक कंठमें घुरघुर शब्द करे और मस्तक में पीनसरोग करे और अत्यन्त तीव्र वेगसे हृदयकी पीडा करनेवाले श्वासको उत्पन्न करे।उस श्वास के वेगसे मूर्छित होय त्रासको प्राप्त होय,चेष्टारहित होय और खांसीके उठ नेसे बडे मोहको वारंवार प्राप्त होय और जब कफ छूटे तब दुख होय और कफ छूटने के बाद दो घडी पर्य्यन्त सुख पावै। कठेंमे खुजली वा धांससी उठे बडे कष्ट से बोलने की सामर्थ हो श्वासकी पीडासे नींद न आवै सोवै तो वायु से पसवाडोंमें पीडा होय जिकड से जांय बैठेही चैन पडे और गरमी के पदार्थ स खुश होय नेत्रोंमें सूजन होय, ललाट में पसीना आवै, अत्यंत पीडा होय मुख सूखे, बारंबार श्वास और हाथींपर बैठने के सदृश सब देह चलायमान होवै। यह श्वास मेघके बर्षनेसे,शीतसे, पूर्वकी पवनसे और कफ कारक पदार्थ इनके सेवन करनेसे बढे हैं। यह तमक श्वास याप्य यत्न सा ध्य है यदि नया प्रगट हुआ होय तो साध्य जानना ॥

पित्तका अनुबन्ध होकर ज्वरादिकोंका योग होनेसे प्रतमक होता

है उसको इसप्रकार जानै ॥

ज्वरमूर्छापरीतस्य विद्यात्प्रतमकं तु तम् ॥

भाषा—इस तमकश्वास में ज्वर और मूर्छा इन दोनों लक्षणों से होने उसको प्रतमक श्वास कहते हैं ॥

प्रतमकके दूसरे लक्षण और कारण कहते हैं।

उदावर्त्तरजोजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः ॥ ३५ ॥
तमसा वर्धतेऽत्यर्थं शीतैश्चाशु प्रशाम्यति ॥
मज्जतस्तमसीवास्य विद्यात्प्रतमकं तु तम् ॥ ३६ ॥

भाषा-उदावर्त्त,धूल,आमादि अजीर्ण,विदग्धान्न,मलमूत्रादि वेगके रोकने से अथवा क्लिन्नकाय (वृद्ध मनुष्य) और निरोध (वेगरोध) इनकारणों से प्रगटहुई श्वास जन्यअंधकारसे तमोगुण से अत्यन्त बढ़ताहै औरशीतल उपचारों से शीघ्र शांत होता है,इस श्वास के योगसे रोगी को अन्धकार में डूबेकेतुल्य मालूम होताहै उसको प्रतमक श्वास कहते हैं ॥

क्षुद्र श्वासके लक्षण।

रूक्षायासोद्भवः कोष्ठे क्षुद्रो वातमुदीरयेत् ॥
क्षुद्रश्वासो नसोऽत्यर्थं दुःखनांगप्रबाधकः ॥ ३७ ॥
हिनस्ति न स गात्राणि न च दुःखो यथेतरे ॥
न च भोजनपानानां निरुणद्ध्युचितां गतिम् ॥ ३८ ॥
नेन्द्रियाणां व्यथा चापि कांचिदापादयेद्रुजम् ॥
स साध्य उक्तः—

भाषा—रूखे पदार्थके खानेसे श्रम करने से, जो क्षुद्रश्वास पैदाहोता है वह वायुको ऊपर लेजाताहै यह क्षुद्रश्वास अत्यंत दुःखदायक नहीं होता है तथा अंगों कोभीकुछ विकार नहीं करताहै जिसेऔरश्वासादिक दुःखदायी हैऐसा यह नहीं है और न भोजनपानादिकोंकी उचित गतिको बन्द करताहै और इन्द्रियोंको भी पीडा नही करे और कोई रोगकोभी प्रगट नही करे । यह क्षुद्रश्वास साध्य कहा है ॥

साध्यासाध्यविचार।

--बलिनः सर्वे चाव्यक्तलक्षणाः ॥ ३९ ॥

क्षुद्रः साध्यतमस्तेषां तमकः कृच्छ्र उच्यते ॥
त्रयः श्वासा न सिद्ध्यंति तमको दुर्बलस्य च ॥ २६॥

भाषा-और बलवान पुरुषके सब महाश्वासादि जिनके लक्षण प्रगट न होय वे साध्य हैं। तिनमेंभी क्षुद्रश्वास अत्यंत साध्य है और तमक भी कृच्छ्र साध्य कहाहै महान ऊर्ध्व और छिन्न ये तीन श्वास सम्पूर्ण लक्षणयुक्तदुर्बल के आराम नहीं होते तमकश्वासभी नहीं आराम होता है ॥

कामं प्राणहरा रोगा बहवो न तु ते तथा ॥
यथा श्वासश्च हिक्का च हरतः प्राणमाशु वै ॥ २७ ॥

भाषा—प्राण हरण करने वाले ऐसे बहुतसे रोगहैं वे ठीकहैं परन्तु श्वास और हिचकी ये जैसे जल्दी प्राण हरण करते हैं ऐसे और रोग नहीं करते।

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरि सुनु शा० सोहनलाल
विद्याभूषणविरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां
टीकायां श्वासनिदानम् समाप्तम्।

प्राण उदान के दूषित होने पर समान धर्म होने से श्वास में भी स्वरभेद होताहै इससे श्वास के बाद स्वरभेदका वर्णन करतेहै

अथ स्वरभेदनिदानम्।

अत्युच्चभाषणविषाध्ययनाभिघात संदूषणैः प्रकुपिताःपवना दयस्तु ॥ स्रोतः सुते स्वरवहेषुगताः प्रतिष्ठां हन्युः स्वरं भवति चापिहिषड्विधःपः ॥ १॥
(वातादिभिः पृथक सर्वैं मेंदसाच क्षयेण च)

भाषा—बहुत ऊंचे स्वरसे बोलना वेदादिक वा अन्य ग्रन्थ का पाठ ऊंचे स्वरसे करना विषका खाना कण्ठ आदि स्थानों में लकडी आदि की चोट लगना इत्यादि बातों से कोपको प्राप्त हुए और भी दोषों से यथा योग्य दूषित वायु आदि, तु शब्द जो पडा है इससे स्पष्ट होता है कि विष

तो सब दोषों का कोप कराने वाला है स्वरको वहने (प्राप्त करने) वालेजो चार स्रोता (दो स्रोतों से बोला जाता है और दो स्रोतोंसे घोष किया जाताहै) उनमें स्थित हुए स्वरको नष्ट करते हैं वह स्वरभेद रोग छह प्रकारका वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, क्षयज, मेदोज, इस रीति से होताहै ॥

बातजन्य स्वरभेदको कहते हैं ॥

वातेनकृष्णनयनाननमूत्रवर्चा भिन्नंशनैर्वदातिगर्दभवत्खरं च ॥

भाषा—वायुके प्रकोपसे उत्पन्न हुए स्वरभेद से नेत्र मुख मूत्र दस्त इन का रंग काला होजाय स्वरभेद रोगमें मूत्रादिकों में जो यहां कालापन कहा यह बात क्या उसका यह मतलब है कि स्वरभेद के आरम्भक जो दोष उन को सर्वांग में व्यापक होने से बवासीर की नाई इसका असर सब शरीर पर होताहै इस प्रकार समझे, फटा२ धीरे२ बोलेगधाकीतुल्यऔरखर२शब्दकरताहै।

पैत्तिक स्वरभेदके लक्षण कहते हैं ।

पित्तेनपीतनयनाननमूत्रवर्चाब्रूयाद्गलेनसबदाहसमन्वितेन॥२॥

भाषा—पित्तसे जो स्वरभेद होताहै उससे नयन मुख मूत्र दस्त यह पीले हों और जब बोले तब गलेमें जलन होवै यह लक्षण जाने ॥

कफज स्वरभेदके लक्षण कहते हैं ॥

ब्रूयात् कफेन सततं कफरुद्धकण्ठः,
स्वल्पं शनैर्वदति चापि दिवाविशेषात् ॥

भाषा—कफजन्य स्वरभेदसे निरन्तर कफसे कण्ठ रुका रहै धीरे २ बोले और दिनमें विशेषता से बोले ॥

सन्निपातज स्वरभेद के लक्षण ।

सर्वात्मके भवति सर्वविकार सम्पत्
तं चाप्यसाध्यमृषयः स्वरभेदमाहुः ॥ ३ ॥

भाषा-सन्निपातके स्वरभेदमें पूर्वोक्त वातादिके उत्पन्न हुए सब लक्षण जिसमें मिलें उस स्वरभेद को सन्निपातजन्य कहते हैं उसको असाध्य कहते हैं असाध्य कहने से सुश्रुत का वचन चरितार्थ होताहै यथा-सर्वजे क्षयजे चापि प्रत्याख्यायाचरेत् क्रियाम् ॥

क्षयज स्वरभेदके लक्षण ।

धूप्येतवाक्क्षयकृते क्षयमाप्नुयाच्च-
वागेष चापि हतवाक् परिवर्जनीयः ॥

भाषा—क्षयज स्वरभेद वाले पुरुषके बोलते समय मुख से धूआं सा निकले वाणी क्षयको प्राप्त होय वाणी नष्ट हो अर्थात् स्वर साफ नहीं निकले इसमें जब वाणी नष्ट होजाय तब वह रोगी छोड़देना चाहिये ॥

मेदजन्य स्वर भेदके लक्षण

अन्तर्गतंस्वरमलक्ष्यपदं चिरेण ।
मेदोन्वयाद्वदति दिग्धगलस्तृषार्तः ॥४॥

भाषा-मेद से गला लिपासा रहै प्यास से व्याकुल रहै स्वरके अन्तर्गत होजाय अर्थात् भीतर ही भीतर घुन घुनावै बोले तबभी साफ शब्द नहीं निकले यह मेदके बढ़नेसे जो स्वर भेद होताहै इसके इस प्रकार लक्षणजानो।

स्वर भेदके असाध्यके लक्षण कहते हैं ॥

क्षीणस्य वृद्धस्य कृशस्यचापि,चिरोत्थितो यश्च सहोपजातः ॥
मेदस्विनः सर्व समुद्भवश्च,स्वरामयो यो न स सिद्धिमेति॥६॥

भाषा-क्षीण पुरुषके वृद्धके कृशके बहुत दिनका पैदा हुआ और जो जन्म के साथ पैदा हुआ तथा मेद वाले (मोटे) पुरुषके और सन्निपात से पैदा हुआ जो स्वर भेद रोग वह सिद्धिको प्राप्त नहीं होता अर्थात् असाध्य है

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामिसूरिसनु शा० सोहन लाल
विद्या भूषण विरचितायां माधव सुबोधिन्यां
स्वरभेदनिदानं समाप्तम् ।

अथ अरोचकनिदानम्

वातादिभिः शोकभयातिलोभक्रोधैर्मनोघ्नाशनरूपगन्धैः ॥
अरोचकाःस्युःपरिहृष्टदन्तः कषायवक्त्रश्च मतोऽनिलेन ।१।

भाषा—ऊर्ध्वगामीजो विकार उनसे इसकी समान धर्मता है इससें स्वर

भेद के बाद अरोचकका वर्णन करते हैं। १ वात, २ पित्त, ३ कफ इन दोषों से,४ सन्निपात से,५शोक भय अति लोभ अतिक्रोध तथा मनको बिगाडने वाले भोजन रूप और गन्ध इनसे (शोकसे लेकर गन्धपर्यन्त यह आगुन्तुक अरोचक एकही पांचवा गिनना चाहिये) * इन कारणोंसे भी अरोचक रोग पैदा होतेहैं अब इनमें जो वातजन्य अरोचक होता है उसमें मुखमें कषैलापन होताहै।

पैत्तिक अरोचकके लक्षण कहते हैं

कट्वम्लमुष्णं विरसं च पूति पित्तेन विद्यात्-

भाषा-कडुआ, खट्टा,गरम रसरहित, बासका (दुर्गन्ध जिसमें आतीहो) इनसे जो पैदा होवें वह अरोचक पित्त से जानना

कफ जन्य अरोचक के लक्षण

-लवणं च वक्त्रम् ॥

माधुर्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्यविवद्धसंवद्धयुतं कफेन॥२॥

भाषा-मुखमें खारापन (जबकफ विदग्ध होता है तब खारापन होता है जैसा सुश्रुतमें लिखा है" श्लेष्माविदग्धो लवणःस्मृतःपित्तंविदग्धमम्लम्,) मीठापन और चमक भारापन ठण्डापन बँधा हुआ कफ निकले और अरुचि होय वह कफ से जानना ॥

आगन्तुज अरोचकको कहते हैं।

अरोचके शोकभयातिलोभक्रोधाद्यहृद्या शुचिगन्धजेस्यात् ॥ स्वाभाविकं चास्यम्-

भाषा-शोक, भय, अतिलोभ, क्रोध,आदि और हृदयको अच्छे न लगें अपवित्रता और दुर्गंधसे उत्पन्न हुए अरोचकमें स्वाभाविक (जैसाहोतैसा) मुखका जायका रहै यह लक्षण होते हैं ॥

सन्निपात जन्य अरोचक के लक्षण

अथारुचिश्च त्रिदोषजं नैकरसं भवेत्तु ॥

भाषा--त्रिदोष जन्य अरोचकमें अन्न में अरुचि होय और मुखमें अनेक

* यह पांच प्रकारका है इससे पांचों का लक्षण कहेंगे सुश्रुतमें "भक्तोपघातमिह पंच विधंवदन्ति" इस प्रकार कहा है शोक जन्य आदि तो यद्यपि वात आदि से प्रकट होते हैं तो भी हेतु प्रत्यनीक चिकित्साके लिये अलग कहा है ॥

रस मालूम होते हैं वायु आदिके भेद से उत्पन्न हुए जो विकार उससे मुख की जो विकृति उसको कहकर और देशकी जोविकृति(बिगाड़)उसको कहतेहैं

हृच्छूलपीडनयुतंपवनेन,पित्तात्तृड्दाहचोषबहलं,सकफप्रसेकम् श्लेष्मात्मकं,बहुरुजंबहुभिश्चविद्याद्वैगुण्यमोहजडताभिथापरंच४

भाषा-वातसे उत्पन्न हुए अरोचक से हृदयमें दर्द से तकलीफ होतीहैं पित्त से प्यास, दाह, चूंसने की सी तकलीफ बहुतहो यह लक्षण होतेहैं से कफ सहित थूक व लारका आना यह चिन्ह होते हैं त्रिदोष से विगुणता (मनका व्याकुल होना) मोह जड़ता यह लक्षण तथा और २ भी भूख होने परभी खाने में सामर्थ्य न हो उसको अरुचि कहते हैं अभिलषित भी दिया गया अन्न न खाय उसको अनन्नाभिनन्दन कहते हैं और अन्न के श्रवण स्मरण देखने सूंघने और आदि से भी जिसमें भय मालूम होय वह भक्त द्वेष कहलाता है इस प्रकार तीन प्रकार से कहा हुआ भी यह रोग चरकतथा सुश्रुतने अरोचक शब्द से ग्रहण किया है जैसा कि वृद्ध भोजने कहा है:-

प्रक्षिप्तंतु मुखेचान्नं जन्तोर्न स्वदते मुहुः ॥
अरोचकः सविज्ञेयः भक्तद्वेषमतः शृणु ॥
चिन्तयित्वा तुमनसा दृष्ट्वा श्रुत्वापि भोजनम् ॥
द्वेषमायाति, योजन्तुभर्क्तद्वेषः सउच्यते ॥
यस्यनान्ने भवेच्छ्रद्धा सोऽभक्तच्छन्द उच्यते ॥
कुपितस्य भयातस्य यश्च भक्तनिरोधजः ॥इत्यादिसे मालूम होता है ।

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसुन सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधव निदानस्य सुबोधिन्यां टीकाया मरोचक निदानं समाप्तम् ॥

छर्दिनिदानम् ।

छर्दिमें भी अरुचिका भाव रहनेसे तथा अरोचक के तुल्य पांच प्रकार के होनेसे उसके बाद छर्दिका निदान और उसकी निरुक्ति कहते हैं।

दुष्टैर्दोषैः पृथक् सर्वै र्बीभत्सालोचनादिभिः ॥
छर्दयः पञ्चविज्ञेयास्तासांलक्षणमुच्यते ॥१ ॥
अतिद्रवै रतिस्निग्धैरहृद्यैर्लवणैरपि ॥
अकालेचातिमात्रैश्चतथासात्म्यैश्चभोजनैः ॥ २ ॥
श्रमाद्भयात्तथोद्वेगादजीर्णात्क्रिमिदोषतः ॥
नार्याश्चापन्नसत्वायास्तथातिद्रुतमश्नतः ॥ ३ ॥
बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैर्द्रुतमुत्क्लेशितोबलात् ॥
छादयन्नाननंवेगैरर्दयन्नङ्गभञ्जनैः ॥
निरुच्यते छर्दिरिति दोषोवक्त्रं प्रधावितः ॥ ४ ॥

भाषा-दुष्ट हुए जो दोष वात, कफ, अलगर तथा सब मिले हुए (सन्निपात) इनसे, भयानक चीज़ों के देखनेसे (आदि शब्द जो पड़ा है उससे बुरी गन्ध से तथा पदार्थ खानेसे भी होता है ऐसा समझना) पांच प्रकारके छर्दिरोग जानने उनके लक्षण कहतेहैं बहुत पतले बहुत चिकने, चित्तको जो पसन्द हांवैं और अत्यन्त नोंनके वे समय पर बहुत मात्रामें तथा अहित कर भोजनों के खानेसे श्रमसे भयसे उद्वेगसे अजीर्ण से कृमके दोषसे गर्भवती स्त्री के गर्भको पीड़नेसे (वातके विगुण होनेसे) तथा अत्यन्त जल्द खानेस भयंकर कारणों से और इनके अतिरिक्त और भी कारणोंसे शीघ्र बलसे उत्क्लेशित (दूषित हुआ दोष वेगोंसें मुखको पूरित करता हुआ तथा पीड़ित करता हुआ अंगभेद अर्थात् शरीरके टूटनेस मुखकी ओर दोष दौड़ (आवे) उसको छर्दि ऐसा कहते हैं यह छर्दिकी निरुक्ति है ।

छर्दिके पूर्वरूप का वर्णन करते हैं ।

हृल्लासोद्गाररोधौच प्रसेकोलवणस्तनुः ॥
द्वेषोऽन्नपानेचभृशंव मीनांपूर्वलक्षणम् ॥ ५ ॥

भाषा-उबाकी हो डकार नहीं आवै मुखमें से पानीके कुरलेसे आवैं या लार टपके और नोंनसा घुला रहै खाने पीने में अत्यन्त द्वेष (अरुचि) हो यह वमि (वमन) रोगका पूर्वरूप जानै ॥

वातकी वमनके लक्षण कहते हैं ।

हृत्पार्श्वपीड़ामुखशोषशीर्षनाभ्यर्तिकासस्वरभेदतोदैः ॥
उद्गारशब्दप्रबलंसफेनंविच्छिन्नकृष्णंतनुकंकषायम्॥
कृच्छ्रेण चाल्पं महता च वेगेनार्तोऽनिलाच्छर्दयतीह दुःखम्॥६॥

भाषा–हृदय और पांसुओंमें दर्द हो मुख सूखारहै मस्तक व नाभिमें दर्द हो खांसीहो शब्द साफ२ न निकले डकारमें प्रबल शब्द होवै वमन जब आवै तब भाग सहित ठहर २ कर वमन होय कुछ स्याही लिये होय थोड़ी२ आवै कसैलीसी मालूम पड़ै कष्टसे थोड़ा पदार्थ आवै बड़े वेगसे दुखी होजाय बहुत दुःख होवै यह लक्षण होवै तौ जानै कि यह छर्दिवात के दोष से हुई है ।

पित्तजन्य छर्दिके लक्षण ।

मूर्छापिपासामुखशोषमूर्धताल्वक्षिसन्तापतमोभ्रमार्तः ॥
पीतंभृशोष्णंहरितंसतिक्तं धूम्रं च पित्तेन वमेत्सदाहम्॥ ७ ॥

भाषा—मूर्च्छा प्यासमुखका सूखना शिर तालु आंख इनमें जलन होय अँधेरासा रहै घुमेर आवै पीरा अत्यन्त गरम हरा कडुआहट लिये हुए धूमरे रंगका और जलन पैदा करता हुआ पदार्थ वमन में जिसके आवै यह पित्त से जाननी चाहिये ॥

कफजन्य छर्दिके लक्षण ।

तन्द्रास्यमाधुर्यकफप्रसेक संतोषनिद्रारुचिगौरवार्तः ॥
स्निग्धं घनं स्वादु कफाद्विशुद्धं सरोमहर्षोऽल्परुजंत्रमेत्तु ॥८॥

भाषा-झंपनीसी लगी रहै मुखमें मिठाई का स्वाद हो कफका टपकना सन्तोष नींद अरुचि भारापन इनसे दुखी हो चिकना गाढ़ा स्वाद वाला साफ (विशुद्धके कहने से यहां बहुत सफेद जानना सुश्रुत में "शुक्लंहिमं सान्द्रं कफेन ऐसा पाठ किया है) थोड़ा जिसमें दर्दहो ऐसा पदार्थ जिसमें वमन आवै वह छर्दि कफसे जाननी ॥

त्रिदोषजन्य वमन के लक्षण ।

शूलाविपाकाऽरुचिदाहतृष्णाश्वासप्रमोहप्रबला प्रसक्तम् ॥
छर्दिस्त्रिदोषाल्लवणाम्लनीलसान्द्रोष्णरक्तंवमतांनृणांस्यात् ॥९

भाषा-शूल (दर्द) अविपाक (परिपाक न होना) अरुचि दाह तृष्णा श्वास मूर्च्छा यह जिसमें निरन्तर प्रबल होंय यह छर्दि त्रिदोष से जाननी इसमें वमन करने वाले मनुष्यों के लवण जैसा, खट्टा, नीले रंगका गाढ़ा गरम लाल ऐसा पदार्थ वमन में आता है ॥

उसके असाध्य लक्षण कहते हैं।

विट्स्वेद मूत्राम्बुवहानि वायुः स्रोतांसि संरुध्य यदोर्ध्वमेति
उत्सन्नदोषस्य समाचितं तं दोषं समुद्धूय नरस्य कोष्ठात ॥१०॥
विण्मूत्रयोस्तत्समगन्धवर्णं तृट्श्वासहिक्कार्तियुत प्रसक्तम् ॥
प्रच्छर्दयेदुष्टमिहातिवेगात्तयार्दितश्चाशु विनाशमेति ॥ ११॥

भाषा-वायु जब विष्ठा स्वेद मूत्र और जलके बहने वाला जो स्रोत उनको रोक ऊपरको आवै तब ऊपर आया दोष जिसके ऐसे मनुष्यके बढ़े हुए कफ पित्त दोषों को ऊपरको उठाकर मनुष्यके कोठेसे बाहर निकाल वमन करावै उस वमनमें मलमूत्रकीसी दुर्गंध आवै तथा वर्ण भी मलमूत्रके सदृश होय प्यास, श्वास, खांसी, और शूल ये होंय और यह वमन बारम्बार बड़े वेगसे होय इस वमनसे पीडित मनुष्य थोड़े कालमें नाशको प्राप्तहो यह भी सन्निपातकीहै ॥

आगंतुक छर्दिके लक्षण।

बीभत्सजा दौहृदजाऽमजा च आसात्म्यजा च कृमिजा च या हि
सा पंचमी तां च विभावयेतु दोषोच्छ्रयेणैव यथोक्तमादौ ॥ १२॥

भाषा-बीभत्स नाम मल, राध, रुधिर, आदि अपवित्र वस्तुका देखना, गंध, इत्यादि बातो से स्त्री के गर्भ रहनेंसे, आमसे, अहित भोजनसे अथवा कृमिरोगसे इन कारणों से प्रकटहुई आगंतुज पांचवीं छर्दि होती है। उसमें पूर्वोक्त लक्षणों से जिस दोषके अधिक लक्षण मिलें उसी दोषको प्रबल जानै ॥

कृमिकी छर्दिके लक्षण कहते हैं।

शूलहृल्लासबहुला कृमिजा च विशेषतः ॥
कृमिहृद्रोगतुल्येन लक्षणेन च लक्षिता ॥ १३ ॥

भाषा—कृमिकी छर्दिमें शूल, उबाकी ये विशेष होतेहैं और बहुधा कृमि-

और हृदयरोग इनके लक्षण सदृश लक्षण जानने ।

छर्दिकेसाध्यासाध्य लक्षण ।

क्षीणस्य या छर्दिरतिप्रसक्तासोपद्रवा शोणितपूययुक्ता ॥
सचंद्रिकांतांप्रवदेदसाध्यांसाध्यांचिकित्सेन्निरुपद्रवांच ॥ १४ ॥

भाषा- क्षीण पुरुषके अथवा बारंबार एकसी होनेवाली और कासादि उपद्रवयुक्त और रुधिर राध मिली, और चमकदार ऐसी छर्दी असाध्य है और जो उपद्रवरहित हो उसको साध्य समझकर चिकित्सा करें ।

अन्य आचार्यके मत से छर्दि के उपद्रव ।

कासश्वासौ ज्वरो हिक्का तृष्णा वैचित्यमेव च ॥
हृद्रोगस्तवकश्चैव ज्ञेयाश्च्छर्देरुपद्रवाः ॥ १५ ॥

भाषा—खांसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, तृषा, बेचैनी हृदयरोग, अँधेरा आना ये छर्दिरोगके उपद्रव हैं ॥

इतिश्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसुनु शा० सोहनलाल विद्याभूषण
विरचितायां माधवनिदास्य सुबोधिन्यां टीकायां
छार्दरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ तृष्णा निदानम् ।

भयश्रमाभ्यां बलसंक्षयाद्वाऊर्ध्वं चितं पित्तविवर्धनैश्च ॥
पित्तं सवातं कुपितं नराणांतालुप्रपन्नं जनयेत्पिपासाम् ॥ १

भाषा—भयसे, श्रमसे, बलके क्षीणहोनेसे और पित्तके बढानेवाले क्रोध उपवासादिकोंसे अपने स्थानमें संचित हुआ जो पित्त वह वात सहित कुपित होकरऊपरतालुए(प्यासकास्थान)में प्राप्तहोकर तृष्णा(प्यास)कोउत्पन्नकरै। यहां तालुको उपलक्षणमात्र जानै । तालुके कहनेसे क्लोमस्थान (हृदयमें जो प्यासका स्थान है उसकोभी ग्रहण करते हैं क्योंकि वहही प्यासका स्थान है जैसा कि चरकाचार्यने लिखा है ॥

रसवाहिनी श्च धमनी जिह्वामूलगलतालुक्लोम्नः ।

संशोष्य नृणां देहे कुरुतस्ततृषामतिवलांतौतु ॥

भाषा-वेदोनों पित्तवात मनुष्यों को रस वाहिनी नाडियों को और जीभ के मूल और गले तालु तथा क्लोमनाम पिपासास्थान को सुखाकर तृष्णारोगको पैदा करते हैं ॥

अन्नजन्यादिक तृष्णारोगकी संप्राप्ति कहते हैं।

स्रोतःस्त्वपां वाहिषु दूषितेषु दोषैश्च तृट्संभवतीहजंतोः ॥
तिस्रः स्मृतास्ताः क्षतजा चतुर्थी क्षयात्तथा ह्यामसमुद्भवा च॥
भक्तोद्भवा सप्तमिकेति तासां निबोध लिंगान्यनुपूर्वशस्तु॥२

भाषा—जलके बहनेवाली जो नस उनके दूषित होनेसे दोष (अन्न,कफ और आम) से मनुष्यके तृष्णा होतीहै वह तीन प्रकारकीहै और चौथी क्षतज तृष्णा जो व्रणवाले पुरुषके होती है पांचवीं क्षयसे होतीहै छठी आमसे होती हैं,सातवीं अन्न खानेसे होतीहै। उनके लक्षण क्रमपूर्वक जाने ऐसा अर्थहै ॥ इनमें पहिली चार तृष्णा सुखसाध्य हैं और बाकीकी तीन कष्टसाध्य हैं ॥

वातकी तृष्णाके लक्षण कहते हैं।

क्षमास्यता मारुतसंभवायां तोदस्तथा शंखशिरःसु चापि ॥
स्रोतोनिरोधो विरसं च वक्रंशीताभिरद्भिश्च विवृद्धिमेति॥३॥

भाषा-वातसे उत्पन्नहुई तृष्णा (प्यास) से मुख मुरझायासारहै अथवा व्यथा होय कनपटी और माथा इन ठिकाने सुई चुभानेके समान तकलीफ होय,रस और जल बहनेवाली नाडियोंका मार्ग रुकजाय, मुख का जायका खराबहोय और शीतल जलके पीनेसे प्यास बढे और चकार के कहने से चरक में कहे हुए निद्रा नाश आदिका ग्रहण करना यथा- निद्रानाशःशिरसोभ्रमस्तथा शुष्कगलतालुः ऐसा चरक वाक्य है। निद्राका नाश होय।

पित्तकी तृष्णाके लक्षण कहते हैं।

मूर्च्छान्नविद्वेषविलापदाहा रक्तेक्षणत्वं प्रततश्च शोषः॥
शीताभिनंदा मुखतिक्तता च पित्तात्मिकायांपरिदूयनं च॥४॥

भाषा-पित्तकी प्यासमें मूर्छा,अन्नमें अरुचि बडबड जलन नेत्रों की लाली होना अत्यंत शोष ठंडी चीजों में इच्छा, मुखमें कडवापन और सन्ताप ये लक्षण होते है ॥

कफकी तृष्णाके लक्षण ॥

बाष्पावरोधात्कफसंवृतेऽग्नौ तृष्णाबलासेन भवेत्तथा तु ॥

निद्रा गुरुत्वं मधुरास्यता च तृष्णार्दितःशुष्यति चातिमात्रम्॥५

भाषा-आंसु आदिके रोकने से कफसे अन्तराग्निको घिरजाने पर जो प्यास पैदा होती है वह कफसे जाननी उसमें यह लक्षण होते हैं यथा नींद का आना शरीर का भारापन मुँहका मीठापन प्यास से अत्यन्त दुःखी हो और अत्यन्त सुखताजाय ॥

क्षतजन्य तृष्णाके लक्षण ॥

क्षतस्य रुक्शोणितनिर्गमाभ्यां तृष्णा चतुर्थी क्षतजा मता तु॥

भाषा-हथियार आदिकी चोट लगनेसे घाव होनेपर पीड़ाहो और रुधिरका स्राव होनेसे जो तृष्णा होतीहै वह चौथी क्षतज तृष्णा जाननी ॥

क्षयजन्य तृष्णाके लक्षण ।

रसक्षयाद्या क्षयसंभवा सा तयाभिभूतस्तु निशादिनेषु ॥ ६ ॥
पेपीयतेऽम्भः स सुखं न याति तां सन्निपातादिति केचिदाहुः ॥
रसक्षयोक्तानि च लक्षणानितस्यामशेषेण भिषग्व्यवस्येत् ॥७॥

भाषा-रसक्षयसे जो प्यास होय उसमें जोलक्षण होते हैं सो सब क्षयज तृष्णामें होते हैं उससे दुःखी मनुष्य रात्रिमें दिनमें बारबार पानी पीवे परन्तु तबभी उसको सुख न मिले।उसको कोई आचार्य सन्निपातसे प्रगट हुई कहते हैं । १) रसक्षयके जो लक्षण कहे वे सबप्रकार होतेहैं इसमें इसप्रकार वैद्यविचारे ।

आमजन्य तृष्णाके लक्षण ॥

त्रिदोषलिंगाऽऽमसमुद्भवा तु हृच्छूलनिष्ठीवनसादकर्त्री ॥८॥

भाषा—आमजा नाम अजीर्णसे जो तृष्णा होय उसमें तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं हृदयमें शूल, लारका गिरना, ग्लानि ये सब होते हैं ॥

अन्नजन्य तृष्णाके लक्षण ।

स्निग्धं तथाम्लं लवणं च भुक्तं गुर्वन्नमेवाशु तृषां करोति ॥

भाषा—चिकने खट्टे नोन के और कडुए, कषले आदि, पदार्थ के खाने से तथा मात्राधिक्य और भारी अन्न खाने से अवश्यही शीघ्र प्यास को प्रगट करे । हृद्वल आचार्यने पांचही प्रकार की तृष्णा कही है । बातकी, पित्तकी, क्षयकी, आमकी उपसर्गकी । तहां कफकी और आमकी

१रसक्षये हृत्पीडा कंपशोशबाधिरता तृष्णा च ॥ इति ।

तृष्णा के अंतर्गत कहा है और क्षतजा वातकी तृष्णाके अंतर्गत जाननी और अन्नजाभी वातकी तृष्णाके अंतर्गत कही है क्योंकि भोजनसे वातका कोप होता है। सुश्रुतने तो मद्यके प्रकरणमें मद्यकी तृष्णा कही है परन्तु माधवाचार्यने सातही तृषा जो कही है वह समझना चाहिये दृढबलाचार्य के मतसें मद्यकी तृषाको वातका तृषाके अन्तर्गत होनेसे समझना चाहिये ॥

उपसर्गजन्य तृषा के लक्षण ।

दीनस्वरःप्रताम्यन्दीनः स शुष्कवक्त्रगलतालुः ॥
भवतिखलयोपसर्गा तृष्णा सा शोषिणी कष्टा ॥९॥
ज्वरमोहक्षयकासश्वासाद्युपसृष्टदेहानाम् ॥१०॥

भाषा-झीनी बोली बोलै, मोहको प्राप्त हो ग्लानिसी होय, मुख गला और तालु सूख जाय ये लक्षण के कारण और व्याधि से शरीर कृश होने वाला जो रोगी हो तहां उपसर्ग सहित तृष्णा रोग जाना यह कष्टसाध्य होती है। इसके उपद्रव ये हैं। ज्वर, मोह, क्षय, खांसी, श्वास आदिशब्दसे अतिसारादिकों का ग्रहण करना ये रोग जिसके जिसके होंय उसकी तृष्णा कष्टसाध्य जाननी।

असाध्य तृष्णाके लक्षण कहतेहैं ।

सर्वास्त्वतिप्रसक्ता रोगकृशानां वमिप्रसक्तानाम् ॥
घोरोपद्रवयुक्तास्तृष्णा मरणाय विज्ञेयाः ॥११॥

भाषा—वातजादि सब प्रकारकी तृष्णा अत्यन्त बढ़ी हुई रोगों से कृश हुए पुरुष को जोतृष्णा छर्दि से प्रगट हुई जो तृष्णा और भयंकर उपद्रवों से युक्त यह तृष्णा मारनेवाली जाननी।

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामिसूरिसूनु शा॰ सोहनलाल विद्याभूषण
विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां
तृष्णानिदानं समाप्तम् ।

मूर्च्छाभ्रमतन्द्रानिन्द्रासन्यासनिदानम्

तृष्णा में मोह होता है और मोहकोही मूर्छा कहतेहैं इससे तृष्णाके पीछे मूर्च्छाका वर्णन करते हैं,उसके निदान और संप्राप्ति इसप्रकार जानै।

क्षीणस्य बहुदोषस्य विरुद्धाहारसेविनः ॥
वेगाघातादभिघाताद्धीनसत्वस्य वा पुनः ॥ १ ॥
करणायतनेषूग्रा बाह्येष्वाभ्यंतरेषु च ॥
निविशंते यदा दोषास्तदा मूर्च्छंति मानवाः ॥ २ ॥
संज्ञावहासु नाडीषु पिहितास्वनिलादिभिः ॥
ततोऽभ्युपैति सहसा सुखदुःखव्यपोहकृत् ॥ ३ ॥
सुखदुःखव्यपोहाच्च नरः पतति काष्ठवत् ॥
मोहोमूर्च्छेतितामाहुः षड्विधा सा प्रकीर्तिता ॥४॥
वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च ॥
षट्स्वप्येतासुपित्तं तु प्रभुत्वेनावतिष्ठते ॥ ५ ॥

भाषा-क्षीण पुरुष के, बहुत दोषों से व्याप्त पुरुष के विरुद्ध आहार दूध मछलीआदिक को सेवन करनेवाले के मलमूत्रादि वेगको धारण करने वाले के हथियारों आदिकी चोट लगनेसे अथवा जिस पुरुषका बल घटगया हो ऐसे बाहर की और भीतरकी मनके बहनेवाली नाडियों में दोष प्रवेश करते हैं तब मनुष्य मूर्छा को प्राप्त होते हैं संज्ञा बहनेवाली नाडियों में वातादि दोषों करके आच्छादित होने से सुख दुःख का ज्ञान नष्ट होय तब मनुष्य पृथ्वीपर काष्ठकीसी तरह गिरे। इसरोगको (१) मूर्छा अथवा मोह कहतेहैं बाहरकी इन्द्रियें नेत्र कान आदि कर्मेन्द्रियें और बुद्धीन्द्रियें इनमें बलवान् दोष (वात, पित्त, कफ) प्रवेश कर संज्ञाकी बहनेवाली जो नाडी तिसको वह वात, पित्त, कफ रोग अंधकार को प्रगट करे तब मनुष्य काष्ठ की भांति पृथ्वीपर गिरे उस ही को मूर्छा कहते हैं अथवा मोह कहते हैं। वह मूर्छा छः प्रकार की है। वात, पित्त, कफसे और रुधिर, विष और मद्य इन भेदों से छः प्रकार की छओं मूर्छाओं में पित्त ही मुख्य होकर रहता है।

मूर्च्छा का पूर्व रूप कहते हैं।

हृत्पीडा जृंभणं ग्लानिः संज्ञादौर्बल्यमेव च ॥
सर्वासां पूर्वरूपाणि यथास्वं तां विभावयेत्॥ ६ ॥

१ उक्तं चाभिधानांतरे-"संज्ञोपघाते मूर्च्छा या मूर्च्छा स्यान्मूर्च्छनं तथा। कश्मलं प्रलयो मोहः सन्यासस्तु मृतोपमः ॥" इति।

भाषा-हृदयमें पीडा, जंभाई, ग्लानि, अच्छी प्रकार से चीजको न पहचानना ये सब मूर्छाओं के पुर्वरूप हैं । इसको यथायोग्य जानौ अर्थात् जिस लक्षण का जहां समावेश हो वै वैसा समझे ।

बातकी मूर्छा के लक्षण कहते हैं ।

नीलं वा यदि वा कृष्णमाकाशमथ वाऽरुणम् ॥
पश्यंस्तमः प्रविशति शीघ्रं च प्रतिबुद्धयते ॥ ७ ॥
वेपथुश्चांगमर्दश्च प्रपीडा हृदयस्य च ॥
कार्श्यं श्यावारुणाच्छाया मूर्च्छाये वातसंभवे ॥ ८ ॥

भाषा-नीले रंगका अथवा काले रंगका तथा लाल रंगके आकाश को जो आदमी देखे पीछे एकदम अंधकार से में डूबजाय थोड़ी देर बादही होश में आयजाय, देहमें कंप, कभी अंगका टूटना, हृदयको पीडा होय, शरीरका कृशहोना, काली लाल परछाईदीखे यह वातकी मूर्छाके लक्षणजानना

पित्तकी मूर्च्छा के लक्षण कहते हैं ।

रक्तं हरितवर्णं वा वियत्पीतमथापि वा ॥
पश्यंस्तमः प्रविशति स्वेदश्च प्रतिबुद्धयते ॥ ९ ।
सपिपासः ससंतापो रक्तपीताकुलेक्षणः ॥
संभिन्नवर्चाः पीताभो मूर्च्छाये पित्तसंभवे ॥ १० ॥

भाषा लाल, हरे, पीले आकाश को देखै और फिर अंधकार में गिरजाय और जब होश आवै तब पसीना आजाय प्यास संताप इनसे युक्तहो लाल, पीले, और व्याकुल नेत्रहों, मल पतला होय, देहका वर्ण पीला हो ये लक्षण पित्तकी मूर्च्छा के हैं ।

कफकी मूर्च्छा के लक्षण कहते हैं ।

मेघसंकाशमाकाशमावृतं वा तमो घनैः ॥
पश्यंस्तमः प्रविशति चिराच्च प्रतिबुद्धयते ॥ ११ ॥
गुरुभिः प्रावृतैरंगैर्यथैवार्द्रेण चर्मणा ॥
सप्रसेकः सहृल्लासो मूर्च्छाये कफसंभवे ॥ १२ ॥

भाषा कफकी मूर्छा में आकाश को मेघके समान अथवा अंधकार के समान अथवा बादर इनसे व्याप्त देखकर मूर्छागत होय, देरमें होश आवे

भारी बोझा देहपर भारसा मालूम होय अथवा गीला चमड़ा धारण किया मालूम होय, मुखसे लार बहे कै सी आती मालूम हो ।

सन्निपातकी मूर्छा के लक्षण कहते हैं ।

सर्वाकृतिः सन्निपातादपस्मार इवापरः ॥
स जंतुं पातयत्याशु विना बीभत्सचेष्टितैः ॥ १३ ॥

भाषा–सन्निपातकी मूर्छा में सब दोषों के लक्षण होते हैं यह दूसरा अपस्मार समान जानना चाहिये । परन्तु अपस्मार में दांतों का चबाना, मुख से झागका गेरना, नेत्रों का हाल औरही प्रकारका होजाना इत्यादिक लक्षण होते हैं सो इस रोग में नहीं होतें, इतनाही भेद हैं । यह त्रिदोष रोग भयंकर चेष्टाओं के बिना आदमी को मार देता है ।

रक्तकी मूर्छा के लक्षण ।

पृथिव्यापस्तमोरूपं रक्तगंधस्तदन्वयः ॥
तस्माद्रक्तस्य गंधेन मूर्च्छंति भुवि मानवाः ॥
द्रव्यस्वभाव इत्येके दृष्ट्वा यदभिमुह्यति ॥ १४ ॥

भाषा-पृथ्वी और जल ये दोनों तमोगुणविशिष्ट हैं और रुधिरकी गंधभी उन दोनोंसे अर्थात् पृथ्वी और जलसे प्रगटहै इससे रक्त गंधभी तमोगुणविशिष्ट हुई इसीसे जो तामसी पुरुषहैं वे रुधिरकी गंधसे ही मूर्छित होते हैं । जो राजसी, सात्विकी पुरुष हैं वे मूर्च्छित नहीं होते । चंपक (चम्पा आदिके पुष्पकी गंधसे भी मूर्च्छा होना क्योंकि उसमें भी पार्थिव अर्थात् तामसगुणविशिष्ट गंध है "द्रव्यस्वभावमित्ये के" अर्थात् कोई आचार्यों क मतसे कि यह द्रव्यकाही स्वभाव है अर्थात् रुधिर का यही स्वभाव है कि जिसकी गंधसेही मनुष्य मूर्छित होजाता है इसवास्ते उनसे मूर्छा नहीं होती । अब प्रभावको औरभी दृढ़ करते हैं । "दृष्ट्वा यदिभिमुह्यति" अर्थात् रक्तके देखनेसे भी मूर्छित होय है सो लिखाभी है ।

विष और मद्यसे उत्पन्न मूर्छाको कहते हैं ।

गुणास्तीव्रतरत्वेन स्थितास्तु विषमद्ययोः ॥
त एव तस्मत्ताभ्यांतु मोहौस्यातांयथेरितौ ॥ १५ ॥

भाषा-तैलादिकों में जो दश गुण हैं वेही गुण विष और मद्यमें अत्यंत तीव्रता से रहते हैं। इसीसे विष और मद्यके सेवन करनेसे मोह होता है इसमेंभी मद्यमें तीव्र रहता है और विषमें तीव्रतर रहता है इसीसे विषका मोह स्वयं शांत नहीं होताहै क्यों कि विष का पाक नहीं होता और मद्यका मोह मद्यकी नसा उतरेपर शांत होजायहै। यह भेद विष और मद्यमें रहताहै।

रक्तजादि तीन मूर्च्छाओंके लक्षण कहते हैं।

स्तब्धांगदृष्टिस्त्वसृजामूढोच्छ्वासश्चमूर्च्छितः ॥ १६ ॥
मद्येनविलपञ्छेते नष्टविभ्रांतमानसः ॥
गात्राणिविक्षिपन्भूमौ जरांयावन्नयातितत् ॥१७॥
वेपथुस्वप्नतृष्णाःस्यु स्तमश्चविषमूर्च्छिते ॥
वेदितव्यं तीव्रतं यथास्वं विषलक्षणैः ॥ १८ ॥

भाषा-रुधिरकी मूर्छामें अंग और नेत्र निश्चल हो जाते हैं और श्वास अच्छे प्रकार नहीं जाती। बहुत मद्यके पीनेसे जो मूर्छा हो उसके ये लक्षण हैं। बहुत बके, सो जाय, संज्ञा जाती रहे, भ्रमयुक्त होय और जबतक मद्य न पचे तबतक पृथ्वीमें हाथ पैर पटके। विषजन्य मूर्छामें कांपे, सोवे, प्यास लगे और अंधेरा आवे। एवं मल, मूत्र, दूध इनके भेदकर जो विष भक्षणसे लक्षण होते हैं सो सब लक्षण होते हैं।

मूर्छा, भ्रम, तन्द्रा और निद्रा इनके भेद कहते हैं।

मूर्च्छापित्ततमप्रायाःरजःपित्तानिलाद्भ्रमः ॥
तमोवातकफात्तन्द्रा निद्राश्लेष्मतमोभवा ॥ १९ ॥

भाषा-मूर्च्छामें पित्त और तमोगुण अधिक रहते हैं। रजोगुण, पित्त और वायु इनसे १ भ्रम होयहै तमोगुण,वायु और कफ इनसे तन्द्रा और कफ तथा तमोगुण इनसे निद्रा उत्पन्न होती है ॥

तन्द्राके लक्षण।

इन्द्रियार्थेष्वसंवित्ती गौरवंजृंभणंक्लमः ॥
निद्रार्त्तस्येवयस्येहातस्यतन्द्राविनिर्दिशेत् ॥ २० ॥

भाषा-इन्द्रियें अपने अपने विषयको ग्रहण न करें, देह भारी हो जाय अर्थात् सुस्त होजाय,जंभाई और खेद२ होय ये लक्षण निद्रार्त पुरुषके सदृश

१ तत्र भ्रमः स्थाणौ पुरुषज्ञानं पुरुषे विपरीतस्त्वाज्ञानादिकम्। अन्य चक्रस्थितस्येव संभ्रमवस्तुदर्शनम् ॥ इति २ "यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः। विषयेभ्यो निवर्तंते तदा स्वपिति मानवः

जिसके होय उसको तन्द्रा कहते हैं । इसमें आधे नेत्र खुले रहते हैं । निद्रामें इन्द्रियां और मनको मोह होताहै । तन्द्रामें केवल इन्द्रियोंकोही मोह होताहै निद्रा और भ्रम ये दोनों अतिप्रसिद्ध होनेसे माधवने नहीं कहे, परन्तु चरकमें कहे हैं । सो इस प्रकार, जिस समय मन और इन्द्रिय खेदको प्राप्त होय और अपने विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) त्याग देय, तब यह मनुष्य को निद्रा आती है ।

सन्यास के भेदको कहते हैं ।

दोषेषु मदमूर्च्छाद्यातगवेगेषु देहिनाम् ॥
स्वयमेवोपशाम्यंति संन्यासो नौषधैर्विना ॥ २१

भाषा-दोषों का नष्ट होनेसे मदमूर्छादिक अपने आप शांत हो जाते हैं परन्तु संन्यास यह औषधके बिना शांत नहीं होता है ।

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसुनु सोहनलाल विद्याभूषण
विरचितायां माधव निदानस्य सुबोधिन्यां टीकाया
मरोचक निदानं समाप्तम् ॥

पानात्ययपरमदपानाजीर्णपानाविभ्रमनि

मूर्च्छामद्येन च विषेण च, इस वचन से मूर्छा के अनन्तर मद्यके जो विकार मदात्यय आदि उनका वर्णन करते हैं ।

येविषस्य गुणाःप्रोक्तास्तेपिमद्ये प्रतिष्ठिताः ॥
तेनमिथ्योपयुक्तेनभवत्युग्रोमदात्ययः ॥ १ ॥

भाषा-जो विषके गुण कहे हैं वे ही मद्यमें स्थित हैं उसके बेजा प्रयोग करने से उग्र (कठिन) मदात्यय रोग पैदा होता है । उसकी यथार्थ विधि चरकमें विस्तार पूर्वक लिखी है ।

किन्तुमद्यंस्वभावेन यथैवान्नं तथास्मृतम् ॥
अयुक्तियुक्तंरोगाय युक्तियुक्तं यथामृतम् ॥ २ ॥
प्राणाःप्राणभृतामन्नं तदयुक्त्याहिनस्त्यसून् ॥
विषं प्राण हरंतच्च युक्तियुक्तं रसायनम् ॥ ३ ॥

भाषा-किन्तु मद्य स्वभाव से जैसा अन्न है इसप्रकार समझना चाहिये वहही मद्य बिना विधिके सेवन किया हुआ रोग को पैदा करता है और युक्ति पूर्वक प्रयोग किया हुआ जैसे अमृत होता है उस प्रकार जाने जैसे देहधारियों के अन्नप्राण वर्णन किये गये हैं वह अन्नही युक्तिको छोड़कर प्रयोग किया हुआ विसूची आदि रोगों को पैदाकर प्राणों को नष्ट कर देताहै वह विष हैं प्राणको हरण करता है और युक्ति पूर्वक सेवन किया हुआ रसायन समझना ।

विधिपूर्वक मद्यके उपयोग का फल कहते हैं ।

विधिनामात्रयाकाले हितैरन्नैर्यथाबलम् ॥
प्रहृष्टोयः पिबेन्मद्यं तस्यस्यादमृतोपमम् ॥ ४ ॥
स्निग्धैस्तदन्नैर्मांसैश्चभक्ष्यैश्चसहसेवितम् ॥
भवेदायुः प्रकर्षाय बलायोपचयाय च ॥ ५ ॥
काम्यता मनसस्तुष्टिस्तेजोविक्रम एव च ॥
विधिवत्सेव्यमानेतुमद्येसन्निहिता गुणाः ॥ ६ ॥

भाषा-विधिसे और मात्राके साथ समयपर हितके अन्नों से जैसे बल पैदा होता है ऐसे ही प्रसन्न मनुष्य उपरोक्त विधिसे जो मद्यको सेवनकरै तो उसको अमृत के समान होताहै चिकनाई तथा चिकने अन्न और मांस तथा भक्ष्य पदार्थों के साथ सेवन किया हुआ आयुके बढानेवाला तथा बलके बढ़ाने वाला होताहै । मूर्ति में सौन्दर्य आना दिल खुश होना तेज पराक्रम यह गुण विधिसे सेवन किये मद्य में होते हैं।उक्त विधिसे विपरीत सेवन किया हुआ मद्य मदात्यय रोग को पैदा करता है और वह तीन प्रकार का होता है पूर्व मध्यम और अन्तिम उनके क्रमसे लक्षण कहते हैं ।

प्रथममद के लक्षण कहते हैं ।

बुद्धिस्मृतिप्रीतिकरः सुखश्च पानान्ननिद्रारतिवर्धनश्च
संपाठगीतस्वरवर्धनश्च प्रोक्तोतिरम्यः प्रथमोमदोहि ॥ ७ ॥

भाषा-बुद्धि (अनुभव) स्मृति (अनुभव किये हुए विषयका अनुसन्धान) और प्रीति इनको करै और सुखकर हो पीने खाने सोने आदिमें अनुराग बढ़ावै संपाठ (अच्छे प्रकार) किसी ग्रन्थ वगैरह का पाठ करना (संपाठ्य,

ऐसा पाठ गयादासने अपने ग्रन्थ में लिखकर गाना व नाचना बजाना इन सबको मिलाकर अर्थ किया है) गाना स्वर (ध्वनि) इनके बढ़ाने वाला ऐसा प्रथम मद कहा है यह अत्यन्त रमणीय अत्यन्त रमणीय का स्पष्ट अर्थ यह लिखा है कि मनको विकारकारी होनेपर भी उस हालत में दुःख नहीं होताहै इसहीसे सुश्रुताचार्यने मनोजन्य विकारोंमें हर्ष इसका पाठ कियाहै ऐसा समझना

दूसरे मद के लक्षण कहते हैं ।

अव्यक्त बुद्धिस्मृति वाग्विचेष्टाः सोन्मत्त लीला कृतिरप्रशान्तः।
आलस्य निद्राभिहतो मुहुश्च मध्येन मत्तः पुरुषो मदेन ॥८॥

भाषा—बुद्धि स्मृति वाणी इनकी चेष्टा साफ़ नहीं होय विरुद्ध चेष्टा करै बावले कीसी लीला और आकृति करै अशान्त हो (प्रचण्ड हो) आलस्य निद्रा इनसे पीडित होय ऐसे लक्षण वाला पुरुष मध्यम मदसे मत्तहोता बार बार जानना चाहिये ।

तृतीय मदके लक्षण कहते हैं ।

गच्छेदगम्यान्न गुरूँश्च मन्येत् खादेदमक्ष्याणि च नष्टसंज्ञः ।
ब्रयाच्च गुह्यानि हादिस्थितानि मदे तृतीये पुरुषोऽस्वतंन्त्र ॥९॥

भाषा—गमन करने योग्य जो न होय ऐसे स्त्री,पुरुषों को गमन करै गुरु (बड़े) लोगों को नमाने अभक्ष्य पदार्थों को खावै होश हवाश न होय हृदय म स्थित जोबातें उन को कहै यह लक्षण तृतीयमद में जो पुरुष मत वाला होता है उस होते हैं ॥

चतुर्थमद के लक्षण कहते हैं ।

चतुर्थे तुमदे मूढो भग्नदार्विवानिष्क्रियः ॥
कार्याकार्यविभागाज्ञोमृतादृप्यपरो मृतः ॥ १० ॥
कोमदंतादशंगच्छेदुन्मादमिवचापरम् ॥
बहुदोषमिवामूढः कान्तारंस्ववशः कृती ॥ ११ ॥

भाषा—चौथे मद में मनुष्य मूर्ख तुल्य होता है टूटी लकड़ी के तुल क्रिया रहित होता है कार्य और अकार्य के विभाग में अज्ञान (यानी कौनकार्य करना चाहिये और कौन नहीं करना चाहिये मरे हुए से भी ज्यादा मरासा होता है यानी यहां पर दुःख की सीमा का उल्लंघन किया है ऐस मदका दूसरे बावलपन के तुल्य को न मनुष्य प्राप्त करे बहुत दोष वालेजंग

को स्वधीन प्रकृति वाला चतुर मनुष्य जैसे नहीं जाने की इच्छा करता इस ही प्रकार कोई भी चतुर मनुष्य नहीं चाहता यह उसका स्पष्ट अर्थ है ॥

वे विधिके मद्य सेवनसे जो और विकार होते हैं उनको कहते हैं ।

निर्भक्तमेकान्तत एवमद्यं निषेव्यमाणं मनुजेन नित्यम् ॥
आपादयेत्कष्टतमान्विकारा नापादयेच्चापि शरीरभेदम् १२

भाषा—जिस पुरुषने विना अन्न के निरंतर मद्यपान कियाहो वह मद्य अत्यन्त दुःखदायक विकारों (पानात्यय आदि) को पैदा करता है और शरीर का भेद भी करता है ॥

अन्न के साथ सेवन किये हुएभी क्रुद्धत्व आदि कारणों कें साथ मद्यके विकार करने के भावों की दिखाते है ।

क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन ॥
व्यायाम भाराध्व परिक्षतेन वेगावरोधाभिहतेन चापि। १३।
अत्यम्बुभक्षावततोदरेण साजीर्ण भुक्तेनतथाऽबलेन ॥
उष्णाभितप्तेन च सेव्यमानं करोति मद्यं विविधान्विकारान् १४

भाष—क्रोध करने वाले डरे हुए प्यास शोकसे दुःखी हुए भूखे कसरत व बोझ उठाना और ज्यादा रस्ता चलना उस से क्षीण हुए वेगों के रोकने से पीडित हुए उससे भी बहुत पानी व खाने से पूर्ण जिसका पेट हो अजीर्ण में और खाने वाले तथा जो निर्बल हो और गरमी से दुःखी जो हो ऐसे मनुष्य के द्वारा सेवन किया हुआ मद्य अनेक प्रकारके विकारों को पैदा करताहै ।

वह मद्य जो विविध विकारों का पैदा करता है वह कौ न से विकार है उनका वर्णन करते हैं ।

पानात्ययं परमदं पानाजीर्णमथापिवा ॥
पान विभ्रम मुग्रंच तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ १५ ॥

भाषा-पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और उग्र पान विभ्रम यह विकार होते हैं उनके लक्षण कहूंगा ॥

पूर्वोक्तों के लक्षण कहते हैं ।

हिक्का श्वासशिरःकम्पपार्श्वशूलप्रजागरैः ॥
विद्याद्बहुप्रलापस्य वातप्रायंमदात्ययम् ॥ १६ ॥

तृष्णादाहज्वरस्वेद मोहातीसार विभ्रमैः ॥
विद्याद्धरितवर्णस्य पित्तप्रायंमदात्ययम् ॥ १७ ॥
छर्द्यरोचकहृल्लासतन्द्रास्तैमित्यगौरवैः ॥
विद्याच्छीतपरीतस्य कफप्रायंमदात्ययम् ॥ १८ ॥
ज्ञेयस्त्रिदोषजश्चापि सर्वलिङ्गैर्मदात्ययः ॥ १८ ॥

भाषा—हुचकी,श्वास,माथेका घूमना,पांसुओं मैं दर्द, जागना इन लक्षणों से बहुत जोवक झक करै उसके बात जिसमें प्रधान ऐसा मदात्य रोग जानै। प्यास, दाह ज्वर, पसीना, मूर्छा अतिसार विभ्रम (वहम) इन लक्षणोंसे देह का रंग हरा पीरासा होगया हो जिसका उसके पित्त जिसमें प्रधान ऐसा मदात्यय रोग जानै अर्थात् यह लक्षण पित्त प्रधान मदात्ययके लक्षण जानने वमन (उलटी) अन्नमें अरुचि उबकाई तन्द्रा (झपनी) देहगीली, भारी, इन लक्षणोंसे युक्त और ठण्ड जिसको लगै ऐसे पुरुषके कफ प्रधान मदात्यय जानै जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते होवें उसको सन्निपात प्रधान मदात्यय रोग जानना चाहिये ॥

परमद के लक्षण कहते हैं

श्लेष्मोच्छ्रयोगगुरुता विरसास्यताच विण्मूत्रसक्तिरथतन्द्रिररोचक श्च ॥ लिङ्गं परस्य च मदस्य वदन्ति तज्ज्ञा स्तृष्णा रूजाशिरासि सन्धिषुचापिभेदः ॥ १९ ॥

भाषा—कफका उच्छ्रय (कोप) यहां नाकके झरने आदिसे कोप जानना अङ्गका भारापन मुखमें जायका का न आना विष्टा और मूत्रका रुकना झपनी और अरुचि तृष्णा माथेमें दर्द अर्थात् हड़फूटन यहलक्षण आयुर्वेद शास्त्र के ज्ञाता परमद रोग के वर्णन करते हैं ॥

पानाजीर्ण के लक्षण कहते हैं

आध्मान मुग्रमथ चोद्गिरणं विदाहः ॥
पानेऽजरां समुपगच्छाति लक्षणानि ॥

भाषा—उग्र अफरा (पेटका बहुत फूलना) वमन वा डकार दाह होना यह लक्षण जब मद्यपान अजीर्ण अवस्था को प्राप्त होता है तब होते हैं ॥

पान विभ्रम के लक्षण कहते हैं

हृद्गात्रतोदकफसंस्रवकण्ठधूमा मूर्च्छावमिज्वरशिरोरुजन प्रदाहाः ॥ २० ॥ द्वेषः सुरान्नविकृतेष्वपि तेषु तेषु तंपान विभ्रम मुशन्त्य खिलेन धीराः ॥

भाषा-हृदय, शरीर इनमें व्यथा होना कफका झरना, कंठमें धूमसा भरा रहै मोह हो वमन, ज्वर, शिरमें, पीड़ाहो दाहहो सुरा के विकार जो मेरे य आदि तथा अन्नके विकार पेठा लड्डू आदि इनमें अरुचि हो उसको सम्पूर्ण रूपसे धीर विद्वान) पान विभ्रम ऐसा कहते हैं (इच्छा करते हैं) यह पर मद आदि ३ चरक में नहीं कहेहैं इनको सन्निपात के भीतरही मान लिये हैं और सुश्रुत में तो अलग२ ही कहे गये हैं ॥

इनके असाध्य लक्षण कहते हैं

हीनोत्तरौष्ठमतिशीतममन्ददाहंतैलप्रभास्यमपिपानहतंत्यजेत्तु२१ जिह्वौष्ठदंतमसितं त्वथवापिनीलं पीतेचयस्यनयने रुधिरप्रभेवा ॥

भाषा-ऊपर का होठ कुछ छोटा पड़ जाय शरीर में ठंड बहुत लगे बहुत जलन होय तेलसे लिसासा मुख रहै जीभ ओंठ दांत ये जिसके काले पड़जांय अथवा लीले पड़जांय पीले जिसके नेत्रहों अथवा लालरंग के होय ऐसा जो पानेस नष्ट हुआ मनुष्य उस को वैद्य छोड़ देवे ॥

मद्यके उपद्रव कहते हैं ॥

हिक्काज्वरौ वमथुवेपथुपार्श्वशूलाः ॥
कासभ्रमावपिचपान हतं भजन्ते ॥ २२ ॥

भाषा—हिचकी, ज्वर, थुकथुकी, कांपना पांसुओं में दर्द खांसी घुमेर यह उपद्रव जो मनुष्य मद्यपान करने से नष्ट होगया हो उसके होते हैं इन उपद्रवोंस कुछ साध्य होता है असाध्य नहीं समझना क्योंकि असाध्य लक्षणों से जो इनका अलग पाठ किया है इससे जेज्जटाचार्य का मत है और चरक में ध्वंस और विक्षेपक मद्यके विकार कहे हैं उनको कहते हैं ।

चरके यथा ।

विच्छिन्नमद्यः सहसा योतिमद्यंनिषेवते ॥
ध्वंसोविक्षेपकश्चैव रोगस्तस्योपजायते ॥

भाषा-मद्य जिससे कुछ दिनको छूटगया हो और फिर जो यकायक अटूट मद्य का सेवन करै उसके ध्वंस, और विक्षेपक यह रोग उस आदमी के पैदा होते हैं ॥

ध्वंसक के लक्षण।

श्लेष्मप्रसेकः कण्ठास्य शोषः शब्दासहिष्णुता ॥
तन्द्रा निद्राभियोगश्च ज्ञेयं ध्वंसकलक्षणम् ॥

भाषा—कफका झडना कण्ठ और मुंहका सूखना शब्द में सहन शक्ति न हो झंपनी सी हो। नींदभी सतावै यह लक्षण ध्वंसक के जानने।

विक्षेपक के लक्षण।

हृत्कण्ठरोधः संमोहश्छर्दिरंगरुजाज्वरः ॥
तृष्णा कासः शिरः शूल मेतद्विक्षेपलक्षणम ॥

भाषा—हृदय तथा गलेका घिरा रहना मूर्छित सा रहना कयआना अंगों में पीडा होना ज्वर होना प्यास कास शिरमें पीड़ा यह विक्षेपक के लक्षण हैं सुश्रुतने इनके लक्षण मिलाकर लिखे हैं और इनके कर्म और चिकित्सा वात जन्य मदात्यय के तुल्य जानै।

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरि सूनु शा० सोहनलालविद्याभूषण विरचितायां माधव निदानस्य सुबोधिन्यांटीकायां पानात्यय परमद पानाजीर्णपानवि म निदानम् समाप्तम्।

अथ दाह निदानम्।

मदात्यय रोग में दाह होता है इससे सात:प्रकार का दाह होता है उसका वर्णन करते हैं।

त्वचंप्राप्तःस पानोष्मा पित्तरक्ताभिमूर्छितः ॥
दाहं प्रकुरुते घोरं पित्तवत्तत्र भेषजम् ॥ १ ॥

भाषा-मद्यपानसे कुपित जो गरमी (पित्त) वह जब त्वचाको प्राप्त हो पित्त रक्त स मूर्छित हुआ दाह रोग को पैदा करै उसरोग में पित्तके तुल्य दवा करनी चाहिये ॥

रक्तज दाहके लक्षण कहते हैं ॥

कृत्स्न देहानुगं रक्तमुद्रिक्तं दहतिध्रुवम् ॥
स उष्यते तृष्यते च ताम्राभस्ताम्रलोचनः ॥ २ ॥
लोह गंधांगवदनो वह्निनेवावकीर्यते ॥

भाषा-सब शरीरका रुधिर कोपको प्राप्त हुआ निश्चय दाह करता है वह पासमें रखी हुई आग स जैसे तपता है उसके तुल्य तापको प्राप्त होता है प्यास लगती है सुर्ख चहरा पड़जाता है उसकी आंख लाल होंजाती है। तपेहुए लोहे को वुझाने पर जैसी गंध उसमें आवे वैसी गंध उसके शरीर में और मुखमें आवे आंच लगानेसे जैसी जलनकी वेदनाहो ऐसे दुःखको प्राप्तकरै

पित्तजन्य दाहका वर्णन ।

पित्तज्वरसमः पित्तात् सचाप्यस्य विधिःस्मृतः ॥३॥

भाषा-पित्तसे जो दाह उत्पन्न होताहै वह पित्तज्वर के समान लक्षण वाला जाने पित्तज्वर की जो चिकित्सा विधि है वैसीही उसकी विधि कहीहै।

तृष्णा के रोकने से जो दाह उसको कहते हैं ।

तृष्णानिरोधादब्धातौ क्षीणेतेजःसमुद्धतम् ॥
सबाह्याभ्यन्तरंदेहं प्रदहेन्मन्दचेतसः ॥ ४ ॥
संशुष्कगलताल्वोष्ठो जिह्वां निष्कृष्य वेपते ॥

भाषा-प्यास के रोकने से जलरूप धातुओं के क्षीण होनेपर बढ़ाहुआ तेज (पित्त) वह भीतर और बाहर कमजोर दिलवाले के देहको जलावे अर्थात् जलन पैदाकरै गला तालू और होंठ जिसके सुखजांय जीभको बाहर निकाल कर थर२ कांपने लगता है ।

गहरे हथियार के चोटसे उत्पन्न रुधिर से पूरित जो कोष्ठ उनसे उत्पन्न दाहको कहते हैं ।

असृजः पूर्णकोष्ठस्य दाहोन्यः स्यात्सुदुस्तरः ॥

भाषा—हथियारकी चाट से निकलनेवाले लोहूसे कोष्ठ जिसके भरगये हों (कोष्ठक कहनेसे हृदयादिक भी जानने जैसा सुश्रुत ने "स्थानान्यामाग्नि पक्वानां मूत्रस्यरुधिरस्य च ॥ हृदुण्डुकः फुप्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥" लिखा है) उसके यह और दाह होता है यह दाह अत्यन्त दुस्तर होता है ।

धातुक्षय जन्य दाहका वर्णन ।

धातुक्षयोक्तो यो दाहस्तेनमूर्छावृडर्दितः ॥
क्षामस्वरः क्रियाहीनः स सीदेद्भृशपीडितः ॥ ६ ॥

भाषा-धातु क्षयसे जो दाह कहा है उससे मूर्छा और प्यास इससे व्याकुल होता है स्वरक्षीना पड़जाता है चिकित्सा करनेमें नहीं आता वह अत्यन्त दुःखी होता हैं

मर्मस्थल में चोट लगनेसे जो दाह होताहै उसका वर्णन ।

मर्माभिघातजोप्यास्ति सोऽसाध्यः सप्तमोमतः ॥
सर्वे एव च वर्ज्याः स्युः शीतगात्रस्य देहिनः ॥ ७ ॥

भाषा-मर्मस्थल अर्थात् हृदय मस्तक, बस्ति, इनमें चोट लगनेसे जो दाह होता है वह सातवां असाध्य कहा है और जिसका शरीर ठण्डा हो ऐसे मनुष्यके सबही दाह त्याज्य हैं अर्थात वे असाध्य होते हैं ॥

इतिश्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसुनु शा० सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां दाह निदानं समाप्तम् ।

अथ उन्माद निदानम् ।

मदात्यय रोगमें दाह होय दूसरा उन्माद के तुल्य हो ऐसा जो कहा हैं इससे दाहके अनन्तर उन्माद का वर्णन करते हैं ।

मदयन्त्युद्गता दोषा यस्मादुन्मार्गमागताः ॥
मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्तितः ॥ १ ॥

भाषा—बढ़े हुए दोष (वात, पित्त, कफ,) ऊपर के मार्ग हृदय आदिं को प्राप्त हुए चित्तमें भ्रम पैदा करैं यह रोग मनसे सम्बन्ध रखने वाला है और उन्माद इस नामसे कहा गया है ॥ १ ॥

उसका भेद कहते हैं ।

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्छितैः ॥

मानसेन च दुःखेन स च पञ्चविधो मतः ॥ २ ॥
विषाद्भवातिषष्ठश्च यथास्वं तत्र भेषजम् ॥
स चाप्रवृद्धस्तरुणो मदसंज्ञां बिभर्ति च ॥ ३ ॥

भाषा—अत्यन्त बढ़े हुए वात, पित, कफ, इनसे अलग २ तीनप्रकार सन्निपात से चौथा मनो जन्य दुःखसे पांचवीं तरह का कहा और छटा उन्माद विषसे होता है इनके यथा योग्य औषध का विधान करना चाहिये वह रोग जब अच्छी तरह बढ़ा नहीं हो और जब तक तरुण रहै तब तक उसको मद रोग भी कहते हैं क्योंकि वह तब तक मदसंज्ञा को धारण करता है ॥

उन्माद के सामान्य कारण कहते हैं ।

विरुद्धदुष्टाऽशुचिभोजनानिप्रधर्षणं देवगुरुद्विजानां ॥
उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वोमनोऽभिघातोविषमाश्चचेष्टाः ॥४ ॥

भाषा—आहार से विरुद्ध (मिथ्याहार) दूषित अपवित्र भोजन और देव गुरुब्राह्मण इनकातिरस्कार करना भयसे हर्षसे मनको चोट पहुंचाना जेज्जटाचार्य कामत है कि काम, क्रोध, लोभ, आदिकोंसे भी दिलपर सदमा आना विषम चेष्टा हाथ पैरों का चलाना अथवा पैलवानों के साथ लड़ाई आदि लड़ना यह उन्मादके कारण जानने

उन्माद की सम्प्राप्ति कहते हैं ।

तैरल्पसत्त्वस्य मलाः प्रदुष्टाः बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्य ॥
स्रोतांस्यधिष्ठाय मनोवहानिप्रमोहयंत्या शुनरस्य चेतः ॥५॥

भाषा-उनकरणों से थोड़ा सत्व जिसके अर्थात् कमजोर आदमीके दुष्ट हुए मल बुद्धिका निवास जो हृदय उसको दूषित करकै मनको प्राप्त होने वाले जो स्रोत उनमें स्थित होकर मनुष्यके चित्त को शीघ्र हीमोहित करदेते हैं ॥

उन्माद के सामान्य स्वरूप का वर्णन ।

धीविभ्रमः सत्त्वपरिप्लवश्च पर्याकुला दृष्टिरधीरता च ॥
अबद्धवाक्त्वंहृदयंचशून्यंसामान्यमुन्मादगदस्याचिह्नम् ॥६॥

भाषा-बुद्धिमें भ्रम पड़जाना मनका चञ्चलपन व्याकुल दृष्टि धैर्यका नाश अट्टसट्ट बोलना, हृदय सूनासारहै, यह लक्षण सामान्य उन्माद रोगके जानने ।

विशेषता पूर्वक वातजन्य उन्माद के लक्षण।

रूक्षाल्पशीतान्नविरेकधातुक्षयोपवासैरनिलोऽतिवृद्धः ॥
चिन्तादिदुष्टंहृदयंप्रदूष्यबुद्धिंस्मृतिंचाप्युपहन्ति शीघ्रम् ॥७॥
अस्थान हास्यास्मितनृत्यगीतवागङ्गविक्षेपणरोदनानि ॥
पारुष्यकार्श्यारुणवर्णताचजीर्णेबलंचानिलजस्यरूपम् ॥८॥

भाषा-रूखा, थोड़ा, ठण्डा, इस प्रकार अन्न, वमन, और दस्त, धातु क्षय, और उपवास इनसे उत्पन्न वृद्ध हुआ वायु चिन्ता शोक आदिसे दूषित हृदय उसको दूषित करके बुद्धि और स्मृति इनको शीघ्रही नष्ट करदेती है बेमौके हँसना मुसकाना नाचना गाना बोलना अंगों को फेंकना रोना कठिनतां लटाई ललोंही आहार के जीर्ण होने पर बल हो यह बातजन्य उन्माद के लक्षण जाने ॥

पित्तजन्य उन्माद का वर्णन।

अजीर्ण कट्वम्लविदाह्यशीतैर्भोज्यैश्चितं पित्तमुदीर्ण वेगम् ॥
उन्मादमत्युग्रमनात्मकस्य हृदिस्थितं पूर्ववदाशुकुर्यात् ९
अमर्षसंरम्भविनग्नभावाः सन्तर्जनातिद्रवणौष्ण्यरोषाः
प्रच्छायशीतान्नजलाभिलाषः पीता च भाः पित्तकृतस्यलिङ्गम् १०

भाषा-अपक्व कडुआ खट्टा जलन पैदा करने वाला और गरम इसप्रकार के खाने खानेसे इकट्ठा होकर वेग बढ़ा हुआ पित्त हृदय में स्थित हुआ अत्यन्त उग्र उन्माद रोग को पूर्वकी तुल्य शीघ्र पैदा करै असावधान मनुष्य के जब वह पैदा होता है तब किसी बात व पदार्थ को सहन न करना क्रोध और हाथ पैर का फैलना नंगा होना दूसरे को डराना भागना शरीरका गरम रहना रोष छाया ठण्डे अन्न और जल की इच्छा रहना देहकी पीली कांति होजाय यह लक्षण होते हैं।

कफजन्य उन्माद के लक्षण।

सम्पूरणैर्मन्दविचेष्टितस्य सोष्माकफो मर्माणि संप्रवृद्धः॥
बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहत्य चित्तं प्रमोहयन् संजनयेद्विकारम्॥
वाक् चेष्टितं मन्दमरोचकश्च नारीविविक्तप्रियताऽतिनिद्रा ॥

छर्दिश्च लाला च बलं च भुंक्ते नखादिशौक्ल्यं चकफात्मकेस्यात् १२

भाषा -मिहनत करने के बिना भोजनादिके खूब खाने पर पित्त सहित दूषित हुआ कफ मर्मस्थलों में प्रवृत हुआ बुद्धि स्मृति और चित्तको नष्ट करके मोह कराता हुआ विकार को (उन्मादको) पैदा करै तब उसमें थोड़ा बोलना अरुचि, नारी अत्यन्त प्रिय मालूम हो एकांत में बैठना अच्छा मालूम हो अत्यन्त नींद आवे वमन आवे लारटपके खानेपर बलहोय नख आदिकोमें सफेदी आजाय आदि शब्द से यहां त्वचा मूत्र नेत्र आदिको में भी सफेदी जानो यह लक्षण होते हैं ॥

सन्निपात जन्य उन्मादके लक्षण ।

यः सन्निपातप्रभवोतिघोरः सर्वैः समस्तैःस च हेतुभिःस्यात् ॥
सर्वाणि रूपाणि बिभर्तितादृग्विरुद्धभैषज्यविधिर्विवर्ज्यः ॥१३॥

भाषा-जो सब दोषोंके सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त होय वह उन्माद सान्निपात से उत्पन्न हुआ जानै वह अत्यन्त घोर समझना सब रूपोंको वह धारण करताहै इसमें विरुद्ध औषध आदिके उपचारकीजो विधिसो त्यागदेनी चाहिये

शोकज उन्माद का वर्णन ।

चौरैर्नरेन्द्रपुरुषैररिभिस्तथान्यैर्वित्रासितस्य धनबांधव संक्षयाद्वा ॥ गाढंक्षते मनसि च प्रियया रिरंसोर्जायेत चोत्कटतमो मनसो विकारः ॥१४॥ चित्रं ब्रवीति च मनोनुगतं विसंज्ञो गायत्यथो हसति रोदिति चापि मूढः॥

भाषा-चोर, राजाके आदमी (हाकिम सिपाही आदि) बैरी तथा और मनुष्यों ने त्रास (दुःख) जिसको दियाहो उसके अथवा धन औरबांधवों के नष्ट होने से अत्यन्त मनके ताड़ित होने पर तथा कामीको कामिनीके नहीं प्राप्त होने से मनके नष्ट होनेपर अत्यन्त मनको विकार पैदा करनें वाला उन्माद रोग पैदा होता है तब उसके विचित्र बात बोलना मनमें रखने लायक बात को भी जाहिर कर देवै उल्टा ज्ञान (अज्ञान) हो कभी हँसे कभी रोवे इससे ही उसको संज्ञाहीन मूढ समझा जाय ऐसे लक्षण होते हैं ॥

विषजन्य उन्मादके लक्षण

रक्तेक्षणो हतबलेन्द्रियभाः सुदीनः श्यावाननो

विषकृतेऽथ भवेद्विसञ्ज्ञः ॥ १५ ॥

भाषा—विषसे जो उन्माद होता है उसमें लाल नेत्र बल इन्द्रिय और कान्ति जिसकी नष्ट होय ऐसा अत्यन्त दीन काले मुख वाला (मुंह पर कालोंच आजाय) होश हवास दुरुस्त न रहैं यह लक्षण होते है।

असाध्य उन्मादके लक्षण कहते हैं ॥

अवाञ्ची वाप्युदञ्चीवा क्षीणमांसवलोनरः ॥
जागरूको ह्यसन्देहमुन्मादेन विनश्यति ॥१६॥

भाषा—जो उन्माद वाला नीचेको मुख करै ऊपरको मुखकरै मांस और बल जिसका क्षीण होजाय जागता ही रहै नींद न आवै ऐसा निःसन्देह उन्माद रोग से नष्ट होजाता है ॥

भौतिक उन्माद के लक्षण कहते हैं।

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टो ज्ञानादिविज्ञानबलादिभिर्यः॥
उन्मादकालोऽनियतश्चयस्यभूतोत्थमुन्मादमुदाहरेत्तम् १७

भाषा—मनुष्यकी वाणी न बोले अथवा अनुचित बोली बोलै पराक्रम भी मनुष्य का सा न होय चेष्टा भी मनुष्य की सी न करै ज्ञान (तत्वज्ञान) विज्ञान [शिल्प आदि ज्ञान] अथवा ज्ञान (शास्त्र) विज्ञान (तदर्थ निश्चय) आदि शब्द से स्मृति आदिकों का ज्ञान भी जानना उनके जो बल उन सेजो उन्माद उसका काल निश्चित नहीं जिसके उसको भूतोत्थ उन्माद कहते हैं

देवजुष्ट उन्मादी के लक्षण

संतुष्टःशुचिरतिदिव्यमाल्यगंधोनिस्तन्द्रीरवितथसंस्कृतप्रभाषी
तेजस्वीस्थिरनयनोवरप्रदाता ब्रह्मण्योभवतिनरःसदेवजुष्टः१८

भाषा-संतोषी अत्यन्त शुद्ध दिव्यमाला और गंध लगाने वाला झपनीं रहित सत्य और संस्कृत बोलने वाला तेजस्वी नेत्र स्थिर हों वरदेने लग जावे ब्राह्मणों में प्रीति रहै वह मनुष्य देव ग्रहसे युक्त उन्मादवाला जानना देवके कहने से गण मातृकादिक भी ग्रहण करने वाले विदेहके ग्रन्थ में भी" क्रोधन : स्रस्तसर्वाङ्ग लालाफेनाविलाननः ॥ निद्रालुः कम्पनो मूको गणमातृभिरर्दितः " इस प्रकार लिखा है ॥

देवशत्रुजुष्ट उन्मादी के लक्षण ।

संस्वेदी द्विजगुरुदेवदोषवक्ता जिह्माक्षो विगतभयो विमार्गदृष्टिः ॥
संतुष्टो न भवति चान्नपानजातैर्दुष्टात्मा भवति स देवशत्रुजुष्टः ॥ १९ ॥

भाषा—पसीना आते रहैं द्विज गुरु देव इनके दोषों को कहने वाला टेढी दृष्टिवाला डर जिसको न लगै खोटे मार्ग में दृष्टि लगाने वाला अन्न पीने आदि से संतोष न हो ऐसा मनुष्य देव शत्रुजुष्ट उन्मादी जानना ।

गंधर्वग्रहपरिपीड़ित के लक्षण ।

हृष्टात्मा पुलिनवनांतरोपसेवी स्वाचारः प्रियपरिगीतगंधमाल्यः ॥
नृत्यन्वै प्रहसितचारुचाल्पशब्दं गंधर्वग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ २० ॥

भाषा—प्रसन्नचित्तवाला जलके किनारे बाग बगीचों का सेवन करने वाला सुन्दर आचरणवाला गीत और गंधमाला जिसको खुब प्रिय होंय नाचे हँसै और मनोहर और थोडा बोले ऐसा मनुष्य गंधर्वग्रह करके पीड़ित जानना चाहिये ॥

यक्षग्रहसे पीडित के लक्षण ।

ताम्राक्षः प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी गम्भीरो द्रुतगतिरल्पवाक्सहिष्णुः ॥
तेजस्वी वदति च किं ददामि कस्मै यो यक्षग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ २१ ॥

भाषा—लाल२ आंख हों प्रिय हलके लाल वस्त्रों को धारण करने वाला गम्भीर, जल्दी चलै थोड़ा बोलै सहन शील तेजवान् किसको क्या दऊँ यह बोलै ऐसा जो मनुष्य होता है उसको यक्ष ग्रहसे पीड़ित जानना ॥

पितृजुष्ट उन्मादी के लक्षण ।

प्रेतानां स दिशति संस्तरेषु पिण्डान् ॥
शांतात्मा जलमपि चापसव्यवस्त्रः ॥
मांसेप्सुस्तिलगुडपायासाभिकाम ॥
स्तद्भक्तो भवति पितृग्रहाभिजुष्टः ॥ २२ ॥

भाषा—कुशाओं के आस्तरण (बिछावन) बनाकर उनपर प्रेतोंके लिये पिण्डदान करै और जलदान भी प्रेतोंके लिये करने लगै और अपसव्य होने पर जैसे वस्त्र यज्ञोपवीत आदि रखते हैं इस प्रकार रखै मांसकी इच्छा रहै

तिल गुड़ खीर इनकी इच्छा करै पितरों का भक्त हो वह उन्माद वाला पि-
तृग्रहोंसे सेवित समझना ।

नागा विष्टके लक्षण कहते हैं ।

यस्तूर्व्यां प्रसरति सर्पवत्कदाचित् ॥
सृक्कण्यौ विलिहति जिह्वया तथैव ॥
क्रोधालुर्गुडमधुदुग्धपायसेप्सु ॥
ज्ञातव्यो भवति भुजङ्गमेन जुष्टः ॥ २३ ॥

भाषा-जो पृथ्वीमें कभी सर्पकी तरह लोटकर सरकै और गलफड़ोंको जिह्वासे चाटै क्रोधवाला हो गुड सहत दूध खीर इनमें इच्छा रक्खै वह पुरुष नागोंके आवेश वाला जानना चाहिये ।

राक्षसाविष्टके लक्षण ।

मांसासृग्विविधसुराविकार लिप्सु
निर्लज्जोभृशमतिनिष्ठुरोऽतिशूरः ॥
क्रोधालुर्विपुलबलो निशाविहारी
शौचाद्विड्भवति स राक्षसै र्गृहीतः ॥ २४ ॥

भाषा-मांस, रुधिर, अनेक प्रकारके मदिराके विकार इनकी इच्छा करै लज्जा छोड़ देय अत्यन्त कठोर होय अत्यन्त शूरवीर होजाय क्रोधयुक्त होय बहुतसा बल आजाय रात्रिमें विहार करै अर्थात् घूमें खेल कूदै अपवित्र रहै ऐसा जो होवे उसको राक्षसों के द्वारा पकड़ा हुआ जानै । राक्षस शब्द से ब्रह्मराक्षस आदिकों काभी ग्रहण करना ॥

विदेहने लिखे जो ब्रह्मराक्षस सेवित के लक्षण उनको कहते हैं ।

देव विप्रगुरु द्वेषी वेद वेदाङ्गविच्छुचिः ॥
आत्मपीड़ाकरो हासी ब्रह्मराक्षससेवितः ॥

भाषा-देव, ब्राह्मण, गुरु, इनसे द्वेष करै वेद और वेदांग इन के जाननें वाला पवित्र रहै अपने को दुःख देय हंसता रहै इन लक्षणों से युक्त जो मनुष्य वह ब्रह्मराक्षस से सेवित किया हुआ जानै ।

पिशाचाविष्टके लक्षण कहते हैं ।

उद्धस्तः कृशपरुषोऽचिरप्रलापी ॥

दुर्गन्धो भृशमशुचिस्तथातिलोलः
बह्वाशीविजनवनान्तरोपसेवी ॥
व्याचेष्टन् भ्रमति रुदन् पिशाचजुष्टः ॥

भाषा-ऊपर को हाथ उठाये रहै कृशहो रूखा हो बहुत देरमें बोलै पर फिर भी बेप्रयोजन की बात कहै शरीर में बुरी बास आवै अत्यन्त अपवित्र रहै और अत्यन्त चञ्चल होय बहुत खाय एकान्त तथा बनान्तरमें रहै उलटी चेष्टा करै भ्रमण करै रोवे वह पुरुष पिशाचके आसेव युक्त जानना तीन प्रकार के हिंसा क्रीड़ा और पूजा इनके लिये ग्रह मनुष्य पर असर करते हैं जैसा कहा है " अशुचिं भिन्नमर्यादं क्षतं वा यदिवाक्षतम् ॥ हिंस्युर्हिंसोविहारार्थं सत्कारार्थ मथापि वा" तहां हिंसा के निमित्त जो ग्रहण किया हुआ है वह असाध्य होता है उसको कहते हैं ॥

स्थूलाक्षोद्रुतमटनः सफेनलेही ॥
निद्रालुः पततिच कम्पते च योहि ॥
यश्चाद्रिद्विरदनगादिविच्युतः स्यात् ॥
सोऽसाध्यो भवति तथा त्रयोदशाब्दे॥ २६ ॥

भाषा-फटे२ फूले२ नेत्र हो जाय जल्दी चलै मुखके झागों को चाटै नींद आवै गिरपड़ै और कांपै और जो पर्वत हाथी वृक्ष आदिसे गिरा हुआ होवे वह असाध्य होताहै और इसके अतिरिक्त देवता आदिके आवेश वाले सबही तेरहवें वर्षमें असाध्य होते हैं " विदेहके ग्रन्थमें और भी ज्यादा असाध्य के लक्षण कहे हैं । "मेढ्रप्रवृत्तः क्षतजः सास्राक्षः सुतनासिकः ॥ रूक्षजिह्वः पूतिगर्भो हतवागतिदुर्बलः,, इस प्रकार जानै ।

देवादिकों के ग्रहण का समय कहते हैं ।

देवग्रहाः पौर्णमास्यामसुराः सन्ध्ययोरपि ॥
गंधर्वाः प्रायशोऽष्टम्यां यक्षाश्चप्रतिपद्यथ ॥ २७ ॥
पित्र्याः कृष्णपक्षे हिंस्युः पञ्चम्यामपि चोरगाः ॥
रक्षांसि रात्रौ पैशाचा श्चतुर्दश्यां विशन्तिहि ॥ २८ ॥

भाषा-देव ग्रह पूर्णमासी के दिन असुर दोनों सध्यायोंमें गंधर्व प्राय करके अष्टमीमें और यक्ष पड़वा के दिन कृष्ण पक्षमें पितर पंचमी के दिन

उरग (सर्प) राक्षस रातमें और पिशाच चर्तुदशी के दिन आदमी के देहमें आविष्ट होते हैं यहां कोई शंकाकरे कि यदि ग्रहोंके द्वारा आविष्ट जो मनुष्य इनको उन्माद होता है तौ प्रवेश करते हुए ग्रह क्यों नहीं मिलते हैं वहां इस प्रकार उत्तर देते हैं

दर्पणादीन् यथा छाया शीतोष्णं प्राणिनो यथा ॥
स्वमणिं भास्करार्चिश्च यथा देहंच देहधक् ॥
विशन्ति च न दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणः ॥ २९॥

भाषा-यह हमारे लोगोंके दर्शन के अयोग्य हैं इससे नहीं दीखते हैं दर्पण आदिकों के भीतर छाया आदमी की जैसे घुसतीहै जैसे हटती है आदमीयों के शरीर में गरमी सर्दी जैसे प्रवेश करतीं निकलती है और मालुम नहीं होती है सूर्यकान्त मणि में जैसे सूर्यकी किरण घुसजाती है पर दीखते नहीं हैं जैसे देहमें जीव प्रवेश करता है परन्तु दीखता नहीं है इसही प्रकार देह धारियों के शरीर में प्रवेश करते हटते ग्रह नहीं मालूम होते हैं । यहां देव शब्दसे देवादिकों के अनुचर अथवा देवताओं के से धर्म रखने वाले गृहण किये जाते हैं देवताओं का अपवित्र मनुष्य शरीर से संबंध नहीं होता है इसवजह से जैसा सुश्रुतने लिखा है ॥

नते मनुष्यैःसहसंविशन्ति नते मनुष्यान् क्वचिदाविशन्ति॥
येत्वाविशतीति वदन्ति मोहात्तेभूतविद्याविषयादपेताः॥

भाषा-जो देवादिक मनुष्यों के साथ नहीं मिल सकेत हैं और न वे मनुष्यों को देहमें कभी प्रवेश करते हैं वे प्रवेश नहीं करते हैं ऐसा जो कहतेहैं वे अज्ञानसे कहते हैं ऐसे जो वैद्यहैं वे भूतविद्या तन्त्र से अपरिचित हैं ॥

इतिश्री वैद्यराज झल्लास्वामिसुरिसुनु शा॰सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधवनिदास्य सुबोधिन्यां टीकायां उन्मादरोग निदानं समाप्तम् ।

मनो दुष्टि (मनका विगाड़ना) इसकी समान धर्मता होनेसे और समान चिंकित्सा करने योग्य होनेसे उन्माद के वाद अपस्मार कहतेहैं उसकी निरुक्ति सुश्रुतने जो लिखीहै वह इस प्रकारहै ।

॥ अथापस्मार निदानम् ॥

स्मृतिभूतार्थविज्ञानमपस्तत्परिवर्जने ॥

अपस्मार इति प्रोक्तस्ततोऽयं व्याधिरंतकृत् ॥

भाषा–स्मृतिशब्द प्राणियोंके अर्थज्ञानको कहते हैं और अपशब्द उसका नाशक है इसीसे स्मृति और अप इन दोनों शब्दोंसे अपस्मार यह शब्द सिद्ध हुआ ॥ इसी पूर्वोक्त हेतुके नाशसे यह रोग जलादिकके विषे प्रवेश होनेसे प्राणांतकारक है ॥

अपस्मारकी निदानपूर्वक सम्प्राप्ति ॥

(चिंताशोकादिभिर्दोषाः क्रुद्धा हृत्स्रोतसि स्थिताः ।
कृत्वा स्मृतेरपध्वंसमपस्मारं प्रकुर्वते ॥ १ ॥)

भाषा–चिंता, शोक, आदिशब्दसे क्रोध,लोभ, मोहादिसें कुपित हुये जो दोष (वात, पित्त,कफ,) सो हृदयमें स्थित जो मनके बहनेवाली नाडी उनमें प्राप्त हो स्मरण (ज्ञान) का नाश कर अपस्माररोगको प्रगट करते है ॥

अपस्मारके सामान्य लक्षण कहते हैं ।

तम प्रवेशः संरंभो दोषोद्रेकहतस्मृतिः ॥
अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरश्चतुर्विधः ॥ २ ॥

भाषा—अन्धकारमें प्रवेश करनेके समान ज्ञानका नाश होना, नेत्र टेढ़े षोंके फिरें, दोषोंके बढ़ने से ज्ञानका नष्ट होना ये लक्षण जिस रोगमें होय ऐसा यह भयंकर अपस्मार (मृगी) रोग चार प्रकारका है ॥

पूर्वरूप ।

हृत्कंपः शून्यता स्वेदो ध्यानं मूर्च्छा प्रमूढ़ता ॥
निद्रानाशश्च तस्मिंस्तु भविष्यति भवंत्यथ ॥ २ ॥

भाषा–जब अपस्मार होनेवाला होता है तब ये लक्षण होते हैं । हृदयमें कपकपी और सुन्नसा होजाय, कुछ सूझे नहीं, चिंता, मूर्च्छा, पसीने आवे, ध्यान लग जाय, मूर्च्छा नाम मनका मोह और प्रमूढ़ता कहिये इन्द्रियोंका मोह होय, निद्रा जाती रहे ये अपस्मार रोगका पूर्वरूप जानना ॥

वातज अपस्मारके लक्षण कहते हैं ।

कंपते प्रदशेद्दंतान्फेनोद्वामी श्वसित्यपि ॥
परुषारुणकृष्णानि पश्येद्रूपाणि चानिलात् ॥ ३ ॥

भाषा—वातके अपस्मारसे रोगी कांपे, दांतोंको चबावे, मुखसे झाग गिरे और श्वास भरे तथा मनुष्योंका कर्कश, अरुणवर्ण और काला वर्ण दीखे अर्थात् कोई नीलवर्णका मनुष्य मेरे पास दौडा आता है, इसी प्रकार पित्तसे पीले वर्णका पुरुष दौडा आता है और कफसे सफेद रंगका पुरुष मेरे सामने दौडा आता है ऐसा जाने ॥

पित्तकी मृगी के लक्षण कहतेहैं ।

पीतफेनांगवक्त्राक्षः पीतासृग्रूपदर्शनः ॥
सतृष्णोष्णाऽनलव्याप्तलोकदर्शी च पैत्तिकः ॥ ४ ॥

भाषा-झाग, देह, मुख और नेत्र ये पीले हों और वह पीले और रुधिरके रंग कीसी सब वस्तु देखे । प्यासयुक्त और गरमीके साथ अग्निसे व्याप्त हुआ ऐसा सब जगत्को देखे वह पित्तसे उत्पन्न हुई मृगीवाला जानना चाहिये ।

कफकी मृगी के लक्षण कहते हैं ।

शुक्लफेनांगवक्त्राक्षः शीतहृष्टांगजो गुरुः ॥
पश्येच्छुक्लानि रूपाणि मुच्यते श्लैष्मिकश्चिरात् ॥ ५ ॥

भाषा-झाग, अंग, मुख, और नेत्र सफेद होंय, देह शीतल होय तथा देह शीतल होय तथा देहके रोमांच खडे रहें, शरीर भारी हो और सब पदार्थ सफेद दीखें यह कफजन्य अपस्मारहै यह बहुत कालमें रोगीका पीछा छोड़ता है इसे यह ज्ञात होता है कि वातपित्तजन्य अपस्मार तो शीघ्र भी छोड देते हैं और यह कफजन्य अपस्मार [मिरगी] रोग देरमें छोडता है ।

सन्निपातकी मृगीके लक्षण कहते हैं ।

सर्वैरेतैः समस्तैश्च लिंगैर्ज्ञेयस्त्रिदोषजः ॥
अपस्मारः स चासाध्यो यः क्षीणस्याऽनवश्च यः॥६ ॥

भाषा-जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों वह त्रिदोषज अपस्मार जानना यह असाध्य है और जो क्षीण पुरुषके होय वहभी असाध्यहै तथा पुराना पड गया होग वहभी अपस्मार (मिरगी रोग) असाध्य है ॥

मिरगीके असाध्य लक्षण कहते हैं ।

प्रस्फुरन्तं सुबहुशः क्षीणं प्रचलितभ्रुवम् ॥

नेत्राभ्यां च विकुर्वाणमपस्मारो विनाशयेत ॥ ७ ॥

भाषा—वारंवार फुरफुरी लेय कंपयुक्त होय, बहुतसा क्षीणहोगया होय, भृकुटी (भौंह) चलायमानहों और नेत्र टेढ़े :वांके करनेवाले पानी विकार युक्त दीखे ऐसे रोगीको अपस्मार रोग नाश करदेता है ॥

अपस्मार रोगके प्रकोपका समय कहते हैं।

पक्षाद्वा द्वादशाहाद्वा मासाद्वा कुपिता मलाः ॥
अपस्माराय कुर्वन्ति वेगं किंचिदथान्तरम् ॥ ८ ॥

भाषा-कुपित हुएजो दोष वे पंद्रहवें दिन अथवा वारहवें दिन अथवा महीनेभरमें मिरगीरोग प्रगट करे। तिनमें पैत्तिक १५ दिन, वातिक १२ दिन और श्लेष्मिक ३० दिनमें आताहै। इस जगह वारहवे दिनके पिछाडी पक्ष कहना ठीक था। फिर पहिले पक्ष धरनेका यह प्रयोजन है कि अधिक काल करके ही दोष वेग करतें हैं "किंचिदथांतरम्" इस पदसे यह सूचना करी है कि जिस दोषका जो जो कालहै उससे पहिलेभी दोषोंके तारतम्यसे मिरगी रोग होताहै ऐसा जानना। दोष सर्वदा शरीर में व्याप्त होने से हरसमय रोग क्यों नहीं पैदा करतेहैं नियत अवधि परही क्यों यह क्या बातहै उसको बतलातेंहैं।

देवे वर्षत्यपि यथा भूमौ वीजानि कानिचित् ॥
शरदि प्रतिरोहन्ति तथा व्याधिसमुच्छ्रयः ॥ ९ ॥

भाषा—जैसे चातुर्मासमें इन्द्रके वर्षने पर भी कोई जव, गेहूं, चना आदि बीज भूमिमें शरदऋतुमेंही ऊगते हैं तैसेंही सव रोगके बीजरूप वातादिक दोष कदाचित् किसी अपस्मारादिक व्याधिविशेषके निदानादिकका संगम होने से उस रोगको प्रगट करते हैं। अथवा इसका मुख्य प्रयोजन यह है कि बी. जके अंकुर फूटनेमें तेज, वायु, पृथ्वी, जल ये सहायकभी हैं परन्तु वे सब कालविशेषकी प्रतीक्षा (इच्छा) करते हैं। अंकुर आनेको कालही का सहाय चाहिये अर्थात् जिस कालमें जिस बीजका अंकुर आताहै वहउसीकालमें आवेगा बीचमें कभी नहीं आवेगा यही न्याय चातुर्थिक ज्वरादिकों में भी जानना।

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसुनु सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधव निदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां अपस्मार निदानं समाप्तम् ॥

अथ वातव्याधि निदानम्।

भाषा-अपस्मार की तुल्य वात के विकार जो आक्षेपक आदि उनको विकार कर्तृत्व है अर्थात् यह बिकारों को पैदा करते हैं इससे अपस्मार के बाद वात व्याधिका प्रारम्भ करतेहैं कोई शंका करैं कि क्योंजी वात व्याधि इस शब्दका क्या अर्थहै वातही व्याधि है ऐसा अर्थ करैं या वातसे उत्पन्नहुई व्याधि ऐसाकरे इस विचारमें यदि पहिला अर्थ करेंगे तौ स्वस्थ दशामें भी वात तौ रह तांहीहै तब यहां पर दोष आजायगा दूसरा अर्थ करेंगे तौ ज्वरादिकों में जो वात प्रबल होता है तब क्या वह भी वात व्याधि कहलावैगा तब उत्तर देते हैं कि व्याधिके समानाधिकरण होने से विकृत अर्थात् दुःखकारी जो वात वह वातव्याधि कहलाता है सुश्रुतमें लिखा है " पक्वाशयस्थोऽन्त्रकूजं शूलाटोपौ करोतिच" इससे जनित जो असाधारण व्याधि उसको वात व्याधि कहते हैं इससे उपरोक्त दोनों बातोंमें दोष नहीं आवेगा ग्रन्थ विस्तार भय से इसका सम्पूर्ण शास्त्रार्थ यहां नहीं लिखा है देखने वालों को मधुकोष में देखना चाहिये'''

रूक्षशीताल्पलघ्वन्नव्यवायातिप्रजागरैः ॥
विषमादुपचाराच्च दोषासृक्स्रवणादपि ॥१॥
लंघनप्लवनात्यध्वव्यायामादि विचेष्टितैः ॥
धातूनां संक्षयाच्चिन्ताशोकरोगातिकर्षणात् ॥ २ ॥
वेगसंधरणादामादभिघातादभोजनात् ॥
मर्माबाधाद्गजोष्ट्राश्वशीघ्रयानापतंसनात् ॥ ३ ॥
देहे स्रोतांसिरिक्तानिपूरयित्वाऽनिलोवली
करोति विविधान् व्याधीन् सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रायन् ॥ ४ ॥

भाषा-रूखे, ठण्डे और हलके अन्नके भक्षण करने से अत्यन्त मैथुन, और अत्यन्त जागनें से तथा विषम उपचार से (जाड़ोंमें ठण्डी चीज़ व गरमियों में गरम चीज़ आदि) दोष जो वात, पित्त, कफ मल, मूत्र आदि उनकेइन के खराब होने से रुधिर के निकलजाने से लंघन करने (उछलनेसे उलांघने) से कूदनेसे बहुत रास्ता चलनेसे बहुत कसरत करने आदि व्यवहारोंसे कु-

चेष्टाकरने से धातुओं के नष्ट होने से चिन्ता रोग शोक इत्यादि से अत्यन्त कृश होनेसे वेगोंके रोकनेसे आमरस (अपक) रससे चोट लगनेसे भोजन न करनेसे मर्म स्थानों में चोट लगनेसे हाथी ऊंट घोड़ा और भी जल्दी चलने वाली सवारियों से गिरने से बलवान् वायु होकर देहमें खाली जो स्रोत उन को पूर्ण करके सर्वाङ्ग वा एक२ अंग में अनेक प्रकार व्याधियों को पैदा करै।

वात व्याधि का पूर्वरूप कहते हैं ।

अव्यक्तं लक्षणं तेषां पूर्वरूप मिति स्मृतम् ॥
आत्मरूपं तु यद्व्यक्तमपायो लघुता पुनः ॥ ५ ॥

भाषा-उन व्याधियों के जो अप्रकट लक्षण उसको ही उन व्याधियोंका पूर्वरूप कहा है वहही अप्रकट लक्षण सब प्रकार होजाय उसको उसका लक्षण कहते हैं वायुके चपलता से स्तम्भ संकोच कम्प आदिकों को कदाचित् होने से अपायकहा है जैसा कहा है "गते वेगे भवत् स्वास्थ्यं सर्वेष्वाक्षेपकादिषु" अपाय वहही है जो शरीर का हलकापन फिर होजाय इस प्रकार जानै ॥

अनेक प्रकारकी व्याधियोंको करै यह जो कहाहै उसकाही वर्णन करते हैं

संकोचः पर्वणां स्तंभो भंगो ऽस्थ्नां पर्वणामपि ॥
रोमहर्षः प्रलापश्च पाणिपृष्ठशिरोग्रहः ॥ ६ ॥
खाञ्ज्य पाङ्गुल्य कुब्जत्वं शोषोऽङ्गानामनिद्रता ॥
गर्भशुक्ररजोनाशः स्पन्दनं गात्रसुप्तता ॥ ७ ॥
शिरोनासाक्षिजत्रूणां ग्रीवायाश्चापि हुण्डनम् ॥
भेदस्तोदोऽर्तिराक्षेपो मुहुश्चायास एव च ॥ ८ ॥
एवंविधानिरूपाणि करोति कुपितोऽनिलः ॥

भाषा-जोड़ों का सिकुड़ना और जिकड़ना हाडें तथा जोड़ों का टूटना रोमांच, बिना प्रयोजनकी बात कहना हाथ पीठ और शिर इनका जिकड़बन्द होना, टेढ़ापड़जाना लूलापन, कुबड़ापन, अंगोंकासूखना, नींदनआना, गर्भ कानरहना शुक्र [वीर्य] और रज, [आर्तव) कानाश, शरीरका धड़कना, शरीरका सुन्नपड़जाना माथा नाक आंख जबड़ा, ग्रीवा, जिकड़जाय भेदके समान पीड़ा सुई की सी चुभाहट, पीड़ा, आक्षेपरोग बारं२ थकावट इस प्रकार के रूपों को कुपित हुआ वायु पैदा करता है ॥

हेतुस्थानविशेषाच्च भवेद्रोगविशेषकृत् ॥ ९ ॥

भाषा–वह वायु हेतु स्थान विशेष से रोग विशेषोंको पैदा करने वाला होता है हेतुविशेषआवरण आदि जैसे श्लेष्मा से आवृत होने से वायु मन्या स्तम्भ रोग पैदा करे स्थान विशेष का दृष्टान्त जैसे स्थान विशेष कोठा आदि तहां पक्वाशय मेंस्थित हुआ वायु आंतों में गुड़गुड़ाहट करे ॥

कोष्ठाश्रित वायुके लक्षण कहते हैं ।

तत्र कोष्टाश्रिते दुष्टे निग्रहो मूत्रवर्चसोः ॥
ब्रध्न हृद्रोगगुल्मार्शः पार्श्वशूलंच मारुते ॥ १० ॥

भाषा–तहां कोठेमें आश्रित वायुके दूषित होनेपर मल और दस्त बन्द होजाय ब्रध्न (कोश वंक्षण संधि में जो गांठ होय उसको ब्रध्न रोग कहते हैं) हृदय रोग बायगोला ववासीर और पांसुओं में दर्द यह विकार होते हैं यहां कोष्ठशब्दसे सब तरह से सब आमाशय आदिकों का ग्रहण करना चाहिये जहां केवल आमाशय आदि स्थान कहैंगे वहां अलग २ उन २ स्थानों का बोध करना ॥

सर्वांग कुपित वायु के विकार ।

सर्वांग कुपिते वाते गात्रस्फुरण भञ्जनम् ॥
वेदनाभिः परीतस्य स्फुटंती वास्य संधयः ॥ ११ ॥

भाषा–सबरे शरीरकी वात के कोप होने पर शरीरका फड़कना शरीर फूटना वेदनासे युक्त उस मनुष्य के जोड़ २ में फूटने कीसी तकलीफ हो ॥

गुदामें स्थित वायुके लक्षण ।

ग्रहो विण्मूत्रवातानां शूलाध्मानाश्मशर्कराः ॥
जंघोरुत्रिकपात्पृष्ठरोगशोषौ गुदेस्थिते ॥ १२ ॥

भाषा—वात के, गुदामें स्थित होने पर विष्ठामूत्र अधोवायु इनकारुकना शूल अफरा पथरिया रेह, जांघ घोटू त्रिक हृदय पीठ के रोग और सूजन यह विकार होते हैं ॥

आमाशय में स्थित वात के लक्षण ।

रुक् पार्श्वोदर हृन्नाभेस्तृष्णोद्गार विसूचिकाः ॥

कासः कण्ठास्यशोषश्च श्वासश्चामाशयस्थिते ॥१३॥

भाषा-वातके आमाशय में स्थित होने पर पांसु पेट हृदय तथा नाभि में पीड़ा, तृष्णा डकार, विसूचिका, खांसी कण्ठ और मुखका सूखना तथा श्वास ये लक्षण होते हैं ॥

पक्वाशय में स्थित वायु के लक्षण ।

पक्वाशयस्थोऽन्त्रकूजं शूलाटोपौ करोति च
कृच्छ्रं मूत्रपुरीषत्वमानाहं त्रिकवेदनाम् ॥१४॥
श्रोत्रादिष्विन्द्रियबधं कुर्याद्दुष्ट समीरणः ॥

भाषा—पक्वाशय में स्थित वायु आंतों में घुर२ शब्द करै दर्द गुड़गुड़ाहट कष्ट से मूत्र और दस्त आवे अफरा होय त्रिक में दर्दहो इन विकारों को पैदा करता है श्रोत्रआदिको में वायु यदि कुपित होतो इन्द्रियों को नष्ट करता है।

त्वग्गत वायु के लक्षण ।

त्वग्रूक्षा स्फुटिता सुप्ताकृशा कृष्णा च तुद्यते ॥
आतन्यते सरागा च पर्वरुक् त्वग्गतेऽनिले ॥१५॥

भाषा-त्वचा में जब वायु स्थित होजाय तब त्वचा रूखी होय फटीसी रहै सुन्न होजाय कृश हो काली पड़जाय दर्द करै खिचने लगे कुछ सुर्खीसी मालूम होय जोड़ों में दर्द होय यह लक्षण होते हैं यहां त्वचा के कहने से रस समझना इससे रसमें स्थित जो वायु यह अर्थ "त्वग्गतेऽनिले" का करना चाहिये हृदयस्थ उसके आमाशय के निकट वर्तमान होनेसे आमाशयमें प्राप्त वायु के लक्षण से ही रस का अर्थ संगत होजाता है इससे उसका नाम नहीं कहा यह कार्तिका चार्य का सिद्धान्त है ॥

रुधिर में प्राप्त हुए वातके लक्षण कहते हैं ॥

रुजस्तीव्राः ससन्तापाः वैवर्ण्यं कृशताऽरुचिः ॥
गात्रे चारूंषि भुक्तस्य स्तम्भश्चासृग्गतेऽनिले ॥१६॥

भाषा-रुधिर में वायु के प्राप्त होने पर अत्यन्त तकलीफ हो दाह होवै शरीरका रंग बदल जाय लटजाय अरुचिहो शरीरमें फोड़ा फुन्सी होय तथा भोजन के पीछे शरीर जिकड़ जाय ये लक्षण होते हैं ॥

मांस तथा मेदमें प्राप्त हुए वात के लक्षण

गुर्वंगं तुद्यतेऽत्यर्थं दण्डमुष्टिहतं यथा ॥
सरुक्श्रमितमत्यर्थं मांसमेदोगतेऽनिले ॥१७॥

भाषा—मांस और मेद में जब वायु प्राप्त हो तब शरीर भारी होते हैं तकलीफ होय जैसे कोई दण्ड से या घूँसे से माराहो. दर्दके साथ अत्यन्त थकावट हो यह लक्षण होते हैं ॥

मज्जा तथा अस्थिगत वायु के लक्षण ।

भेदोऽस्थिपर्वणांसधिशूलं मांसवलक्षयः ॥
अस्वप्नः सन्तता रुक् च मज्जास्थिकुपितेऽनिले ।१८।

भाषा—मज्जा और अस्थि इनस्थानोंपर जब कुपित हुआ वायुप्राप्त हो तब हाड़ और जोड़ यह टूटने लगें जोड़ों में दर्द होय मांस और बल का नाश होय नींद नहीं आवे निरन्तर दर्द बनारहै यह लक्षण होते हैं ॥

शुक्रस्थ वायुके लक्षण कहते हैं ।

क्षिप्रंमुञ्चति वध्नाति शुक्रं गर्भमथापित्रा ॥
विकृतिं जनयेच्चापि शुक्रस्थः कुपितोऽनिलः ॥१९॥

भाषा—शुक्रस्थान में स्थित होकर कुपित हुआ वायु शीघ्र ही शुक्रको पतन करै और कभी रोकदे ऐसे ही गर्भको भी कभी शीघ्र ग्रहण करै कभी त्याग देवै और वीर्य में विकार को पैदा करै यह लक्षण होते हैं ।

शिराओं में प्राप्त हुए वातके लक्षण ।

कुर्याच्छिरागतः शूलं शिराकुञ्चनपूरणम् ॥
स वाह्याभ्यन्तरायामं खल्वीं कौब्ज्यमथापिवा ॥२०॥

भाषा-शिराओं प्राप्त हुआ वायु दर्द नाड़ियों का सुकड़ना और भरकर फूलजाना यह विकार करै और वह बाहर तथा भीतरकी तरफ खिंचावट करै और खल्वी और कुब्ज इन रोगों को पैदा करै ।

स्नायु तथा संधियों में प्राप्त वातके लक्षण ।

सर्वांगैकांगरोगश्चकुर्यात्स्नायुगतोऽनिलः
हंति संधिगतः संधीञ्छूलशोथौकरोति च ॥ २१ ॥

भाषा-जब वायु स्नायुमें प्राप्त होता है तब सब अंगोंमें तथा एक२ अंग में रोगों को उत्पन्न करता है और संधियों में प्राप्त हुआ वायु जोड़ोंको नष्ट करता है दर्द तथा सूजन पैदा करता है ।

पित्त और कफ से आवृत जो प्राण आदिवायु उनके लक्षण
आधे २ श्लोकसे निरूपण करते हैं ।

प्राणे पित्तावृते छर्दिर्दाहश्चैवोपजायते ॥
दौर्बल्यं सदनं तंद्रा वैरस्य च कफावृते ॥ २२ ॥
उदाने पित्तयुक्ते तु दाहो मूर्च्छा भ्रमः क्लमः ॥
अस्वेदहर्षौ मन्दाग्निः शीतता च कफावृते ॥ २३ ॥
स्वेददाहौष्ण्यमूर्च्छाः स्यु समाने पित्तसंयुते ॥
कफेन संगे विण्मूत्रे गात्रहर्षश्च जायते ॥ २४ ॥
अपाने पित्तयुक्ते तु दाहौष्ण्यं रक्तमूत्रता ॥
अधःकाये गुरुत्वं च शीतता च कफावृते ॥२५॥
व्याने पित्तावृते दाहो गात्राविक्षेपणंक्लमः ॥
स्तंभनो दंडकश्चापि शोथशूलौ कफावृते ॥ २६ ॥

भाषा-प्राणवायु पित्तसंयुक्त होनेसे वमन और दाह उत्पन्न होताहै और कफसंयुक्त होनेसे दुर्बलपना, ग्लानि, तंद्रा और मुखमें विरसता होती है । उदानवायु पित्तयुक्त होनेसे दाह, मूर्च्छा, भ्रम, अनायास श्रम ये होतेहैं और कफयुक्त होवै तो पसीना नहीं आवै, रोमांच, अग्नि मंद होय और शीत लगता है । समानवायु पित्तयुक्त होनेसे पसीना, दाह, गरमी और मूर्च्छा यें होते हैं। पित्तकफयुक्त होनेसे मलमूत्रका रुकना और रोमांच होते हैं । अ. पानवायु के पित्तयुक्त होनेसे कमरके नीचेके भागमें भारीपना और सरदीका लगना होता है । व्यानवायु पित्तयुक्त होनेसे दाह, गात्रोंका विक्षेप अर्थात् इधर उधर को फेंकना और श्रम होता है । कफयुक्त होनेसे शरीर लकड़ीके समान स्तंभ होजाय सूजन और शूल होते हैं प्राणादि पंचवायुओंके परस्पर वीस प्रकार के आवरण होते हैं चरक ने कहे हैं यथा । मारुतानां हि प. ञ्चानां मन्योन्यावरणं शृणु,, यह चरक मेंही देखलना चाहिये विदेहने एकही वायु स्थान कर्म भेदसे पांच प्रकार का कहा है ॥

आक्षेपकके सामान्य लक्षण ।

यदा तु धमनीः सर्वाः कुपितोऽभ्येतिमारुतः ॥२७ ॥
तदा क्षिपत्याशु मुहुर्मुहुर्देहं मुहुश्चरः ॥
मुहुर्मुहुश्चाक्षेपणादाक्षेपक इति स्मृतः ॥

भाषा-जब वायु कुपित होकर सब धमनी नाड़ियों को जाकर प्राप्त होता है तब वह यहां बारंबार संचार करके देहको बारंबार आक्षिप्त करता है अर्थात् हाथी पर बैठनेवाले पुरुषके समान सब देहको चलायमान करता है देहको बारंबार चलाने से वह आक्षिपक रोग ऐसा पण्डितों ने कहा है ॥

आक्षिपकके ही अवस्थाविशेष अपतंत्र और अपक्षेपक ऐसे दो भेदों को वर्णन करते हैं ॥

क्रुद्धः स्वैः कोपनैर्वायुः स्थानादूर्ध्वं प्रवर्त्तते ॥ २८ ॥
पीडयन्हृदयं गत्वा शिरः शंखौ च पीडयन् ॥
धनुर्वन्नामयेद्गात्राण्याक्षिपेन्मोहयेत्तदा ॥२९॥
स कृच्छ्रादुच्छ्वसेच्चापि स्तब्धाक्षोऽथ निमीलकः॥
कपोत इव कूजेच्च निःसंज्ञः सोऽपतंत्रकः ॥३०॥
दृष्टिं संस्तभ्य संज्ञां च हत्वा कण्ठेन कूजति
हृदिमुक्ते नरः स्वास्थ्यं याति मोहं वृते पुनः ॥ ३१ ॥
वायुना दारुणं प्राहुरेके तदपतानकम् ॥

भाषा-रूक्षादि जो अपने कारणोंसे कोपको प्राप्त हुआ वायु वह अपने निज स्थानको छोड़ ऊपर को जाता है और हृदयमें जाकर पीड़ा करता हुआ शिर और कनपटी इनमें पीड़ा करै और देहको धनुषके समान नवाय देवै और चले तो मूर्छित कर दे वह रोगी बड़े कष्टसे श्वास लेयं, आंख मिच जांय अथवा टेढे हो जाय, कबूतरके समान गूंजे तथा बेहोश होजाय इस रोगको अपतन्त्रक कहते हैं । दृष्टिका स्तंभन होजाय होशहवाश जाता रहै. गलेमें घुरघुर शब्द होय वायु जब हृदयको छोड़ देय तब रोगीको होश होय और वायु हृदयको जब घेरै तब फिर मोह हो जाय, इस भयंकर रोग को कोई आचार्य अपतानक ऐसा कहतेहैं। आक्षेपक रोगके चार भेद होतेहैं दंडापतानक अभ्यन्तरायाम वहिरायाम और अभिघातज उनको यथा क्रम कहते हैं।

दण्डापतानकके लक्षण।

कफान्वितो भृशं वायुस्तास्वेव यदि तिष्ठति ॥ ३२ ॥
स दंडवत्स्तंभयति कृच्छ्रो दंडापतानकः ॥

भाषा- वायु अत्यन्त कफसे युक्त हुआ, सब धमनी नाडियोंमें हीजब स्थितहोय तब सब देहको दण्ड (लकडी) के समान तिरछी करदेता है यह दण्डा पतानक कष्टसाध्य होता है।

अंतरायाम और बहिरायाम के साधारण लक्षण कहते हैं

धनुस्तुल्यं नमेद्यस्तु स धनुःस्तंभसञ्ज्ञितः ॥३३॥

भाषा-जो वायु धनुषकै समान शरीर को बांका करदे उसको धनुषस्तंभ ऐसा संज्ञाकवाला कहा है ॥

अन्तरायाम के विशेष लक्षण कहते हैं।

अँगुलीगुल्फजठरहृद्वक्षोगलसंश्रितः ॥
स्नायुप्रतानमनिलो यदा क्षिपति वेगवान् ॥ ३४ ॥
विष्टब्धाक्षः स्तब्धहनुर्भग्नपार्श्वः कफं वमन् ॥
अभ्यंतरं धनुरिव यदा नमति मानवः ॥३५॥
तदास्याभ्यन्तरायामंकुरुते मारुतो बली ॥

भाषा-उँगली, घोंटू, हृदय, पेट, वक्षस्थल और गला इन स्थानोंमें स्थित हुआ जो वायु वह वेगयुक्त हो जो वही नसोंके जालको सुखाय बाहर निकाल दे उस मनुष्यके नेत्र स्थित होजांय, ठोडी रहजाय, पांसुओं में दर्द, कफकी वमन करै कफ गिरै और जब मनुष्य धनुषके तुल्य नीचेके नव जाय तब वह बली वायु अंतरायाम रोग पैदा करता है।

बाह्यायाम के विशेष लक्षण कहते हैं।

बाह्य स्नायुप्रतानस्थो बाह्यायामं करोति च ॥ ३६ ॥
तमसाध्यं बुधाः प्राहुर्वक्षःकट्यूरुभंजनम् ॥

भाषा-बाहरकी नसोंमें रहने वाला जो वात वह बाह्यायाम अर्थात् पीठ को बाकी करदे, उरस्थल, कमर और जांघोंको मोड़दे ऐसे इस रोग को विद्वान् वैद्य असाध्य कहते हैं ॥

पित्तकफ का अनुबन्धी कहा हुआ आक्षेपक जब कफपित्तका अनुबन्धी होय वह अभिघातज है उसका वर्णन करते हैं ।

कफपित्तान्वितो वायुर्वायुरेव च केवलः ॥ ३७ ॥
कुर्यादाक्षेपकं त्वन्यं चतुर्थमाभिघातजम् ॥

भाषा—कफपित्तयुक्त वायु अथवा केवल वायु आक्षेपक रोगको पैदा करता है दण्डापतानकादि और जो अन्य हैं वह तथा चौथा अभिघातज आक्षेपक रोग पैदा करै इसके लक्षण "यदा तु धमनीः सर्वाः" इत्यादि पूर्वोक्त सामान्य लक्षणों से मिले जाने ॥

असाध्यता का वर्णन करते हैं ।

गर्भपातनिमित्तश्च शोणितातिस्रवाच्च यः ॥ ३८ ॥
अभिघातनिमित्तश्च न सिद्ध्यत्यपतानकः ॥

भाषा-गर्भपातके होनेसे अथवा रुधिरके अत्यन्त झरने से अथवा अभिघात नाम दण्डादिकोंकी चोट लगने से जो अपतानकरोग प्रकट होता है वह असाध्य होता है ।

पक्षवधके लक्षण कहते हैं ।

गृहीत्वार्धं तनोर्वायुः शिरास्नायुर्विशोष्य च ॥ ३९ ॥
पक्षमन्यतरं हन्ति संधिबंधान्विमोक्षयन् ॥
कृत्स्नोऽर्द्धकायस्तस्यस्यादकर्मण्यो विचेतनः॥४०॥
एकांग रोगंतंकेचिदन्ये पक्षवधंविदु ॥

भाषा—वायु शरीर के आधेहिस्सा को पकड़ सब शरीर की नशोंको सुखाकर दाहिने अंगको अर्धनारीश्वरके समान कार्य करने को असमर्थ कर दे और संधिके बन्धनों को शिथिल कर दे पीछ उस रोगीके सब वा आधे अंग हलें चलें नहीं और उसको थोडाभी देखने स्पर्श आदिका ज्ञान नहीं रहे इसको एकांगरोग कहते हैं । दूसरे पक्षवध कहते हैं ।

सर्वांगरोग के लक्षण कहते हैं ।

सर्वांगरोगं स्तद्वच्च सर्वकायाश्रितेऽनिले ॥४१॥

भाषा—तद्वत् उसके तुल्य जैसे शिरा और स्नायु इनको सुखाना आदि जो सम्प्राप्ति के लक्षण कहे हैं इसही प्रकार सर्व शिरामें वात के प्राप्त होने पर सर्वांगरोग होता है ॥ उसके साध्य असाध्य ज्ञान के लिये कहते हैं ॥

दाहसंतापमूर्च्छाः स्युर्वायौ पित्तसमन्विते ॥
शैत्यशोथगुरुत्वानि तस्मिन्नेव कफान्विते ॥ ४२ ॥
शुद्धवातहतं पक्षं कृच्छ्रसाध्यतमं विदुः ॥
साध्यमन्येन संसृष्टमसाध्यं क्षयहेतुकम् ॥ ४३ ॥

भाषा-पक्षवधकी वायुके पित्तयुक्त होनेपर दाह, संताप और मूर्च्छा होते हैं। और वही वायु कफयुक्त होय तौ शीतता सूजन, भारीपन ये लक्षण होते हैं और केवल वायुसे प्रगट हुए पक्षाघात को अत्यन्त कष्टसाध्य जानते हैं। और दोषसे संसृष्ट होनेवाला यह साध्य होता है क्षयसे प्रगट हुआ पक्षाघात असाध्य होता है।

अर्दितरोगके लक्षण कहते हैं।

उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि वा ॥
हसतो जृंभतोवापि भाराद्विषमशायिनः ॥ ४४ ॥
शिरोनासौष्ठचुबुकललाटेक्षणसंधिगः ॥
अर्दयत्यनिलो वक्रमर्दितं जनयत्यतः ॥
वक्रीभवति वक्रार्धं ग्रीवाचाप्यपवर्तते ॥ ४५ ॥
शिरश्चलति वाक्संगो नेत्रादीनां च वैकृतम् ॥
ग्रीवाचिबुकदंतानां तस्मिन्पार्श्वे चवेदना ॥४६ ॥
(यस्याग्रजो रोमहर्षो वेपथुर्नेत्रमाबिलम् ॥ ॥
वायुरूर्ध्वंत्वचिस्वाप स्तोदो मन्याहनुग्रहः) ॥
तमर्दितमिति प्राहुर्व्याधिं व्याधिविशारदाः ॥

भाषा-ऊंचे स्वरसे बोलने पुकारने वाले पुरुष के, वा कठिन पदार्थखाने से बहुत हँसनेसे, बहुत जंभाईके लेनेसे, भारसे ऊंचे नीचे स्थान में सोनेसे, (अट्टसट्टखानेसे) शिर, नाक, होंठ, ठांडी, ललाट और नेत्र इनकी सन्धियोंमें प्राप्त हुआ मुखमें पीडा करे अर्थात् अर्दित रोगको उत्पन्न करे उस पुरुषका मुख आधा टेढा हो जाय, उसकी नाड भी टेढी होजाय, मस्तक हिला करे, वचन न निकले, नेत्र भ्रुकुटी. गाल इनकी विकृति कहिये (भेदेहों)

फरकना, टेढा होना इत्यादि हो और जिस तरफ अर्दित रोग होय उस तरफ गर्दन ठोडी और दांत इनमें पीडा होय । जिसके पूर्वमें रोम फटें कम्प हो नेत्र गदले २ रहैं ऊपरको वायु चढै त्वचा में सुन्नता छाजाय सुई चुभेकी सी पीड़ा हो, ठोड़ी व मन्या जिकड़ जांय । व्याधि जाननेमें जो कुशल वैद्य हैं वह इस व्याधिको अर्दितरोग ऐसा कहतेहैं।पक्षाघातमेंऔरइसमें भेद इतनाही हैकि वेग वालेहोनेसे अर्दितमेंकभीपीड़ाहोतीहैऔर अर्धांग वातमें सब काल पीड़ा होती है क्योंकि आचार्योंने सब लिङ्ग वालेको अर्दित और आधे लक्षण वाले को अर्धांग वात कहा है और तंत्रों में मुख के आधे हिस्सा की नांई आधे शरीर में व्याप्त हो उसको अर्दित कहा है दृढ़बल भी ऐसा ही कहते हैं अर्धेतस्मिन् मुखार्धेवा केवलें स्यात्तदर्दितम् ॥

अर्दितरोगके असाध्य लक्षण कहते हैं ।

क्षीणस्याऽनिमिषाक्षस्य प्रसक्ताव्यक्तभाषिणः ॥४७॥
न सिद्ध्यत्यर्दितं गाढं त्रिवर्षं वेपनस्य च ॥

भाषा-क्षीण पुरुषके, पलक नहीं लगे ऐसे पुरुषके, अत्यंत शुद्ध न बोले ऐसे पुरुषके, अर्दितरोगको प्रगट हुये तीन वर्ष व्यतीत होगये हों तो अथवा त्रिवर्ष कहिये मुख, नाक और नेत्र इन तीनोंका स्राव होय ऐसा और कंप युक्त पुरुषका अर्दितरोग साध्य नहीं होता है ॥

अब आक्षेपकसे लेकर अर्दितपर्यंत रोगोंका वेग कहते हैं ॥

गते वेगे भवेत्स्वास्थ्यं सर्वेष्वाक्षेपकादिषु ॥४८॥

भाषा—सब आक्षेपकादि वातरोगोंमें वेग शांत होनेसे स्वास्थ्य नाम पीड़ा कम होता है जैसे मस्तकके ऊपरका भार (बोझा) उतारनेसे सुखकी प्राप्ति होती है ॥

हनुग्रह के लक्षण कहते हैं ॥

जिह्वानिर्लेखनाच्छुष्कभक्षणादभिघाततः ॥
कुपितो हनुमूलस्थः स्रंसयित्वाऽनिलो हनू ॥४९॥
करोति विवृतास्यत्वमथवा संवृतास्यताम् ॥
हनुग्रहः स तेन स्यात्कृच्छ्राच्चर्वणभाषणम् ॥५०॥

भाषा-जिह्वाके निर्लेखन (किसी प्रकार मीजने वा और घर्षणादि) से

किसी प्रकार की चोटके लगनेसे, हनुमूल के अर्थात् ठोडीकी जड़में रहनें वाला जो वायु सो कुपित होकर हनुमूलको नीचेको कर मुखको खुलाही रख दे अथवा मुखको बंद कर दे उसे हनुग्रहरोग कहते हैं। तब उस मनुष्यको खाना बोलना कठिन होजाता है॥

मन्यास्तंभके लक्षण कहते हैं॥

दिवास्वप्नासमस्थानविवृतोर्ध्वनिरीक्षणैः ॥
मन्यास्तंभं प्रकुरुते स एव श्लेष्मणा युतः ॥५१॥

भाषा-वहही वायु दिनमें सोनेसे औंधी नीची जगह के बैठने से बहुत आंख फाड़ कर ऊपरको देखने आदि कारणोंसे कोपको प्राप्त हुआ सो कफ युक्त होकर मन्या नाडीका स्तंभन करे इस रोगका नाम मन्यास्तंभ कहतेहैं॥

जिह्वास्तंभके लक्षण कहते हैं।

वाग्वाहिनीशिरासंस्थो जिह्वां स्तंभयतेऽनिलः ॥
जिह्वास्तंभः स तेनान्नपानवाक्येष्वनीशता ॥५२॥

भाषा-वायु वाणी के वहनेवाली[बोलने वाली]नाडियोंमें प्राप्तहो जिह्वा को वायु स्तंभन कर देता है उसको जिह्वास्तंभरोग कहते हैं। उस जिह्वास्तम्भरोग से अन्नपानकी तथा बोलनेकी सामर्थ्य नहीं होती है॥

शिराग्रह के लक्षण कहते हैं।

रक्तमाश्रित्य पवनः कुर्यान्मूर्धधराः शिराः ॥
रूक्षाः सवेदनाः कृष्णाः सोऽसाध्यः स्याच्छिराग्रहः ।५३।

भाषा-रुधिरका आश्रय करके मस्तक के धारण करनेवाली नाडियों को रूखी, पीडायुक्त और काली करे यह शिराग्रहरोग असाध्य है। शिरोग्रह ऐसा कहने से भी शिरके धारण करने वाली शिराओंका सम्बन्ध जानना वह पाठ भी होसकता है॥

गृध्रसीके लक्षण कहते हैं।

स्फिक्पूर्वा कटिपृष्ठोरुजानुजंघापदं क्रमात् ॥
गृध्रसीस्तंभरुक्तोदैर्गृह्णाति स्पंदते मुहुः ॥ ५४॥
वाताद्वात कफात्तन्द्रागौरवारोचकान्विता ॥

भाषा-प्रथम स्फिक् नाम कमरके नीचेका हिस्सा जिसको कूला कहते हैं

उसको स्तंभित करदे । पीछे क्रमसे कमर, पीठ, ऊरु, जानु, जंघा और पैर इनको स्तंभित करदे अर्थात् ये रह जांय । वेदना और तोद उपाडनेकीसी पीडा होय और बारम्बार कम्प होय, यह गृध्रसीरोग वादीसे होताहै और वातकफसे होय तौ तन्द्रा, भारीपन और अरुचि ये विशेष होतें हैं । इस प्रकार गृध्रसीरोग दो प्रकारका है ॥

विश्वचीके लक्षण कहते हैं ।

तलं प्रत्यगुलीनां याः कंडरा बाहुपृष्ठतः ॥५५॥
बाह्वोः कर्मक्षयकरी विश्वची चेति सोच्यते

भाषा—बाहुके पिछाडीसे लेकर हाथके ऊपरले भागपर्यंत प्रत्येक उंगली के नीचे मोटी नसें उसको दूषित कर हाथसे लेना,देना पसारना,मुट्ठीमारना इत्यादिक कार्योंका नाशकर्त्ता जो रोग होताहै उसको विश्वचीरोगकहते हैं ॥

क्रोष्टुशीर्षके लक्षण कहते हैं ।

वातशोणितजः शोथो जानुमध्ये महारुजः ॥५६॥
ज्ञेयः क्रोष्टुकशीर्षस्तु स्थूलः क्रोष्टुकशीर्षवत् ॥

भाषा—वातरक्तसे उत्पन्न हुआ शोथ जानु (गोंडू) इन दोनोंकी संधिमें अत्यंत पिडाकरने वाला हो और स्यारके मसतकसमान मोटी हो उसको क्रोष्टुशीर्ष ऐसा कहते हैं ॥

खंज और पंगुके लक्षण ।

वायुः कट्याश्रितः सक्थ्नः कंडरामाक्षिपेद्यदा ॥५७॥
खंजस्तदा भवेज्जंतुः पंगुः सक्थ्नोर्द्वयोर्वधात् ॥

भाषा—कमरमें रहने वाला जो वायुसो जंघाकी नसोंको ग्रहण कर एक पैरको स्तंभित कर देय उसको खंज रोग कहते हैं और दोनों जंघाओंकी नसोंको पकड़ दोनों पैरोंको स्तंभित करेद उसको पंगु कहते हैं ॥

कलायखंजके लक्षण कहते हैं ।

प्रक्रामन् वेपते यस्तु खंजन्निव च गच्छति ॥५८॥
कलायखंजं तं विद्यान्मुक्तसंधिप्रबंधनम् ॥

भाषा-जो पुरुष चलते समय अत्यन्त थरथर कांपे और खंज की नाईं विकल होकर चले संधिके बंधन शिथिल जिसमें हो उस रोगको कलाय खंज कहते हैं ॥

वातकंटकके लक्षण कहते हैं ।

रुक्पादे विषमे न्यस्ते श्रमाद्वा जायते यदा ॥५९॥
वातेन गुल्फमाश्रित्य तमाहुर्वातकंटकम् ॥

भाषा-ऊंची नीची जगहमें पैर पड़नेसे अथवा श्रमके होनेसे वायु कुपित हो टकनामें प्राप्त होकर पीडा करै इस रोगको वातकंटक ऐसा कहते हैं ॥

पाददाह को कहते हैं ।

पादयोः कुरुतेदाहंपित्तासृक्सहितोऽनिलः ॥६०॥
विशेषतश्चंक्रमतः पाददाहंतमादिशेत् ॥

भाषा-पित्त तथा रुधिर करके युक्तवायु पैरोंमें दाह पैदा करता है और विशेष करके चलने वालें के पैरोंमें जादा जलन हो जिसमें यह चिन्ह हों उसके पाददाह कहते हैं ।

पादहर्ष के लक्षण कहते हैं ।

हृष्येते चरणौयस्य भवेतां चापि सुप्तकौ ॥६१॥
पादहर्षः सविज्ञेयः कफ वात प्रकोपतः ॥

भाषा-जिसके पैरोंमें रोमांच होंय और सो जांय अर्थात् झनझनाहट हो यह कफवात के कोपसे पादहर्ष नाम रोग जानना चाहियें ।

अंसशोष और अवबाहुके लक्षण कहतेहैं ।

अंसदेश स्थितो वायुः शोषयेदंसबंधनम् ॥६२॥
शिराश्चाकुंच्य तत्रस्थो जनयेदवबाहुकम् ॥

भाषा-कंधेमें स्थित हुआ जो वायु सो कुपित होकर उसके बंधनको सुखाय दे तब अंसशोषरोग प्रगट होता है और कंधेमें रहा जो वायुसो नसों को संकोच करके अवबाहुरोग प्रगट करे ॥

मूकादिक तीन रोगोंके लक्षण ।

आवृत्य वायुः सकफो धमनीः शब्दवाहिनीः ॥६३॥

नरान्करोत्यक्रियकान्मूकमिन्मिनगद्गदान् ॥

भाषा-कफ युक्त वायु शब्दके वहनेवाली नाडियोंमें प्राप्त होकर मनुष्य के वचनको क्रियारहित, मूक, मिन्मिन शब्द होंय लड़खड़ाता शब्द होय ऐसा करे वे दोषोंके वढ जानेसे अथवा प्रारब्धवश होतेहैं ऐसा जानना चाहिये

तूनीरोगके लक्षण ।

अधो या वेदना याति वर्चोमूत्राशयोत्थिता ॥६४॥
भिन्दतीव गुदोपस्थं सा तूनी नाम नामतः ॥

भाषा-पक्काशय और मूत्राशय से उठी जो पीडा सो नीचे जाकर प्राप्त हो और गुदा तथा उपस्थ नाम स्त्रीपुरुषोंके गुह्यस्थान इनमें भेद करे अर्थात् पीड़ा करे उसको तूनीरोग कहते हैं ॥

प्रति तूनीके लक्षण ।

गुदोपस्थोत्थिता यातु प्रतिलोमं प्रधाविता ॥६५॥
वेगैःपक्वाशयं याति प्रतितूनीति सोच्यते ॥

भाषा-गुदा और उपस्थ (स्त्री पुरुषों का गुह्यस्थान) इनसे उठी जो पीड़ा वह उलटी ऊपर जाकर प्राप्त हो और वेगके साथ पक्वाशय में प्राप्त हो और तूनीके समान पीड़ा करे उसको प्रतूनी कहते हैं ॥

आध्मानरोगके लक्षण ।

साटोपमत्युग्ररुजमाध्मानमुदरं भृशम् ॥६६॥
आध्मानमिति जानीयाद घोरं वातनिरोधजम् ॥

भाषा-गुड़गुड़ाहट शब्दयुक्त अत्यन्त पीडा वाला उदर (पक्वाशय) अत्यन्त फूले अर्थात् वादीसे भरकर चमड़ेकी थैलीके समान हो जाय इस भयंकर रोगको आध्मानरोग कहते हैं । यह वातके रुकनेसे होता है ।

प्रत्याध्मानके लक्षण कहतेहैं ॥

विमुक्तपार्श्वहृदयं तदेवामाशयोत्थितम् ॥६७॥
प्रत्याध्मानं विजानीयात्कफव्याकुलतानिलम् ॥

भाषा-वह ही आध्मान रोग पांसु और हृदय को छोड़ जब आमा-

शय में पहुंचजाय और कफ से व्याकुल हो वायु जिसमें वर्ते उसको प्रत्या-ध्मान जानना चाहिये ।

वाताष्ठीला के लक्षण कहते हैं ।

नाभेरधस्तात्संजातः संचारी यदिवाऽचलः ॥६८॥
अष्ठीलावद्घनोग्रन्थिरूर्ध्वमायत उन्नतः ॥
वाताष्ठीलां विजानीयाद्बहिर्मार्गावरोधिनीम् ॥६९॥

भाषा-नाभीके नीचे प्राप्त हुआ वायु इधर उधर फिरे, अथवा अचल अष्ठीला (पत्थर की बटिया) के समान कठिन और ऊपर का भाग कुछ लंबा होय और आड़ा कुछ ऊंचा होय और बहिर्मार्ग नाम अधोवायु मल मूत्र इनका अवरोध (रुकना) हो ऐसे रोगको वाताष्ठीला कहते हैं ॥

प्रत्यष्ठीला के लक्षण कहते हैं ।

एतामेव रुजोपेतां वातविण्मूत्ररोधिनीम् ॥
प्रत्यष्ठीलामिति वदेज्जठरे तिर्यगुत्थिताम् ॥७०॥

भाषा-इस वाताष्ठीला को ही जब पीड़ा से युक्त होय और अधोवायु तथा विष्ठा और मूत्र का अवरोध करे और ऊपर कोन उठकर तिरछी उठे उसको प्रत्यष्ठीला यह कहतेहैं ॥

अष्ठीलासे भिन्न भी जो वात विकारवाली मूत्ररोधिनी उनके लक्षण कहते हैं।

मारुतेऽविगुणे बस्तौ मूत्रं सम्यक्प्रवर्त्तते ॥
विकारा विविधाश्चात्र प्रतिलोमे भवंति च ॥७१॥

भाषा-बस्ति (मूत्रस्थान) में वायु यदि अनुलोमगतिसे गमन करे तौ मूत्र अच्छी रीतिसैं और प्रतिलोमसे गमन करै तौ मूत्र अच्छी रीतिसे नहीं उतरे और प्रतिलोमसे गमन करे तौ अनेक प्रकार के पथरी मूत्रकृच्छ्रादि विकार उत्पन्न होते हैं ॥

वेपथु वातके विकार कहते हैं ।

सर्वांगकंपः शिरसो वायुर्वेपथुसंज्ञकः ॥

भाषा-सब अंगोंको और मस्तकको जो कंपावे उस वायुको वेपथु(कंप) वायु कहते हैं ॥

खल्वी के लक्षण कहते हैं।

खल्वीतु पादजंघोरुकरमूलावमोटिनी ॥७२॥

भाषा-और जो वायु पैर, जंघा, ऊरु और हाथके मूलमें कंपन करें उसको खल्वी (शिरामोड़) रोग कहते हैं ऊर्ध्ववात, प्रलाप, रसाज्ञान के लक्षण अन्यत्र लिखे हैं ॥

जो नहीं कहे हैं वात रोग उनके संग्रह इस श्लोक से कहते हैं।

स्थाननामानुरूपैश्च लिंगैः शेषान्विनिर्दिशेत् ॥
सर्वेष्वेतेषु संसर्गं पित्ताद्यैरुपलक्षयेत् ॥ ७३॥
हनुस्तंभार्दिताक्षेपपक्षाघातापतानकाः ॥
कालेन महताव्यानां यत्नात्सिध्यंति वा न वा ॥७४॥
नरान्बलवतस्त्वेतान्साधयेन्निरुपद्रवान् ॥

भाषा-स्थान और नाम इनके अनुरूप (तुल्य) लक्षणों से शेष वातव्याधि जानै। स्थानानुरूप जैसे कुक्षिशूल, नखभेद इत्यादिक नामानुरूप कहिये जैसे शूलके कहने से कीलगाड़ने जैसी पीड़ा जाननी। उसी प्रकार तोदभेदादिक करनेकी भी पीड़ा विशेष जाननी चाहिये और पित्त, कफ, रुधिर इनके संसर्गसे द्विदोषज व्याधि जानै ॥ हनुस्तंभ, अर्दित, आक्षेप, पक्षाघात अपतानक ये वह व्याधि बहुत दिन बड़े परिश्रमसे और यत्न से साध्य होतीं हैं अथवा कभी नहीं भी होतीं परन्तु बलवान पुरुष के वातव्याधि उपद्रव रहित हाय तो उसकी चिकित्सा करनी चाहियें ॥

वातव्याधि के उपद्रव।

विसर्पदाहरुक्संगमूर्च्छारुच्याग्निमार्दवैः ॥
क्षीणमांसबलं वाता घ्नंति पक्षवधादयः ॥ ७५॥

भाषा-विसर्परोग, दाह, पीड़ा, मलमूत्रनिरोध, मूर्छा, अरुचि, मंदाग्नि इन कारणों से युक्त जो होय और बल क्षीण हो गया हो ऐसे पुरुषों को प. क्षवधादिक विकार मार देते हैं ॥

असाध्य लक्षण।

शूनं सुप्तत्वचं भग्नं कंपाध्माननिपीडितम् ॥

रुजार्तिमंतं च नरं वातव्याधिर्विनाशयेत् ७६ ॥

भाषा-सूजनवाला, जिसकी त्वचा सुन्नपड़गयी होय अर्थात जिसको स्पर्श होनेका ज्ञान न होय, जिसकी हड्डी टूटगई होय कंप और अफरा इस से अत्यन्त पीडित हो, रुजा और आर्ति करके युक्त जो मनुष्य हो उसको यह वात व्याधिरोग नाश करता है ॥

अब पाँच प्रकार के प्रकृतिस्थ वायुके लक्षण और कार्य वर्णन करते हैं।

अव्याहतगतिर्यस्य स्थानस्थः प्रकृति स्थितः ॥

वायुः स्यात्सोऽधिकं जीवेद्वीतरोगः समा शतम् ॥७७॥

भाषा—जिस पुरुषका वायु अव्याहतगति (जिसकी गतिमें बाधा न होय और अपने आश्रय से रहने वाला और प्रकृतिस्थित यानी न वृद्ध हो न क्षीण हो, वह पुरुष निरोगी होकर सौ वर्षसे भी अधिक जीवै।

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसुत सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधव निदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां वातव्याधिरोग निदानं समाप्तम् ॥

॥ अथवातरक्त निदानम् ॥

वातव्याधि के अनन्तर वातरक्त को कहते है।

लवणाम्लकटुक्षारस्निग्धोष्णाजीर्णभोजनैः॥
क्लिन्नशुष्कांबुजानूपमांसपिण्याकमूलकैः ॥ १ ॥
कुलित्थमाषनिष्पावशाकादिपललेक्षुभिः
दध्यारनालसौवीरशुक्ततक्रसुरासवैः ॥ २ ॥
विरुद्धाध्यशनक्रोधदिवास्वप्नप्रजागरैः ॥
प्रायशः सुकुमाराणां मिथ्याहारविहारिणाम् ॥
स्थुलानांसुखिनां चापि कुप्यते वातशोणितम् ॥३॥

---

१ अधिकं समाः शतं पञ्च दिनाधिक सार्विंशति वर्षशतम् यदाहः वराहः आयुः निरूपणं समाः षष्टिर्द्विघ्ना मनुजकरिणां पञ्च च निशाः इत्यादि।

भाषा–नोनका खट्टा कडुआ खारी, चिकना गरम, कच्चा ऐसे भोजन से, सडे और सूखे ऐसे जलसंचारी जीवोंके और जलके समीप रहनेवाले जीवोंके मांससे, पिण्याक (खर), मूली, कुलथी, उडद, निष्पाव (सेम) शाक पलल ईख, दही, कांजी, सौवीर मद्य, शुक्त (अचार आदि) छाछ, मद्य, आसव विरुद्ध (जैसे दूध, मछली) अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन करने) क्रोध, दिनमें निद्रा, रातमें जागना इन कारणों से विशेष करके सुकुमार पुरुषोंके और मिथ्या आहार करनेवाले पुरुषोंके और जो मोटा होय तथा सूखा होय ऐसे मनुष्यों के वातरक्तरोग होते हैं। यद्यपि सुश्रुतमें वात रोगाध्याय में ही वातरक्त कहा है यहां पर अलग रखने का प्रयोजन यह है कि यहां पर कुछ निदान में विशेषता है और यह अल्प मति मनुष्य समष्टि करण से न समझ सकेंगे इससे पृथक् कहा।

वातरक्तकी सम्प्राप्ति कहते हैं।

हस्त्यश्वोष्ट्रैर्गच्छतश्चाश्नतश्च विदाह्यन्नं सविदाहोशनस्य४
कृत्स्नं रक्तं विदहत्याशु तच्च दुष्टं स्रुतं पादयोश्चीयते तु ॥
तत्संपृक्तं वायुना दूषितेन यत्प्राबल्यादुच्यते वातरक्तम् ५

भाषा–हाथी, घोड़ा, ऊंट इनपर बैठकर जानेसे (यह वायुके बढ़नेका और विशेषकरके रुधिरके उतरनेका कारण है) विदाहकारी अन्नके खानेवाले पुरुषके (इसीसे दग्धरुधिरकी वृद्धि होती है गरम अन्नके खानेवाले पुरुषके सब शरीरका रक्त दुष्ट होकर पैरोंमें इकट्ठा होय और वह दुष्ट वायु से दूषित होकर मिले इस रोगमें वायु प्रबल होती है। इसीसे इस रोगको वातरक्त ऐसा कहतेहैं।

सन्धिशैथिल्यमालस्यं सदनं पिडकोद्गमः ॥ ५ ॥
जानुजंघोरुकट्यंसहस्तपादांगसन्धिषु ॥
निस्तोदः स्फुरणं भेदो गुरुत्वं सुप्तिरेव च ॥६॥
कंडूः सन्धिषु रुग्भूत्वा भूत्वा नश्यतिचासकृत् ॥
वैवर्ण्यं मंडलोत्पत्तिर्वातासृक्पूर्वलक्षणम ॥ ८ ॥

भाषा—बहुत पसीना आना अथवा नहीं आना, शरीर का काला हो जाना, शरीर मे स्पर्शका ज्ञान न रहे और थोड़ीसी चोट लगनेसे पीडा

अधिक होय, संधि ढीली हो जांय, आलस्य आवें, ग्लानि हों, शरीर में फुंसी उठें, घोंटू, जंघा, ऊरु, कमर, कन्धा, हाथ पैर, सन्धि और अंगोंमें सुई के चुभानेकीसी पीडा होय, स्फुरण (फड़कना) शरीर का टूटना, भारीपन, सुन्नता ये लक्षण होते हैं। और सन्धियो में खुजली चले और शूल होकर बारंवार नाश होजाय, शरीरका बदरंग होजाय, लहूके चकत्ता देहमें पड़ जांय ये वातरक्त के पूर्वरूप होते हैं ॥

अब वातरक्तको अन्य दोषोंकों संसर्ग होनेसे उसके लक्षण न्यारे न्यारे होतेहैं।

वाताधिकेऽधिकं तत्र शूलस्फुरणतोदनम् ॥
शोथस्य रौक्ष्यं कृष्णत्वं श्यावता वृद्धिहानयः॥८॥
धमन्यंगुलिसंधीनां संकोचोऽगग्रहोऽतिरुक्
शीतद्वेषानुपशयौस्तंभवेपथुसुप्तयः ॥९ ॥

भाषा-वात जिस वातरक्त में अधिक होय उस वातरक्त में शूल, अंगों में फरकना चोटनेकीसी पीड़ा ये अधिक होते हैं। सूजन, रूखापन, कालौंच एवं वातरक्तकें लक्षणोंकी वृद्धि होय ओर क्षणभरमें हास (कमी हों), धमनी और अगुंलियों की संधियोंमें संकोच होय, शरीर जिकड़ जाय वहुत दुःख होय ठंड न लगे और शीतके सेवन करनेसे दुःख, स्तंभ होय, कंप और शून्यता होय ये लक्षण होते हैं ॥

रक्ताधिकके लक्षण कहतेहैं ।

रक्ते शोथोऽतिरुक्तोदस्ताम्रश्चिमचिमायते ॥
स्निग्धरूक्षैः शमं नैति कंडूक्लेदसमन्वितः ॥१०॥

भाषा-रक्ताधिक वातरक्तमें सूजन, अत्यन्त पीड़ा और सुई चुभानेकासा दर्द उसमेंसे तामेके रंगका क्लेद बहै। उस सूजनमें चिमचिमाहट होय, स्निग्ध अथवा रूखे पदार्थ से शांति न हो उससे खुजली और पानी निकलने लगता है।

पित्ताधिक वातरक्त के लक्षण कहते हैं ।

पित्ते विदाहः संमोहः स्वेदो मूर्च्छा मदस्तृषा ॥
स्पर्शासहत्वं रुग्रागः शोथः पाको भृशोष्णता ॥११॥

भाषा-पित्त जिसमें अधिक होनेसे वातरक्तमें अत्यन्त दाह, इन्द्रियोंको मोह, पसीना, मूर्च्छा, मद, प्यास, स्पर्श बुरा मालूम हो, पीड़ा, लाल रंग सूजन, छोटें छोटे पीले फोड़, अत्यन्त गरमी ये लक्षण होते हैं ॥

कफाधिक के लक्षण कहते हैं ।

कफे स्तैमित्यगुरुतासुप्तिस्निग्धत्वशीतताः ॥
कंडूर्मन्दा च रुग्द्वंद्वे सर्वलिङ्गं च सकरात् ॥ १२॥

भाषा-कफ जिसमें अधिक ऐसे वातरक्तमें स्तैमित्य (गीले कपड़ेसे बँधे के समान) भारीपन शून्यता चिकनापन ठण्डापन खुजली और मन्द २ पीड़ा ये लक्षण होते हैं द्विदोष वातरक्तमें दोष द्वयके लक्षण त्रिदोष वातरक्त त्रिदोषके में लक्षण होते हैं ॥

पादयोर्मूलमास्थाय कदाचिद्धस्तयोरपि ॥
आखोर्विषमिव क्रुद्धं तद्देहमनुसर्पति ॥ १३ ॥

भाषा-पैरोंके मूलमें होकर कदाचित् वह वातरक्त हाथोंमें भी होता है सो आखु (मूसे) के विषके तुल्य सर्व देहमे धीरे धीरे फैल जाता है । यह वातरक्त चरकमें दो प्रकार से लिखा है । एक उत्तान * दूसरा गंभीर, त्वचा और मांस इनमें होय सो उत्तान और गंभीर इसकी अपेक्षा भीतरी होताहै ।

वातरक्त के असाध्य लक्षण कहते हैं ।

आजानुस्फुटितं यच्च प्रभिन्नं प्रस्रुतं च यत् ॥
उपद्रवैर्यच्च जुष्टं प्राणमांसक्षयादिभिः ॥१४॥
वातरक्तमसाध्यं स्याद्याप्यं संवत्सरोत्थितम् ॥

भाषा-जंघाके नीचेके भाग पर्यन्त गया हुआ वातरक्त असाध्य है जिसकी त्वचा फट गई होय, झड़ता होय ऐसा वातरक्त प्राण मांसक्षयादि उपद्रवोंसे युक्त होय । आदि शब्द से जो आगे श्रम, अरोचक श्वास इत्यादिक कहेंगे वह भी लक्षण होवें सोभी असाध्यहैं । वातरक्त प्रगट हुये वर्ष दिन व्यतीत हो गया होंय तो याप्य होता है । वर्ष दिनके पहिले साध्य होता है परन्तु उसमें स्फुटितादि लक्षण न होंय तब साध्य होता है ॥

वातरक्त के उपद्रव कहते हैं ।

अस्वप्नारोचकश्वासमांसकोथशिरोग्रहाः ॥१५॥

---

* यदाह उत्तानमथ गम्भीरं द्विविधं वात शोणितम् । त्वङ्मांसाश्रयमुत्तानं गम्भीरं त्वन्तरा श्रयम् ॥ ॥

मूर्च्छातिमन्दरुक्तृष्णाज्वरमोहप्रवेपकाः ॥
हिक्कापांगुल्यवीसर्पपाकतोदभ्रमक्लमाः ॥१६॥
अंगुलीवक्रतास्फोटदाहमर्मग्रहार्बुदाः॥
एतैरुपद्रवैर्वर्ज्यं मोहेनैकेन चापि यत् ॥१७॥

भाषा—नींद न आना अरुचि, श्वास, मांस में सड़ाव, माथे का जिकड़ बँध होना, मूर्च्छा, अत्यन्त पीड़ा, प्यास, ज्वर, मोह, कँपनी, हिचकी, पांगुलापना, विसर्परोग, पकना, नोंचने कीसी पीड़ा, भ्रम, बिनाबातश्रम, उंगली टेढी हो जाना फोड़ा, दाह, मर्मस्थानोंमें पीड़ा, ग्रन्थिपड़जाय इन उपद्रवोंसे युक्त वातरक्त वाला रोगी असाध्य होता है अथवा एक मोह भी होय तब भी उसको असाध्य जानना ॥

अब साध्यासाध्य विचार कतहे हैं ।

अकृत्स्नोपद्रवं याप्यं साध्यं स्यान्निरुद्रपवम् ॥
एकादोषानुगं साध्यं नवं याप्यं द्विदोषजम् ॥
त्रिदोषजमसाध्यं स्याद्यस्य च स्युरुपद्रवाः ॥१८॥

भाषा—सब उपद्रव जिस वातरक्त में न होय वह याप्य (यत्नसाध्य है और निरुपद्रव साध्य है और जो एक दोषका होय वह साध्य है और द्विदोषज नया याप्य है और त्रिदोषज तथा जिसके उपद्रव होय ऐसा वातरक्त असाध्य है ।

इति श्री वैद्यराज अल्लास्वामि सूरिसुत शा. सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां वातरक्त निदानं समाप्तम् ॥

॥ अथऊरुस्तंभ निदानम् ॥

शीतोष्णद्रवसंशुष्कगुरुस्निग्धैर्निषेवितैः ॥
जीर्णाजीर्णेतथायाससंक्षोधस्वप्नजागरैः ॥१ ॥
सश्लेष्ममेदःपवनः साममत्यर्थसंचितम् ॥
अभिभूयेतरं दोषमूरू चेत्प्रतिपद्यते ॥२॥

सक्थ्यस्थीनि प्रपूर्यांतः श्लेष्मणा स्तिमितेन च ॥
तदा स्तभ्नाति तेनोरू स्तब्धौ शीतावचेतनौ ॥३॥
परकीयाविवगुरू स्यातामतिभृशव्यथौ ॥
ध्यानाङ्गमर्दस्तैमित्यतंद्राच्छर्द्यरुचिज्वरैः ॥४॥
संयुक्तौ पादसदनकृच्छ्रोद्धरणसुप्तिभिः ॥
तमूरुस्तंभमित्याहुराढ्यवातमथापरे ॥५॥

भाषा-ठंडा, गरम, पतला, सूखा, भारी चिकना इस प्रकार आपस में जो विरुद्ध भोजन उससे जीर्ण, अजीर्ण, उसी प्रकार दण्ड कसरतके करने से, पित्तके क्षोभसे, दिनमें सोने से,रात्रिमें जागने प्रभृति कारणोंसे कफ और मेदा सहित अत्यन्त संचित हुआ आमयुक्त वायु अपने से इतर दोष पित्त को अच्छादित कर ऊरुमें प्राप्त होकर और ऊरुके हाड़ोंको आर्द्रकफसे परिपूर्ण करें तब उनके ऊरु जिकड़ बँद होजावें और ठण्डे तथा चेतनता रहित होजावें और दूसरे पुरुष के ऊरुके तुल्य उस जगह रखे हुए भारी मालूम होंय इससे चलने में सामर्थ्य न रहै अत्यन्त पीड़ायुक्त होंय, चिंता, अंगटूटना गीले कपड़ेसे बँधके तुल्य तथा झपनी वमन, अरुचि और ज्वर सहित मनुष्य के दोनों ऊरु जकड़ जांय पैरोंमें पीड़ा होय कष्टसे चले और सुन्न पड़जाय इस रोगको ऊरुस्तंभ ऐसा कहते हैं और कोई आंढ्यवात भी कहते हैं ॥

उसके पूर्वरूप कहते हैं।

प्राग्रूपं तस्य निद्राऽतिध्यानं स्तिमितता ज्वरः॥
रोमहर्षोऽरुचिच्छर्दिर्जंघोर्वोः सदनं तथा ॥

भाषा-नींदका आना, अत्यन्त चिंता, निश्चलता, ज्वर, रोमांच, होना, अरुचि, वमन, जंघा और ऊरु इनमें पीड़ा होना ये ऊरुस्तंभके पूर्वरूप होतेहैं।

ऊरुस्तंभके लक्षण कहते हैं।

वातशंकिभिरज्ञानात्तस्य स्यात्स्नेहनात्पुनः ॥
पादयोः सदनं सुप्तिः कृच्छ्रादुद्धरणं तथा ॥७॥
जंघोरुग्लानिरत्यर्थं शश्वच्चादाहवेदने ॥
पादं च व्यथतेऽन्यस्तं शीतस्पर्शं न वेत्ति च ॥८॥

संस्थाने पीडने गत्यां चालने चाप्यनीश्वरः ॥
अन्यनेयौ हि संभग्ना वूरू पादौ च मन्यते ॥९॥

भाषा—सुन्न होना, सिकुड़ना, कंप होना आदि वात रोगके तुल्य चिह्न दी, खनेसे वातकी शंका अज्ञान से करनेसे अथवा निश्चय न होनेसे व मोहसे वहां उपयश अपनुशयव ज्ञानके लिये स्नेह (१) आदि क्रिया करनेसे उसके दूना रोग बढ़ता है पैरोंमें पीड़ा होना तथा पैरोंका सोना बड़े कष्टसे पैरोंका उठाना और रखा जाना, जंघा और ऊरु इनमें अधिक पीड़ा होना और नि. रंतर दाह तथा वेदना होना, पैरोंके रखने में दर्द होय शीतल पदार्थका स्पर्श मालूम न होना तथा पैरके उठाने में रगड़नेमें अथवा चलनेमें अथवा हलनेमें असमर्थ होंय, पैर और घोंटू टूटेसे तथा अन्य मनुष्य केसे मालूम होंय ये लक्षण ऊरुस्तंभके है व्याधिके स्वभाव से यह ऊरुस्तंभ त्रिदोषका एकही हैं। वातादि भेदोंसे अनेक प्रकारका (२) नहीं है।

असाध्य लक्षण कहते हैं।

यदा दाहार्तितोदार्तो वेपनः पुरुषो भवेत ॥
उरु स्तंभस्तदा हन्यात्साधयेदन्यथा नवम् ॥

भाषा—जब पुरुष दाह, शूल, और तोद (चबाने कीसी पीड़ा) इनसे पीड़ित होकर कफयुक्त होताहै तब ऊरुस्तंभरोग उसको नष्ट कर देता है और और ये लक्षण न होय और नया रोग हो तो यह साध्य होता है ॥

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सुरिसुनु शा० सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधव निदानस्य सुबोधिन्यां टीकाया मुरुस्तम्भनिदानं समाप्तम्।

अथामवात निदानम्।

ऊरु स्तम्भ में आम सहित वायु का वर्णन किया है इससे उसके अनन्तर आम वात का वर्णन करते हैं इंग्रेजी में इसको रिमेटिज्म ओर अरबीमें वजअउलमेंअदा कहते हैं।

---

१ गूढ लिंगं व्याधिमुपशयानुपशयाभ्यांपरीक्षेत-इति ततः स्नेहनादनुपशयोभवति ॥
२ उक्तंहि चरके व्याधिसंख्यायाम् " एकएवैकस्तम्भः" इति

विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्नेर्निश्चलस्य च ॥
स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं कुर्वतस्तथा ॥१॥
वायुना प्रेरितो ह्यामः श्लेष्मस्थानं प्रधावति ॥
तेनात्यर्थं विदग्धोऽसौ धमनीः प्रतिपद्यते ॥२॥
वातपित्तकफैर्भूयो दूषितः सोऽन्नजो रसः ॥
स्रोतांस्यभिस्यंदयति नानावर्णोऽतिपिच्छिलः ॥३॥
जनयत्याशु दौर्बल्यं गौरवं हृदयस्य च ॥
व्याधीनामाश्रयो ह्येष आमसंज्ञोतिदारुणः ॥४॥
युगपत्कुपितावेतौ त्रिकसंधिप्रवेशकौ ॥
स्तंभं च कुरुतो गात्रमामवातः स उच्यते ॥५॥

भाषा- मत्स्यादि विरुद्ध आहार क्षीर और विरुद्ध चेष्टा करने वाले मनुष्यके मन्दाग्निवालेके, जो दंड कसरत न करे और चिकना अन्न खाय दंड कसरत बहुत करने वाले ऐसे पुरुषके आमवायु से प्रेरित होकर कफके आमाशयादि स्थानके प्रति वेगसे प्राप्त हो और उस कफसे अत्यन्त दूषित होता हुआ वही हो आम नाडियोंसे प्राप्त होकर भीतर वह अन्नका रस (आम) वात और कफपित्तसे दूषित होकर के छिद्रोंमें भर जाय वह अनेक प्रकारके रंगका अतिगाढा होता है । पीछे ये वात कफ एकही कालमें कुपित होकर त्रिकसंधियोंमें जाकर प्रवेश करें तब देह जकडीसी हो जाय इस रोगको आमवात ऐसा कहते हैं ॥

आमवातके समान्य लक्षण कहते हैं ॥

अंगमर्दोऽरुचिस्तृष्णा आलस्यं गौरवं ज्वरः ॥
अपाकः शूनताऽङ्गानामामवातः स उच्यते ॥६॥

---

१ आममन्नरसंके चित्कोचित्, मलसञ्चयम् । प्रथमां दोषदुष्टिं के चिदामं प्रचक्षते इति। अन्नरसस्यैवापक्वस्य तन्त्रान्तरे आमव्यपदेशात् यदुक्तं ऊष्मणोल्पबलत्वेन धातुमाद्यमपाचितम् इत्यादि अन्यैरप्युक्तं आमाशयस्थः कार्याग्नेर्दौर्बल्यादविपाचित आद्य आहार धातुर्यः स आम इति कीर्तितः अपरेतु ॥ अविपक्वमसंयुक्तं दुर्गंधं बहु पिच्छिलम् ॥ सदन सर्वगात्राणामाम इत्यभिधीयते ॥ अन्येत्वाहु आहारस्य रसः शवा यानपक्वोग्नि लाघवात् समूलं सर्व रोगाणामाम इत्यभिधीयते ॥

भाषा-अंगड़ाई, अरुचि, प्यास, आलस्य, शरीरका भारापना ज्वर अन्न का न पचना और अंगोंका सूजना इस रोगको आमवात कहते हैं ॥

जब आमवात बहुत बढ़ जाताहै तब यह लक्षण होते हैं ।

स कष्टः सर्वरोगाणां यदा प्रकुपितो भवेत् ॥
हस्तपादशिरोगुल्फत्रिकजानूरुसंधिषु ॥७॥
करोति सरुजं शोथं यत्र दोषः प्रपद्यते ॥
स देशो रुज्यतेऽत्यर्थं व्याविद्ध इव वृश्चिकैः॥८॥
जनयेत्सोऽग्निदौर्बल्यं प्रसेकारुचिगौरवम् ॥
उत्साहहानिर्वैरस्यं दाहं च बहुमूत्रताम्॥९॥
कुक्षौ कठिनतां शूलं तथा निद्राविपर्ययम् ॥
तृट्छर्दिभ्रमभूर्छाश्च हृद्ग्रहं विड्विबद्धताम् ॥९॥
जाड्यांत्रकूजमानाहं कष्टांश्चान्यानुपद्रवान् ॥१०॥

भाषा-वह आमवात जिस समय बढे उस समय सब रोगोंमें कष्टकर्त्ता होता है अर्थात् सब रोगोंसे बढकर कष्टदायक है । हाथ, पैर, मस्तक घोंटू त्रिकस्थान, जानु, जंघा इनकी सन्धियोंमें पीडायुक्त सूजन करता है और जिस २ जगह आम जाय उस उस ही जगह बीछूके डंक मारनेकीसी पीडा करे । यह रोग मदाग्नि मुखसे पानीका गिरना, अरुचि देह का भारी पन उत्साहका नाश मुख का स्वाद बिगड़ना, दाह, बहुत मूत्रका उतरना कूखमें कड़ापन शूल दिनमें नींद आना रातिमें जागना प्यास, वमन, भ्रम, मूर्च्छा हृदयमें दुःख, मलका अवरोध, जडता, आतोंका गूंजना अफरा तथा अत्यन्त और भी उपद्रव वातव्याधिमें कहे हुएको संकोचको करे ॥

विशेष लक्षण कहते हैं ॥

पित्तात्सदाहरागं च सशूलं पवनानुगम् ॥
स्तैमित्यं गुरु कंडू च कफदुष्टं तमादिशेत् ॥११॥

भाषा-पित्तसे जो आमवात होय उसमें दाह और लाल रंग होजाता है । वादीके आमवात में शूल होता है । कफ के आमवातमें देहमें गीले कपड़े के बंधेज जैसा और भारापन तथा खुजली आदि होते हैं ॥

साध्यासाध्य विचार कहते हैं ।

एकदोषानुगः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते ॥
सर्वदेहचरः शोथः स कृच्छ्रः सान्निपातिकः ॥१२॥

भाषा—एक दोषका आमवातरोग साध्यहै दो दोषोंका याप्य(यत्न साध्य) है और सर्व देहमें व्याप्त ऐसी सूजन जिसमें हो तथा त्रिदोष प्रगट हुआ आमवातरोग कष्टसाध्य जानना ॥

वैद्यराज झल्लास्वामि सुरिसूनु शा० सोहन लाल
विद्या भूषण विरचितायां सुबोधिन्या
मामवात निदानं समाप्तम् ।

—(:‑०‑:)—

आमवात में शूल होता है इससे उसके बाद शूलनिदान को कहते हैं इंग्रेजी में इसको गेस्ट्रलिजया और अरबी में वजअउलमेअदा कहते हैं ।

अथ शूल परिणाम शूलान्नद्रव शूलनिदानम्

दोषैः पृथक्समस्तामद्वंद्वैः शूलोऽष्टधा भवेत् ॥
सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनः प्रभुः ॥१॥

भाषा—वात, पित्त, कफ इनसे तीन प्रकारका, एक सन्निपात से, एक आमसे और तीन द्वंद्वज ऐसे सब आठ प्रकारका शूलरोगहै । इन सब (आठ) शूलोंमें प्रायः वातही प्रबल होता है ।

ज्वरके समान शूलरोगके प्रथम उत्पत्ति हारीतमें
कही है सो इस प्रकार है ।

अनंगनाशायहरस्त्रिशूलं मुमोच कोपान्मकरध्वजश्च ॥
तमापतंतं सहसा निरीक्ष्य भयार्दिता विष्णुतनुं प्रविष्टः
स विष्णुहुंकारविमोहितात्मा पपात भूमौ प्रथितश्चशूलः
स पंचभूतानुगतः शरीरं प्रदूषयत्यस्य हि पूर्वसृष्टिः ॥

भाषा-कामदेवके नाश करनेके अर्थ शिवने क्रोध करके त्रिशूलको फेंका

उस त्रिशूलको अपने सम्मुख आता हुआ देख कामदेव भयभीत होकर विष्णुभगवान्‌के देहमें प्रवेश कर गया। तदनंतर वह त्रिशूल विष्णुकी हुंकारसे मूर्च्छित होकर गिरा तौ पृथ्वीमें शूल इस नामसे प्रसिद्ध हुआ। तबसे वह शूल पंचभूतात्मक देहधारी मनुष्योंको पीड़ा करने लगा। इस प्रकार इस की उत्पत्ति है। शिवके त्रिशूलसे उत्पन्न हुआ तथा शूलके वानके समान पीडा करे है इसहीसे इनको शूल ऐसा कहते हैं॥

वातशूलके कारण और लक्षण कहते हैं।

व्यायामयानादतिमैथुनाच्च प्रजागराच्छीतजलातिपानात्॥
कलायमुद्गाढकिकोद्रुदोषादत्यर्थरूक्षाध्यशनाभिघातात्॥२॥
काषायतिक्तादिविरूढकान्नाविरुद्धवल्लूरकशुष्कशाकात्।
विट्शुक्रमूत्रानिलवेगरोधाच्छोकोपवासादतिहास्यभाषात्॥३॥
वायुःप्रवृद्धो जनयेद्धि शूलं हृत्पार्श्वपृष्ठत्रिकबास्तिदेशे॥
जीर्णे प्रदोषे च घनागमे च शीते च कोपं समुपैति गाढम्॥४॥
मुहुर्मुहुश्चोपशमप्रकोपौ विण्मूत्रसंस्तंभनतोदभेदैः॥
सस्वेदनाभ्यंजनमर्दनाद्यैः स्निग्धोष्णभोज्यैश्च शमं प्रयाति॥५॥

भाषा–कसरत करनेसे बहुत चलनेसे, अति मैथुनसे, अत्यन्त जागनेसे बहुत शीतल जल पीनेसे, कांगनी, मूंगा आहार, कोदों, अत्यन्त रूखे पदार्थ के सेवनसे और अध्यशन (भोजन के ऊपर भोजन करनेसे), लकड़ी आदिकी चोटके लगनेसे, कषैला कड़वा, भीगा अन्न जिसमें कुला फूट आये हों, विरुद्ध क्षीर मछली आदि, सूखा मांस, सूखा शाक आदि सेवन करनेसे, मल, मूत्र, शुक्र और अधोवायु इनके वेगको रोकनेसे, शोकसे, उपवास (व्रत) के करनेसे, अत्यन्त हँसनेसे, बहुत बोलनेसे कोपको प्राप्त हुआ जो वायु सो बढ़कर हृदय, पांसू, पीठ, त्रिकस्थान, मूत्रस्थान इन जगहोंमें शूलको करै और वह भोजन पचनेके पीछे प्रदोषकालमें, वर्षाकालमें, शीतकालमें इन दिनोंमें शूल अत्यन्त कोप करै और बारंबार शान्ति और कोप को प्राप्त होय विष्टा अधोवायु की रोक हो चुभने कीसी पीड़ा, शरीर टूटना, यह लक्षण वातजन्य शूलके हैं तथा स्वेदन और अभ्यंजन तथा मर्दन इत्यादिकसे और चिकने गरम अन्नसे यह शूल शांत होजाता है।

पित्तशूलके कारण और लक्षण कहते हैं।

क्षारातितीक्ष्णोष्णविदाहितैलनिष्पावपिण्याककुलित्थयूषैः ॥
कट्वम्लसौवीरसुराविकारैः क्रोधानलायासरविप्रतापैः ॥६॥
ग्राम्यातियोगादशनैर्विदग्धैः पित्तं प्रकुप्याशु करोति शूलम् ॥
तृण्मोहदाहार्तिकरं हि नाभ्यां संस्वेदमूर्च्छाभ्रमशोषयुक्तम् ७
मध्यंदिने कुप्यति चार्धरात्रे विदाहकाले जलदात्यये च ॥
शीते च शीतैः समुपैति शांतिं सुस्वादुशीतैरपि भोजनैश्च ८

भाषा-जवाखार आदि खार, मिरच आदि तीखी और गरम. जलन पैदा करने वाले बांस करील आदि, तैल, सैम खल, कुलथीके यूषसे कडुआ खट्टा, सौवीर (मद्यविशेष), सुराविकार (कांजी इत्यादिक) से क्रोधसे, अग्निके पास रहनेसे, मिहनतसे, सूर्यकी तेज धूपमें भ्रमण करने से अति मैथुन से * विदाहकारक अन्न आदि इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर नाभिस्थानमें शूल उत्पन्न करे। वह शूल तृषा, मोह, दाह, पीड़ा इनको पैदा करने वाला हो और पसीना, मूर्च्छा, भ्रम, शोष इनको पैदा करे। मध्याह्नके समय, आधीरात में, अन्नके विदाह कालमें, शरत्कालमें शूल अधिक होता है शीतकालमें शीतल पदार्थ से और अत्यन्त मीठ शीतल अन्नसे यह शूल शान्त हो जाता है ॥

कफशूलके कारण और लक्षण कहते हैं।

आनूपवारिजकिलाटपयोविकारैर्मांसेक्षुपिष्टकृशरातिलशष्कुलीभिः ॥ अन्यैर्बलासजनकैरपि हेतुभिश्च श्लेष्मा प्रकोपमुपगम्यकरोति शूलम् ॥ ९ ॥ हृल्लासकासनसदनाऽरुचिसंप्रसेकैरामाशये स्तिमितकोष्ठशिरोगुरुत्वैः ॥ भुक्ते सदैव हि रुजं कुरुतेऽतिमात्रं सूर्योदये च शिशिरे कुसुमागमे च ॥१०॥

भाषा-जिस जगह हमेशा जल भरा रहता हो उस जगहके पखेरू तथा

---

१ विदाहीति पूर्वं पठित्वापि अशनैर्विदग्धैरित्यनेना विदाहि वस्तुनोऽपि दोषवशेन विदाहित्वं दर्शितम्। यदाह-सुश्रुतः-स्रोतस्यन्नवहे पित्तमग्नौ वायस्यातिष्ठति विदाहि वि भुक्तमन्यद्वा तस्याप्यग्निर्विदहति ॥

उसही जगहकी मछली आदिका मांस,मठाका मेमन वा दूधका फीला धृत, मक्खन आदि दही दूधके विकार, मांस, ईखका रस, पिट्ठी, खिचडी, तिल पूरी कचौडी आदि और कफकारक पदार्थ खाने से कफ कुपित होकर आमा. शयमें शूलरोगको प्रगट करता है । उसमें उवाकी खांसी. ग्लानि, अरुचि, मुखसे लार गिरना, बद्धकोष्ठता, मस्तक भारी होना ये लक्षण होते हैं। भोजन करते समय पीड़ा सूर्योदयके समय, शिशिरऋतु में बसन्त कालमें शूल बहुत होता है ॥

सर्वेषुदोषेषुच सर्वलिंगंविद्याद्भिषक सर्वभवंहि शूलम् ॥
सुकष्टमेनं विषवज्र कल्पं विवर्जनीयं प्रवदन्तितज्ज्ञाः॥ ११॥

भाषा-सब दोषों से युक्त जो शूल होता है उसमें सब दोषों के लक्षण मिलते हैं ऐसे वैद्यजाने ऐसे उस शूलको विषके वज्रके समान जान उस रोगी को छोड़ देवे ऐसे वैद्य लोग कहते हैं।

आमशूलके लक्षण कहते हैं।

आटोपहृल्लासवमीगुरुत्वस्तैमित्यमानाहकफप्रसेकैः ॥
कफस्य लिङ्गेन समानलिङ्गमामोद्भवं शूलमुदाहरन्ति ॥१२॥

भाषा—पेटमें गुड़गुड़ाहट होय, उबाकी आना, वमन, देहमें भारीपन, बँधसा अफरा, मुखसे कफका गिरना इन लक्षणों से तथा कफशूल लक्षणोंके समान ऐसे शूलको आमशूल कहते हैं॥

द्वंद्वज शूलोंके लक्षण कहते हैं।

बस्तौ हृत्कंठपार्श्वेषु स शूलः कफवातिकः ॥
कुक्षौहृन्नाभिपार्श्वेषु स शूलः कफपैत्तिकः ॥ १३॥
दाहज्वरकरो घोरो विज्ञेयो वातपैत्तिकः ॥

भाषा-मूत्रस्थान में हृदय, कंठ, पसवाड़े इन ठिकानोंमें शूल होय वह कफवात से उत्पन्न जानना। कूख, हृदय, नाभि और पांसु इन में वह कफपित्त से शूल होता है। दाह, ज्वर करनेवाला ऐसा भयंकर शूल होय वातपित्त से [1] जानना ॥

---

१ वातात्मकं बस्तिगतं वदंति पित्तात्मकं चापि वदन्ति नाभ्याम् ॥ हृत्पार्श्वकुक्षौ कफसन्निविष्टं सर्वेषु देशेषु च सन्निपातात् ॥

साध्यासाध्य कहते हैं ।

एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः ॥१४॥
सर्वदोषोत्थितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ ॥

भाषा—एक दोषका शूल रोग साध्य है, दो दोषोंका कृच्छ्रसाध्य है और तीनों दोषोंका भयंकर और बहुत (१) उपद्रवयुक्त होय वह शूल असाध्य जानना चाहिये ॥

परिमाण शूलको कहते हैं ।

स्वैर्निदानैः प्रकुपितो वायुः सन्निहितस्तदा ॥१५॥
कफपित्ते समावृत्य शूलकारी भवेद्बली ॥
भुक्ते जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम् ॥१६॥
तस्य लक्षणमप्येतत्समासेनाभिधीयते ॥

भाषा—अपने रौक्ष्यादि हेतुओं से वात कुपित हो कफपित्त के समीप जाकर उसको आवृत (आच्छादित) कर बली होता हुआ शूल को उत्पन्न करता है आहार पचनेके समय जो शूल होय उसको परिणामशूल कहते हैं । उसके लक्षण भी संक्षेपसे यहां कहे जाते हैं ॥

वातिक परिणामशूलके लक्षण कहते हैं ।

आध्मानाटोपविण्मूत्रविबंधारतिवेपनैः ॥ १७ ॥
स्निग्धोष्णोपशमप्रायं वातिकं तद्वदेद्भिषक् ॥

भाषा-अफरा और पेटमें गुडगुड़ाहट, विष्टा मूत्रका रुकना, अरति (मनका न लगना) कंप ये लक्षण हों और चिकने, गरम पदार्थसे शांत हो. य ऐसे शूलको वातजन्य कहते हैं ॥

पैत्तिक परिणामशूलके लक्षण कहतेहैं ॥

तृष्णादाहारतिस्वेदकट्वम्ललवणोत्तरम् ॥१८ ॥
शूलं शीतशमप्रायं पैत्तिकं लक्षयेद् बुधः ॥

---

१ वेदना च तृषा मूर्च्छा आनाहो गौरवारुची ॥ कासश्वासो च हिक्का च शूलस्योपद्रवाः स्मृताः ॥

भाषा—प्यास, दाह, चित्तका न लगना, पसीना ये लक्षण होंय । तथा तीखे, खट्टे, नोनके, पदार्थ खानेसे बढ़नेवाला और शीतपदार्थके सेवनसे शांत होय ऐसा शूल पित्तसे उत्पन्न हुआ जानना ॥

कफज परिणामशूलके लक्षण कहते हैं ॥

छर्दिहल्लाससंमोहं स्वल्परुग्दीर्घसंतति ॥ १९॥
कट्वतिक्तोपशांतं च तच्च ज्ञेयं कफात्मकम् ॥

भाषा-उलटीआना, उबाकी और (इन्द्रिय और मनको मोह)ये लक्षण जिसमें बहुत होंय, पीडा थोडी होय, शूल बहुत दिन रहे, कडवे और तीखे पदार्थ से शांत होय उस शूलको कफका शूल जानना ॥

द्विदोषज और त्रिदोषज के लक्षण कहते हैं ।

संसृष्टलक्षणं यच्च द्विदोषं परिकल्पयेत् ॥२०॥
त्रिदोषजमसाध्यं तु क्षीणमांसबलानलम् ॥

भाषा-दो दोषोंके लक्षण जिसमें मिले हों उसको द्वंद्वज कहते हैं और तीन दोषोंके लक्षणोंसे हो त्रिदोषजन्य जानना । मांस बल और अग्नि ये जिसके क्षीण होगये हों ऐसा शूल रोग असाध्य जानना चाहिये ॥

अन्नके उपद्रवसें उत्पन्न हुए शूलके लक्षण ।

जीर्णे जीर्यत्यजीर्णे वा यच्छूलमुपजायते ॥ २१ ॥
पथ्यापथ्यप्रयोगेण भोजनाभोजनेन च ॥

न शमं याति नियमात्सोऽन्नद्रव उदाहृतः ॥ २१ ॥

भाषा-अन्न के जीर्ण होनेपर अथवा जीर्ण होते समय किंवा अजीर्ण में जो शूल प्रगट होताहै वह पथ्यापथ्यके योगसे अथवा भोजन करनेसे किंवा न भोजन करनेसे नियमसे शांत नहीं होता उसको अन्नद्रवशूल कहते हैं । यह शूल त्रिदोष विकृति से एक प्रकारका है परन्तु असाध्य नहीं है । क्योंकि इसकी चिकित्सा शास्त्रोंमें कही है ॥

(अन्नद्रवाख्य शूलेषु न तावत् स्वास्थ्य मश्नुते ॥
वान्तमात्रे जरत्पित्तं शूलमाशुव्यपोहति)

भाषा-अन्नद्रवआदि नाम वाले शूलोंमें मनुष्य तबतक स्वास्थ्य लाभ नहीं करसक्ता अतःवमन करानेपर पित्तके जीर्णतासे हुआ शूलको शीघ्र दूरकरताहै॥

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसूनु शा० सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां शूलनिदानं समाप्तम् ।

उदावर्त में भी शूल होताहै इससे शूलके बाद उदावर्त रोगका वर्णन करते हैं इसको इंग्रेजी में इन्टस्टाइनल ओब्स्ट्रकशन अरबीमेंइसकोऐलाऊसकहतेहैं ।

अथोदावर्तानाह निदानम् ॥

उदावर्तके लक्षण कहते हैं ।

वातविण्मूत्रजृंभाश्रुक्षवोद्गारवमींद्रियैः ॥
क्षुत्तृष्णोच्छ्वासनिद्राणां धृत्योदावर्त्तसंभवः ॥ १ ॥

भाषा-अधोवायु, विष्ठा, मूत्र, जंभाई, आंसुगिरना.छींक, डकार, वमन, वीर्य, भूख, प्यास, श्वास, और निद्रा इन तेरह वेगोंके रोकनेसे उदावर्त्त रोग उत्पन्न होताहै । तेरहका नियम करनेका यह प्रयोजन है कि क्रोध, लोभ, मन इत्यादि वेगोंके धारण करनेसे रोग उत्पन्न नहीं होता, है क्योंकि इनके रोकनेमें तो स्वस्थता(१) प्राप्त होती है। सब उदावर्त्तोंमें मुख्यकारण वायु२ है ।

तेरह उदावर्त्तों के लक्षण क्रमसे कहते हैं ॥

वातमूत्रपुरीषाणां संगोध्मानं क्लमो रुजा ॥
जठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातनिग्रहात् ॥ २ ॥

भाषा-अधोवायुके रोकने से अधोवायु, मल, मूत्र ये बन्द होजाय, पेट फूल जाय, यकायक श्रम और पेटमें बादीसे दर्द होय तथा और वायुके किये हुए दर्द आदिकी तकलीफ होवै ॥

आटोपशूलौ परिकर्तिका च संगः पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः॥

---

१ यदाह चरकः-लोभशोकभयक्रोधमानवेगान्विधारयेत्-

२ यदाह सुश्रुतः-सर्वेष्वतेषु विधिवदुदावर्त्तेषु कृत्स्नशः ॥ वायोः क्रिया विधातव्या स्वमार्गप्रति पत्तये, उदावर्तस्य लक्षणं-उद्धूतेन वेगाविधारणेनावृत्तस्य वायोर्वर्त्तन मिति

पुरीषमास्यादथ वा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य॥३॥

भाषा-मलका वेग मारनेसे पेटमें गुड़गुड़ाहट होना, शूल होना, गुदामें कतरनेकीसी तकलीफ होना मलका न उतरना और डकार के साथ मल मुख के द्वारा निकलने लगें यह लक्षण होते है।

बस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा ॥
विनामो वंक्षणानाहः स्याल्लिंगं मूत्रनिग्रहे ॥४॥

भाषा-मूत्रके वेग रोकनेसे वस्ति (मूत्राशय) और शिश्न इन्द्रिय इनमें शूल होना, मूत्रका कष्टसे उतरना मस्तककी पीड़ासे शरीरका सीधा न होना पेटमें अफरा होना यह लक्षण होते हैं ॥

मन्यागलस्तंभशिरोविकारा जृंभोपरोधात्पवनात्मकाः स्युः॥
तथाक्षिनासावदनामयाश्च भवंति तीव्राः सह कर्णरोगैः९

भाषा—जभाईके रोकने से मन्या (नाड़के पीछेकी नस) और गला और मस्तक में वातके विकार होंना तथा तीव्र नेत्ररोग, नासारोग मुख रोग और कर्णरोग ये होते हैं ॥

आनन्दजं वाप्यथ शोकजं वा नेत्रोदकं प्राप्तममुंचतो हि॥
शिरोगुरुत्वं नयनामयाश्च भवंति तीव्राः सह पीनसेन ॥६॥

भाषा-आनन्दसे अथवा शोकसे आये हुए आंसुओं को जो मनुष्य नहीं त्यागे उनको वहांके वहां ही रोकले उसके ये रोग प्रगट होते हैं। माथेका भारापन आंखोंमें विकार तीव्र यह पीनसके साथ होते हैं ॥

मन्यास्तंभशिरःशूलमर्दितार्धावभेदकौ ॥
इन्द्रियाणां च दौर्बल्यं क्षवथोः स्याद्विधारणात् ॥७॥

भाषा-छीकके रोकने से नाड़के पीछे की नाड़ी का अकड़ जाना माथे में दर्द होना लकवा होना आधा सीसी होने और इन्द्रियोंमें दुर्बलता होना यह लक्षण होते हैं ॥

कंठास्यपूर्णत्वमतीव तोद कूजनश्च वायोरथवाऽप्रवृत्तिः ॥
उद्गारवेगेऽभिहते भवंति घोराः विकाराः पवनप्रसूताः॥८॥

भाषा-डकार आने के समय उनको रोकनेसे कण्ठ और मुख भारीसा मालूम हो, अत्यन्त नोचनेकीसी पीड़ा होय, गुमन २ कर बोले अर्थात् जो समझमें न आवै वायुकी प्रकृति नहीं होय पवनसे हुए ऐसे घोर विकार होते हैं ।

कंडूकोठारुचिव्यंग शोफपांड्वामयज्वराः ॥
कुष्ठहृल्लावीसर्पाश्छर्दिनिग्रहजा गदाः॥९॥

भाषा—आती हुई वमनके वेगको जो मनुष्य रोके उसके अंगमें खुजली देहमें चकत्ता पड़ना, अरुचि, मुखपर झांईसी पड़े, सूजन पांडुरोग, ज्वर, कुष्ट, उवाकी आना और विसर्परोग ये होते हैं ।

मूत्राशये वै गुदमुष्कयोश्च शोथोरुजा मूत्रविनिग्रहश्च ॥
शुक्राश्मरी तत्स्रवणं भवेच्च ते ते विकाराभिहते च शुक्रे१०

भाषा-मैथुन के समय वीर्य निकलेन को मनुष्यरोके अथवा और किसी प्रकार से शुक्रके वेगको रोके इसके मूत्राशय मे सूजन होय तथा गुदामें और और अंडकोशों में पीड़ा होय, मूत्र बड़े कष्टसे उतरे, शुक्राश्मरी जो पथरी के निदानमें आगे कहेंगे वैसा होय, शुक्रका स्राव) वीर्य असमय बहने लगे होय ऐसे अनेक प्रकार के रोग होते हैं ॥

तंद्रांगमर्दावरुचिः श्रमश्च क्षुधाभिघातात्कृशता च दृष्टेः

भाषा-भूखके रोकने से अपनी अंगड़ाई, अरुचि, श्रम और दृष्टिका मन्द होना तथा शरीर का भी कृश होना ये रोग प्रगट होते हैं ॥

कंठास्यशोषः श्रवणावरोधस्तृषाभिघाताद्धृदयेव्यथा च ॥११॥

भाषा-प्यासके रोकने से कंठ और मुख सूखने लगै कानोंसे धीमा सुन पड़ै और हृदयमें पीड़ा होय यह लक्षण होतेहैं ॥

श्रांतस्य निःश्वासविनिग्रहेण हृद्रोगमोहावथवापिगुल्मः

भाषा-जो मनुष्य हार गया हो और वह श्वासको रोके उसके हृदयरोग मोह और वायुगोला यह रोग होते हैं ॥

जृंभांगमर्दाक्षिशिरोऽतिजाड्यं निद्राभिघातादथ वापितंद्रा१२

भाषा-आती हुई निद्राके रोकनेसे, जंभाई, अंगड़ाई, नेत्र और मस्तक की अत्यन्त जड़ता होना और अपनी यह विकार होते हैं ॥

बेगों के रोकनें से उत्पन्न हुए उदावेर्तो को वर्णन करके रूखे आदि पादर्थों के सेवनसे कुपित हुए वातआदिसे उत्पन्न हुए उदावर्तको कहतेहैं।

वायुः कोष्ठानुगो रूक्षैःकषायैःकटुतिक्तकैः॥
भोजनैः कुपितैः सद्य उदावर्त्तं करोति च॥१३॥
वातमूत्रपुरीषास्रकफमेदोवहानि वै॥
स्रोतांस्युदावर्तयति पुरीषं चातिवर्त्तयेत्॥ १४॥
ततो हृद्वस्तिशूलार्त्तो हृल्लासारतिपीडितः॥
वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण लभते नरः॥ १५॥
श्वासकासप्रतिश्यायदाहमोहतृषाज्वरान्॥
वमिहिक्काशिरोरोगमनःश्रवणविभ्रमान्॥
बहूनन्यांश्च लभते विकारान्वातकोपजान्॥ १६॥

भाषा—रूखे,कषैले, तीखे और कडुए भोजन करनेसे कोष्ठगत वायु, मूत्र मल रुधिर अश्रुपात, कफ और मेद इनके बहने वाली नाड़ियोंके स्रोतों की रोकदे और मलको सुखाय देवै तब रोगी हृदय मूत्रस्थान में शूलके होनेसे बेकल हो, उबाकी अस्वस्थता से पीडित होय. अधोवायु मूत्र मल ये कष्ट से उतरें और श्वास खांसी, पीनस, दाह, मोह, प्यास, ज्वर वमन, हिचकी मस्तकरोग, मन की भ्रांति, कमसुनना तथा वातकोप से और भी बहुत से विकार होते हैं॥

आनाहरोग का वर्णन करते हैं।

आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण भूयो विबद्धं विगुणानिलेन॥
प्रवर्त्तमानं न यथास्वमेनं विकारमानाहमुदाहरंति॥ १७॥
तस्मिन्भवत्यामसमुद्भवे तु तृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहाः॥
आमाशये शूलमथो गुरुत्वं हृत्स्तंभ उद्गारविघातनं च १८
स्तंभः कटीपृष्ठपुरीषमूत्रे शूलोऽथ मूर्च्छा शकृतश्च छर्दिः॥
शोथश्च पक्वाशयजे भवंति तथाऽलसोक्तानि च लक्षणानि १९

भाषा—आम अथवा पुरीष क्रमसे संचित हो विगुण वायुसे बारंबार

विबद्ध होकर अपने मार्गसे अच्छी रीतिसे न आवे इस विकारको आनाह (अफरा) कहते हैं । आमसे प्रगट आनाहरोगसे प्यास, पीनस, मस्तकमें दाह, आमाशयमें शूल, देहमें भारापन , हृदय का जिकड़ना शूल, मूर्च्छा डकार, कमर, पीठ, मल मूत्र इनका रुकना शूल मूर्च्छा और विष्ठा मिली हुई वमन और श्वास ये लक्षण होते हैं । पक्वाशयमें आनाह रोग होनेसे अलसक रोगमें कहे लक्षण होते हैं ॥

यहां कोई सुश्रुतमें कहे हुए उदावर्तके असाध्य लक्षण का वर्णन कहते हैं ।

तृष्णार्दितं परिक्लिष्टं क्षीणशूलैरुपद्रुतम् ॥
शकृद्वमंतं मतिमानुदावर्तिनमुत्सृजेत् ॥

भाषा-प्याससे पीड़ित अत्यन्त क्षीण दर्दसे दुखी और मलकी वमन करने वाले उदावर्त्त रोगीको वैद्य छोड़ देय ॥

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसूनु शा० सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधव निदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां मुदावर्तानाहनिदानं समाप्तम् ।

अथ गुल्म निदानम् ।

अफरा गुल्ममें भी होताहै इससे इसके बाद गुल्मरोगको कहते हैं ॥

दुष्टा वातादयोऽत्यर्थं मिथ्याहारविहारतः ॥
कुर्वन्ति पंचधा गुल्मं कोष्ठांतर्ग्रंथिरूपिणम् ॥
तस्य पंचविधं स्थानं पार्श्वहृन्नाभिबस्तयः ॥१॥

भाषा-मिथ्या आहार और मिथ्या विहार करनेसे अत्यन्त दूषित हुए वातादि दोष कोष्ठ (पेट) में गांठ सरीखे पांच प्रकारके गुल्मरोगको उत्पन्न करते हैं ।दोनों पांसू हृदय नाभि और बस्ति इस गुल्मरोगके पांच स्थानहैं।

गुल्मके सामान्यरूप कहते हैं ॥

हृन्नाभ्योरन्तरे ग्रन्थिः संचारी यदि वाऽचलः ॥
वृत्तश्चयोपचयवान्स गुल्म इति कीर्त्तितः ॥२॥

भाषा-हृदय और नाभि (यहां नाभिके कहने से बस्ति समझना चाहिये

सामीप्य होने से) इनमें चलायमान अथवा निश्चय गांठ कभी घटे कभी बढ़े ऐसी ग्रन्थि (गांठ) होय उसको गुल्म 'वायु गोला' कहते हैं ॥

गुल्म की सम्प्राप्ति कहते हैं ॥

स व्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि चोच्छ्रितैः ॥
पुरुषाणां तथा स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन चापरः ॥३॥

भाषा—वह कुपित हुए दोषोंसे पृथक २ प्रकारका और सब दोषों से मिलकर एक प्रकारका ये चार प्रकारका गुल्म पुरुषोंके होता है और स्त्रियोंके रक्त 'रज' के दोषसे एक प्रकारका गुल्म होता है। परन्तु प्रथम जो लिख आये हैं कि गुल्मरोग पांच प्रकारका है सो इसका निश्चय नहीं है क्योंकि रक्तगुल्म स्त्रियों के होता है और पुरुषों के नहीं होता धातुरूप रक्तज गुल्म जो है सो स्त्री पुरुष दोनों के होता है।

गुल्मका पूर्वरूप कहते हैं ॥

उद्गारबाहुल्यपुरीषबंधतृप्त्यक्षमत्वांत्रनिकूजनानि ॥
आटोपमाध्मानमपक्तिशक्तिरासन्नगुल्मस्यवदन्तिचिह्नम् ४

भाषा—डकार बहुत आवें मलका अवरोध होय, अन्नमें अरुचि होय सामर्थ्य का नाश होय आंतों में घुर २ शब्द होना ॥ पेटमें पीड़ा और अफरा तथा पेटका जकड़ जाना मंदाग्नि होना ये लक्षण होवै तो जानना चाहिए कि गुल्म 'गोला' रोग अब प्रगट होगा यह उसके पूर्वरूप जानै ॥

गुल्मके साधारण लक्षण कहते हैं।

अरुचिः कृच्छ्रविण्मूत्रं वातेनांत्रविकूजनम् ॥
आनाहश्चोर्ध्ववातत्वं सर्वगुल्मेषु लक्षयेत् ॥५॥

भाषा—अरुचि, मल मूत्रों का कष्टसे उतरना वादीसे आंतोंका बोलना पेटका फूलना ऊर्ध्ववात ये लक्षण सब गुल्मोंमें होते हैं ऐसा लक्ष्य करे ॥

वातगुल्मके कारण और लक्षण कहते हैं।

रूक्षान्नपानं विषमातिमात्रं विचेष्टनं वेगविनिग्रहश्च ॥
शोकाभिघातोऽतिमलक्षयश्च निरन्नताचानिलगुल्महेतुः ६
यःस्थानसंस्थानरुजाविकल्पंविड्वातसङ्गं गलवक्त्रशोषम् ॥

श्याकारुणत्वंशिशिरज्वरंचहृत्कुक्षिपार्श्वांसशिरोरुजंच ।७।
करोतिजीर्णेऽप्यधिकं च कोपंभुक्ते मृदुत्वंसमुपैतिपश्चात्॥
वातात्स गुल्मो नच तत्र रूक्षं कषायतिक्तकटुचोपशेते।८।

भाषा-रूखा अहित और मिकदार से ज्यादा अन्नपान सेवन करने से बलवान् पुरुषसे लड़ने आदि विरुद्ध चेष्टा करनेसे मल मूत्र आदि वेगोंके रोकने से शोक और चोट लगनेसे दस्त वमन आदिसे, मलका क्षय अत्यन्त होनेसे अन्न न खानेसे वात गुल्म पैदा होता है जो गुल्म कभी नाभि बस्ति कभी पांसू में चला जाय तथा कभी लंबा मोटा, गोल अथवा छोटा होजाय तथा उसमें पीड़ा कभी थोडी कभी बहुत होय (सुई चुभानेकीसी पीडा) होय तथा टूटने लगेअथवा अनेक प्रकारकीपीडाहोय,मलकी और अधोवायुकी अच्छी रीति से प्रवृत्ति नहीं हो, गला और मुख सूखे शरीरका वर्ण नीला अथवा लाल होय शीतज्वर, हृदय, कूख, पांसू कंधा और माथे में दर्द होय और गोला के जीर्ण होनेपर अधिक कोप हो और भोजन करने के पिछाडी नरम होजाय, वह गोला वात से पैदा होता है उसमें रूखा कषैला, कडुआ, तीखा पदार्थ खानेसे सुख प्राप्त नहीं होता है ॥

पित्तगुल्मके कारण कहते हैं ।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्ष क्रोधातिमद्यार्कहुताशसेवा॥
आमाभिघातोरुधिरंच दुष्टंपैत्तस्यगुल्मस्यनिमित्तमुक्तम् ९
ज्वरःपिपासावदनांगरागःशूलं महज्जीर्यति भोजनेच ॥
स्वेदोबिदाहोव्रणवच्चगुल्मःस्पर्शासहःपैत्तिकगुल्मरूपम्।१०।

भाषा-कडुआ, खट्टा, तीखा रस, जलन करनेवाले पदार्थ और रूखे भोजन करनेसे, क्रोधसे, बहुत मद्यपानसे, धूपमें डोलनेसे, आगके पास रहनेसे, विदग्ध नामक अजीर्णसे पीत हुए रस से, चोट लगने से जो लोहू खराब होगया हो इत्यादिकारण पित्तगुल्मके कहेहैं । ज्वर, प्यास, मुख और अंगोंमें लाली, अन्न पचने के समय अत्यन्त शूल होना, पसीना आना, जलन होना, फोडेके समान स्पर्श सहा न जाय ये पित्तगुल्म के लक्षण हैं ।

कफके और सान्निपात के कारण और लक्षण कहते हैं ।

शीतं गुरु स्निग्धमचेष्टनं च सम्पूरणंप्रस्वपनं दिवा च ॥
गुल्मस्य हेतुः कफसंभवस्यसर्वस्तुदुष्टोनिचयात्मकस्य ११
स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसादहृल्लासकासारुचिगौरवाणि ॥
शैत्यंरुगल्पाकठिनोन्नतत्वं गुल्मस्यरूपाणिकफात्मकस्य १२

भाषा-शीतल, भारी और चिकने पदार्थ के सेवनसे तथा कुछ काम न करनेसे पेट भरने से अधिक भोजन करनेसे दिनमें सोनेसे यह गुल्म होताहै जो वातजादि तीनों गुल्मों के कारण कहेहैं, वे सब सन्निपातगुल्मके कारण जानने वह दुष्ट होताहै । देहका गीलापना, शीतज्वर, शरीरकी ग्लानि, (उबाकी), खांसी, अरुचि, भारापन, ठण्ड लगना, थोड़ी २ पीड़ा होना, गुल्म (गोला) का काठिन होना और ऊंचा होना इतने लक्षण कफ गुल्मके हैं ।

द्वन्द्वज गुल्मके लक्षण कहते हैं ।

निमित्तरूपाण्युपलभ्यगुल्मे संसर्गजे दोषबलाबलं च ॥
व्यामिश्रलिङ्गानपरांश्च गुल्मांस्त्रीनादिशेदौषधकल्पनार्थम् १३

भाषा-द्वंद्वज गुल्ममें कारण, लक्षण और दोषोंका बलाबल जानकर चिकित्सा करनेके लिये मिलेहुए लक्षणके और और तीन गुल्म समझने चाहिये अर्थात् एक दोष बलवान् होय तौ चिकित्सा करना चाहिये और द्विदोष बलवान् वा त्रिदोष बलवान् होंय तौ चिकित्सा न करै ॥

सन्निपातगुल्मके लक्षण कहते हैं ।

महारुजं दाहपरीतमश्मवद्घनोन्नतं शीघ्रविदाहदारुणम् ॥
मनःशरीराग्निबलापहारिणं त्रिदोषजंगुल्ममसाध्यमादिशेत् १४

भाषा-भारी पीडा करनेवाला, दाहसे युक्त, पत्थरके समान कठिन तथा ऊंचा और शीघ्र दाहकरके भयंकर, मन, शरीर, अग्नि और बल इनका नाश करनेवाला अर्थात् मनको विकल करनेवाला, शरीरको लटानेवाला और मंदा करनेवाला, विषमता आदि करनेवाला, असामर्थ्य करनेवाला ऐसा त्रिदोषज गुल्म असाध्य जानना चाहिये ॥

रक्तगुल्मके लक्षण कहते हैं ।

नवप्रसूताऽहितभोजनाया या चामगर्भं विसृजेदृतौ वा ॥

वायुर्हितस्यापरिगृह्यरक्तं करोतिगुल्मंसरुजंसदाहम् ॥
पैत्तस्य लिंगेन समानलिंगं विशेषणं चाप्यपरं निबोध ॥१५॥
यः स्पंदते पिंडित एव नांगैश्चिरात्सशूलः समगर्भलिंगः ॥
सरौधिरःस्त्रीभवएवगुल्मो मासिव्यतीते दशमे चिकित्स्यः १६

भाषा-नई प्रसूता स्त्री कुपथ्य सेवन करनेवाली अथवा जो अपक्व गर्भ पातकरै अथवा ऋतुकालके समय कुपथ्य भोजन करनेवांली उस स्त्री के रुधिर (जो ऋतुसमय निकले)उसको लेकर कुपित हुआ वायु गुल्म करे वह गुल्म पीडायुक्त व दाहयुक्त होता है । और पित्तगुल्मके जो लक्षण कहे हैं वे सब इसमें होंय और इसमें दूसरे विशेष लक्षण होते हैं उनको जानो । यह गुल्म बहुत देरमें गोल २ हिले, अवयव कहिये हाथ पैरके साथ नहीं हिले, शूलयुक्त होय, गर्भ के समान सब लक्षण मिलें अर्थात् मुखसे पानी छूटे, मुख पीला पड जाय, स्तनका अग्रभाग काला होजाय और दोहदादि लक्षण सब मिलें ये सब लक्षण व्याधिके प्रभाव से होते हैं । जैसे क्षयी रोगवाले को स्त्रीरमणकी इच्छा और काले नख तात्वादिक होते हैं । यह रक्तज गुल्म स्त्रियोंके होता है । दश महीना व्यतीत हो जांय तब इस रक्तगुल्मकी चिकित्सा करनी चाहिये । कोई कहते कि यह गर्भ है अथवा रक्तगुल्म है यह शंका जानकर माधवाचार्यने दश महीना व्यतीत होनेपर ऐसा कहाहै । कारण इसका यहहै कि नवम और दशम महीना यह प्रसूत होनेका समय है ।

बहुत कालका उत्पन्न हुआ जो गुल्म उसको असाध्यता कहते हैं ।

सञ्चितःक्रमशोगुल्मो महावास्तुपरिग्रहः ॥
कृतमूलः शिरानद्धो यदाकूर्मइवोन्नतः ॥ १७ ॥
दौर्बल्यारुचिहृल्लास कासच्छर्द्यरतिज्वरैः ॥
तृष्णातंद्राप्रतिश्यायैर्युज्यते न स सिध्यति ॥ १८॥

भाषा-क्रमसे इकट्ठा हुआ गुल्म जब सब उदर (पेट) में फैल जाय और धातुओंमें उसका मूल जम जाय तथा उसपर नाड़ियोंका जाल लिपट जाय और कछुएकी पीठके समान गुल्म ऊंचा होय तब इस रोगीके निःसत्वपना अरुचि उवाकी खांसी वमन अरति और ज्वर तथा प्यास तन्द्रा और पीनस ये होंय ऐसा रोग असाध्य होता है ॥

गृहित्वा सज्वरं श्वासश्छर्द्यतीसारपीडितम् ॥
हृन्नाभिहस्तपादेषु शोथः कर्षति गुल्मिनम् ॥१९॥
श्वासः शूलं पिपासान्नविद्वेषो ग्रन्थिमूढता ॥
जायते दुर्बलत्वं च गुल्मिनो मरणाय वै ॥ २० ॥

भाषा–वमन और अतिसार इनसे पीडित ऐसा गुल्मरोगीका हृदय, नाभि हाथ, पैर इन ठिकाने में सूजन होय और ज्वर, दमा जिसके होय ऐसे लक्षण होनेसे रोगी नहीं बचता है श्वास, शूल, प्यास, अन्न में अरुचि और गुल्मकी गांठ का एकाएकी नष्ट हो जाना और दुर्बलता ये लक्षण होनेसे जानना कि गुल्मरोगवाले की मृत्यु समीप है अन्तर्विद्रधि और गुल्मरोग में अन्तर केवल इतना है कि दोनों के स्थान स्वरूप तौ एकसे ही हैं परन्तु अन्तर्विद्रधि का परिपाक होता है गुल्मपकता १ नहीं है ।

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसुनु शा. सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां गुल्मरोग निदानं समाप्तम् ॥

—(-:-०-:-)—

॥ अथहृद्रोग निदानम् ॥

गुल्मका हृदय स्थान कहा है इससे हृदय रोग उसका सम्बन्धी होनेसे कहते है इँग्रेजीमें ऐंगिना पैकोरिस कहते हैं अरबीमें वजअडलकलब कहते हैं ।

अत्युष्णगुर्वम्लकषायतिक्तश्रमाभिघाताध्यनप्रसंगैः॥
संचिन्तनैर्वेगविधारणैश्च हृदामयः पंचविधःप्रदिष्टः॥१॥

भाषा–बहुत गरम, बहुत भारी बहुत खट्टा, बहुत कषैला, बहुत कडुआ ऐसे पदार्थ सेवन करनेसे, भिहनत से तथा चोट लगने से और अध्ययनसे विशेष चिन्ता करनेसे मल मूत्र आदि वेगों के रोकनेसे, वातादिकके क्षय और सन्निपातसे तथा कृमिसे हृदय रोग पैदा होता है वह पांच प्रकारका कहा है ।

हृद्रोगकी संप्राप्ति और उसके लक्षण कहते हैं ।

दूषयित्वा रसं दोषो विगुणा हृदयं गताः ॥

१ न निबन्धोऽस्ति गुल्मस्य विद्रधिः सनिबन्धनः ॥ गुल्मस्तिष्ठतिदोषे स्वे विद्रधिर्मांसशोणिते ॥ विद्रधिःपच्यते तस्माद् गुल्मश्चापि न पच्यते ॥ २१ ॥

हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥ २ ॥

भाषा—कुपित हुए दोष रसको दूषित दुष्ट करके हृदयमें अनेक प्रकार की पीड़ा जिसमें करते हैं उसको हृदयरोग कहते हैं ॥

वातहृद्रोग के लक्षण कहते हैं।

आयम्यते मारुतजे हृदयं तुद्यते तथा ॥
निर्मथ्यते दीर्यते च स्फोटयते पाटयतेऽपि च ॥ ३ ॥

भाषा-वातज हृदयरोगमें हृदय खिंचने लगे चोंटनेकीसी पीड़ाहो फूटनसी मथने के समान कुल्हाडीसे फाड़नेके तुल्य पीड़ा करै है ॥

पित्तके हृद्रोगके लक्षण कहते हैं।

तृष्णोष्णदाहमोहाः स्युः पैत्तिके हृदयक्लमः ॥
धूमायनं च मूर्च्छा च स्वेदः शोषो मुखस्य च ॥ ४ ॥

भाषा-पित्तके हृद्रोगमें प्यास, कुछ २ जलन मोह और हृदयमें ग्लानि धूआंसा निकले मूर्च्छा पसीना और मुखका सूखना ये लक्षण होते हैं।

कफके हृद्रोगके लक्षण कहते हैं।

गौरवं कफसंस्रावोऽरुचिः स्तंभोऽग्निमार्दवम् ॥
माधुर्यमपि चास्यस्य बलासावतते हृदि ॥५॥

भाषा-कफके हृदय व्याप्त होनेपर भारापन, कफ गिरने लगे अरुचि हृदय का जकड़ना मन्दाग्नि, मुखमें मिठास ये लक्षण होते हैं ॥

त्रिदोषजके लक्षण कहते हैं।

विद्यात्त्रिदोषं त्वपि सर्वलिङ्गम्—

भाषा—जिसमें सब लक्षण मिलते होयँ वह त्रिदोषका हृद्रोग जानना। इसमें कुपथ्य होनेसे ग्रन्थि उत्पन्न होते हैं उसमें १ कृमि पैदा होता है उसके लक्षण आगे कहते हैं।

कृमिज हृद्रोगं के लक्षण कहते हैं।

तीव्रार्तितोदं कृमिजं सकण्डूम् ॥
उत्क्लेदः ष्ठीवनं तोदः शूलं हृल्लासकस्तमः ॥
अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोषश्च कृमिजे भवेत् ॥ ६

भाषा-तीव्र पीड़ाकरके तथा नोचनेकीसी पीड़ा करके तथा खुजली कर के युक्त ऐसा हृद्रोग कृमिजन्य जानना । उषाकी थूकना, तोद, शूल, हृल्लास, अँधेरा आवे, अरुचि, नेत्र काले पड़जांय और मुखशोष ये लक्षण कृमिज हृदयरोगमें होते हैं ।

सब हृद्रोगों के उपद्रव कहते हैं ।

क्लमः सादो भ्रमः शोषो ज्ञेयास्तेषामुपद्रवा ॥
कृमिजे कृमिजातीनांश्लैष्मिकाणां च ये मताः॥ ७ ॥

भाषा—तकलीफ भ्रम, शोष ये सब हृद्रोग के उपद्रव जानने । और कफ की कृमिरोगके जो उपद्रव पिछाडी कह आये हैं कृमिज हृद्रोगके लक्षणहोते है । तथा हृल्लासमास्यस्रवणमविपाकमरोचकम् । इत्यादि जानने॥

इतिश्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसूनु शा० सोहन लाल
विद्याभूषण विरचितायां सुबोधिन्या
हृद्राग निदानं समाप्तम् ।

तीन मर्म स्थान शिरहृदय और वस्ति प्रधान है इससे हृदयगत विकारों को कहकर वस्तिगत विकारों को कहते इँग्रेजी में डीसुरिया अरबी में तकतीरउववौल कहते हैं ।

अथ मूत्रकृच्छ्र निदानम् ।

व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्यप्रसंगनित्यद्रुतपृष्टयानात् ॥
आनूपमांसाध्यशनादजीर्णात्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि नृणामिहाष्टौ १

भाषा—व्यायाम कसरत, तीक्ष्णौषध रूखा पदार्थ मद्यपान करना नित्य शीघ्र चलनेवाली सवारीपर बैठनेसे और जलके समीप रहने वाले पक्षी [हँस सारस चकवा आदि] यों के मांस खानेसे और मछली, भोजनके ऊपर भोजन पदार्थ इत्यादिकों के खानेसे मनुष्यों के आठ प्रकार मूत्रकृच्छ्ररोग होता है । करने और कच्चे पृथक् दोषोंसे ३, सन्निपातसे १, चोट लगनेसे १, मलके रोकने वीर्य रोकनेसे १ और पथरीसे १ ये सब मिलकरके आठ प्रकार के होते हैं ।

मूत्रकृच्छ्रकी सम्प्राप्ति कहते है ।

पृथङ्मलाः स्वैः कुपिता निदानैः सर्वेऽथ वा कोपमुपेत्य वस्तौ ॥
मूत्रस्य मार्गं परिपीडयंति यदा तदा मूत्र्यतीह कृच्छ्रात् ॥२॥

भाषा-अपने कारणोंसे कुपित हुए जो वातादिक दोष वे पृथक् २ सब बस्तिमें कुपित होकर मूत्रके मार्गको पीडित करते हैं तब मनुष्यका बड़े कष्ट से मूत्र उतरता है ॥

पैत्तिक मूत्रकृच्छ्रके लक्षण कहते हैं ।

पीतं सरक्तं सरुजं सदाहं कृच्छ्रं मुहुर्मूत्रयतीह पित्तात् ३

भाषा—पित्तके मूत्रकृच्छ्रसे पीला, कुछ लाल पीड़ायुक्त, जलन करता हुआ बारंबार कष्टसे मूत्र उतरने लगता है ॥

वातिक मूत्रकृच्छ्रके लक्षण कहते हैं ।

तीव्रार्तिरुग्वंक्षणबस्तिमेढ्रे स्वल्पं मुहुर्मूत्रयतीह वातात् ॥३॥

भाषा-वातके मूत्रकृच्छ्रसे वंक्षण (जांघ और ऊरु इनकी संधि) मूत्रा. शय और इन्द्रिय इनमें पीड़ा होतीहै और मूत्र बारंबार थोड़ा थोड़ा उतरता है ।

कफजन्य मूत्रकृच्छ्रके लक्षण कहते हैं ।

बस्तेः सलिंगस्य गुरुत्वशोथौ मूत्रं सपिच्छं कफमूत्रकृच्छ्रे॥

भाषा-कफके मूत्रकृच्छ्रमें लिंग और मूत्राशय भारी होजाय तथा सूजन होय मूत्र चिकना होजाता है ॥

सन्निपातजन्य मूत्रकृच्छ्रके लक्षण कहते हैं ।

सर्वाणिरूपाणि तु सन्निपाताद्भवंति तत्कृच्छ्रतमं तु कृच्छ्रम्॥४॥

भाषा-सर्व लक्षण जहां होते हैं । वह सन्निपात से जानना वह मूत्र. कृच्छ्र कष्टसाध्य समझना चाहिये

शल्यजन्य मूत्रकृच्छ्रके लक्षण कहते हैं ।

मूत्र वाहिषु शल्येन क्षतेष्वभिहतेषु च ॥
मूत्रकृच्छ्रं तदाघाताज्जायते भृशदारुणम् ॥
वातकृच्छ्रेण तुल्यानि तस्य लिंगानि लक्षयेत् ॥५॥

भाषा—मूत्र बहनेवाले स्रोत (मार्ग) शल्य (तीर आदि) से विंध

जाय अथवा पीडित होय तो उस रुकावट व चोटसे भयंकर मूत्रकृच्छ्र होता है इसको वातजन्य मूत्रकृच्छ्र तुल्य समझना चाहिये ॥

मलजन्य मूत्रकृच्छ्र के लक्षण कहते हैं ।

शकृतस्तु प्रतीघाताद्वायुर्विगुणतां गतः ॥
आध्मानं वातसंगं च मूत्रसंगं करोति च ॥६॥

भाषा—मल (विष्ठा) रोकनेसे विगुण (उलटा) हुआ वायु अफरा, वात, शूल और मूत्र इसको नाश करें तब मूत्रकृच्छ्र प्रगट होता है ॥

अश्मरीजन्य मूत्रकृच्छ्रके लक्षण कहते हैं ।

अश्मरीहेतु तत्पूर्वं मूत्रकृच्छ्रमुदाहरेत् ॥ ७ ॥

भाषा—पथरीके योगसे जो मूत्रकृच्छ्र होता है उसको पथरी का मूत्रकृच्छ्र कहते हैं ॥

शुक्रजन्य मूत्रकृच्छ्रके लक्षण कहते हैं ।

शुक्रे दोषैरुपहते मूत्रमार्गे विधाविते ॥
सशुक्रं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्बस्तिमेहनशूलवान् ॥ ८ ॥

भाषा-दोषों से वीर्यके दूषित होनेपर शुक्र मूत्रमार्गमें गमन करे तब उस मनुष्यके मूत्राशय और लिंग इनमें शूल होय और पेशाब करते समय वीर्य पेशाब के साथ आवे ॥

कहे हुए अश्मरी और शर्करा इनकी तुल्यता और अवांतर भेद कहते हैं ।

अश्मरी शर्करा चैव तुल्यसम्भवलक्षणे ॥
विशेषणं शर्करायाः शृणु कीर्त्तयतो मम ॥
पच्यमानाऽश्मरी पित्ताच्छोष्यमाणा च वायुना ॥
विमुक्तकफसंधाना क्षरंती शर्करामता ॥१०॥
हत्पीडा वेपथुः शूलं कुक्षावग्निश्च दुर्बलः ॥
तथा भवति मूर्च्छा च मूत्रकृच्छ्रं च दारुणम् ॥११॥

भाषा-अश्मरी (पथरी) शर्करा इन दोनोंकी संप्राप्ति और लक्षण समान हैं परन्तु इनमें शर्कराकी जो विशेषता हैं उसको कहते हुए मुझसे सुन ऐसा गुरुका शिष्यके प्रति कहने का तात्पर्य है यहां थोड़ा भेद है उसको कहता हूँ ।

पित्तसे पकनेवाली और वायुसे शुष्क होनेवाली ऐसी पथरी कफका सन्धान न होय तब मूत्र के मार्गसे रेतके समान झरने लगे उसको शर्करा * कहते हैं। उस शर्करारोगसे हृदय में पीड़ा, कम्प, कूखसे शूल, मन्दाग्नि, मूर्च्छा और भयंकर मूत्रकृच्छ्र ये रोग होते हैं ॥

मूत्रवेगनिरस्ताभिः प्रशमं याति वेदना ॥
यावदस्या पुनर्नैति गुडिका स्रोतसो मुखम् ॥

भाषा-इन शर्कराओं के मूत्र वेगसे निकलने पर वेदना तब तक शान्ति होजाती है जब तक इसके स्रोतके मुखपर चेपकी गोलीसी नहीं प्राप्त होती है ।

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसूनुं शा० सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां मूत्रकृच्छ्रनिदानं समाप्तम् ।

मूत्रकृच्छ्रसे मूत्रघात होता है इंग्रेजी में इसको रिटेन्शन आफ यूरिन अरबी में एहंतेबासडलबील कहते हैं ।

अथ मूत्राघात निदानम् ॥

जायन्ते कुपितैर्दोषैर्मूत्राघातास्त्रयोदश ॥
प्रायो मूत्रविघाताद्यैर्वातकुण्डलिकादयाः ॥१॥

भाषा-मूत्रके रोकनेसे आदि शब्दसे मल शुक्रादिका वेग रोकनेसे और रूक्ष भोजन आदिसे कुपित हुए दोषोसे तेरह प्रकार के मूत्राघात रोग पेदा होते हैं इनको वातकुण्डलिकादि कहते हैं ॥

वातकुडणलिकां के लक्षण कहते हैं ।

रौक्ष्याद्वेगविघाताद्वा वायुर्बस्तौ सवेदनः ॥
मूत्रमाविश्य चरति विगुणः कुण्डलीकृतः ॥२॥
मूत्रमल्पाल्पमथवा सरुजं संप्रवर्तते ॥
वातकुण्डलिकां तां तु व्याधिं विद्यात्सुदारुणम् ॥ ३॥

---

* यथाह-चरके स्याच्छर्करामूत्रपथात् क्षरन्ती इति

भाषा—रूखे पदार्थ सेवनेसे अथवा मलमूत्रादि वेगोंके रोकने से कुपित हुआ जो वायु सो बस्ति (मूत्राशय) में प्राप्त होकर पीड़ा करता हुआ और मूत्रसे मिलकर मूत्र के वेगको विगुण (उलटा) करके वहां आप कुण्डली के आकार (गोलाकार) मूत्राशय में विचरे तब मनुष्य उस बातसे पीडित हो मूत्रको बारंबार थोड़ा थोड़ा पीडाके साथ त्याग करे । इस दारुण व्याधि को वातकुण्डलिका रोग कहते हैं ॥

अष्ठीलाके लक्षण कहते हैं ॥

आध्मापयन्बस्तिगुदं रुद्ध्वा वायुश्चलोन्नताम् ॥
कुर्यात्तीव्रार्तिमष्ठीलां मूत्रविण्मार्गरोधिनीम् ॥४॥

भाषा-बस्ति (मूत्राशय) और गुदा इनको अर्थात् इनमें यह वायु अफरा करे तथा गुदाकी वायुको रोककर चंचल और उन्नत (ऊंची) करै ऐसी अष्ठीला (लोढ़ीसी) को प्रगट करे । यह मूत्रके मार्गको रोकनेवाली और भयंकर पीड़ा करनेवाली है उसको अष्ठीला जानना ॥

वातबस्तिके लक्षण कहते हैं ।

वेगं विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः ॥
निरुणद्धि मुखं तस्य वस्तेर्बस्तिगतोऽनिलः ॥५॥
मूत्रसंगो भवेत्तेन बस्तिकुक्षिनिपीडितः ।
वातबस्तिः स विज्ञेयो व्याधिकृच्छ्रप्रसाधनः ॥६॥

भाषा-मूत्रके वेगको मूर्ख मनुष्य जो धारण करै तब बस्तिके मुखको बस्तिमें प्राप्त हुआ वायु रोके तब उसका मूत्र बन्द हो जाय और वह वायु बस्तिमें और कूख में पीड़ा करे तब उस व्याधिको वातबस्ति ऐसा कहते हैं। यह बड़े कष्टसे सिद्ध होता है ॥

मूत्रातीतके लक्षण कहते हैं ।

चिरं धारयतो मूत्रं त्वरया न प्रवर्तते ॥
मेहमानस्य मन्दं वा मूत्रातीतः स उच्यते ॥७॥

भाषा-मूत्रको बहुत देर रोकने से पीछे वह जलदी नहीं उतरे और पेशाब धीरे धीरे उतरे इस रोगको मूत्रातीत कहते हैं ॥

मूत्रजठरके लक्षण कहते हैं ।

मूत्रस्य वेगेऽभिहते तदुदावर्त्तहेतुकः ॥
अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद्भृशम् ॥ ८ ॥
नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्तीव्रवेदनाम् ॥
तन्मूत्रजठरं विद्यादधोवस्तिनिरोधजम् ॥ ९ ॥

भाषा—मूत्रके वेगको रोकनेसे, मूत्रवेग धारण करने से उत्पन्न हुआ और उदावर्त्तका कारणभूत ऐसा अपानवायु कुपित होकर पेट बहुत फूल जाने लगे और नाभिके नीचे तीव्र वेदनासंयुक्त अफरा करे, अधोबस्तिका निरोध करनेवाले एस इस रोगको मूत्रजठर कहते हैं ॥

मूत्रोत्संगके लक्षण कहते हैं ।

बस्तौ वाप्यथ वा नाले मणौ वा यस्य देहिनः ॥
मूत्रं प्रवृत्तं सज्जेत सरक्तं वा प्रवाहतः ॥१०॥
स्रवेच्छनैरल्पमल्पं सरुजं वाथ नीरुजम् ॥
विगुणानिलजो व्याधिः स मूत्रोत्संगसंज्ञितः ॥११॥

भाषा–बस्तिमें अथवा शिश्न (लिंग) में प्रवृत्तहुआ मूत्र अथवा शिश्नके अग्रभागमें अटक जाय और बलसे मूत्रको करेभी तो वादीसे बस्तिको फाड़ कर जो मूत्र निकले वह मंद मंद थोड़ा थोड़ा पीडाके साथ अथवा पीडारहित रुधिरके साथ निकले ऐसे विगुण वायुसे उत्पन्नहुए रोगको मूत्रोत्संग कहते हैं ॥

मूत्रक्षयके लक्षण कहते हैं ।

रूक्षस्य क्लांतदेहस्य बस्तिस्थौ पित्तमारुतौ ॥
मूत्रक्षयं सरुग्दाहं जनयेतां तदाह्वयम् ॥ १२ ॥

भाषा—रूखा अथवा दुखी देहवाले पुरुष के बस्ति (मूत्रशय) में स्थित जो पित्त और वायु वे मूत्रका क्षय करें जिसमें पीडा तथा दाह होता है उसको मूत्रक्षय ऐसा कहते हैं ॥

मूत्रग्रन्थिके लक्षण कहते ह ।

अन्तर्बस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा भवेत् ॥

अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थिर्मूत्रग्रन्थिः स उच्यते ॥ १३ ॥

भाषा-वस्तिके मुखके भीतर गोल स्थिर छोटीसी गांठ, अकस्मात् होय उसमें पथरी के समान पीडा होय इस रोगको मूत्रग्रन्थि कहते हैं। यहां पर यह समझना चाहिये कि पथरी में पित्तादि दूषित होते हैं और इसमें रक्तही दूषित और ताडित होताहे इतनाही फर्क समझना जैसा ग्रन्थान्तरमें लिखाहै रक्तवात कफाद्दुष्टं वस्तिद्वारे सुदारुणं ॥ ग्रन्थिकुर्यात् सकृच्छ्रेण सृजेन्मूत्रं तदावृतम् ॥ अश्मरी समशूलं त रक्तग्रन्थिं प्रचक्षते ॥ इस प्रकार जानें।

मूत्रशुक्रके लक्षण कहते हैं।

मूत्रितस्य स्त्रियं यातो वायुना शुक्रमुद्धृतम् ॥
स्थानाच्च्युतं मूत्रयतः प्राक्पश्चाद्वा प्रवर्तते ॥
भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ॥१४॥

भाषा-मूत्र बाधाको रोककर जो मनुष्य स्त्रीसंग करे उसका वायु शुक्रको उठाय स्थानसे भ्रष्ट करे तब पेशाबके पहिले अथवा मूत्रके पीछे शुक्र गिरे और उसका वर्ण राख मिले पानीके समान होय उसको मूत्रशुक्र ऐसा कहते हैं॥

उष्णवातका लक्षण कहते हैं।

व्यायामाध्वातपैः पित्तं बस्तिं प्राप्यानिलायुतम्॥
बस्तिं मेढ्रं गुदं चैव प्रदहेत्स्रावयेदधः ॥ १५ ॥
मूत्रं हारिद्रमथ वा सरक्तं रक्तमेव च ॥
कृच्छ्रात्पुनः पुनर्जंतोरुष्णवातं वदंति तम् ॥ १६ ॥

भाषा—व्यायाम (कसरत) अति मांर्गका चलना और धूपमें डोलना इन कारणोंसे कुपित हुआ जो पित्त वह बस्तिमें प्राप्त हो वायु से मिलकर बस्ति, अंडकोश और गुदा इनमें दाह करे और हरापीला अथवा कुछ रक्तसे युक्त वा लाल ऐसा मूत्रका स्राव वारंवार कष्टसे होय उसको उष्णवात रोग कहते हैं॥

मूत्रसाद के लक्षण कहतेहैं॥

पित्तं कफो द्वा वपि वा संहन्येतेऽनिलेन चेत् ॥

कृच्छ्रान्मूत्रं तदा पीतं श्वेतं रक्तं घनं सृजेत् ॥ १७ ॥
सदाहं रोचनाशंखचूर्णवर्णं भवेत्तु तत् ॥ १८ ॥
शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्तितम् ॥

भाषा—पित्त तथा कफ वा दोनों वायुसे जब दूषित हुए होय तब मनुष्य पीला, लाल सफेद, गाढ़ा ऐसा कष्ट से पेशाबकरे और उससमय जलन हो और सूखा (थोड़ा,) वहमूत्र पित्तसे, गोरोचन सा कफसे, शंखके चूर्ण जैसा रंग होय और सन्निपात से अथवा सर्व वर्णका होय इस रोगका मूत्रसाद कहतेहैं

विड्विघात के लक्षण कहते हैं ॥

रूक्षदुर्बलयोर्वातेनोदावर्तं शकृद्यदा ॥ १९ ॥
मूत्रस्रोतोऽनुपद्येत विड्संसृष्टं तदा नरः ॥
विड्गंधं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्विड्विघातं विनिर्दिशेत् ॥ २० ॥

भाषा-रूखा चिकनाई से रहित और कमज़ोर आदमी के शकृत् मल जब वायु से प्रेरित उदावर्त्त को प्राप्त होय तब यह मल मूत्रके मार्गमें आवे उस समय मनुष्य मलभिला पेशाब करे बड़े कष्टसे मूत्र उतरे और उसके मूत्रमें विष्ठाकीसी दुर्गंध आवे, उसको विड्विघात कहते हैं ॥

बस्तिकुंडलरोगकेलक्षण कहते हैं ॥

द्रुताध्वलंघनायासैरभिघातात्प्रपीड़नात् ॥
स्वस्थानाद्बस्तिरुद्वृत्तः स्थूलस्तिष्ठति गर्भवत् ॥ २१ ॥
शूलस्पन्दनदाहार्तो बिन्दुं बिन्दुं स्रवत्यपि ॥
पीडितस्तु सृजेद्धारां संरंभोद्वेष्टनार्तिमान् ॥ २२ ॥
बस्तिकुंडलमाहुस्तं घोरं शस्त्रविषोपमम् ॥
पवनप्रबलं प्रायो दुर्निवारमबुद्धिभिः ॥ २३ ॥

भाषा-शीघ्र चलनेसे न खाने से मिहनतसे चोटसे पीडासे बस्ति अपने स्थान से हठ ऊपर जाय और मोटी होकर गर्भके समान कठिन होकर रहे, उससे शूल, फड़कन और दाह ये होतेहैं । मूत्रकी एक एक बूंद गिरे । यदि

बस्ति जोरसे पीडित होय तो बड़ी धार पडे, बस्तिमें सूजन होय, पेटमें पीड़ा होय इसरोगको बस्तिकुण्डल ऐसा कहते हैं । यह शस्त्र के समान जल्दी प्राणनाशक और विषके समान कालांतरमें प्राणका नाशकरने वाला भयंकर रोग है । इसमें प्रायः वायु प्रबल है । मन्दबुद्धिवाले वैद्योंसे इसका निवारण (चिकित्सा) करना कठिन है ॥

अलाहिदा अर्थ सूचित करने को प्रसिद्ध अनुभव को दिखानेके लिये और दोषोंसे संबंध रखनेवाले वातका ही लक्षण कहते हैं ॥

तस्मिन्पित्तान्विते दाहः शूलं मूत्रविवर्णता ॥ २३ ॥
श्लेष्मणागौरवं शोथःस्निग्धं मूत्रं घनं सितम् ॥

भाषा—उस बस्तिकुंडल के पित्तयुक्त होनेसे दाह और मूत्र का बुरा रंग होता है और कफयुक्त होनेसे भारापन सूजन होती है, मूत्र चिकना, गाढ़ा सफेद ऐसा होजाता है ॥

साध्यासाध्यलक्षण कहते हैं ।

श्लेष्मरुद्धबिलो बस्तिःपित्तोदीर्णो न सिद्धयति २४ ॥
अविभ्रांतबिलः साध्यो नतुयःकुण्डलीकृतः ॥

भाषा—कफसे जिसका मुख बन्द होय ऐसी और पित्तसे व्याप्त हुइ ऐसी बस्ति साध्य नहीं होती और जिस बस्तिका मुख खुला होय तथा जोकुण्डली कृत नहीं होय वहसाध्य होती है ॥

कुण्डलीभूतके लक्षण ॥

स्याद्बस्तौ कुंडलीभूते तृण्मोहःश्वास एव च ॥ २५ ॥

भाषा—बस्ति के कुण्डली भूत होनेपर प्यास, दाह और श्वास ये लक्षण होतेहैं यह विड्विघात और बस्ति कुण्डल सुश्रुत में नहीं कहेहैं इससे *मूत्रो दकसाद कोही दो प्रकार पाठ करके बारह मूत्रघात है ऐसा कहाहै ॥

इतिश्री वैद्यराज झल्लास्वामिसूरिसूनि शा० सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां मूत्रघात रोग निदानं समाप्तम् ।

मूत्राघात और अश्मरी का साधर्म्य होनेसे मूत्राघातके पीछे अश्मरीका वर्णन करते हैं इसको अँग्रेजीमें स्टोनग्रेवल तथा अरबीमें हीसआत कहते हैं ।)

अथाश्मरी रोगनिदानम् ॥

वातपित्तकफैस्तिस्रश्चतुर्थी शुक्रजाऽपरा ॥
प्रायः श्लेष्माश्रयाः सर्वा अश्मर्यः स्युर्यमोपमाः ॥१॥

भाषा-वात, पित्त, कफ इनसे तीन, शुक्रसे चौथी, अश्मरी (पथरी) होती है । यह पथरी विशेष करके कफाश्रित १ सब हैं और यम के समान भयंकर हैं ॥

अश्मरी की सम्प्राप्ति कहते है ।

विशोषयेद्वस्तिगतं सशुक्रं मूत्रं सपित्तं पवनः कफं वा ॥
यदा यदाश्मर्युपजायते च क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः॥२

भाषा-जिन मनुष्योंका वायु बस्तिमें पथरी में प्राप्त हो शुक्रयुक्त अथवा पितयुक्त मूत्र अथवा कफको सुखावै तब उस स्थानमें पथरी प्रगट होती है। जैसे गौके पित्तेमें गोरोचन जमताहै उसी प्रकार बस्तिमें वीर्यसे पथरी होतीहै।

अश्मरी की पूर्वरूप कहते हैं ।

नैकदोषाश्रयाः सर्वा अथासां पूर्वलक्षणम् ॥
बस्त्याध्मानं तदासन्नदेशेषु परितोऽतिरुक् ॥३॥
मूत्र बस्तसगंधत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वराऽरुचिः ॥

भाषा-सब अश्मरी (पथरी) एक दोषके आश्रित नहीं होती है अर्थात् अनेक दोषाश्रितहैं इनके बाद इनके पूर्वरूपमें बस्तिका फूलना, बस्तिके आस पास अत्यन्त पीड़ा होना, मूत्रमें बकरेके पेशावकीसी बदबू आना, मूत्रकृच्छ्र ज्वर, अरुचि यह होते हैं ॥

अश्मरीके सामान्य लक्षण कहतेहैं ।

सामान्यलिंगं रुङ्नाभिसेवनीबस्तमूर्धसु ॥४॥
विशीर्णधारं मूत्रं स्यात्तया मार्गनिरोधिते ॥

---

१ वीर्य से उत्पन्न हुई पथरी के सिवाय सब श्लेष्माश्रय हैं शुक्र पथरी में तो शुक्र काही समवायि कारणत्व होनेसे जैसा दृढ़बलने कहाहै "विशोषयेद्वस्तिगतं सशुक्रम्"

तद्व्यपायात्सुखं मेहेदच्छं गोमेदकोपमम् ॥५॥
तत्संक्षोभात्क्षते सास्रमायासाच्चातिरुग्भवेत् ॥

भाषा-नाभि सीमन (अण्डकोशके और गुदाके बीचका भाग) और बस्तिका ऊपरका हिस्सा इनमें दर्दहोना पथरीके योगसे मूत्रमार्ग रुकनेसे मूत्रकी धार फटीर निकलना पथरीका मूत्रमार्गके पाससे हट जानेपर तो मूत्र अच्छी रीतिसे उतरे और स्वच्छ गोमेदमणिके समान होय, अश्मरी (पथरी) के योगसे बस्तिमें घाव होनेसे रुधिर मिला मूत्र उतरे और पेशाबके करतेसमय जोर करनेसे बड़ा क्लेश और पीड़ा होय ये सामान्य लक्षण जानने ॥

वातकी पथरीके लक्षण कहते हैं ।

तत्र वाताद्भृशं चार्तो दन्तान्खादति वेपते ॥६॥
मथ्नाति मेहनं नाभि पीडयंत्यनिशं क्वणन् ॥
सानिलं मुंचति शकृन्मुहुर्मेहति बिंदुशः ॥७
श्यावारुणाश्मरी चास्य स्याच्चिता कंटकैरिव ॥

भाषा-तहां वातसे उत्पन्न हुई पथरीसे रोगी अत्यन्त पीड़ासे व्याप्त होय दांतोंको चबावे, कांपे, लिंग को हाथसे मींडे नाभिको मीड़े और हर समय दुःखसे रोवे और मूत्र अधोवायुके साथ मलको त्यागे बार२ थोड़ा २ पेशाब टपकावै उसकी पथरीका रंग काला और लालहो और वह कांटोंसे घिरीहुई की तुल्य होय ॥

पित्तकी पथरीके लक्षण कहते हैं ।

पित्तेन दह्यते वस्तिः पच्यमान इवोष्मवान् ॥८॥
भल्लातकास्थिसंस्थाना रक्ता पीतासिताश्मरी ॥

भाषा-पित्तसे उत्पन्न होनेवाली पथरीसे बस्तिस्थान जलने लगे पकाहुआसा गरमीयुक्त ऐसाहो और भिलायेकी गुठली की भींगीसी लाल पीरी और काली ऐसी पथरी होती है ॥

कफजन्य अश्मरीके लक्षण कहते हैं ।

वस्तिर्निस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतलो गुरुः ॥९॥
अश्मरी महती श्लक्ष्णा मधुवर्णाथ वा सिता ॥

भाषा-कफसे उत्पन्न होनेवाली पथरीसे बस्तिमें चोंटनेकीसी पीड़ा होय ठण्डापन होय और उसमें भारापन होय तथा उसमें पथरियाका स्वरूप बड़ी चमकदार सहत कैसे रंग जैसा कुछ पीलापन लिये सफेद ऐसा होता है ॥

एता भवंति बालानांतेषामेव च भूयसा ॥१०॥
आश्रयोपचयाल्पत्वाद् ग्रहणाहरणे सुखाः॥

भाषा-यह जो १ तीनों दोषों से उत्पन्न होने वाली पथरी है वह प्रायः बच्चों के होतीहै इसका कारण भारी मीठा शीतल चिकना आहारहै और उन के ही बस्तिकी मुटाई छोटी होती है क्योंकि उसके शरीरको छोटेपन की वजहसे इसहीसे वैद्योंको उसका उपाहरण(फाड़कर खींचना)और ग्रहण(उस लिये अंगलिद्वारा दाबकर निकालना)इत्यादि क्रिया१ सुखपूर्वक होतीहैं ।

शुक्राश्मरीके लक्षण कहते हैं ।

शुक्राश्मरी तु महतां जायते शुक्रधारणात् ॥११॥
स्थानाच्च्युतममुक्तं हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलाः
शोषयत्युपसंहृत्यशुक्रं तच्छुष्कमश्मरी ॥१२॥
वस्तिरुक् मूत्रकृच्छ्रत्वं मुष्कश्वयथुकारिणी ॥
तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते ॥१३॥
पीडिते त्ववकाशेऽस्मिन्नश्मर्येव च शर्करा ॥

भाषा--शुक्राश्मरी वीर्यके रोकनेसे बड़े मनुष्योंको ही होती है । मैथुन करनेके समय अपने स्थानसे चलायमान होगया जो वीर्य उस समय तब वीर्य बाहर नहीं निकलता, भीतरही रहजाता है तब वायु उस शुक्रको सुखा देय उसको शुक्रजअश्मरी कहते हैं । इससे अंडकोषों में सूजन, बस्तीमें पीड़ा और मूत्रकृच्छ्रता होती है । शुक्राश्मरीके आदि में लिंग और अण्डकोष, पेडू इनमें पीड़ा होना वीर्यका नाश होनेके कारण पथरीकी नाई शर्करा उत्पन्न होती है । वहां अवस्था भेद को प्राप्तहुई पथरी जो है वहही शर्करा है अवस्था भेदसे बड़े छोटे का भेद मात्र जानना ।

१ उक्तंहि सुश्रुते-प्रायशेता .स्तिस्रोऽश्मर्यो दिवास्वप्नसमशनाध्यशनशीतास्निग्ध मधुराहार प्रियत्वाद्विशेषेण बालानां भवन्तितेषामेवाल्पवस्तिकायत्वादल्पमांसोप चयाच्च बस्तेः सुख ग्रहणा हरणा भवन्ति ॥

कैसे पथरी शर्करा होती है और उसके उपद्रव क्या हैं ।

अणुशो वायुना भिन्ना सा तस्मिन्ननुलोमगे ॥
निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे निरुध्यते ॥
मूत्रस्रोतःप्रवृत्ता सा सक्ता कुर्यादुपद्रवान् ॥ १५॥
दौर्बल्यं सदनं कार्श्यं कुक्षिशूलमथारुचिम् ॥
पांडुत्वमुष्णवातं च तृष्णां हृत्पीडनं वमिम् ॥ १६॥

भाषा–अणु२करके वायुसे टूटीहुई वह पथरी वायुके वस्तिके प्रतिअनुलोम गतिसे मूत्र के साथ निकलने लगे और उसही वायुके प्रति लोमगति होनेपर उसका निरोध होजाय वह पथरी मूत्रमार्ग में प्रवृत्त हुई इन दुर्बलता, ग्लानि, कृशता, कूखमें दर्द अरुचि, पांडुता उष्णवात, प्यास हृदय में पीड़ा वमन आदि उपद्रवों को करै ॥

उसके असाध्य लक्षण कहते हैं॥

प्रशूननाभिवृषणं बद्धमूत्रं रुजान्वितम् ॥
अश्मरी क्षपयत्याशु शर्करा सिकतान्विता ॥ १७ ॥

भाषा—जिसके नाभि और अंडकोश सूजजाय, मूत्र नहीं उतरे पीड़ा होय ऐसे पुरुषके शर्करा और सिकतायुक्त पथरी प्राण नाश करदेती हैं ॥

इतिश्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसूनु शा० सोहन लाल
विद्याभूषण विरचितायां सुबोधिन्या
मश्मरी निदानं समाप्तम् ।

अथोत्तरार्द्धः।

तत्रादौ प्रमेह पीडिका निदानम्।

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्योदकानूपरसाःपयांसि ॥
नवान्नपानं गुडवैकृतं च प्रमेहहेतुःकफकृच्च सर्वम् ॥ १॥

भाषा-बैठनेका सुख निद्राका सुख किंवा स्वप्नसुख कहिये स्वप्नमें स्त्री प्रसंग आदि सुख दही और ग्राम्य जीव भेड बकरी आदि जलके जीव मच्छी

आदि, अनूप (जलसमीप) के रहनेवाले जीव हँस चकवा आदि, ऐसे प्राणियोंका मांसरस,दूध,नया अन्न और तथा जल गुड़ आदि के विकार [बने हुए पदार्थ और जितने कफकारक पदार्थ हैं वे सब प्रमेह के कारण जानने चाहिये ॥

कफपित्तवातप्रमेहोंकी क्रमसे सम्प्राप्ति कहते हैं।

मेदश्च मांस च शरीरजं च क्लेदं कफो बस्तिगतः प्रदूष्य ॥
करोति मेहान्समुदीर्णमुष्णैस्तानेव पित्तं परिदूष्य चापि २॥
क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य धातून्संदूष्य मेहान्कुरुतेऽनिलश्च ॥
साध्याःकफोत्थादशपित्तजाःषट्याप्यानसाध्याःपवनाच्चतुष्कः॥
समक्रियत्वाद्विषमक्रियत्वान्महात्ययत्वाच्चयथाक्रमंते ॥३ ॥

भाषा—बस्ति (मूत्रस्थान) में प्राप्त हुआ कफ उत्पन्न हुए मेद मांस और शरीरके क्लेदको बिगाड़कर प्रमेहको उत्पन्न करताहै।गरम चीजों से पित्त को दूषित तथा पूर्वोक्त मेद मांसको बिगाडकर प्रमेह को उत्पन्न करै और वायु यह दोष क्षीण होनेसे धातु नाम वसा मज्जादिकको खीचकर बस्ति के मुखपर लाकर प्रमेहको प्रगट करै कफसे दश प्रमेह साध्य हैं । पित्तके छः प्रमेह विषम चिकित्सा करनेसे याप्य होतेहैं। बादी से प्रगट चार प्रमेह मज्जादि गंभीर धातुओंके आकर्षण करने से अत्यंत पीड़ाकर्त्ताहै और इनकी विषमही क्रिया है इसीसे ये चार असाध्य हैं ॥

सब प्रमेहोंको दोष और दूष्य का संग्रह कहते हैं ॥

कफःसपित्तं पवनश्च दोषा मेदोऽस्रशुक्राम्बुवसालसीकाः ॥
मज्जारसौजःपिशितं च दूष्याःप्रमेहिणां विंशतिरेवमेहाः४॥

भाषा—कफ, पित्त सहित और वायु ये दोष और मेद,रक्त, जल,मांस चर्बी लसीका(मांसका जल)मज्जारस और ओज और मांस ये दूष्य होतेहैं और प्रमेह वालों के बीसप्रकारके प्रमेह होते हैं उनके भेद अलग२कहैंगे।

दन्तादीनांमलाढ्यत्वं प्राग्रूपं पाणिपादयोः ॥
दाहश्चिक्कणतादेहेतृट् स्वाद्वास्यंचजायते ॥ ५ ॥

भाषा—दांत आदि जीभ तालु को मलकर युक्त होना । हाथ पैर में जलन देहमें चिकनापन, प्यास, मुखमें मिठापन यह प्रमेहके पूर्वरूप होतेहैं

सुश्रुत में कहे केशोंमें गुलझट(हलझट) और नाखूनों का हदसे ज्यादा बढ़ना ऐसा जानना ॥

प्रमेहके सामान्य लक्षण कहते हैं ।

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता ॥

भाषा–प्रमेहों का सामान्य लक्षण दूष्य द्रव धातुओं के सम्बन्ध से बहुत मूत्र उतरना और दोष दूष्य संसर्गसे गाढ़ापन लिये पेशावका उतरनाजानै

प्रमेहके कारण कहते हैं ॥

दोषदूष्याविशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः ॥ ६ ॥
मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते ॥

भाषा–क्योंजी कफसे दसप्रकारका प्रमेह और पित्तसे ६प्रकारका इत्यादि व्यवस्था कैसे क्योंकि कारण भेदसे कार्यभेद होता है ॥ उत्तर ॥ वह जो दोष दूष्य उनके उत्कर्ष और अपकर्ष किये संयोग भेदसे हुआ जो भेद उस से प्रमेहों में होता हैं जैसे पांच वर्णों में सफेद काला पीला लाल के संयोग भेदसे अनेक पिंगल (मटिया) पाटल (श्वेतरक्त) आदि भेद होतेहैं जैसा सुश्रुत में भी कहाहै "यथापंचानां वर्णनामुत्कर्षा प कर्ष कृतेन संयोग विशेषेण कपिलादि नाना वर्णेत्पत्तिरेव दोषादि संसर्गान्मेहानांनानात्वं" संयोग भेदकी प्रतीतं कैसे हो सो कहतेहैं मूत्रषाणादिभेदको देखकर उससे समान कारणों का भेद कल्पना करना चाहिये जैसे मृत्तिका आदिके कारण कलाप के अभेद परभी कुम्हार आदिके संयोग भेदसे उदञ्चन आदिमें कुम्हार आदि के प्रयत्न भेदसेसंयोग भेद होताहै यहां कौन संयोग भेद का कारण है तहां कहतेहैं कि यहांतो कोई दोष नहीं आता क्योंकि वैसा२ही भोजन व वैसा२ ही अदृष्टि उपस्थित होता है ॥

कफके १० प्रमेहके लक्षण कहते हैं ।

अच्छं बहुसितं शीतं निर्गंधमुदकोपमम् ॥ ७ ॥
मेहत्युदकमेहेन किंचिदाविलपिच्छिलम् ॥
इक्षो रसमिवात्यर्थं मधुरं चेक्षुमेहतः ॥ ८ ॥
सांद्रीभवेत्पर्युषितं सान्द्रमेहेन मेहति ॥

सुरामेही सुरातुल्यमुपर्यच्छमधोघनम् ॥ ९॥
संहृष्टरोमा पिष्टेन पिष्टवद्बहुलं सितम् ॥
शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति ॥ १० ॥
मूत्राणून्सिकतामेही सिकतारूपिणो मलान् ॥
शीतमेही सुबहुशो मधुरं भृशशीतलम् ॥ ११ ॥
शनैः शनैः शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति ॥
लालातंतुयुतं मूत्रं लालामेहेन पिच्छिलम् ॥ १२ ॥

भाषा-१उदक प्रमेह से स्वच्छ, बहुत सपेद, शीतल, गंधरहित,पानीके समान कुछ गाढ़ा और चिकना पेशाबकरै है । २ इक्षुप्रमेहसे ईखके रसके तुल्य अत्यन्त मीठा ऐसा मूत्र होय । ३ सांद्रप्रमेहसे रात्रिमें पात्रमें रखनेसे जैसा होवे ऐसा मूत्र होय । ४ सुराप्रमेह से मदिराके तुल्य ऊपर निर्मल और नीचे गाढ़ा ऐसा पेशाब करै । ५ पिष्टप्रमेहसे पिसेहुए चावलोंके पानी समान सपेद और बहुत पेशाबकरै और पेशाब करते वक्त रोम खड़े होजाय । ६ शुक्रप्रमेह से वीर्य के समान अथवा शुक्रमिला मूत्र होय। ७ सिकतामेहसे मूत्रके कण वालू रेतके समान कड़े तथा छोटे २ टुकड़े पेशाबमें गिरै । ८ शीतमेहसे मधुर तथा अत्यंत शीतल ऐसा बारंबार बहुत पेशाब करै। ९ शनैर्मेहसे धीरे २ और मन्द २ पेशाब करै। १० लालप्रमेहसे लारके समान तारयुक्त और चिकना पेशाब होता है ।

पित्तके ६ प्रमेहोंके लक्षण कहते हैं ।

गंधवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोयवत् ॥
नीलमेहेननीलाभं कालमेही मसीनिभम् ॥१३॥
हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रासन्निभं दहत् ॥
विस्रं मांजिष्ठमेहेन मांजिष्ठ सलिलोपमम् ॥१४॥
विस्रमुष्णं सलवणं रक्ताभं रक्तमेहतः ॥

भाषा—क्षीरप्रमेहसे गंध, वर्ण, रस और स्पर्श से खारे जलके तुल्य पेशाब होता है । नीलप्रमेहसे नीले रंगका अर्थात् चास पक्षीके पंखके सदृश पेशाब होता है । कालप्रमेहसे स्याहीके तुल्य काला पेशाब होता है । हारिद्र

प्रमेहसे तीक्ष्ण हलदी के समान और दाहयुक्त पेशाव होता है । मांजिष्ठ प्रमेहसे आम दुर्गंध और मजीठके समान पेशाब होता है । रक्तप्रमेह से दुर्गंधयुक्त, गरम, खारी और रुधिरके समान लाल पेशाब होता है इस प्रकार छः प्रकार का पित्त प्रमेह जाने ।

वातके ४ प्रमेहोंके लक्षण कहते हैं ।

वसामेही वसामिश्रं वसाभं मूत्रयेन्मुहुः ॥ १५॥
मज्जाभं मज्जमिश्रं वा मज्जमेही मुहुर्मुहुः ॥
कषायमधुरं रूक्षं क्षौद्रमेहं वदेद्बुधः ॥१६॥
हस्तीमत्तइवाजस्रं मूत्रं वेगविवर्जितम् ॥
सलसीकं विबद्धं च हस्तिमेही प्रमेहति ॥१७॥

भाषा-वसाप्रमेहवाला वसा युक्त अथवा वसाके समान पेशाबकरै । मज्जाप्रमेहवाला मज्जाके समान अथवा मज्जा मिला वारम्वार पेशाव करै । क्षौद्र प्रमेहवाला कषैला, मीठा और चिकना ऐसा पेशाव करै । हस्तिप्रमेहवाला मस्त हाथीके समान निरन्तर वेगरहित जिसमें तार निकले और ठहर ठहरके पेशाव करता है इस प्रकार कुल वात पित्त कफसे बीस प्रकारके प्रमेह हुए ।

अथ कफमादि प्रमेहोंके कृछ्रसाध्य व असाध्यपनको वतानेके लिये अलग २ भेद करके उपद्रवोंका वर्णन करते हैं तहां कफके इसप्रकार उपद्रव जानै ।

अविपाकोऽरुचिश्छर्दिज्वरः कासः सपीनसः ॥
उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफजन्मनाम् ॥१८॥

भाषा-अन्नका परिपाक न होता अरुचि, वमन, ज्वर, खांसी, पीनस ये कफसे उत्पन्नहुए प्रमेहोंके उपद्रव होते हैं ॥

पित्तजन्यप्रमेहों के उपद्रव कहते हैं ।

बस्तिमेहनयोः शूलं मुष्कावदरणं ज्वरः ॥
दाहस्तृष्णाम्लिका मूर्च्छा विड्भेदः पित्तजन्मनाम् ॥१९॥

भाषा-बस्ति और लिंग इनमें पीडा होना अंडकोशोंकी खालका चिरना. ज्वर, जलन, तृष्णा, खट्टी डकार, मूर्च्छा और पतला दस्त होना ये पित्तप्रमेहोंके उपद्रव होते हैं ।

वातप्रमेहोंके उपद्रव कहते हैं ।

वातजानामुदावर्तं कंठहृद्ग्रहलोलता ॥

शूलमुन्निद्रता शोषः कासः श्वासश्च जायते ॥ २० ॥

भाषा-उदावर्त्त, गला, हृदय इनका रुकना, लोलता (सर्व पदार्थों के ऊपर तबियत का चलना), शूल, नींद न आना, शोष, सूखी खांसी, श्वास ये वातप्रमेहों के उपद्रव होते हैं ।

प्रमेहोंके असाध्य लक्षण कहते हैं ।

यथोक्तोपद्रवारिष्टमतिप्रस्रुतमेव च ॥

पिडिकापीडितं गाढःप्रमेहो हन्ति मानवम् ॥२१॥

भाषा-उपरोक्त अविपाकादि उपद्रव और अरिष्टों से युक्त होय जिसके मूत्रका स्राव ज्यादा हुआ होय, शराविका आदि जो पिडिका आगे कहेंगे उनसे पीडित होय ऐसे मनुष्य को बढ़ा हुआ प्रमेह नष्ट कर देता है ।

दूसरे असाध्य लक्षण कहते हैं ।

जातःप्रमेही मधुमेहिनोवा न साध्यरोगः सहिबीजदोषात् ॥

येचापि केचित्कुलजाविकारा भवन्तितांश्चप्रवदन्त्यसाध्यान् २२

भाषा-अथवा मधुमेही पुरुषसे उत्पन्न हुआ जो प्रमेहवान् पुरुषका रोग वीर्यदोष के कारणसे साध्य नहीं होय । जो कोई कुष्ठादिक कुलपरंपरागत विकार होतेहों उन सबोंको असाध्य कहते हैं वे भ्रव असाध्यहैं । अब कहते हैं कि सर्व प्रमेहोंकी उपेक्षा करनेसे मधुमेहत्वको प्राप्त होते हैं इसको कहतेहैं ।

बेपरवाहीसे पित्त कफसे उत्पन्न हुए प्रमेहोंको भी मधुमेहका स्वरूप होताहै ।

सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः ॥

मधुमेहत्वमायांति तदाऽसाध्या भवंति हि ॥ २३ ॥

भाषा-सबरेही प्रमेह जिसकी चिकित्सा न कीजाय और बहुत समय होजाय तब मधुमेहके स्वरूप को प्राप्त होते हैं जब मधुमेह के स्वरूपको प्राप्त होजावें तब असाध्य हो जाते हैं ॥

धातुक्षय और आवरण इनसे कुपित हुये वायुको मधुमेहका संभव होताहै ।

मधुमेहे मधुसमं जायते स किल द्विधा ॥

क्रुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथेऽथ वा ॥ २४ ॥

भाषा—मधुमेहमें मूत्र मधु (सहत) के समान होता है वह दो प्रकार है। एक तो धातुक्षय होनेसे वात कुपित होनेसे होताहै और दूसरा दोषोंसे वातका मार्ग रुकनेसे होता है ।

आवरणके लक्षण कहते हैं ।

आवृतो दोषलिंगानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयन् ॥
क्षीणः क्षणात्पुनः पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम् ॥२५॥

भाषा—वायुके आवरणसे प्रगट मधुमेह जिस पित्तादिदोषसे व्याप्त हो और कारण न दीखने पर भी क्षणभरमें क्षीण होंय, क्षणमें पूर्ण होंय वह कष्टसाध्य जानना ॥

मधुमेहशब्दकी प्रवृत्ति विषय निमित्त कहते हैं ।

मधुरं यच्च मेहेषु प्रायो मध्विव मेहति ॥
सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्याच्च तनोरतः ॥२६॥

भाषा-प्रायकरके प्रमेहोंमें रोगी मधु (सहत) के समान मिठाई की सुगन्धियुक्त वा (चींटी आदि लगने से मिठाई का पता लगता है) मूते और सब शरीरको मीठा कर दे इसीसे सर्व प्रमेहोंकी मधुप्रमेहसंज्ञा कही है ॥

प्रमेहपिडिकाओंका वर्णन करते हैं ।

शराविका कच्छपिका जालिनी विनताऽलजी ॥
मसूरिका सर्षपिका पुत्रिणी सविदारिका ॥२७॥
विद्रधिश्चेति पिडिकाःप्रमेहोपेक्षया दश ॥
संधिमर्मसु जायन्ते मांसलेषु च धामसु ॥२८॥

भाषा—प्रमेहकी उपेक्षा करनेसे शराविका जालिनी विनता अलजी मसूरिका, सर्षपिका, पुत्रिणी, विदारी, विद्रधि ये दस प्रकारकी फुंसी सन्धियों की मर्मस्थानों में और जहां ज्यादा मांस हो ऐसे ठिकाने में होती है ॥

सब पिडिकाओं के लक्षण कहते हैं ।

अतोन्नता च तद्रूपा निम्नमध्या शराविका ॥
गौरसर्षपसंस्थाना तत्प्रमाणा च सर्षपी ॥२९॥

सदाहा कूर्मसंस्थाना ज्ञेया कच्छपिका बुधैः ॥
जालिनी तीव्रदाहा तु मांसजालसमावृता ॥३०॥
अवगाढरुजोत्क्लेदा पृष्ठे वाप्युदरेऽपि वा ॥
महती पिडिका नीला सा बुधैर्विनता स्मृता ॥३१॥
महत्यल्पाचिता ज्ञेया पिडिका चापि पुत्रिणी ॥
मसूरदलसंस्थाना विज्ञेया तु मसूरिका ॥३२॥
रक्ता सिता स्फोटवती दारुणात्वलजी भवेत् ॥
विदारीकंदवद् वृत्ता काठिना च विदारिका
विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ता ज्ञेया विद्रधिका तु सा ३३॥

भाषा-१ शराविका फुँसी ऊपरके भागमें ऊंची और मध्यमें बैठीसी होंय जैसी मट्टीके शकोरा होतें है। २ सर्षपिका सफेद सरसोंके समान बड़ी होती है। ३ कच्छपिका यह कछुवा के पीठ के समान कुछ दाहयुक्त होती है। ४ जालिनी यह तीव्र दाहके से युक्त और मांस के जालसे व्याप्त होती है। ५ विनता ये फुंसी पीठमें अथवा पेटमें होती है इसकी पीड़ा बहुत होतीहै ठण्डी होती है तथा बड़ी और नीले रंगकी होती है। ६ पुत्रिणी यह बीचमें एक बड़ी फुन्सी होती है उसके चारों ओर छोटी २ फुँसी और होंय उसको पुत्रिणी कहतेहैं। ७ मसूरिका मसूरकी दालके समान बड़ी होतीहै। ८ अलजी लाल, काली, बारीक फोड़ों करके व्याप्त भयंकर होती है। ९ विदारिका यह विदारीकन्दके समान गोल और कड़ी होती है। १० विद्रधिके लक्षण करके युक्त होती है इनमें (१) आचार्यों के मतसे भेद भी कहा है ॥

ये पिडिकाओंके आरम्भक कारण कहते हैं।

ये यन्मयाः स्मृता मेहास्तेषामेतास्तु तन्मयाः ॥३४॥
विना प्रमेहमप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः ॥
तावच्चैता न लक्ष्यन्ते यावद्वास्तुपरिग्रहाः

१ भोजेहि न घापिडिका विनता विरहिता पठिताः- चरकेतु सप्तैव पिडिका पुत्रिणी मसूरिका, विदारिका, विरहिताः पठिताः॥

भाषा-जो प्रमेह जिस दोषसे युक्त होता है उससे उसही दोषकी वृद्धि से पिडिका होती है । यह पिडिका प्रमेहके बिना दुष्टमेदके होनेसे भी प्रगट होती है । जब तक इनकी गाँठें नहीं बँधती तबतक नहीं दीखती हैं ।

प्रमेह रोगकी निवृत्ति सुश्रुतमें इस प्रकार कही है ।

प्रमेहिणो यदामूत्र मनविलमपिच्छयम् ॥
विशदं तिक्तकटुकं तदारोग्यं प्रचक्षते ॥

भाषा-प्रमेह वालेके जब मूत्र साफ तथा चमक न हो तीखा कडुआ हो जाय तब आरोग्य होता है ऐसा कहते हैं ॥

असाध्य पिडिकाओंके लक्षण कहते हैं ।

गुदे हृदि शिरस्यंसे पृष्ठे मर्मसु चोत्थिताः ॥
सोपद्रवा दुर्बलाग्नेः पिडिकाः परिवर्जयेत् ॥३९॥

भाषा-गुदामें, हृदयमें, शिरमें, कँधेमें, पीठमें, मर्मस्थानोंमें उठी पिडिका (कुंसी) और उपद्रवयुक्त हो वह और मन्दाग्निवालेकी फुँसी त्यागदेनी चाहिये अर्थात् उसकी चिकित्सा वैद्य न करे कोई कहते हैं । स्त्रियों के प्रमेह नहीं होताहि तथा और२ तन्त्रोंमें भी लिखा है रजः प्रसेकान्नारीणां मासि२ विशुध्यति॥ सर्व शरीर दोषाश्च न प्रमेहन्त्यतः स्त्रियः ॥ किंतु स्त्रियोंमें प्रमेह दीखनेसे जिन कारणोंसे प्रमेह होता है उनही कारणोंके सबल होनेसे और रोगीकी उत्पत्ति होना सम्भव होता है अक्सर ऐसा देखा सुना जाता है इसीसे ऐसा कहाहै ।

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसुनु शा. सोहनलाल विद्याभूषण
विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां
गुल्मरोग निदानं समाप्तम् ॥

---(·:·०·:·)---

॥ अथमेदो निदानम् ॥

मेदके कारण और सम्प्राप्ति कहते हैं ।

अव्यायामदिवास्वप्नश्लेष्मलाहारसेविनः ॥

---

(१) तृट्कासमांस संकोच मोहहिक्कामदज्वराः विसर्प मर्मसंरोधा पिडकाना मुपद्रवाः ॥

मधुरोऽन्नरसः प्रायः स्नेहान्मेदः प्रवर्धयेत् ॥१॥
मेदसावृतमार्गत्वात्पुष्यंत्यन्येन धातवः ॥
मेदस्तु चीयते यस्मादशक्तः सर्वकर्मसु ॥२॥

भाषा—कसरत न करनेसे, दिनमें सोनेसे और कफ करनेवाले मधुरप्राय आहार आदिके सेवन करने वाले पुरुषका आगकी तुल्य अन्नका रस हो तब स्नेहसे मेद पैदा होता है यानी वह अन्न रस मेदको बढ़ाता है मार्ग रुकने से और धातु हाड़, मज्जा, वीर्य आदि पुष्ट नहीं होते और जब मेद बढ़ने लगता है तब वह पुरुष सर्व कर्मों में सामर्थ्य रहित हो जाता है ॥

मेदस्वी पुरुषके लक्षण कहते हैं ।

क्षुद्रश्वासतृषामोहस्वप्नक्रथनसादनैः ॥
युक्तः क्षुत्स्वेददुर्गंधैरल्पप्राणोऽल्पमैथुनः ॥३॥
मेदस्तु सर्वभूतानामुदरेष्वस्थिषुस्थितम् ॥
अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत् ॥४॥

भाषा-क्षुद्रश्वास हो तृषा मोह, सोना, अकस्मात् श्वासका रुकना अंगमें तकलीफ भूख, पसीना और शरीरमें दुर्गंध इन लक्षणों से जो युक्त पुरुष होय शक्ति न नष्ट होजाय और मैथुन करने में उत्साह न रहै यह मेद सब प्राणिमात्रोंके उदर (पेट) और हड्डियोंमें रहता है इसीसे प्रायः करके मेदवाले पुरुषके उदरमें वृद्धि होती रहती है ॥

मेदस्वीकी अवस्थाविशेष कहते हैं ।

मेदसावृतमार्गत्वाद्वायुः कोष्ठे विशेषतः ॥
चरन्संधुक्षयत्यग्निमाहारं शोषयत्यपि ॥५॥
तस्मात्स शीघ्रं जरयत्याहरमभि कांक्षति ॥
विकारांश्चाप्नुते घोरान्कांश्चित्कालव्यतिक्रमात् ॥६॥
एतावुपद्रवकरौ विशेषादग्निमारुतौ ॥
एतौहि दहतः स्थूलं वनदावोवनं यथा ॥७॥

भाषा-मेदसे मार्ग रुक जानेपर विशेषकर कोठेमें वायुका संचार विशेष

होय तब अग्नि को यह पवन बढ़ाता है ॥ भोजन किये अहारको शीघ्र शो षण करता है तब वह अहार शीघ्र पचके फिर खानेकी इच्छा को प्रगट कर ताहै और खानेमें कालका व्यतिक्रम होनेसे भयंकर वातके रोग उत्पन्न होते हैं । विशेषकर यह अग्नि और वायु बड़ा उपद्रव करते हैं । जैसे दावानल (अग्नि) वनको जरादेता है तैसेही यह दोनों उस स्थूल (मोटे)पुरुषकोजलातेहैं

अत्यन्त मेद बढ़नेकी दशा ॥

मेदस्यतीव संवृद्धे सहसैवानिलादयः ॥
विकारान् दारुणान् कृत्वा नाशयंत्याशु जीवितम् ॥८॥

भाषा-अत्यन्त मेदके बढ़ने पर अकस्मात् वात आदिके प्रमेह,पिटिका, ज्वर, भगंदर विद्रधि, आदि रोगोंको तथा औरों को पैदा कर जल्दही प्राण को नष्ट कर देतेहैं ॥ ।

स्थूल किसे कहते हैं उसके लक्षण कहते हैं ॥

मेदोमांसातिवृद्धत्वाच्चलस्फिगुदरस्तनः ॥
अयथोपचयोत्साहो नरोऽतिस्थूल उच्यते ॥ ९ ॥

भाषा-मेद और मांस इनके अत्यन्त बढ़नेसे जिस पुरुषके कूले,पेट और स्तन ये थल थला वै और उसके शरीरकी स्थूलता बढ़ी होय अर्थात् जैसी चाहिये तैसी न होय तथा उत्साह (होशयारी) न रहे ऐसे मनुष्य को अतिस्थूल कहते हैं ॥

इतिश्री वैद्यराज झल्लास्वामिसूरिसूनि शा० सोहनलाल विद्याभूषण
विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां
मेदो निदानं समाप्तम् ।

अथ उदररोगनिदानम् ।

उदरकी बढ़वार के साधर्म्यसे मेदोरोगके अनन्तर उदररोग को कहते हैं ।

रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि च॥
अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसंचयात् ॥ १ ॥

भाषा—सबही रोग अग्नि मन्द होनेसे पैदा होतेहैं और उदर तो विशेष

करके अग्नि मांद्यसेंही होताहै । क्योंकि दोषत्रयजनकहै जैसा कहाहै कि तेषा मग्निबलेहीने कुप्यन्ति पवमादयः,, यह त्रिदोष जनक हैं और अजीर्ण से मलिन अन्नसे (विरुद्ध अध्यशनादिक) और मल दोष तथा पुरीषादिक इनके संचयसे उदररोगहोतेहैं यहां उदरके कहनेसे उदर मध्यगत रोगजानें ॥

उदरकी सम्प्राप्ति कहते हैं ॥

रुद्धा स्वेदांबुवाहीनि दोषाः स्रोतांसि संचिताः ॥
प्राणाग्न्यपानान्संदूष्य जनयंत्युदरं नृणाम् ॥ २ ॥

भाषा-संचितहुए वातादि दोष स्वेद पसीना और जलको बहानेवाली १ नाड़ियोंके मार्गको रोककर प्राणवायु, अग्नि और अपानवायु इनको दूषित करके मनुष्यों के उदररोगों को पैदा करते हैं उदररोगका पूर्वरूप सुश्रुतोक्त "यत्पूर्वरूपं बलवर्णकांक्षा वलीविनाशो जठरे तु राज्यः। जीर्णापरिज्ञानविदाहवत्यो बस्तौरुजः पादगतश्च शोथः बलवर्ण इच्छाआदिका नाश हो जठर (उदर) में रेखासी पड़ जांय जीर्णता मालूम न होय जलन होय बस्ति में पीडा होय और पैरों पर सूजन आजाय यह उदर रोगका पूर्वरूप जानें ॥

उदरके सामान्यरूप कहते हैं ॥

आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाग्निता ॥
शोथःसदनमंगानां संगो वातपुरीषयोः ॥ ३ ॥
दाहस्तंद्रा च सर्वेषु जठरेषु भवंति हि ॥

भाषा—अफरा चलने में सामर्थ न हो,दुर्बलता; मंदाग्नि सूजन,अंगों में ग्लानि वायुका तथा मलका रुकना, दाह, झंपनी ये लक्षण सब उदररोग में होते हैं ॥

उदररोगों संख्या कहते हैं ॥

पृथग्दोषैःसमस्तैश्च प्लीहा बद्धक्षतोदकैः ॥ ४ ॥
संभवंत्युदराण्यष्टौ तेषां लिंगं पृथक् शृणु ॥

भाषा-अलग२दोषोंसे अर्थात् वात,पित्त, कफसे सन्निपातसे सन्निपाती

१ उदकवहानां स्रोतसां तालु मूलं क्लोम च " इति । चरके-स्वेदस्तु वाह्येषु स्रोतःसुप्रतिहतगति स्तिर्यगवतिष्ठमान स्तदेवोदकमाप्याययति ॥

दर, प्लीहोदर १ बद्धोदर १ क्षतोदर १ और जलोदर १ ये आठ रोग उदर के होतेहैं उनके पृथक्२लक्षण सुनो यह गुरुका शिष्यके प्रतिउपदेश जानना।

तिनमें वातोदर के लक्षण कहते हैं ॥

तत्र वातोदरे शोथः पाणिपान्नाभिकुक्षिषु ॥ ५ ॥
कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरुक्पर्वभेदनम् ॥
शुष्ककासोऽगमर्दोऽधो गुरुता मल संग्रहः॥ ६ ॥
श्यावारुणत्वगादित्वमकस्माद् वृद्धिह्रासवत् ॥
सतोदभेदमुदरं तनुकृष्णाशिराततम् ॥ ७ ॥
आध्मातदृतिवच्छब्दमाहतं प्रकरोति च ॥
वायुश्चात्र सरुक्शब्दोविचरेत्सर्वतो गतिः ॥ ८ ॥

भाषा-इन आठउदरविकारोंमें से वातोदरमें हाथ पैर नाभि और कूख इनमें सूजन होय संधियों का कूख पसवाडे पेट कमर पीठ तथा हाड़ों के जोड़ोंका टूटना सूखी खांसी, नीचेके भागमें भारापन, मलका संग्रह होना (दस्त न आना) त्वचा नख नेत्रादिक का काला लाल होना,पेट अकस्मात् (निमित्त के बिना) बड़ा हो जाय, छोटा होजाय सुई चुभानेकीसी तथा नोचनेकीसी पीड़ा होय महीन२ काली२ नसोंसे युक्त घिराहो अर्थात् पेटपर नसै चमकें फूली धोंकनी के तुल्य तथा टंकोर देनेसे ढोलक सा शब्द करै इस उदर में वायु चारोंतरफ डोलकर शूल करै तथा गुडगुडाहट करै ॥

पित्तोदरके लक्षण कहते हैं।

पित्तोदरे ज्वरो मूर्च्छा दाहस्तृट् कटुकास्यता ॥
भ्रमोऽतिसारःपीतत्वंत्वगादावुदरं हरित् ॥ ९ ॥
पीतताम्रशिरानद्धं सस्वेदं सोष्म दह्यते ॥
धूमायते मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते ॥ १०

भाषा-पित्तजन्य उदररोगमें ज्वर, मूर्च्छा, दाह प्यास, मुखमें कडुआपन घुमेर, अतिसार, त्वगादिकं (नख नेत्र) इनमें पीलापन, पेटमें हरापन होय, पीली, तामेकी रंगकी तुल्य नाड़ियोंसे उदर बंधासा होय पसीना अवि गरमी हित जलन होय यौंतो दाह तौ सकल देहमें होता है आंतोंसे धुआसि निकलै

हाथके लगानेसे नरम मालूम हो, शीघ्र पाक होय तथा उससे जलोदरत्वको प्राप्त हो और उसमें घोर पीड़ा होय ॥

कफोदरके लक्षण कहते हैं ।

श्लेष्मोदरेंऽगसदनं स्वापः श्वयथुगौरवम् ॥
निद्रोत्क्लेशोऽरुचि श्वासः कासः शुक्लत्वगादिता॥११॥
उदरं स्तिमितं स्निग्धं शुक्लराजीततं महत् ॥
चिराभिवृद्धिकठिनशीतस्पर्शं गुरु स्थिरम् ॥१२॥

भाषा-हाथ पैर आदिकोंमें अंगमें पीड़ा तथा सुन्नता सूजन होय, अंग भारी होजाय, नींद आवै, उबकाई आवै, अरुचि होय, श्वास, खांसी होय त्वचा नख नेत्रादिक सफेद हों, पेट निश्चल चिकना सफेद नाड़ियों से व्याप्त हो इसकी वृद्धि बहुत कालमें होय, पेड़ करड़ा और शीतल मालूम तथा भारी और स्थिर होता है यह लक्षण कफजन्य उदरके कहते हैं ।

सन्निपातोदरके लक्षण कहते हैं ।

स्त्रियोऽन्नपानं नखरोममूत्रविडार्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ताः ॥
यस्मै प्रयच्छंत्यरयो गरांश्च दुष्टांबुदूषीविषसेवनाद्वा ॥१३॥
तेनाशु रक्तं कुपिताश्च दोषाः कुर्युः सघोरं जठरं त्रिलिंगम्॥
तच्छीतवाते भृशदुर्दिने वा विशेषतः कुप्यति दह्यते च १४
स चातुरो मुह्यति हि प्रसक्तं पांडुः कृशः शुष्यति तृष्णया च ॥
दूष्योदरं कीर्तितमेतदेव-;

भाषा-खोटी स्त्री जिस पुरुष को नख, बार मल, मूत्र आर्त्तव (रजोदर्शनका रुधिर) मिला अन्नपान देवै वा जिस का शत्रु जहर देवै, अथवा दुष्टांबु (जहरमिला, मछली तिनका पत्ता आदि औटा हुआ ऐसा जल) और दूषीविष अर्थात् विष इनको सेवन करनेसे रुधिर और वातादिक दोष शीघ्र कुपित होकर अत्यन्त भयंकर त्रिदोषात्मक उदररोग उत्पन्न करते हैं, वे शीतकालमें अथवा शीतल पवन चले उस समय अथवा जिस दिन वर्षाका झड़ लगे उस दिन विशेषकरके कोपको प्राप्तहों और जलन होय

इसका कारण यह है कि उस समय दूषीविषका कोप होता है। वह रोगी निरन्तर विषके संयोगसे मूर्च्छित होय, देहका पीला वर्ण तथा कृश होय और परिश्रम करनेसे शोष होय यह दूष्योदर कहाहै॥

प्लीहोदरके लक्षण कहते हैं॥

प्लीहोदरं कीर्तयतो निबोध ॥१५॥
विदाह्यभिष्यंदिरतस्य जंतोः प्रदुष्टमत्यर्थमसृक्कफश्च ॥
प्लीहाभिवृद्धिं कुरुतः प्रवृद्धौ प्लीहोत्थमेतज्जठरं वदन्ति॥१६॥
तद्वामपार्श्वे परिवृद्धिमेति विशेषतः सीदति चातुरोऽत्र ॥
मन्दज्वराग्निः कफपित्तलिंगैरुपद्रुतः क्षीणबलोऽतिपांडुः ॥

भाषा-अब प्लीहोदरके कहते हुए मुझसे जानो। विदाही जलन करने वाले और अभिष्यंदी (दध्यादि) अर्थात् स्रोतों (छिद्र) के रोकनेवाले ऐसे अन्न निरन्तर सेवन करनेवाले पुरुषके अत्यन्त दुष्ट हुए जो रुधिर और कफ बढ़कर तापतिल्ली को बढ़ावे इस उदरको प्लीहोत्थ उदर कहते हैं। यह बांई तरफ बढ़ता है। इस अवस्थामें रोगी बहुत दुःख पाता है, देह में मन्दज्वर होय, मन्दाग्नि होय तथा कफपित्तोदरके लक्षण इसमें मिलते हैं, बल क्षीण होय, अत्यन्त पीला वर्ण होजाता है॥

यकृद्दाल्युदरके लक्षण कहते हैं।

सव्यान्यपार्श्वे यकृति प्रवृद्धे ज्ञेयं यकृद्दाल्युदरं तदेव १७

भाषा-दहनी तरफ पांसुके नीचे यकृत् कहिये जिगर वह दूषित रोगयुक्त होजाय तब प्लीहोदरके समान उदर विकार होय उसको यकृद्दाल्युदर कहते हैं वह यकृत् को फाड़ देताहै॥

तहां इस प्रकार दोषोंका सम्बन्ध जाने।

उदावर्त्तरुजानाहैर्मोहतृड्दहनज्वरैः ॥
गौरवारुचिकाठिन्यैर्विद्यात्तत्र मलान्क्रमात् ॥१८॥

भाषा-उदावर्त्त, शूल, अफरा इनसे वायुका सम्बन्ध मोह प्यास, ज्वर इन से पित्त का सम्बन्ध और भारीपना, अरुचि, कठिनता इन से कफ का सम्बन्ध जानना॥

बद्धगुदोदरके लक्षण कहते हैं ।

यस्यांत्रमन्नैरुपलेपिभिर्वा बालाश्मभिर्वा पिहितं यथावत् ॥
संचीयते तस्य मलः सदोषःशनैः शनैःसंकरवच्च नाड्याम् १९
निरुध्यते तस्य गुदे पुरीषं निरेति कृच्छ्रादतिचाल्पमल्पम् ॥
हृन्नाभिमध्ये परिवृद्धिमेति तस्योदरं बद्धगुदं वदन्ति॥२०॥

भाषा—जिस पुरुषकी आंत उपलेपी नाम गढ़े अन्नोंसे (शाकशालु आदिक) अथवा बाल तथा बारीक पत्थरके टुकडों से यथा योग्य बंधजाय तब उस पुरुषका दोषयुक्त मल धीरे२ आंतोंकै नलोंमें होकर जैसे बुहारी से झारातृण धूर आदि क्रमसे बढ़ता है उसी प्रकार बढ़ता है और वह गुदाके द्वार पर रुकै और मल बड़े कष्टसे गुदाद्वारा थोड़ा२ निकलै। जब मल न निकलै तब मल दोषसे गुदासे ऊपर आवै इसीसे उदर बढ़ता है अर्थात् हृदय और नाभिके मध्य अन्नपाकस्थानकी वृद्धि होती है । इसीसे इस उदरको बद्धगुदोदर कहते हैं । अथवा गुदाके ऊपर आंतोंका बद्ध होनेसे बद्धगुद कहते हैं। जैसा चरकमें कहाहै-पक्ष्मवालैःस हान्नैनभुक्तैर्बद्धायने गुदे । पुरीषक मार्गके बद्ध होने की वजहसे हृदयनाभिके बीच अपरिपाक के स्थानमें वृद्धिसे और जो गुदामात्र में निरोध कहेंगे तो मलके दोषोंसे गुदासे ऊपरके हिस्सेमेंही उदर वृद्धि होना सम्भवहै।

क्षतोदरके लक्षण कहते हैं ।

शल्यं तथान्नोपहितं तदत्रं भुक्तं भिनत्त्यागतमन्यथा वा ॥
तस्मात्स्रुतोऽन्त्रात्सलिलप्रकाशः स्रावः स्रवेद्वै गुदतस्तु भूयः२१
नाभेरधश्चोदरमेति वृद्धिं निस्तुद्यते दालयति चातिमात्रम् ॥
एतत्परिस्राव्युदरं प्रदिष्टम्—

भाषा—कांटा धूल आदि युक्त अन्नके खाने से पेटमें जावै अर्थात् पक्वाशयमें टेढ़ा तिरछा चला जाय तब आंतोंको काटे और सीधा जाय तो नहीं काटे अथवा जँभाई अति अशन करने से अर्थात् रोकने से आंत फट जातीहैं । उन फटे आंतोंसे गलित पानीके स्रावपुनः गुदाकेमार्ग होकर रिसै, नाभि के नीचेका भाग बढ़े, नोचनेकीसी तथा फटने कीसी पीड़ासे अत्यन्त दुखी होय, इसको परिस्रावि उदर कहते है इस काही नाम क्षतोदर वा छिद्रोदरभीहैं अन्यान्य आचार्योंके मत से कहाहै ॥

उत्पत्ति सहित जलोदर के लक्षण कहते हैं ॥

दकोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ २२ ॥
यः स्नेहपीतोऽप्यनुवासितो वा वांतो विरिक्तोऽप्यथवा निरूढः॥
पिबेज्जलं शीतलमाशु तस्य स्रोतांसि दूष्यन्तिहि तद्वहानि॥२३
स्नेहोपलिप्तेष्वथ वापि तेषु दकोदरं पूर्ववदभ्युपैति ॥
स्निग्धं महत्तत्परिवृद्धनाभिसमाततं पूर्णमिवांबुना च ॥
यथा दृतिः क्षुभ्यति कंपते च शब्दायते चापि दकोदरं तत्॥२४

भाषा-घृत तैलादि पान होय अथवा अनुवासन बस्ति कीहो वमन की हो अथवा दस्त न हो अथवा निरूहवस्तिकी हो ऐसा पुरुष शीतल जल पीवे तब उसकी जल बहनेवाली नसोंके मार्ग तत्काल दूषित होते हैं वह उदक बहनेवाले स्रोत स्नेहसे लिहसे होनेसे पूर्ववत् जलोदर होता है । उसमें चिकनापन दीखे,ऊंचा होय,नाभिके पास बहुत ऊंचा होय, चारों ओर तनासा मालूम होय पानीकी पोट भरीसी होय, जैसा पानी से भरा पखालमें जल हलैं, है उसी प्रकार हले,गुड़गुड शब्द करे, कांपे इसको जलोदर अर्थात् जलंधर कहते हैं ॥

उसके साध्यासाध्यविचार कहते हैं ॥

जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं विदुः ॥
बलिनस्तदजातांबु यत्नसाध्यं नवोत्थितम् ॥ २५ ॥

भाषा-जन्मसेही सब प्रकारके उदर प्रायः अत्यन्त कष्टसाध्य होते हैं। बलवान् पुरुषके नया पैदा हुआ हो और उसमें पानी न पैदाहुआ होय ऐसा बड़े यत्नसे साध्य होताहै

---

१ अशोथमरुणाभासं सशब्दं नातिभारिकम् सदा गुडगुडायंत शिराजालग वाक्षितम् ॥ नाभिं विष्टभ्य पायौ तु वेगं कृत्वा प्रणश्यति ॥ हृद्वंक्षणकटीनाभिगुदं प्रत्येकशूलिनः । कर्कशं सृजतो पानं नातिमन्दे च पावके ॥ लोल यचिरमेवास्ये मूत्रेऽल्पे संहते विशि ॥अजातोदकमित्येतैर्युक्तं विज्ञाय लक्षणैः॥पयःपूर्णा दृतिरिव क्षोभे शब्दकरं मृदु ॥ अप्रव्यक्तशिरःशूनं नितान्तमुदरं महत्॥आलस्यमास्यवैरस्यं मूत्रं बहुशकृत्स्रुतम् जातोदकस्य लिंगं स्यान्मन्दोऽग्निः पांडुतापि च ॥

पक्षाद्बद्धगुदं तूर्ध्वं सर्वं जातोदकं तथा ॥
प्रायो भवत्यभावाय च्छिद्रांत्रं चोदरं नृणाम् ॥ २६॥

भाषा-बद्धगुदोदर १५ दिनके ऊपर असाध्य होता है उसी प्रकार के सब प्रकारके उदर (पानी) उत्पन्न होनेसे नाशकारक होते हैं,और छिद्रांत्रोदर यह प्रायःनाशक होताहै प्रायःइस पदके कहने से शल्य अथवा शस्त्र चिकित्सा जैसी होनी चाहिये तैसी होजाय तौ उदक (पानी) प्रगट हुआ उदर रोग छिद्रांत अथवा बद्धगुद साध्य भी होजाता है ऐसा समझै ॥

उदरके असाध्य लक्षण कहतेहैं॥

शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्लिन्नतनुत्वचम् ॥
बलशोणितमांसाग्निपरिक्षीणं च वर्जयेत् ॥ २७ ॥

भाषा—जिस उदररोगीके आंख सूजी होवें लिंग टेढा होगयाहो,पेटकी त्वचा गीली तथा पतली होगई होय, बल रुधिर मांस और अग्नि ये जिस के क्षीण हो गये हों ऐसे रोगी को छोड़ देय ॥

दूसरे असाध्य लक्षण कहते हैं ।

पार्श्वभंगान्नविद्वेषशोथतीसारपीडितम् ॥
विरिक्तं चाप्युदरिणं पूर्यमाणं विवर्जयेत् ॥ २८ ॥

भाषा-पार्श्वभंग अन्नमें अर्थात् पांसुओं का टूटना अन्नमें रुचि न होना शोथ अतिसार इनसे पीडित रहै और दस्त करानेसे जिसका पेट फिर पानी से भर जाय ऐसे उदररोगी को वैद्य छोड़देय ॥

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसूनु शा. सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां उदररोग निदानं समाप्तम् ॥

—(-:-०-:-)—

अथशोथ रोगनिदानम् ॥

शोथकी सम्प्राप्ति कहते है उदरमें शोथका उपद्रव कहाहै इसस इसकेअनन्तरशोथरोग का वर्णन करते हैं ॥

शोथकी सम्प्राप्ति कहते हैं ।

रक्तपित्तकफान्वायुर्दुष्टो दुष्टान्बहिः शिराः ॥

नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यात्त्वङ्मांससंश्रयम् ॥ १ ॥
उत्सेधं संहतं शोथं तमाहुर्निचयादतः ॥

भाषा—कुपित हुआ वात अपने२ कारणसे दुष्ट हुए रक्तपित्तकफको बाह्य शिरा (बाहरकी नाडियों) में प्राप्त करे तब उनकी गति बंद हो सो वह अपने हेतुसे कुपितहुआ मांस इनके आश्रय से ऊंची तथा करड़ी सूजन उत्पन्न करे

सर्वं हेतुविशेषैस्तु रूपभेदान्नवात्मकम् ॥ २ ॥
दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघाताद्विषादपि ॥

भाषा—कारण भेदों द्वारा सब शोथ रूप नौ प्रकारका होता है। जैसे अलग दोषोंसे ३, द्वंद्वज ३, सन्निपातज १, अभिघातज १ और विषसे १ इसप्रकार जानना ॥

तत्पूर्वरूपं दवथुः शिरायामोऽङ्गगौरवम् ॥ ३ ॥

भाषा-इसके पूर्वरूपमे ताप नसोंका खिंचना शरीरका भारीपन यह लक्षण होते हैं ॥

पूर्व रूपके बाद कामचारसे निदानको कहते हैं।

शुद्ध्यामया भुक्तकृशाबलानां क्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरूपसेवा ॥
दध्याममृच्छाकविरोधिपिष्टगरोपसृष्टान्ननिषेवणं च ॥ ४ ॥
अर्शांस्यचेष्टा वपुषो ह्यशुद्धिर्मर्माभिघातो विषमाप्रसूतिः ॥
मिथ्योपचारः प्रतिकर्मणां च निजस्य हेतुः श्वयथोः प्रदिष्टः ५

भाषा-वमन विरेचन आदि शुद्धि आमय ज्वरादिक भोजन न करना और और औगुनका भोजन करना इनसे जो कृश और बलहीन मनुष्योंके क्षारादिका सेवन सूजनका कारण होता है। तहां नोन, खट्टा, तीखा, गरम भारीवस्तु, दही. कच्ची मट्टी, निषिद्ध साग, विरुद्ध (क्षीरमत्स्यादिक), संयोगजविषसे दूषित अन्नके सेवन करनेसे सूजन होता है तथा बवासीर, दंड कसरत न करना, शोधनके योग्य दोषोंका न शोधन मर्मस्थानोंके दोषजन्य चोट पहुंचनेसे विषमप्रसूति, (कच्चा गर्भपतन आदि) अच्छे प्रकार उपचारन करना वमनादि पंचकर्मोंका मिथ्या योग इनसे सूजन पैदा होती है यह इसके कारण जानने ॥

सामान्य लक्षण कहते हैं ।

सगौरवं स्यादनवस्थितत्वं सोत्सेधमूष्माथ शिरातनुत्वम् ॥
सलोमहर्षश्च विवर्णता च सामान्यलिंगं श्वयथोः प्रदिष्टम् ६

भाषा–भारापन से युक्त होय, चित्तमें स्वस्थता न होय ऊंचाई लिये सूजन और गरमी नसोंका पतला हो जाना, हर्ष होना और देहका रंग बदल जाना ये सामान्य सूजन के लक्षण होतेहैं ॥

वातजन्य शोथके लक्षण कहते हैं ।

चलस्तनुत्वक्परुषोऽरुणोऽसितः ससुप्तिहर्षार्तियुतोऽनिमित्तः॥
प्रशाम्यतिप्रोन्नमतिप्रपीडितोदिवाबलीस्याच्छ्वयथुःसमीरणात्७

भाषा–वायुसे उत्पन्न हुए सूजन में चंचलता, त्वचा पतली हो जाना, कठोर होना, लाल, काली तथा त्वचाका शून्य पड़ जाना, भिन्न वेदना होना अथवा रोमांच और पीड़ा होना कदाचित् निमित्तके विना शांत हो जाय उस सूजनके दाबनेसे तत्क्षण ऊपरको उठ आवे, दिनमें उसका ज्यादा जोर होता है ॥

पित्तजन्य शोथके लक्षण कहते हैं ।

मृदुः सगंधोऽसितपीतरागवान् भ्रमज्वरस्वेदतृषामदान्वितः ॥
यउष्यतेस्पर्शरुगक्षिरागकृत्सपित्तशोथोभृशदाहपाकवान् ॥८

भाषा–पित्तसे होनेवाली सूजन में नरमाई, कुछ बास आवे और सूजन काली, पीली और लाल हो उसके होनेसे भ्रम, ज्वर, पसीना, प्यास और मतवालासा हो ये लक्षण होते हैं । दाह होय, हाथ लगानेसे दूखे, इसी से नेत्र लाल हों, उसमें अत्यंत दाह तथा पाक होता है ॥

कफजन्य शोथके लक्षण कहते हैं ।

गुरुःस्थिरःपांडुररोचकान्वितः प्रसेकनिद्रावमिवन्हिमांद्यकृत् ॥
सकृच्छ्रजन्मप्रशमोनिपीडितो न चोन्नमेद्रात्रिबलीकफात्मकः९

भाषा–कफजन्य शोथसे भारापन, स्थिरता, पीलापन, होता है । इसके योगसे अन्नद्वेष, लारटपकना, निद्रा, वमन, अग्निमांद्य ये लक्षण होते हैं तथा इस सूजनकी उत्पत्ति और नाश बहुत कालमें होता है, इसको दबानेसे ऊपर को नहीं उठती है, रात्रिमें इसकी प्रबलता होती है ॥

द्वन्द्वजन्य और सन्निपातजन्य शोथके लक्षण कहते हैं ।

निदानाकृतिसंसर्गाच्छ्वयथुः स्याद्द्विदोषजः ॥
सर्वाकृतिः सन्निपाताच्छोथो व्यामिश्रलक्षणः ॥१०॥

भाषा-दो दोषोंके लक्षण और कारण इकट्ठे मिलनेसे द्वंद्वज शोथ होता है और सर्व दोषों के लक्षण जिसमें मिलें उस शोथ को सन्निपातसे जानना ॥

अभिघातजन्य शोथके लक्षण कहते ।

अभिघातेन शस्त्रादिच्छेदभेदक्षतादिभिः ॥
हिमानिलोदध्यनिलैर्भल्लातकपिकच्छुजैः ॥ ११ ॥
रसैः शूकैश्च संस्पर्शाच्छ्वयथुः स्याद्विसर्पवान् ॥
भृशोष्मा लोहिताभासः प्रायशः पित्तलक्षणः ॥१२॥

भाषा-चोटके लगनेसे, शस्त्रादिकसे कटनेसे पत्थर आदिके फोड़नेसे अथवा घावके होनेसे, आदिशब्दसे और इनके अतिरिक्त चोट आदि ल- नेसे शीतल पवन लगनेसे, समुद्रकी पवन लगनेसे, भिलायेका तेल लग जानेसे और कौंचकी फलीका स्पर्श होनेसे जो सूजन होय वह चारों तरफ फैल जाती है अत्यन्त जलन होती है उसका रंग लाल होता है और प्राय करके पित्तकेसे लक्षण होते हैं ॥

विषजन्य शोथके लक्षण कहते हैं ।

विषजः सविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात् ॥
दंष्ट्रादंतनखाघातादविषप्राणिनामपि ॥१३॥
विण्मूत्रशुक्रोपहतमलवद्वस्त्रसंकरात् ॥
विषवृक्षानिलस्पर्शाद्गरयोगावचूर्णनात् ॥१३॥
मृदुश्चलोऽवलंबी च शीघ्रो दाहरुजाकरः ॥

भाषा-जहरीले कीड़े व जीवोंके शरीर पर चलनेसे अथवा पेशाव से निर्विष (विषरहित मनुष्यादि) प्राणियोंके डाढ़, दांत नख लगनेसे अथवा विष प्राणियोंके विष्ठा, मूत्र, शुक्र इनसे भरा अथवा मलिन वस्त्र अंगमें लगने से अथवा विषवृक्षकी हवाके लगनेसे अथवा संयोगजन्य विष अंग लगनेसे

जो सूजन उत्पन्न होतीहै वह विषजन्य कहलातीहै वह सूजन नरम, चंचल भीतर प्रवेश करनेवाली जल्दी प्रगट होनेवाली, दाह और पीड़ा करनेवाली होती है ।

जिस ठिकाने में स्थित दोष जिस २ जगह सूजन उत्पन्न करें उनका वर्णन करते हैं ।

दोषाः श्वयथुमूर्ध्वं हि कुर्वंत्यामाशयास्थिताः ॥१५॥
पक्वाशयस्था मध्ये तु वर्चःस्थानगतास्त्वधः ॥
कृत्स्नदेहमनुप्राप्ता कुर्युः सर्वसरं तथा ॥१६॥

भाषा—आमाशयमें स्थितहुए दोष ऊपरके छाती आदि (उरःस्थानादिकोंमें) स्थानोंमें सूजन पैदा करें, पक्काशयमें स्थित दोष मध्य स्थान उर और पक्काशय इन दोनोंके बीचमें सूजन करें, मलस्थानगत दोष नीचे के स्थान पैर आदिमें सूजन करें और सर्व देहमें दोष स्थित होनेसे सब देहमें सूजन पैदा करते हैं ॥

कृच्छ्रादिभेदोंको कहते हैं ।

यो मध्यदेशे श्वयथुः सकष्टः सर्वगश्च यः॥
अर्धोऽगेऽरिष्टभूतः स्याद्यश्चोर्ध्वं परिसर्पति ॥१७॥

भाषा-जो सूजन मध्यदेशमें तथा सब देशमें होय वह कष्टसाध्य होता है ऊपरकों जो सूजन चढ़े यह पुरुषके विषयमें असाध्य जानना और चकार जो इस श्लोक में पढ़ाहै उससे इस प्रकार जानै कि स्त्रीके ऊपरके भागकी सूजन नीचेकी आवै वह असाध्य है तथा गुह्यस्थानमें और सर्वत्र हुई सूजन भी ऐसेही जानै इसमें (१) बचन प्रमाण है । और जो सूजन नीचेके अंगमें प्रगट हो और जिसमें अरिष्ट हों और जो ऊपरको चढ़े वहभी कष्टसाध्यहै ।

असाध्य लक्षण कहते हैं ।

श्वासः पिपासा छर्दिश्च दौर्बल्यं ज्वर एव च ॥
यस्य चान्ने रुचिर्नास्ति शोथिनं परिवर्जयेत् ॥१८॥

---

१ यस्तु पादाभिनिर्वृत्तः शोथः सर्वांगगो भवेत् ॥ पुरुषं हन्तिनारींच मुखजो गुह्यजो द्वयम् ।

भाषा-श्वास, प्यास, वमन, दुर्बलता, ज्वर ये लक्षण होंय और जिसकी अन्नमें अरुचि होय ऐसे सूजनवाले रोगी को वैद्य त्याग दे ॥

अनन्योपद्रवकृतः शोथः पादसमुत्थितः ॥
पुरुषं हंति नारीं तु मुखजो गुह्यजो द्वयम् ॥
नवोऽपनुद्रवः शोथः साध्योऽसाध्य पुरेरितः १९॥

भाषा—और रोगोंके उपद्रवोंसे न होता हुआ जो शोथ (सूजन) यानी अपने विकारसे ही यह प्रकट हुआ पहिले पैरोंमें उत्पन्न हो फिर अन्य स्थानों में प्राप्त हो वह पुरुषका नाश करती है और जो प्रथम मुखपर होकर पीछे पैरोंपर उतरे वह सूजन स्त्रियोंको कष्ट करती और जो प्रथम गुदामें उत्पन्न होकर सब देहमें व्याप्त हो वह शोथ स्त्री पुरुष दोनोंको नाशक है। नवीन और उपद्रवरहित जो सूजन वह साध्य है और " अधौऽगेरिष्टभूतः स्यात् " इत्यादि जो पहिले कहा हुआ शोथ (वह) सूजन असाध्य है ॥

शोथके उपद्रव १ चरक में दिये हैं।

छर्दिस्तृष्णारुचिः श्वासो ज्वराऽतीसार एव च ॥
सप्तकोऽयं सदौर्बल्यः शोथोपद्रवसंग्रहः ॥२०॥

भाषा-छर्दि, प्यास, अरुचि, श्वास, ज्वर, अतिसार, दुर्बलता ये सात सूजनके उपद्रव हैं यह चरक में लिखा है ॥

शोथत्व तथा वृद्धिके समानता होनेसे उसके बाद वृद्धि रोगको
कहते हैं इसको डाक्टरी में तथा यूनानी में कहते हैं।

विवर्जयेत्कुक्ष्युदराश्रितंच तथा गले मर्माणि संश्रितंच ॥
स्थूलः खरश्चापि भवेद्विवर्ज्यो यश्चापि बालस्थविराबलानां॥

भाषा-कूख तथा पेटपर तथा गलेमें और मर्मस्थानों में जो हुआ हो

इतिश्री वैद्यराज झल्लास्वामिसूरिसूनु शा० सोहनलाल विद्याभूषण
विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां
शोथरोग निदानं समाप्तम्।

अथ वृद्धिनिदानम् ।

वृद्धिकी सम्प्राप्ति कहते हैं ।

क्रुद्धोऽनूर्ध्वंगतिर्वायुः शोथशूलकरश्चरन् ॥
मुष्कौ वंक्षणतः प्राप्य फलकोषाभिवाहिनीः ॥
प्रपीड्य धमनीर्वृद्धिं करोति फलकोषयोः १

भाषा-कोपको प्राप्त हुआ अधोगतिवाला वात सूजन और शूल उत्पन्न करनेवाला अंडकोषों से प्राप्त होकर मेढ्रजंघा इनकी जो संधि उस के समीप हो फल और कोष (अंडकोषके दोनों स्थान) की वहन करनेवाली नाडियों को प्राप्त हो और पीड़ित कर फल और कोषकी वृद्धि करता है ॥

दोषास्रमेदोमूत्रांत्रैः सवृद्धिः सप्तधा गदः ॥
मूत्रांत्रजावप्यनिलाद्धेतुभेदस्तु केवलम् ॥२॥

भाषा-वह वृद्धिरोग तीनों दोषोंसे रक्तसे १ मेद, १ मूत्र, १ और आंतोंसे ऐसा सात प्रकारका है । मूत्रज और अंत्रज वृद्धि ये दोनों वायुसे होते हैं परन्तु इन दोनोंके निदान और चिकित्सामें भेद होनेसे पृथक् ग्रहण किया है

वात, पित्त, कफ और इनसे प्रगट हुई वृद्धिके लक्षण कहते हैं ।

वातपूर्णदृतिस्पर्शो रूक्षो वातादहेतुरुक् ॥३॥

भाषा-हवासे भरी हुई मसक जैसी हाथके लगनेसे मालूम होय ऐसा होय । रूक्ष और विना कारण दूखने लगे वह वात वृद्धि जानना ।

पित्तकी वृद्धिके लक्षण कहते हैं ।

पक्वोदुम्बरसङ्काशः पित्ताद्दाहोष्मपाकवान् ॥

भाषा-पित्तसे वृद्धि पके गूलरके समान होती है तथा दाह और गरमी पकनेवाली होती है ॥

कफकी वृद्धिके लक्षण कहते हैं ।

कफाच्छीतो गुरुः स्निग्धः कंडूमान्काठिनोऽल्परुक् ॥४॥

भाषा-कफसे वृद्धि शीतल, भारी चिकना तथा खुजारयुक्त, कठिन और थोड़ी पीड़ायुक्त होती है ॥

कृष्णस्फोटावृतः पित्तवृद्धिलिंगैश्च पित्तजः ॥

कफवन्मेदसो वृद्धिर्मृदुस्तालफलोपमः ॥३॥

भाषा-काले २ फोड़ाओंसे घिरा हुआ और पित्त वृद्धिके चिन्होंसे उस वृद्धिको युक्त पित्तजन्य रक्तजात जानना कोमल तालफलके तुल्य और कफ के लक्षण युक्त जो वृद्धिसे उसको मेदोजन्य जाननें ॥

मूत्रवृद्धिके लक्षण कहते हैं ।

मूत्रधारणशीलस्य मूत्रजः स तु गच्छतः ॥
अंभोभिः पूर्णदृतिवत्क्षोभे याति सरुङ्मृदुः ॥
मूत्रकृच्छ्रमधः स्याच्च चलयन्फलकोषयोः ।

भाषा—मूत्रके रोकनेकी आदत वाले पुरुषके यह रोग होता है वह पुरुष जब चले तब पानीसे भरी पखाल के समान घुडुप २ तथा बजै और उसमें पीड़ा होय, नरम मालूम होंय, उसमें मूत्रकृच्छ्रकीसी पीड़ा होय फल और कोष दोनों इधर उधर चलायमान होंय ॥

अंत्रवृद्धिके लक्षण कहते हैं ।

वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनै ॥७॥
धारणे रणभाराध्वविषमांगप्रवर्त्तनैः ॥
क्षोभणैः क्षुभितोऽन्यैश्च क्षुद्रांत्रावयवं यदा ॥८॥
पवनो विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत् ॥
कुर्याद्वंक्षणसंधिस्थो ग्रंथ्याभं श्वयथुं तदा ॥९॥

भाषा-वायुके प्रकोपक आहार के सेवन करने से, ठण्डे पानी में घुसकर नहाने से उपस्थित मूत्रादि वेगोंके रोकने से अप्राप्तवेग अर्थात् करनेकी इच्छा न होय उसको बलपूर्वक प्रेरण करनेसे भारी बोझके उठाने से, अतिमार्ग के चलनेस, अंगोंके विषम चेष्टा अर्थात् टेढ़ा तिरछा अंगकरके गमनादिक करनेसे, वलवानसे वैर करना. कठिन धनुषका खींचना इत्यादि ऐसेही और कारणोंसे कुपित हुआ वायु छोटी आंतोंके अवयवों के एक देशको बिगाड़कर अर्थात् उस को संकोच कर अपने रहनेके स्थानसे उसके नीचे ले जाय तब वंक्षणसंधिमें स्थित होकर उस स्थान में गांठ के समान सूजन को प्रगट करदेता है ॥

इसकी औषध न करनेका परिणाम कहतेहैं।

उपेक्षमाणस्य च मुष्कवृद्धिमाध्मानरुक्स्तंभवतीं स वायुः ॥
प्रपीडितोऽन्तःस्वनवान्प्रयातिप्रध्मापयन्नेतिपुनश्च मुक्तः॥ १०॥

भाषा-जिस वृद्धि से अफरा होय, पीडा होय, जडता होय, उसकी बेपर-वाई से अर्थात् औषध न करने से तथा अंडकोशोंके दाबने से जो वायु शब्द करे तथा हाथके दाबने से वायु ऊपरको चढ जाय और छोड़ने से फिर नीचे उतरकर अंडों को फुलाय दे ये लक्षण हो जाते हैं ॥

उसके असाध्य लक्षण कहते हैं ।

अंत्रवृद्धिरसाध्योऽयं वात वृद्धिसमाकृतिः ॥ ११ ॥

भाषा—छोटी आंतों के अवयवों को (अंगबाला) कफ वात के संचयसे मुष्कके विषें प्राप्त हुई वृद्धि तथा जिसमें वात के लक्षण कहे वे सब मिलते होंय यह अन्त्र वृद्धि असाध्य है ।

व्रध्न रोग निदान तन्त्रा तर मे लिखा है उसको कहते हैं ।

अत्यभिष्यंदिगुर्वामसेवनान्निचयं गतः ॥
करोति ग्रन्थिवच्छोफं दोषो वंक्षणान्धिषु ॥ १२ ॥
ज्वरशूलांगसादाढ्यं तं वृध्नामिति निर्दिशेत् ॥
तथोष्णवातजुष्टस्य मेढ्रव्रणयुतस्य च ॥ १३ ॥
तस्य पुंसो वध्नरोगं प्रवदन्ति भिषग्वराः ॥

भाषा—अभिष्यंदि वस्तु के खाने से, भारी अन्न के खाने से, कच्चे अन्न के खानेसे,वृद्धिको प्राप्तहुआ दोष"अत्यभिष्यंदिगुर्वन्नशुष्कपूज्यामिषाशनात्।" ऐसा भी पाठ है अर्थात् अभिष्यंदि भारी अन्न कुपित होकर वंक्षण को सन्धियों में अर्थात् बस्तिस्थानके समीप जिनको नरे कहते है उनमें सूजन को प्रगट करे उस सूजन के होने से ज्वर होता है तथा सूजन में पीडा होती है, अंगो मे अत्यंत दाह होती है ॥

इतिश्री वैद्यराज झल्लास्वामि सुरिसुनु शा० सोहन लाल
विद्याभूषण विरचितायां सुबोधिन्यां
वृद्धिरोगे निदानं समाप्तम् ।

गलगंड गण्डमालापचीग्रन्थ्यर्वुदानि.

वृद्धि युक्त मनुष्य के समान लिङ्ग वाले होने के कारण से वृद्धि के बाद गलगंड का वर्णन करते हैं इसको डाक्टरी में गोयटर कहते हैं

निबद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लंबते गले ॥

महान्वा यदि वा ह्रस्वो गलंगडं तमादिशते ॥ १ ॥

भाषा-जिसके गले में अनुबंध युक्त बड़ी अथवा छोटी अंडकोशके समान शोथ (सूजन) होकर लटके उसको गलगंड कहते हैं ॥

गल गण्ड की संप्राप्ति ॥

वातः कफश्चापि गलेप्रदुष्टो मन्यांसमाश्रित्य तथैवमेदः ॥

कुर्वन्ति गंडक्रमशास्त्रिलिंगैः समन्वितं गलगंडमाहुः २॥

भाषा—जिस मनुष्य के गले में दुष्ट हुये वायु और कफ और उसी मेद गलेकी दोनों मन्यानाड़ियोंका आश्रय लेकर क्रम से आप अपने लक्षण संयुक्त गंड (गोला) उत्पन्न करे है उसको गलगंड रोग कहते हैं। यह रोग वात, कफ और मेद इन कारणों से तीन प्रकार का है। यह रोग पैत्तिक नहीं होता है ॥

वात जन्य गलगंड के लक्षण कहते हैं।

तोदान्वितः कृष्णशिरावनद्धःश्यावोऽरुणो वापवनात्मकस्तु॥

पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्धिपाको यदृच्छया पाकमियात्कदाचित्॥३

वैरस्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रशोषः॥

भाषा-सुईचुभने कीसी पीडा युक्त हो काली नसोंसेघिराहुआ होय और उसका रंग काला और लाल होय तथा कठोरता बहुत काल में बढ़े तथा पके नहीं और जो पके तो कदाचित् यदृच्छापूर्वक पके उस रोगी के मुखमें विरसताहोय तब तालु व गले मेंशोषहोय यहलक्षण वातजन्य गलगंडकेजानै

कफजन्य गलगंड के लक्षण कहते हैं।

स्थिरःसवर्णो गुरुरुग्रकंडूःशीनो महांश्चापि कफात्मकस्तु॥४॥

१भोजेयुक्तं महान्तं शोथ मल्पं वा हनु मन्या गला श्रयन्-लम्वन्ती मुष्क वद्दृष्ट्वा गल खिनिर्दिशेत् १।

चिराभिवृद्धिं भजते चिराद्वा प्रपच्यते मन्दरुजः कदाचित् ॥
माधुर्यमास्यस्य च तस्य जंतोर्भवेत्तथा तालुगलप्रलेपः ॥५॥

भाषा-स्थिरता त्वचाके रंगकेसमान वर्ण वाला भारी भारीखुजली चले, स्पर्श में ठंडा और बड़ा हो वह बहुत दिनमें बढ़े और बहुत कालमें पके, पीड़ा,थोड़ी होय मुखमें मिठास होय तथा गलेमें और तालुए में कफ लिह-सासा होय यह लक्षण कफात्मक गलगंड के लक्षण जानि ॥

मेदजन्य गलगंड के लक्षण कहते हैं ।।

स्निग्धो गुरुःपांडुरनिष्टगंधो मेदोभवः स्वल्परुजोऽतिकंडूः
प्रलंबतेऽलाबुवदल्पमूलो देहानुरूपक्षयवृद्धियुक्ताः ॥६॥
स्निग्धास्यता तस्य भवेच्च जंतोर्गलेऽनुशब्दंकुरुतेचनित्यम् ॥

भाषा-चिकना भारी,पीलावर्ण,दुर्गंधयुक्त,मंद पीडा करनेवाला और और अत्यन्त खुजली चले,वह तूंबीफलके समान लंबा जड़में छोटा और देहानुरूप क्षय औरवृद्धि इनसे युक्त होय अर्थात् देहके क्षीण होनेसे क्षीण होजाय देहके बढ़नेसे बढ़ जाय उसको मुख तेल से लिसासा होय और बोलनेके पीछे गले से कुछ शब्दनिकलता सा मालूम होवै वह मेदोजन्य गलगण्ड जानना ॥

उसके असाध्य लक्षण कहते हैं ।

कृच्छ्राच्छ्वसन्तं मृदुसर्वगात्रंसंवत्सरातीतमरोचकार्त्तम् ॥७॥
क्षीणं च वैद्यो गलगंडजुष्टं भिन्नस्वरं चापि विवर्जयेत्तु ॥

भाषा-कष्टसे श्वास लेनेवाला, नरम सब शरीरवाला, जिसके गलगण्ड होकर वर्ष दिन व्यतीत हो गया हो और अरुचिसे पीडित हो क्षीण होगया हो और जिसका स्वरफटासा मालूम हो ऐसे गलगण्ड से पीडित वैद्य छोड़देय ।

गण्डमाला का वर्णन कहते हैं ।

कर्कंधुकोलामलकप्रमाणैः कक्षांसमन्यागलवंक्षणेषु ॥८॥
मेदःकफाभ्यां चिरमंदपाकैःस्याद्गण्डमाला बहुभिस्तुगंडैः॥

भाषा-झाड़ी बेरके तुल्य पैंमदी बेरके समान, आमलेके समान मेदकफ से प्रगट हुआ बगल कंधा मन्या गला वंक्षण जानु शिश्नसंधि इनमें बहुत कालमें धीरे २ जिनका परिपाक हो इस बहुत से गण्डोंसे (गांनैसे) गण्ड-माला होवी है

अपचीके लक्षण कहते हैं ।

ते ग्रंथयःकेचिदवाप्तपाकाःस्रवन्ति नश्यंति भवन्ति चान्ये ॥
कालानुबंधं चिरमादधाति सैवापचीति प्रवदंति केचित् ॥

भाषा—पूर्वोक्त गण्डमालाकी गांठ नहीं पकती अथवा पाक होनेसे स्रवे कोई नष्ट होजाय, दूसरी नवीन उठे ऐसी पीड़ा बहुत दिन रहै उसको कोई अपची ऐसा कहते हैं यह गण्डमाला काही भेद जानना ॥

असाध्य और साध्य लक्षण कहते है ।

साध्या स्मृता पीनसपार्श्वशूलकासज्वरच्छर्दियुता न साध्या १०

भाषा-वह अपची रोग साध्य है और पीनस पांसुओं में शूल, खांसी, ज्वर वमन इनसे युक्त होय तो वह अपची असाध्य है ॥

ग्रन्थिका वर्णन कहतेहैं ।

वातादयो मांसमसृक्प्रदुष्टाः संदूष्य मेदश्च तथा शिराश्च॥
वृत्तोन्नतं विग्रथितं तु शोथं कुर्वंत्यतो ग्रन्थिरिति प्रदिष्टः॥ ११

भाषा-दूषित हुए (बढ़े) वातादि दोष, मांस, रुधिर और मेद, उसी प्रकार (नस) इनको दूषित (बढ़ाकर) गोल, ऊँची, गांठके समान अथवा कठिन सूजन को उत्पन्न करे उसको ग्रंथि रोग कहते हैं ।

वातजन्य ग्रंथिके लक्षण कहतेहैं ।

आयम्यते वृश्चति तुद्यते च प्रत्यस्यते मथ्यति भिद्यते च ॥
कृष्णो गुरुर्बस्तिरिवाततश्च भिन्नः स्रवेच्चानिलजोऽस्रमच्छम् २१

भाषा-खिचीसी मालूम हो तनेके समान करड़ी मालूमें हो छेदन करने समान मालूम हो, सुई चुभनेकीसी पीड़ा होय, गिरती सी मालूम हो मथनें कीसी पीड़ा होय, फोरनेकीसी पीड़ा होय, कालावर्ण हो, नरम हो बस्तिकें समान चौड़ी होय और उसके फूटनेसे स्वच्छ रुधिर निकले इसको बादी की ग्रन्थि जानै ॥

पित्तजन्य ग्रन्थिके लक्षण कहते हैं ।

दंदह्यते धूम्याति चूष्यते च पापच्यते प्रज्वलतीव चापि ॥
रक्तः सपीतोऽप्यथ वापि पित्ताद्भिन्नः स्रवेदुष्णमतीव चास्रम् ३

भाषा-दाहको प्राप्त हुए के समान अत्यन्त दाह करे, आंतों में धूआं सा निकला ऐसा मालूम होय, चोंखने की तुल्य दशा मालूम हो खार के से जैसे पचे ऐसे पकावट मालूमहो अग्नि के समान जली सी मालूम होय, उस गांठ का रंग लाल अथवा किंचित् पीला होय और फूटने से उसमेंसे दुष्ट रुधिर बहुत निकले है यह पित्त की गांठके लक्षण जानना ॥

कफजन्य ग्रन्थिके लक्षण कहते हैं ॥

शीतो विवर्णोऽल्परुजोऽतिकंडूः पाषाणवत्सन्नहनोपपन्नः॥
चिराभिवृद्धिश्च कफप्रकोपाद्भिन्नःस्रवेच्छुक्लघनं च पूयम्॥१४॥

भाषा—शीतल विवर्ण थोड़ी पीड़ा अत्यन्त खुजार चले, पत्थरके समान कठिन बड़ी होय और चिरकाल में बढ़नेवाली होय । फूटनेसे उसमें से सपेद गाढ़ी राध निकले उसैको कफकी गांठ जाने ॥

मेदजन्य ग्रन्थि के लक्षण कहते हैं ।

शरीरवृद्धिक्षयवृद्धिहानिः स्निग्धो महान्कंडुयुतोऽरुजश्च ॥
मेदःकृतो गच्छतिचात्र भिन्ने पिण्याकसर्पिःप्रतिमं तु मेदः॥१५

भाषा-शरीरके बढ़ने और घटनेसे बढ़े क्षीण होजाय चिकना बड़ी, खुजार युक्त, पीड़ारहित होय और जब वह फूटे तब उसमें से खर के समान अथवा घृतके तुल्य मेद निकले ॥

शिराजन्य ग्रन्थिके लक्षण कहते हैं ।

व्यायामजातैरबलस्य तैस्तैराक्षिप्य वायुस्तु शिराप्रतानम् ॥
संकुच्य संपीड्य विशोष्यचापि ग्रंथिं करोत्युन्नतमाशुवृत्तम्॥

भाषा—निर्बल पुरुष शरीर को परिश्रम करनेवाले काम करे तब बात कुपित होकर शिराके (नसोंको) जालको संकुचित कर एकत्र कर और सुखायकर ऊंची गांठको शीघ पैदा करे ॥

साध्यासाध्य लक्षण कहते हैं ।

ग्रंथिःशिराजःस च कृच्छ्रसाध्यो भवेद्यदि स्यात्सरुजश्चलश्च॥
अरुक्स एवाप्यचलो महांश्च मर्मोत्थितश्चापि विवर्जनीयः॥१७

भाषा—यह शिरा जन्य ग्रन्थि कृच्छ्रसाध्य है । यदि पीड़ा सहित और

चलायमान वह होय तो वहभी कृच्छ्रसाध्य है और पीड़ा रहित अचल हो और बड़ी हो तथा मर्मस्थानमें स्थित हो ऐसी ग्रन्थि जो वह असाध्यहै वह त्याग देने योग्य है ॥१॥

इतिश्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसुनु शा० सोहन लाल
विद्याभूषण विरचितायां सुबोधिन्यां
ग्रन्थिरोग निदानं समाप्तम् ।

अथार्बुदनिदानम् ।

अर्बुदका वर्णन करते हैं ।

गात्रप्रदेशे क्वचिदेव दोषाः संमूर्छिता मांसमसृक् प्रदूष्य ॥
वृत्तं स्थिरं मंदरुजं महान्तमनल्पमूलं चिरवृद्धिपाकम् ॥
कुर्वंति मांसोच्छ्रयमत्यगाधं तदर्बुदं शास्त्रविदो वदन्ति ॥१॥

भाषा-किसी ही शरीरके भागमें दूषित हुए दोष मांस और रक्त को दूषितकर गोल स्थिर मंद२ पीड़ायुक्त पूर्वोक्त गाँठों के आकार से बड़ी जड वाला बहुकाल में वढ़ाव हो तथा पंकावहो ऐसो मांसके ऊपर फूलने को अर्बुदऐसा कहते हैं ॥

वातेन पित्तेन कफेन चापि रक्तेन मांसेन च मेदसा च ॥
तज्जायते तस्य च लक्षणानि ग्रंथेःसमानानि सदा भवंति॥२

भाषा-वातसे, पित्तसे, कफसे, रुधिरसे, मांससे और मेदसे वह अर्बुद रोग छः प्रकारका होता है । उसके लक्षण सर्वदा ग्रंथि रोगके समान होते हैं

रक्तार्बुद के लक्षण कहते हैं ।

दोषःप्रदुष्टो रुधिरं शिरास्तु संकुच्य संपीड्य ततोऽस्य पाकम्॥
सास्रावमुन्नह्यति मांसपिंडं मांसांकुरैराचितमाशु वृद्धम् ॥३॥
करोत्यजस्रं रुधिरप्रवृद्धिमसाध्यमेतद्रुधिरात्मकं तु ॥
रक्तक्षयोपद्रवपीडितत्वात्पांडुर्भवेत्सोऽर्बुदपीडितस्तु ॥४॥

---

१ पञ्चैतानुरुजो ग्रंथीन् मर्मजानचलां स्त्यजेत् ॥ कपोल गल मन्यासु दुश्चिकित्स्याश्च संघिषु ॥

भाषा—दूषित हुए दोष मसोंमें स्थित जो रुधिर उसे संकोच कर तथा पीडित करै तब उसको पकावट हो उस समय वह मांसपिंड कुछ झरने लगे और मांसके अंकुर (टोंआ) से शीघ्र बढ़नेवाला होता है । उसमें से रुधिर बहा करता हैं यह रक्तार्बुद असाध्य है। वह रक्तार्बुदपीडित रोगी रक्त क्षयके उपद्रवों से पीडित होनेसे उसका रंग पीला होजावै ये रक्तार्बुदके लक्षण होतेहैं

मांसजन्य अर्बुद की सम्प्राप्ति कहते हैं ।

मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितेऽगे मांसं प्रदुष्टं जनयेद्धि शोथम् ॥
अवेदनं स्निग्धमनन्यवर्णमपाकमश्मोपममप्रचाल्यम् ॥ ५॥
प्रदुष्टमांसस्य नरस्यगाढ़मेतद्भवेन्मांसपरायणस्य ॥६॥
मांबुर्सादं त्वेतदसाध्यमुक्तं–

भाषा-घूंसाआदिकी चोट के लगनेसे अंगमें पीड़ा होवै उस पीड़ासे दुष्ट हुआ जो मांस सो सूजन उत्पन्न करता है । उस सूजनमें पीड़ा नहीं होती और वह चिकनी, देहके रंग की सी होय, पके नें, पत्थरकें समान कठिन हले म इसप्रकार होती है । जिस मनुष्य का मांस बिगड़ गया हो अथवा जो नित्य मांसको खाय उसके यह अर्बुदरोग होता है। यह मांसार्बुद असाध्य कहा है ॥

साध्यों में असाध्य क प्रकारों को कहते हैं ॥

साध्येष्वपीमानि तु वर्जयेच्च ॥
संप्रस्रुतं मर्मणि यच्च जातं स्रोतःसु वायच्च भवेदचाल्यम्॥७॥

भाषा-साध्योंमें भी यह आगेंका अर्बुदरोग वर्जित है. जो झरनेलगें और मर्मस्थानमें पैदा हुआ हो अथवा नाक आदि स्रोत (मार्ग) में पैदा हुआ हो और जो स्थिर होता है वह असाध्य होता है ॥

अध्यर्बुद के लक्षण कहते हैं ।

यज्जायतेऽन्यत्खलु पूर्वजाते ज्ञेयं तदध्यर्बुदमर्बुदज्ञैः ॥

भाषा-जिस स्थान पर पहिले अर्बुद हुआ होय उस ठिकाने परही दूसरा अर्बुद पैदा होय उसके अध्यर्बुदरोग कहते हैं ॥

द्विरर्बुदके लक्षण ।

यद्वंद्वजातं युगपत्क्रमाद्वा द्विरर्बुदं तच्चभवेदसाध्यम्॥८॥

भाषा—एक कालमें दो अर्बुद अथवा एकके पिछाड़ी दूसरा अर्बुद क्रमसे पैदा हो उसको द्विरर्बुद कहते हैं यह असाध्य है ॥

अर्बुद न पकनेमें कारण कहते हैं ॥

न पाकमायाति कफादिकाद्वा मेदोबहुत्वाच्चविशेषतस्तु॥
दोषास्थिरत्वाद्ग्रथनाच्च तेषां सर्वार्बुदान्येव निसर्गतस्तु॥

भाषा-कफ के अधिक होनेके कारण अथवा विशेषतया मेद अधिक होनेसे तथा दोषोंके स्थिर होनेसे दोषोंके ग्रंथिरूप होनेसे सर्व प्रकारके अर्बुद स्वभावसेहीनहीं पकते है ॥१॥

इतिश्री वैद्यराज झल्लास्वामिसूरिसूनु शा० सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां अर्बुदरोग निदानं समाप्तम्।

मांस का हिस्सा जैसा ग्रंन्थि आदि में उठताहै वैसेही श्लीपदमें भी मांस ऊंचा होता है इस कारण अर्बुदके पीछे श्लीपद का वर्णन करते हैं ॥

अथ श्लीपदनिदानम् ।

उसकी सम्प्राप्ति ।

यः सज्वरो वंक्षणजो भृशार्तिः शोथोनृणां पादगतःक्रमेण॥
तत् श्लीपदं स्यात्करकर्णनेत्रशिश्नोष्ठनासास्वपि केचिदाहुः १॥

भाषा-जिसमें सूजन वंक्षण (गुह्य) स्थान से उत्पन्न हो अत्यन्त पीड़ा देता हुआ मनुष्यके पैर में प्राप्त हुआ हो और उसमें ज्वर भी हो क्रमसे उस रोगको श्लीपद कहते हैं। यह श्लीपद हाथ, कान, नेत्र, शिश्न, होठ, नाक, इनमेंभी होता है ऐसा कोई कहते हैं ॥

१ भोजेप्युक्तं-नपच्यतेस्थिरत्वाच्च ग्रथितत्वात् स्वभावतः॥

वातजन्य श्लीपदके लक्षण कहतेहैं ।

वातजं कृष्णरूक्षं च स्फुटितं तीव्रवेदनम् ॥
अनिमित्तरुजं तस्य बहुशो ज्वर एव च ॥२॥

भाषा-वात से उत्पन्न हुआ श्लीपद काला, रूखा, फटा हुआ और जिस में तीव्र पीड़ा होय, विना कारणके दूखे और उसमें ज्वर बहुत होय ऐसा होता है ॥

पित्तजन्य श्लीपदके लक्षण कहतेहैं ॥

पित्तजं पीतसंकाशं दाहज्वरयुतं मृदु ॥

भाषा-पित्तजन्य श्लीपद पीले रंगका, दाह और ज्वरयुक्त होता है और नरम होता है ॥

कफजन्य श्लीपद के लक्षणकहतेहैं ॥

श्लैष्मिकं स्निग्धवर्णं च श्वेतं पांडु गुरुं स्थिरम् ॥३॥

भाषा-कफकाश्लीपदका चिकना,सफेद रंगकापीला भारी औरकठिन होताहै

इनकी असाध्यताको कहते हैं ॥

वल्मीकमिव संजातं कंटकैरुपचीयते ॥
अब्दात्मकं महत्तच्च वर्जनीयं विशेषतः ॥४॥

भाषा-सांपकी बामई के तुल्य बढ़ा हुआ और जिसके ऊपर कांटे होंय ऐसा एक वर्षका होगया हो और बड़ा होय वह श्लीपद रोग वैद्य को विशेषता करके त्याग देना चाहिये ॥

श्लीपद में कफका अव्यभिचारि प्राधान्य है उसको कहते हैं ॥

त्रीण्यप्येतानि जानीयाच्छ्लीपदानि कफोच्छ्रयात्॥
गुरुत्वं स महत्वं च यस्मान्नास्ति विना कफात् ॥५॥

भाषा-ये जो पहिले कहेहैं श्लीपद उन तीनों श्लीपदमें कफका आधिक्यत है, इसका कारण इस प्रकार समझना कि भारी और महत्त्व ये दो लक्षण कफके विना नहीं होते हैं ॥

श्लीपद की उत्पात्ति के कारण जिसमें हो ऐसे देशको कहते हैं ।

पुराणोदकभूयिष्ठाः सर्वर्तुषु च शीतलाः ॥
ये देशास्तेषु जायन्ते श्लीपदानि विशेषतः ॥६॥

भाषा-वर्षाऋतुमें पानी अधिक वर्षे परन्तु पृथ्वीके नीचे होनेसे न सुखे इसीसे पुराना पानी जिस जगह इकट्ठा वहुत होजाय और सर्व ऋतुओं में सरदी रहै ऐसे जो देश उनमें यह श्लीपदरोग विशेषता से होता है। जांगल देशोंमें अग्निका अधिक अंश होनेसे उन देशोंमें जलकी प्राचीनता नहींहोती है और अनूप देशमें गरमी हलकी पड़नेसें गरम ऋतुमें भी ठंडक होती है हाथ कान आदिमें श्लीपद रोगकीशंका होनेसे दोषोंके कोपद्वारा ज्वरसे करके श्लीपदको पहिचाने ॥

उसके असाध्य लक्षण कहते हैं।

यच्छ्लेष्मणाहारविहारजातं पुंसःप्रकृत्याचकफात्मकस्य ॥
सास्रावमप्युन्नतसर्वलिंगं संकडुरं श्लेष्मयुतं विवर्ज्यम्॥७॥

भाषा-जो श्लीपद रोग कफ करनेवाले आहार विहारसे प्रकट हुआ तथा कफकीप्रकृतिवाले मनुष्य के कफसे प्रकट हुआ होय तथा स्रावयुक्त तथा जिस दोषसे प्रगट हुआ होय उस दोषके लक्षण उसमेंहोंखुजली बहुतहो और कफयुक्त होय ऐसे श्लीपदरोग वालेको वैद्य त्याग देवै ॥

इतिश्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसूनु सोहनलाल विद्याभूषण
विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां
श्लीपदरोग निदानं समाप्तम्।

अथ विद्रधिनिदानम्।

त्वग्रक्तमांसमेदांसि संदूष्यास्थिसमाश्रिताः ॥
दोषाः शोथं शनैर्घोरं जनयंत्युच्छ्रिता भृशम् ॥ १॥
महाशूलं रुजावंत वृत्तं वाप्यथवायतम् ॥
स विद्रधिरिति ख्यातो विज्ञेयःषड्विधश्च स ॥२॥
पृथग्दोषैः समस्तैश्च क्षतेनाप्यसृजा तथा ॥
षण्णामपि हि तेषां तु लक्षणं संप्रचक्ष्यते ॥३॥

भाषा-बहुत बड़े तथा अस्थि (हड्डी) का आश्रय करनेवाले जो वातआ

दि दोष त्वचा, रुधिर, मांस और मेद इनको दूषित करके धीरे २ भयंकर शोथ उत्पन्न करते हैं, उसकी जड़ हड्डी पर्यंत पहुँचजाय, उत्पत्तिकाल में अत्यन्त पीड़ा करनेवाले तथा गोल अथवा लंबा जो शोथ होय उसको विद्रधि कहते हैं। अलग अलग दोषोंसे ३ सन्निपातसे १ क्षत नाम घाव से १ और रुधिरसे १ ये मिलकर छः प्रकारकी विद्रधि होती है। उनछ हों विद्राधिके लक्षण मेरेद्वारा कहे जाते हैं अर्थात् मैं कहता हूं ॥

वातजन्य विद्रधिके लक्षण कहतेहैं।

कृष्णोऽरुणो वा विषमो भृशमत्यर्थवेदनः ॥
चित्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिर्वातसंभवः ॥ ४ ॥

भाषा—जो विद्रधि काला लाल, विषम नामें छोटा भी मोटा होय, अत्यन्त वेदनायुक्त और उसका पैदा होना तथा पाक ये अनेक प्रकारके होंय उसको वातजन्य विद्रधि कहतेहैं ॥(

पित्तजन्य विद्रधिके लक्षण कहते हैं।

पक्वोदुंबरसंकाशः श्यावो वा ज्वरदाहवान् ॥
क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः पित्तसंभवः ॥ ५ ॥

भाषा—पके गूलरके समान कालो रंगका होय, ज्वर, और दाह युक्त उसका उत्थान (उत्पति) और पाक शीघ्र हो ऐसा जो विद्रधि रोग वह पित्त से उत्पन्न हुआ जानै ॥

कफजन्य विद्रधिके लक्षण कहते हैं।

शरावसदृशः पांडुः शीतः स्निग्धोऽल्पवेदनः ॥
चिरोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः कफसंभवः ॥ ६ ॥

भाषा—मिट्टी के शकोरा के सदृश बड़ा होय, पीला वर्ण शीतल, चिकना, थोड़ा दर्द जिस में होय। उसकी उत्पत्ति और पाक देरमें होय ऐसा विद्राधि कफ जन्य समझना चाहिये।

पकनेके अनन्तर उनके झड़ने के चिह्न कहतेहैं।

तनुपीतसिताश्चैषामास्रावाः क्रमशः स्मृताः ॥

भाषा—क्रम से पकने पर उन तीनों के स्राव इस प्रकार जानै यथा वायु से थोड़ा पित्तसे पीला कफसे सफेद राधनिकलता है।

सान्निपातकी विद्रधि के लक्षण कहते हैं ।

नानावर्णरुजा स्रावो घाटालो विषमो महान् ॥ ७ ॥
विषमं पच्यते चापि विद्रधिः सान्निपातिकः ॥

भाषा—अनेक प्रकारकी पीडा जैसे तोद, खुजली, पीड़ा तथा अनेक प्रकार का स्राव जैसे पतला, पीला, सपेद स्राव होय। घाटाल कहिये नीचे स्थूल होय और ऊपर पतला होय अर्थात् अग्रभाग बहुत ऊंचा होय, छोटा, बड़ा भी हो तथा विषम (१) पाक वाला हो अर्थात् पके नहीं ऐसी जो होय वह विद्रधि सन्निपातसे जानै ॥

अभिघातजन्य आगंतुज विद्रधिकी संप्राप्ति कहते हैं।

तैस्तैर्भावैरभिहते क्षते वाऽपथ्यकारिणः ॥ ८ ॥
क्षतोष्मा वायुविसृतः सरक्तं पित्तमीरयत् ॥
ज्वरस्तृष्णा च दाहश्च जायन्ते तस्य देहिनः ॥ ९ ॥
आगंतुर्विद्रधिर्ज्ञेयः पित्तविद्रधिलक्षणः ॥

भाषा-उन उन भावों से अथात् लकड़ी पत्थर डेला आदिकी चोटलग जाने से अथवा तलवार, तीर, बरछी इत्यादिक लगनेसे घाव हो जानेसे, कुपथ्य करने वाले पुरुषके कुपित वायु से क्षतोष्मा (घावकी गरमी और दाह होय और उसमें पित्तकी विद्रधिके लक्षण मिलते होंय वह आगंतुज विद्रधि जाननी ॥

रक्तजन्य विद्रधिके लक्षण कहते हैं।

कृष्णास्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजाकरः ॥ १० ॥
पित्तविद्रधिलिंगस्तु रक्तविद्रधिरुच्यते ॥

भाषा-काले फोड़ासे घिरा हुआ काला अत्यन्त दाह, पीडा और ज्वर ये उसमे होवे और पित्तकी विद्रधिके लक्षण जिसमें होय उसको रक्त-विद्रधि कहाजाता है ॥

आभ्यन्तर विद्रधिके लक्षण कहते हैं।

पृथक् संभूय वा दोषाः कुपिता गुल्मरूपिणम् ॥ ११ ॥
वल्मीकवत्समुन्नद्धमंतः कुर्वंति विद्रधिम् ॥

---

१ योऽभ्युत्थितोऽल्पो यदिवा महान्स्यात् क्रियां बिना पाक मुपैत्ति शोथः॥ विशाल मूलो विषमो विदग्धः सकृच्छ्रतांयात्यवगाढदोषः ॥

गुदे वस्तिमुखे नाभ्यां कुक्षौ वंक्षणयोस्तथा ॥ १२ ॥
वृक्कयोः प्लीह्नि यकृति हृदये क्लोम्निचाप्यथ ॥
तेषामुक्तानि लिंगानिबाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ १३ ॥
अधिष्ठान विशेषेण लिंगं शृणु विशेषतः ॥
गुदे वातानिरोधस्तु बस्तौ कृच्छ्राल्पमूत्रता ॥१४॥
नाभ्यां हिक्का तथाटोपः कुक्षौ मारुतकोपनम् ॥
कटिपृष्ठग्रहस्तीव्रो वंक्षणोत्थे च विद्रधौ ॥ १५ ॥
वृक्कयोः पार्श्वसंकोचःप्लीन्ह्युरुच्छासावरोधनम् ॥
सर्वांगप्रग्रहस्तीव्रो हृदि कंपश्चजायते ॥
श्वासो यकृति हिक्का च क्लोम्नि पेपीयते पयः॥१६॥

भाषा-कुपित हुये पृथक अथवा मिले हुये दोष शरीर में गोलके और बांबी के समान बड़ी ऐसी अन्तर विद्रधि उत्पन्न करते हैं यह अधिक विधान केलियेभी कही जो सम्प्राप्ति विद्रधिकी वहही और कहतेहैं गुदा,बस्ति,मुख नाभि, कूख, वंक्षण, वृक्क (कूख. पिंड, प्लीहा) यकृत् (कलेजा) हृदय क्लोम (प्यासका स्थानों) इन स्थानों पर विद्रधि होती है । इसके लक्षण बाह्य विद्रधिके लक्षणों के साथ कहे हैं अब अधिष्ठान विशेषता के जो चिह्न है उनको सुन। अधिष्ठान विशेषेण लिङ्गं श्रृणु विशेषतः॥ ओजादि तो धातु रक्त जन्य विद्रधिको छोड़ कर मक्कल इस ' नामसे ' आर्तव लक्षणही रक्तजन्य विद्रधि है इसी पाठका कहतेहैं उनके मतमें आर्तवजन्य विद्राधिको मिलाकर ही छह विद्रधि कहे है और सुश्रुत में तो धातु रक्तजन्यभी तथा मक्कल संज्ञकभी जो विद्रधि वह सामान्यतया रक्त जन्य हो ऐसामान कर छह विद्रधि कहे हैं ॥

स्रावनिर्गममार्गको कहतेहैं ।

नाभेरुपरिजाः पक्वा यांत्यूर्ध्वमितरे त्वधः ॥
अधः स्रुतेषु जीवेत्तु स्रुतेषूर्ध्वं न जीवति॥ १७ ॥

भाषा-नाभिके ऊपर हुये विद्रधि के पकनेसे जो स्राव अर्थात् राध आदि का वहना हो वह मुखके रास्ते होता है और नाभिके नीचे होनेसे जो स्राव होव

गुदाके मार्गसे होता है और नाभिके समीप होनेवाली विद्रधियोंका स्रावदोनों मार्गसे होता है जैसा हारीतने कहा है" ऊर्ध्वं प्रभिन्नेषु मुखान्तराणां प्रवर्त्तऽसृक् सहितोऽपि पूयः ॥ अधः प्रभिन्नेषु चपायुमार्गात् द्वाभ्यां प्रभिन्नस्त्विहनाभिजेषु ॥ इसप्रकार जानना । जिनका स्राव नीचेके मार्ग हो वह रोगी जीवै और ऊपरके मार्ग जिसका स्राव होता है वह रोगी नहीं बचता है ॥

विद्रधिमें साध्यासाध्य कहते हैं ।

हन्नाभिबस्तिवर्ज्या ये तेषु भिन्नेषु वाह्यतः ॥
जीवेत्कदाचित्पुरुषो नेतरेषु कथंचन ॥१८॥
साध्या विद्रधयः पंच विवर्ज्यः सान्निपातिकः ॥
आमपक्वविदग्धत्वं तेषां शोथवदादिशेत् ॥१९॥

भाषा-हृदय, नाभि और बस्ति इन ठिकानेको छोड़कर उत्पन्नजो विद्रधि अर्थात् प्लीह क्लोम इत्यादि ठिकाने में बाहर फूटनेसे कदाचित् पुरुष बच जाय और ठिकानों पर फूटनेसे नहीं बचता है । क्योंकि हृदय नाभि बस्तिजन्य जो हो उनके फूटने पर उनको मर्मस्थानजन्य होनेसे बाहरकी तरफ फूटैं सबही वर्जित हैं पाकमें और अपाकमें भी जैसा भोजने कहा है । असाध्यो मर्मजोज्ञेयः पक्वाऽपक्वश्चविद्रधिः॥सन्निपातो स्थितोप्येवं पक्वएव तु बस्तिजः ॥ त्वग्जो नाभे रधोयश्च साध्योमर्मसमीपजः ॥ अपक्वश्चैव पक्वश्च साध्यो नोपरिनाभिजः इस प्रकार जानना । पहिले पांच विद्रधि साध्य हैं, सन्निपातकी विद्रधि असाध्यहै, वह त्याग देनी चाहिये.इन विद्रधियोंकी आम पक्व और विदग्ध ये तीन अवस्था शोथरोग के समान जाननी चाहिये ॥

असाध्य लक्षण कहते हैं ।

आध्मातं बद्धनिष्यंदं छर्दिहिक्कातृषान्वितम् ॥
रुजाश्वाससमायुक्तं विद्रधिर्नाशयेन्नरम् ॥२०॥

भाषा-अफरायुक्त, मूत्र रुक गया होय, हिचकी वमन और प्यास इनसे पीड़ित, शूल, श्वास इनसे युक्त ऐसा विद्रधिरोग मनुष्यको मारदेताहै ।

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसूनु सोहनलाल विद्याभूषण
विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां
विद्रधिनिदानं समाप्तम् ।

॥ अथ व्रणनिदानम् ॥

प्राय करके चिकित्सा साधर्म्य से होनेवाले व्रणके सम्बन्धी तुल्यता से व्रण शोथका निदान कहा है ।

एकदेशोत्थितः शोथो व्रणानां पूर्वलक्षणम् ॥
षड्विधः स्यात्पृथक् सर्वरक्तागंतुनिमित्तजः ॥१॥
शोथोःषडेते विज्ञेयाः प्रागुक्तैः शोथलक्षणैः ॥
विशेषः कथ्यते तेषां पक्वापक्वविनिश्चयैः ॥२॥

भाषा–एक स्थानमें उत्पन्न हुआ शोथ (सुजन) व्रणों (घावों) के पूर्व रूपका पूर्व लक्षण जाने वह व्रणरोग अलग२ दोषोंसे ३, सन्निपातसे १, और रक्तसे १ व आगंतुक १, ऐसे मिलकर छः प्रकारका है। इन छः व्रणोंको शोथरोगोंके लक्षण के समान जानने चाहिये। पक्व (पकने) अपक्व (न पकने) आदिके विषय में जो विशेषता है वह यहां कही जातीहै शोथ जो कहेहैं वह पूर्वोक्त वातादि भेदोंसे विशेष लक्षण वालेहैं सो कहते हैं ॥

व्रणपाक ।

विषमं पच्यते वातात्पित्तोत्थश्चाचिरं चिरम् ॥
कफजः पित्तवच्छोफो रक्तागंतुसमुद्भवः ॥ ३ ॥

भाषा–वायुसे विषम पाक होताहै अर्थात् कहीं पकता वा नहीं पकता है पित्तसे बहुत जल्दी पकता है, कफका फोड़ा देरमें पकता है और रुधिर तथा आगंतुक फोड़ेसे उत्पन्न हुआ शोथ पकना पित्तके समान अर्थात् जल्दी पकता है ॥

आम (कच्चे) फोड़े के लक्षण कहते हैं ।

मंदोष्मताऽल्पशोथत्वं काठिन्यं त्वक्सवर्णता ॥
मंदवेदनता चैतच्छोथानामामलक्षणम् ॥४॥

भाषा– थोड़ी गरम मालूम होय और थोड़ी सूजन होय फोड़के स्थान में कठिनता होय, देह के त्वचाके रंग समान उसका रंग होय, और उसमें पीड़ा मन्द होय, ये कच्ची सूजनके लक्षण कहें हैं ।

पच्यमानव्रण के लक्षण कहते हैं ।

दह्यते दहनेनेव क्षारेणेव च पच्यते ॥
पिपीलिकागणेनेव दंश्यते छिद्यते तथा ॥५॥
भिद्यते चैव शस्त्रेण दण्डेनेव च ताड्यते ॥
पीड्यते पाणिनेवांतः सूचीभिरिव तुद्यते ॥६॥
सोषाचोषा विवर्णः स्यादंगुल्येवावघट्यते ॥
आसने शयने स्थाने शांतिवृंश्चिकाविद्धवत् ॥७॥
न गच्छेदाततः शोथो भवेदाध्मातवस्तिवत् ॥
ज्वरस्तृष्णाऽरुचिश्चैव पच्यमानस्य लक्षणम् ॥८॥

भाषा—व्रण पकने दशामें ये लक्षण होते है। अग्निसे भरासा फोड़ेका स्थान मालूम हो, खार लगनेकासा चिनमिनाव, चेंटी काटनेकीसी पीड़ा होय वह दो टूक करनेके समान तथा शस्त्रसे फाड़नेके तुल्य दंड आदिके मारने के सदृश और हाथसे मीड़नेके तुल्य तथा भीतरी सुईसे छेदने के समान पीड़ा होय और उसमें अत्यन्त दाह होय, अग्निसे सेकने के तुल्य उसमें तकलीफ होय, उस फोड़ेका रंगबदल जाय, उंगलीके लगने से उखाड़नेकीसी पीड़ा होय, बैठनेमें सोनेमें खड़े रहनेमें बीछू काटनेकीसी घोर पीड़ा होय वह पीड़ा कभी शांत न होय, वह सूजन फूली हुई मूत्रस्थान के सदृश खिंचा हुई होय, उसमें ज्वर प्यास और अरुचि ये लक्षण होते है ॥

कफव्रणके लक्षण कहते हैं ।

वेदनोपशमः शोथो लोहितोऽल्पो न चोन्नतः ॥
प्रादुर्भावो वलीनां च तोदः कडूर्मुहुर्मुहुः ॥९॥
उपद्रवाणां प्रशमो निम्नता स्फुटनं त्वचाम् ॥
बस्ताविवांबुसंचारः स्याच्छोथोंऽगुलिपीडिते ॥१०॥
पूयस्य पीडयत्येकमतमंते च पीडिते ॥
भक्ताकांक्षा भवेच्चैतच्छोथानां पक्वलक्षणम् ॥११॥

भाषा—पीड़ाकी शांति हो उसकी सूजन लाल हो और थोड़ी होय,

ऊंची न हो, उसमें गुलझट झुर्री पडे सुई चुभने कीसी पीड़ा होय बारंबार खुजली चले, पित्तदाहादि उपद्रवोंकी शांति हो, खुजानेसे उस जगह गढ़ेला हो जाय, त्वचा फट जाय, सूजन हाथ के दबाने से जैसा बस्तिमें नीचेका पानी इधर उधर होय उसी प्रकार राध इधर उधर होय, अन्नमें इच्छा हो यह पके हुए व्रण के लक्षण होते हैं।

नर्त्तेऽनिलाद्रुङ्न विना च पाकःपित्तं कफं वापि विना न पूयः ॥
तस्माद्धि सर्वे परिपाककाले पचान्ति शोथास्त्रिभिरेव दोषैः ॥१२

भाषा-बादी के बिना पीड़ा नहीं होती, पित्तके बिना दाह नहीं होता और कफके बिना राध नहीं होता अर्थात् पकनेके समय तीनों दोषोंके मिलने से सब प्रकारी सूजन पकतीहै ।(रक्तपाकलक्षण ग्रन्थांतरोंमें कहे हैं ।तथा कफजेषू खलु शोथेषु गम्भीर गतित्वादभितजेषुवा केषुचिदसमस्ते पक्व लक्षणं पक्व हृष्ठवा पक्व मपेक्ष मिति भिषङ्ऽमोहमुपैतियत्राहि त्वक्सवंणता शीते शोथतां अल्परुजा अश्मवद्धनता नतत्र मोहमुपयात् ।

न निकली राध के दोष कहते हैं।

कक्षं समासाद्य यथैव वह्निर्वाय्वीरितिः संदहति प्रसह्य ॥
तथैव पूयोऽह्यविनिःसृतोहि मांसं शिराः स्नायु च खादतीह॥१३

भाषा-घासके ढेरमें लगी हुई आग पवनकी सहायता पाकर जैसे घास को जलाकर खाककर देतीहै उसी तरह व्रणमेंसे राध न निकलनेसे वह राध मांस शिरा और स्नायु इनको खाय नष्ट करती हैं।

अपक्कका छेदन और पक्कंकी उपेक्षा करनेमें दोष।

यश्छिनत्यामामज्ञानाद्यश्च पक्वमुपेक्षते ॥
श्वपचाविव मंतव्यौ तावनिश्चितकारिणौ ॥१४॥

भाषा-जोअज्ञानसे कच्चे फोड़ेको पका समझकर फोड़े और जो पके फोड़ेको कच्चा समझकरनहीं चीरतायेदोनोंअविचारवान् वैद्य चांडालकेसमान जानने॥

आमादि लक्षणज्ञानसे वैद्यके गुणदोष दिखाते हैं।

आमं विदह्यमानं च सम्यक् पक्वं च योभिषक् ॥
जानीयात्स भवेद्वैद्यः शेषास्तस्करवृत्तयः ॥१५॥

भाषा-आमे (कच्चा) पच्यमाने और जो अच्छी रीतिसे पक गया हो व्रण

के लक्षण जो वैद्य जाने है उसीको वैद्य जानना चाहिये बाकीके चोर वृत्तिवाले हैं।

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सुरिसूनु शा० सोहनलाल
विद्याभूषण विरचितायां माधवनिदानस्य टीकायां
व्रणशोथ निदानं समाप्तम् हैं।

अथशारीर व्रण निदानम् ॥

द्विधा व्रणः सविज्ञेयः शरीरागन्तुभेदतः ॥
दोषैराद्यस्तयोरन्यः शस्त्रादिक्षतसंभवः ॥ १ ॥

भाषा—शरीर और आगंतुक इन भेदों से व्रण दो प्रकारका जानना चाहिये उनमें पहिला शरीर दोषोंके कोपसे होता है और दूसरा शस्त्रादिके घावके होनेसे होता है ॥

वातजन्य व्रणके लक्षण कहतेहैं।

स्तब्धः कठिनसंस्पर्शो मन्दस्रावो महारुजः ॥
तुद्यते स्फुरति श्यावो व्रणो मारुतसंभवः ॥ २ ॥

भाषा-जिकड़ जाना तथा स्पर्श करने में कठिन मालूम होय। थोड़ा२ स्राव उनमें से होय और पीड़ा बहुत होय तथा सुई चुभाने जैसी पीडा होय और उसका रंग काला होय ऐसा जो व्रण वह वातजन्य जानना ॥

पित्तजन्य व्रणके लक्षण।

तृष्णामोहज्वरक्लेददाहदुष्ट्यवदारणैः ॥
व्रणं पित्तकृतं विद्याद्गंधैः स्रावैश्च पूतिकैः ॥ ३ ॥

भाषा-प्यास, मोह, ज्वर, क्लेद, दाह, सड़ना, फटजावे, गंध आवे, स्राव होय ये पित्तव्रणके लक्षण जानने हैं ॥

कफजन्य व्रणके लक्षण कहतेहैं।

बहुपिच्छो गुरुः स्निग्धः स्तिमितो मन्दवेदनः ॥
पांडुवर्णोऽल्पसंक्लेदश्चिरपाकी कफव्रणः ॥ ४ ॥

भाषा-बहुत चमकदार भारी. चिकना, निश्चल, थोड़ा २ दर्द होय, पीला रंग, थोड़ा स्रवनेवाला और बहुत कालमें पके यह कफजन्य व्रणके लक्षण

जानै ॥ रक्तजन्य द्वंदजन्य व्रण कहते हैं।

रक्तो रक्तस्रुती रक्ताद्वित्रिजः स्यात्तदन्वयैः ॥

भाषा-जो रक्तके कोपसे व्रण होता है वह रक्तवर्ण, उसमेंसे रुधिर झरे एक दोष और रुधिरके संबंधसे जो होता है वह द्वंद्वज अथवा दो दोषतथा रुधिर इनके मिलने से सन्निपातका व्रण जानना ॥

सुखव्रणके लक्षण कहतेहैं ।

त्वङ्मांसजः सुखे देशे तरुणस्यानुपद्रवः ॥ ५ ॥
धीमतोऽभिनवः काले सुखं साध्यः सुखव्रणः ॥

भाषा—त्वचा और मांस तथा मर्मरहित स्थानमें उपद्रवरहित होय और जो तरुण तथा ज्ञानी पुरुषके हेमंत शिशिरकालमें प्रगट होय. उसको सुख व्रण कहते हैं वह सुखसाध्य है ॥

कृच्छ्रसाध्य और असाध्य लक्षण कहते हैं ।

गुणैरन्यतमैर्हीनस्ततः कृच्छ्रो व्रणः स्मृतः ॥ ६॥
सर्वैर्विहीनो विज्ञेयः त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥

भाषा-जो पूर्व श्लोकमें लक्षण कह आये उनमें से कुछ लक्षण थोडे होनें से व्रण कृच्छ्रसाध्य होता है और गुणरहित होताहै, वह असाध्य है । उसकी चिकित्सा न करनी चाहिये ॥

दुष्टव्रणके लक्षण कहत हैं ।

पूतिपूयातिदुष्टासृक्स्राव्युत्संगी चिरस्थितिः ॥७॥
दुष्टव्रणोऽतिगंधादिः शुद्धलिंगविपर्ययः ॥

भाषा-जिसमेंसे दुर्गंधयुक्त राध ओर सड़ा हुआ रुधिर बहे जो ऊपर ऊंचा तथा भीतरसे पोलाहो, बहुत दिन रहने वाला होय उसको दुष्टव्रण कहते हैं। वह शुद्धलिंगके विपरीत होता है ॥

शुद्धव्रणके लक्षण कहतेहैं ।

जिह्वातलाभोऽतिमृदुः श्लक्ष्णः स्निग्धोऽल्पवेदनः ॥८॥
सुव्यवस्थो निरास्रावः शुद्धोव्रण इति स्मृतः ॥

भाषा-जीभके नीचे भागके समान अत्यंत नरम होगया हो, स्वच्छ,

चिकना, थोडी पीडावाला, अच्छी व्यवस्था वाला उत्संगि और उत्सन्न त्वहित इन दोषों से रहित होयानीचे न होय, दोष द्वारा किये रक्तादिस्रावरहित होय जैसा चरक में " नातिरिक्तो नातिपाण्डुर्नातिस्रावो नचातिरुक् ॥ न चोत्स न्नो न चोत्संगी शुद्धो रोप्यः परं व्रणः॥ " इसप्रकारकाजो व्रण (घाव) उसको शुद्ध व्रण जानना ॥

भरनेवाले व्रणके लक्षण कहते हैं ।

कपोतवर्णप्रतिमा यस्यांताः क्लेदवर्जिताः ॥९॥
स्थिराश्च पिडिकावंतो रोहतीति तमादिशेत्

भाषा-कबूतर के रंग सदृश और जिनमें क्लेद न बहता होय और स्थिर हो, जिनमें फुंसीसी मालूम हो, ऐसे विकार जिसमें लक्ष्यमें आवें उसको वैद्य जाने कि यह घाव स्थिर भरनेवाला है ॥

अच्छे प्रकार भरेहुए व्रणके लक्षण कहते हैं ।

रूढवर्त्मानमग्रंथिमशूनमरुजं व्रणम् ॥ १० ॥
त्वक्सवर्णं समतलं सम्यग्रूढं तमादिशेत् ॥

भाषा-जिसका मार्ग भर गया होय, गांठ न रही होय सूजन और पीडा जिसमें न होवे. त्वचाके समान वर्ण होगया हो. घावका गढेला भरकर बराबर होगया हो वह व्रण उत्तम भरा जानना ।

व्याधिविशेषसेजो व्रण कृच्छ्रसाध्य होता है उसको कहते हैं ।

कुष्ठिनां विषजुष्टानां शोषिणां मधुमेहिनाम् ॥ ११ ॥
व्रणाः कृच्छ्रेण सिद्ध्यंति येषां चापि व्रणे व्रणाः
वसां मेदोऽथ मज्जानं मस्तुलुंगं च यः स्रवेत् ॥॥१२॥
आन्तुजोव्रणः सिद्ध्येन्नासिद्ध्येद्दोषसंभवः ॥

भाषा-कोढी पुरुष, विषवाले पुरुष, क्षयरोगवाले, मधुमेह वाले पुरुष इन के व्रण बड़े कष्टसे साध्य होते हैं और जिनके पहिले व्रणमें व्रण प्रगट होते हैं उनके ये व्रण कष्टसाध्य होते हैं चर्बी, मेद, मज्जा, और वास्तिस्नेह ये जिनघावों में हों वह व्रण व्रण आगंतुज जोहोंय तो साध्य हैं और दोषकृत होय तो साध्य नहीं होतो है ॥

असाध्यव्रणके लक्षण कहते हैं ।

मद्यागुर्वाज्यसुमनः पद्मचन्दनचम्पकैः ॥१३॥
सुगंधा दिव्यगंधाश्च मुमूर्षूणां व्रणाः स्मृताः ॥

भाषा—मद्य, अगर, घृत, फूल, कमल, चंदन और चंपाके फूलके समान अथवा दिव्य पारिजात आदि फूलोंकीसी गंध जिन व्रणोंमेंसे आवे वह व्रण मरनेवाले रोगीयों के कहे हैं ॥

और असाध्य लक्षण कहते हैं ।

ये च मर्मस्वसंभूता भवंत्यत्यर्थवेदनाः ॥ १४ ॥
दह्यन्ते चान्तरत्यर्थं बहिः शीताश्च ये व्रणाः ॥
दह्यन्ते बाहिरत्यर्थं भवंत्यंतश्च शीतलाः ॥१५॥
प्राणमांसक्षयश्वासकासारोचक पीडिताः ॥
प्रवृद्धपूयरुधिरा व्रणा येषां च मर्मसु ॥ १६ ॥
क्रियाभिः सम्यगारब्धा न सिद्ध्यन्ति च ये व्रणाः ॥
वर्जयेदेव तान्वैद्यः संरक्षन्नात्मनोयशः ॥१७॥

भाषा— मर्मस्थानमें जो व्रण प्रगट हुएन भीहों पर उनमें अत्यन्त पीड़ा होती होवे वह तथा जिस जिस व्रणके भीतर जलन होय और बाहर ठंडक होय वे अथवा बाहर जलन होय और भीतर ठंडक होयं वे तथा जिनमें बहुतप्राण मांस इनकाक्षय होय, श्वास, खांसी, अरुचि इनसे अत्यंत पीड़ितहोय ऐसे जो व्रण मर्मस्थलमें प्रगट भये हों उनमेंसे राध रुधिर बहुत बहें वे जिन व्रणोंकी अच्छी चिकित्सा करनेसे भी अच्छे न होंय ऐसे व्रणोंको अपने यशकी रक्षा करनेवाला वैद्य त्याग दे ॥

इतिश्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसुनु सोहनलाल विद्याभूषण
विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां
शारीर व्रणनिदानं समाप्तम् ।

शारीर व्रण कहकै अब आगंतुज व्रणों को कहते हैं ।

अथसद्योव्रणनिदानम् ।

नानाधारामुखैः शस्त्रैर्नानास्थाननिपातितैः ॥
भवंति नानाकृतयो व्रणास्तांस्तान्निबोध मे ॥ १ ॥
छिन्नं भिन्नं तथा विद्धं क्षतं पिच्चितमेव च ॥
घृष्टमाहुस्तथा षष्ठं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥२॥

भाषा—अनेक प्रकारकी धार तथा मुखवाले शस्त्र अनेक ठिकाने पर लगने से अनेक प्रकारकी आकृति (स्वरूप)के व्रण होते हैं उनको मुझसे जान ऐसा गुरुका शिष्य के प्रति उपदेश हैं । छिन्न, भिन्न, विद्ध, क्षत, पिच्चित और छठा घृष्ट ऐसे आगंतुक व्रण छः प्रकारके होते हैं । उनके लक्षण कहूंगा । छिन्न के लक्षण कहते हैं

तिर्यक्छिन्ना ऋजुर्वापि यो व्रणस्त्वायतो भवेत् ॥
गात्रस्य पातनं तद्धि छिन्नमित्यभिधीयते ॥३॥

भाषा—जो व्रण तिरछा, सीधा अथवा लंबा होय तथा शरीर का पतन जिसमें हों उसको छिन्नव्रण कहते हैं ।

भिन्नके लक्षण कहते हैं ।

शक्ति दंतेषुखड्गाग्रविषाणैराशयो हतः ॥
यत्किंचित्स्रवते तद्धि भिन्नलक्षणमुच्यते ॥४॥

भाषा-बर्छी, दांत,बाण,तरवारका अगला हिस्सा,विषाण (सींग) इनसे आशय कोष्ठ को नष्टसाकर थोड़ासा रुधिर निकले उसको भिन्न कहतेहैं॥ जहां बहुत आमाशय आदिके स्थान में भेद व्यपदेश है उसको कहते हैं ।

स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च ॥
हृदुण्डकः फुप्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥५॥
तस्मिन्भिन्ने रक्तपूर्णे ज्वरो दाहश्च जायते ॥
मूत्रमार्गगुदास्येभ्यो रक्तं घ्राणाच्च गच्छति ॥६॥
मूर्छा श्वास तृषाध्मानमभक्तच्छन्द एव च ॥

विण्मूत्रवातसंगश्च स्वेदास्रावोऽक्षिरक्तता ॥ ७ ॥
लोहगंधित्वमास्यस्य गात्रदौर्गंध्यमेव च ॥
हृच्छूलं पार्श्वयोश्चापि विशेषं चात्र मे शृणु ॥८॥
आमाशयस्थे रुधिरे रुधिरं छर्दयत्यपि ॥
आध्मानमतिमात्रं च शूलं च भृशदारुणम् ॥९॥
पक्वाशयगते चापि रुजागौरवमेव च ॥
अधःकाये विशेषेण शीतता च भवेदिह ॥१०॥

भाषा-आमाशय, अग्न्याशय, पक्काशय, मूत्राशय, ((वास्ति) रुधिराशय यकृत् प्लीहा हृदय, उण्डुक [अन्नदेशमे स्थितपुरीषाधानपुरीष जहां रहे फुप्फुस हृदय के बाईं तरफ रक्तका आधिकरण जिसको फुप्फु कहते हैं]इन स्थानोंको कोष्ठ कहतेहैंवहकोष्ठ भिन्न होकर रुधिरसे भर जावे तब ज्वर दाह होते हैं, मूत्रमार्ग, गुदा, मुखऔरनाक इनमेंसे रुधिर बहेबस्तिआदिकेभिन्नहोनेपर इन्द्री और गुदासे रक्त निकले आमाशय आदि के भेद होने पर तौ मुख और नाकमें रक्त निकलता है अन्नमें अरुचि, मल, मूत्र, अधोवायु इनका अवरोध, पसीने का आना नेत्रमें सुर्खी, मुखमें लोहेकीसी वास आवे, अंग में दुर्गंधि, हृदय और पसवाड़ोंमें शूल ये लक्षण होते हैं इनसे जो विशेष लक्षण है उनको मुझसे सुन आमाशयमें रुधिरका संचय होने पर रुधिर की वमन, पेटका बहुत फूलना और अत्यन्त भयंकर शूल होनायह होताहै पक्वाशय में रुधिरके संचय होनेपर शूल, देहमें भारापना और विशेष करके कमर से लेकर नीचेके हिस्सेमें शीतलता होती है इस प्रकार जानना चाहिये ॥

अथविद्धव्रणके लक्षण कहते हैं ।

सूक्ष्मास्यशल्याभिहतं यदंगं त्वाशयं विना ॥
उत्तुंडितं निर्गतं वा तद्विद्धमिति निर्दिशेत् ॥११॥

भाषा-महीन अग्रभाग जिनका ऐसे (सुई आदि) शस्त्रसे आशय विना जो अंग हैं उनमें वेध होनेसे उत्तुंडित नाम उनमेंसे वह शस्त्र निकला न होय, वा निर्गत नाम वह शल्य निकल गयाहो उसको विद्धव्रण कहते हैं यहां तन्त्रा-

न्तर में जैसा " विद्धमुत्तुण्डित मनुत्तुण्डितं भिन्नं निर्भिन्नम " यह चार प्रकारका विद्ध कहा है वह सब ग्रहण करना चाहिये ॥

क्षतके लक्षण कहते हैं ॥

नातिच्छिन्नं नातिभिन्नमुभयोर्लक्षणान्वितम् ॥
विषमं व्रणमंगेयत्तत्क्षतं त्वभिधीयते ॥ १२॥

भाषा-जिसमें अंग ज्यादा कटा न होय तथा ज्यादा टूटा न होय और दोनोंके लक्षण मिलते हों तथा जिसमें व्रण विषम अर्थात् तिरछा बांका होय उसको क्षतव्रण कहते हैं ॥

पिच्चितके लक्षण कहते हैं ॥

प्रहारपीडनाभ्यां तु यदंगं पृथुतां गतम् ॥
सास्थि तत्पिच्चितं विद्यान्मज्जारक्तपरिप्लतम् ॥१३॥

भाषा-हाड़ सहितजो अंग प्रहार नाम डंडा लकड़ी आदिकी चोटअथवा किसी चीजके दबने आदि इनके योगसे पिचजाय तथा मज्जा रुधिर से युक्त होय, वाव न होय उसको पिच्चितव्रण कहते हैं ।

घृष्टके लक्षण कहते हैं ।

घर्षणादिभिघाताद्वा यदंगं विगतत्वचम् ॥
उषास्रावान्वितं तद्धि घृष्टमित्याभिधीयते ॥१४॥

भाषा—खरखरे कड़े वस्त्र आदिसे घिसने से चोटके लगने से जो अंग ऊपरकी त्वचा रहित होजाय तथा आगसी जलै और गरम रुधिर चुचा· होने लगे उसको घृष्ट कहते हैं ॥

सशल्यव्रणके लक्षण कहतेहैं ॥

श्यावं सशोथं पिडिकान्वितं च मुहुर्मुहुः शोणितवाहिनं च ॥
मृदूद्गतं बुद्बुदतुल्यमांसं व्रणं सशल्यं सरुजं वदंति ॥१५॥

भाषा-काला सूजनयुक्त, फुंसियोंसे से घिरा हुआ और बारबार उनमेंसे रक्त बहे और नरम होकर ऊपर बबूलेके समान उठा भया जिसका मांस होय तथा जिसमें पीड़ा होय ऐसा जो व्रण उसको सशल्य ऐसा कहते हैं ॥

कोष्ठभेद लक्षण कहते हैं ॥

त्वचोऽतीत्य शिरादीनि भित्वा वा परिहृत्य वा ॥
कोष्ठे प्रतिष्ठितं शल्यं कुर्यादुक्तानुपद्रवान् ॥१६॥

भाषा—त्वचका शिरा, मांस, नस, हड्डी इनकी संधियोंको वेधकर वा शिरा आदिको छोड जो शल्य कोष्ठमें रहे हैं उससे आगे कहे हुए लक्षण होते हैं ॥

असाध्यकोष्ठभेदके लिंग कहते हैं ॥

तत्रांतर्लोहितं पांडुशीतपादकराननम् ॥
शीतोच्छ्वासं रक्तनेत्रमानद्धं परिवर्जयेत् ॥१७॥

आंतोंमें जिसका लोहू इकट्ठा होजाय अर्थात् बाहर नहीं बहे और जो पीला वर्ण, जिसके हाथ पैर शीतल होंय श्वासको छोड़े, जिसके लाल नेत्र होंय तथा पेट फूले ऐसे रोगीको वैद्य त्याग देवे ॥ मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि और सन्धि इन मर्मोंमें चोट लगनेके सामान्य लक्षण कहते हैं ॥

भ्रमः प्रलापः पतनं प्रमोहो विचेष्टनं ग्लानिरथोष्णता च ॥
स्रस्तांगतामूर्च्छनमूर्ध्ववातस्तीव्रारुजोवातकृताश्च तास्ताः १८
मांसोदकाभं रुधिरंचगच्छेत्सर्वेंद्रियार्थोपरमस्तथैव ॥
दशार्द्धसंख्येष्वथ विक्षतेषु सामान्यतो मर्मसु लिंगमुक्तम् १९॥

भाषा—घुमेर, अस्तव्यस्त बोलना, गिरना इन्द्रिय और मनका मोह हाथ पैरका पटकना ग्लानि, उष्णता, अंगोंमें शिथिलता, मूर्च्छा श्वासका चढ़ना, वातजन्य तीव्र पीडा मांसके धोये हुए पानी सरीखा रुधिर बहे सर्व इन्द्रियें विकल होंय अर्थात् सर्व इन्द्रियोंका व्यापार बंद हो जाय ये लक्षण मांस आदि पांच मर्मोंके विद्ध होनेसे होते हैं ॥

मर्मरहित शिराविद्धके लक्षण कहते हैं ॥

सुरेन्द्रगोपप्रतिमं प्रभूतं रक्तं स्रवेत्तत्क्षणजश्च वायुः ॥
करोति रोगान्विविधान्यथोक्ताञ्छिरासुविद्धास्वथवाक्षतासु२०

भाषा-नाडीके विध जानेपर अथवा शिरामें घाव हो जानेपर उसमेंसे

क्षीरबहूटी कीड़ाके समान लाल तथा पुष्कल रुधिर स्रवे तथा रक्तक्षय होनेसे वायु कुपित होकर अनेक प्रकार के आक्षेपकादि रोग उत्पन्न करे है ॥

स्नायु विद्धके लक्षण कहते हैं ॥

कौब्ज्यं शरीरावयवावसादः क्रिया स्वशक्तिस्तुमुला रुजश्च ॥
चिराद्व्रणो रोहति यस्य चापि तं स्नायुविद्धं पुरुषंव्यवस्येत २१

भाषा-कुबडापना, शरीरमेंग्लानि, काम करनेसे सामर्थ्य नहोना बहुतपीड़ाहोना और जिसका व्रण बहुत दिनमें भरे उसकी स्नायुविद्ध हुईहै ऐसा निश्चयकरे॥

सधिविद्धके लक्षण कहते हैं ॥

शोषाभिवृद्धिस्तुमुला रुजश्च बलक्षयःसर्वतएव शोथः ॥
क्षतेषु संधिष्वचलाचलेषु स्यात्सर्वकर्मापरमश्च लिंगम् ॥२२॥

भाषा-चल अथवा अचल सन्धियों में वेध होनेसे सूजन बढ़े पीड़ा बहुत होय शक्तिका नाश होय, सन्धिमें फटनेके तुल्य दर्द होय, सूजन होय, कुछ कार्य करे उसमें तबियत नहीं लगै यह लक्षण होते हैं ॥

हड्डी विध गई हो उसके लक्षण कहते हैं ।

घोरा रुजो यस्य निशादिनेषु सर्वास्ववस्थासुच नैति शांतिम्॥
भिषग्विपश्चिद्विदितार्थसूत्रस्तमस्थिविद्धं पुरुषंव्यवस्येत् ॥२३॥

भाषा-जिस मनुष्यके रात दिन घोर पीड़ा होय, जागृतादि किसी अवस्थामें भी शांति नहीं होय उसके जानलियाहै प्रयोजन सूत्र जिसने ऐसेविद्वान् वैद्य उसको यह पुरुष अस्थि विद्ध अर्थात् हड्डी विधी है ऐसा जानै ॥

मर्मरहित शिरादिकोंके विद्धलक्षण कहनेसे शिरादि मर्मविरुद्ध लक्षणोंकी व्यवस्था करते हैं ।

यथास्वमेतानि विभावयेत्तु लिंगानि मर्मस्वभिताडितेषु॥

भाषा-मर्मके ठिकाने चोटके लगनेसे ये पूर्वोक्त लक्षण जानने चाहिये यहांपर इससे लक्षण और सामान्यलक्षण होतेहैं ऐसा जानै ॥

मांस मर्मके जो लक्षण नहीं कहे उनको कहते हैं ॥

पांडुर्विवर्णःस्पृशितं न वेत्तियोमांसमर्मस्वभिताडितःस्यात्२४॥

भाषा-जो पुरुष मांसमर्मके ठिकाने विद्ध होता है उसका देहका रंग पीला व भद्दा होय और उसको स्पर्शका ज्ञान नहीं होताहै ॥

सर्व व्रणोंके उपद्रव कहते हैं ॥

विसर्पः पक्षघातश्च शिरास्तम्भोपतानकः ॥
मोहोन्मादव्रणरुजो ज्वरस्तृष्णा हनुग्रहः ॥२५॥
कासश्छर्दिरतीसारो हिक्का श्वासः सवेपथुः ॥
षोडशोपद्रवाः प्रोक्ता व्रणानां व्रणचिन्तकैः ॥२६॥

भाषा—विसर्प, पक्षाघात, शिरास्तंभ, अपतानक, मोह, उन्माद,ज्वर व्रणकी पीडा, प्यास हनुग्रह, खांसी, वमन, अतिसार, हिचकी, श्वास और कंप ये व्रणरोगके सोलह उपद्रव व्रणरोगके जाननेवालों ने कहे हैं ॥

इतिश्री वैद्यराज झल्लास्वामिसूरिसूनु शा० सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां सद्योव्रण निदानं समाप्तम् ।

अथभग्ननिदानम् ।

दो प्रकारका भग्नहै आगन्तु (सद्योव्रणकी) समानता से उसके बाद भग्न निदान कहते हैं एक सव्रण और दूसरा व्रण रहित इनमें व्रण वालेको पहिले कहकर अब व्रणरहितको कहते हैं ॥

भग्नं समासाद्द्विविधं हुताशकांडे च संधौ च हि तत्र संधौ।
उत्पिष्टविश्लिष्टविवर्तितं च तिर्यग्गतं क्षिप्तमधश्च षट्च॥१॥

भाषा-हेअग्निवेश भग्न संक्षेप से दो प्रकारका कहा है एक काण्ड (अस्थिकाण्ड) में भग्न काण्डसे नलक कपाल वलय तरुण और रुचक का यहां ग्रहण किया है दूसरा हाड्डियोंके जोड़ में भग्न, उस सन्धिमें भग्नमें उत्पिष्ट, विश्लिष्ट विवर्तित, तिर्यग्गत, क्षिप्त, और अधः यह छः प्रकार को भग्न के भेद हैं ॥

सन्धिभंगके सामान्य लक्षण कहते हैं ॥

प्रसारणाकुंचनवर्तनोग्रा रुक्स्पर्शविद्वेषणमेतदुक्तम् ॥
सामान्यतः सन्धिगतस्य लिंगं-

भाषा-फैलाते समय सकोरनेके समय, नीचे करनेसे घोर पीडा होय और स्पर्श सहा न जाय ये संधिभग्नके सामान्य लक्षण हैं ॥

उत्पिष्टसन्धेः श्वयथुः समन्तात् ॥२॥
विशेषतो रात्रिभवा रुजा च-

भाषा-उत्पिष्ट संधिके चारों ओर सूजन होय और रात्रिमें पीड़ा होय सन्धियोंके हाड दोनों आपसमें घिसे उसको उत्पिष्ट ऐसा कहते हैं ॥

विश्लिष्टजेतौ च रुजा च नित्यम् ॥

भाषा-विश्लिष्ट संधियोंमें सूजन होनेपर और रात्रिमें पीडा ये होकर सर्व कालमें अत्यंत पीडा होय और उत्पिष्टकी अपेक्षा इतने लक्षण विश्लिष्ट में विशेष होते हैं अर्थात् सन्धि शिथिल मात्र होय । इसमें हाडके हटनेसे बीचमें गढेला होता है ॥

विवर्तिते पार्श्वरुजश्च तीव्राः-

भाषा-विवर्तित सन्धिमें दोनों तरफके हाड सन्धिसे पलट जाय तब अत्यंत पीडा होती है इस सन्धिमें हाड दोनों तरफ फिरा करतेहैं ॥

तिर्यग्गते तीव्ररुजो भवन्ति ॥३॥

भाषा-हडीके तिरछे हटनेसे पीडा बहुतहो और एक हडी सान्धिस्थान छोड़कर टेढ़ी होजाती है ॥

क्षिप्तेऽतिशूलं विषम त्वमस्थ्नोः-

भाषा-सन्धिकी हड्डी एक ऊपरको हट जायतो अत्यंत पीडा होय और हाडमें कम व ज्यादा तकलीफ होवै इस जगह एक हड्डीकी क्रियासे अथवा दोनों हड्डीकी क्रियासे दोनों हाड परस्पर (आपस)में पासके दूर होजाते हैं ॥

क्षिप्ते त्वधो रुग्विघटश्च संधेः ॥

भाषा-सन्धिकी हड्डी एक नीचेको हट जाय तो पीडा होय और सन्धि की विरुद्ध चेष्टा होय । इसमें सन्धिके हाड़ परस्पर दूर होय परंतु किंचित् नीचेको जाते हैं ॥

यहांसे अब कांड भग्नको कहते हैं ॥

कांडे त्वतःकर्कटकाश्वकर्णविचूर्णितंपिच्चितमस्थिछल्लिका ॥४॥
कांडेषु भग्नं त्वतिपातितं च मज्जागतं च स्फुटितं च वक्रम् ॥
छिन्नं द्विधा द्वादशधापि कांडे-

भाषा-कांडभग्न जोहैंवह बारह तरहकाहै। १कर्कटक,२अश्वकर्ण, ३विचूर्णित, ४ पिच्चित, ५ अस्थिछल्लिका, ६ कांडभग्न, अतिपातित, ८मज्जागत ९ स्फुटित, १० वक्र और दो तरहके छिन्न । १ कर्कटक दोनों ओर से हाड़ दबकर बीचमें ऊंचासा होय । २ अश्वकर्ण घोडेके कानके समान हाडहो जाय । ३ विचूर्णित चुरकट हो गया हो वह शब्दसे अथवा स्पर्श से जाना जाता है । ४ पिच्चित पिचा हुआ हाड । ५ अस्थिछल्लिका हाडका कोई भाग छिल के समान उखडकर रहे है । ६ कांडभग्न हड्डीका कांड टूटना । ७ अतिपात जिसमें सब हाथ टूटे। ८मज्जागत हडीसे अवयव मज्जा में प्रवेश कर मज्जाको बाहर निकाले । ९ स्फुटित जिस हड्डीके बहुत टुकडे होजांय । १० वक्र हड्डी तिरछी हो जाय वहभी भग्नमें गिनी जाती है ॥ ११ छिन्न बारीक २ बहुतसे टुकडे होजांय वह और दूसरा एक ओर से टूटकर दूसरी तरफ निकल आता इसप्रकार १२ होतेहैं ॥

कांडभग्नके सामान्य लक्षण कहते हैं ॥

स्रस्तांगताशोथरुजातिवृद्धिः ॥५॥
संपीड्यमाने भवतीह शब्दः स्पर्शासहस्पंदनतोदशूलाः ॥
सर्वास्ववस्थासु न शर्मलाभो भग्नस्य कांडे खलु चिह्नमेतत् ॥६॥

भाषा-शरीरमें शैथिल्य, सूजन घोर पीडा, जिस स्थानकी हड्डी टूटी होय उस जगह पीडाके साथ शब्द होय, हाथके लगाने से सहा न जाय हड्डी फडके,लगै सुई छेदनेकीसी पीडा होयऔरशूल होय,कभीआरामनामिलै कांड इस कहनेसे नलक, कपाल, वलय, तरुण और रुचक इन पांच प्रकार की हड्डियोंका ग्रहण करना चाहिए।

कांड भग्नके बाहर भेदोंसे जोविशेष भेद होते हैं उनको कहतेहैं ॥

भग्नं तु कांडे बहुधा प्रयाति समासतो नामभिरेव तुल्यम् ॥

भाषा-कांडोंमें अनेक भग्न होतेहैं,सो जिस जिस ठिकाने जैसे ढंगका तिकाहोय उसका उसी प्रकारका नाम कहना चाहिये ॥

उसके कष्टसाध्यको कहते हैं ॥

अल्पाशिनो नात्मवतो जन्तोर्वातात्मकस्य च ॥
उपद्रवैर्वा जुष्टस्य भग्नं कृच्छ्रेण सिद्धचति ॥७॥

भाषा-अल्प भोजनकरनेवालों और जिसकी इन्द्रिय स्वाधीननहोय.वात प्रकृति वालेको, ज्वरादि उपद्रवसंयुक्त ऐसे पुरुषकी हड्डी टूटनेसे बड़े कष्टसे साध्य होती है ॥

असाध्य के लक्षण कहते हैं।

भिन्नं कपालं कट्यां तु संधिमुक्तं तथा च्युतम् ॥
जघनं प्रतिपिष्टं च वर्जयेत्तु विचक्षणः ॥८॥

भाषा-कमरमें जो कपाल हड्डीवहटूट गईहो अथवा सांधिके पासकी हड्डी टूट गई हो अथवा स्थानसे छूट गई होय और जंघाकी हड्डीका चूरहो गया हो ऐसे रोगीको विद्वान् वैद्य छोड़देय ॥

असाध्य के लक्षण कहतेहैं।

असंश्लिष्टकपालं च ललाटे चूर्णितं च यत् ॥
भग्नं स्तनान्तरे पृष्ठे शंखे मूर्ध्नि च वर्जयेत् ॥९॥

भाषा-लिलाड़की हड्डी टुकड़ा २ हो परस्पर दूर होजाय जुडनेके काम के नरहें अथवा स्तनके बीचकी अथवा पीठकी अथवा शंख (कनपटी) की हड्डी मस्तककी हड्डी टूट गई हो उसको वैद्य छोड़देय ॥

असावधानता से असाध्यता होती है वह कहते हैं ।

सम्यक् संधितमप्यस्ति दुर्निक्षेपनिर्बंधनात् ॥
संक्षोभाद्वापि यद्गच्छेद्विक्रियां तच्च वर्जयेत् ॥१०॥

भाषा—अच्छीतरह हड्डी जुडभी गईहो उसको अच्छी रीतिसे न राखे अथवा अच्छी रीतिसे बांधे नहीं, उसमें किसीका धक्का लगनेसे फिर जैसे का तैसा हो जाताहै और यह साध्य नहीं होय इसको वैद्य दीड़ देय ॥

अस्थिविशेषों से भग्न विशेष के कहते हैं ॥

तरुणास्थीनि नम्यन्ते भिद्यंते नलकानि च ॥
कपालानि विभज्यंते स्फुटंति रुचकानि च ॥११॥

भाषा-तबतरुण हड्डी नव जातीहै या टेढी होजातीहै,नलकी हड्डी चिर जाती है,कपालास्थि फूटकर टूक २ होजातीहै रुचकास्थि (दंतादिक) हड्डी टुकड़ा होकर गिर पडतेहैं ॥

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सुरिसूनु शा० सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधवनिदानस्यसुबोधिन्यां टीकायां भग्ननिदानं समाप्तम् ।

अथ नाडीव्रण निदानम् ॥

नाडी व्रणकी सम्प्राप्ति कहतेहैं ।

यः शोथमाममतिपक्वमुपेक्षतेऽज्ञो यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः ॥ अभ्यन्तरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य स्थानानि पूर्वविहितानि ततः सपूयः ॥१॥ तस्यातिमात्रगमनाद्गतिरिष्यते तु नाडीव यद्वहति तेन मता तु नाडी ॥

भाषा-जो अज्ञानी मनुष्य पके हुए फोडेको कच्चा समझकर उपेक्षा कर किंवा बहुत राध पडे फोडेकी उपेक्षा कर दे तब वह बढ़ी हुई राध

पूर्वोक्त त्वचामांसादिक स्थानोंमें जायकर उनको भेद कर वह बहुत भीतर को पहुंच जाय, तब एक मार्ग कर उसमें वह राध नाडी के समान वहे, इस से इसको नाडीव्रण कहते हैं लोकमें वह नसूर के नाम से प्रचिलत है॥

नासूरकीसंख्या रूप सम्प्राप्ति कहतेहैं।

दोषैस्त्रिभिर्भवति सा पृथगेकशश्च ॥
संमूर्च्छितैरपि च शल्यनिमित्ततोऽन्या ॥२॥

भाषा- तीनों दोषोंसे पृथक् पृथक् सन्निपातसे १ और शल्य से १ ऐसा नाडीव्रण पांच प्रकारका है॥

वातनाडीव्रणके लक्षण कहतेहैं।

तत्रानिलात्परुषसूक्ष्ममुखी सशूला ॥
फेनानुविद्धमधिकं स्रवति क्षपासु ॥

भाषा—मुख रूखा तथा छोटा होय और शूल होय। उसमेंसे फेनयुक्त स्राव होय रात्रिमें अधिक स्रवे यह वातजन्य नाडी व्रणके लक्षण कहे हैं॥

पित्तके नाडीव्रणके लक्षण।

पित्तात्तु तृड्ज्वरकरी परिदाहयुक्ता
पीतं स्रवत्यधिकमुष्णमहःसु चापि ॥३॥

भाषा-प्यास, ज्वर और दाह होय, उसमेंसे पीले रंगका और बहुत गरम राध स्रवे और दिनमें स्राव अधिक होय यह पित्तके नाडी व्रणमें लक्षण होते हैं॥

कफजन्य नाडीव्रणके लक्षण कहतेहैं।

ज्ञेया कफाद्बहुघनार्जुनपिच्छिलास्रा
स्तब्धा सकण्डुररुजा रजनीप्रवृद्धा ॥

भाषा—कफजन्य नाडीव्रणमें सफेद, गाढी, चिकनी राध निकलै, खुजली चले रातमें स्राव बहुत होताहै॥

सन्निपातजन्य नाडीव्रणके लक्षण कहतेहैं।

दाहज्वरश्वसनमूर्च्छनवक्रशोषा यस्यां भवन्ति विहितानि

लक्षणानि ॥४॥ तामादिशेत्पवनपित्तकफप्रकोपात् । घोराम-सुक्षयकरीमिव कालरात्रिम् ॥

भाषा—जिस नाडीव्रणमें दाह, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, मुखका सूखना और पूर्वोक्त लक्षण होय उसको त्रिदोषकोपजन्य नाडीव्रण जानना । यह भयंकर नाश करनेवाला कालरात्रिके समान जानै ॥

शल्यजन्य नाडी के लक्षण कहतेहैं ।

नष्टं कथंचिदनुमार्गमुदीरितेषु स्थानेषु शल्यमचिरेण गतिं करोति ॥ सा फेनिलं मथितमुष्णमसृग्विमिश्रं स्रावं करोति सहसा सरुजं च नित्यम ॥५॥

भाषा—किसी तरहसे शल्य कंटकादि कहेहुए स्थानमें पहुंचकर टूटजाय तो नाडीव्रणको पैदा करे । उस नाडीव्रण में झाग मिला तथा रुधिर युक्त मथेके समान गरम नित्य राध वहे तथा पीडा होती है ॥

साध्यासाध्य के लक्षण कहते हैं ।

नाडीत्रिदोषप्रभवा न सिद्ध्येच्छेषाश्चतस्रः खलु यत्नसाध्याः ॥६॥

भाषा—त्रिदोषसेउत्पन्न नाडीव्रण साध्य नहीं होताहै बाकीके चार नाडी व्रण यत्न करनेसे साध्य होते हैं ॥

इतिश्री वैद्यराज झल्लास्वामि सुरिसुनु शा० सोहन लाल
विद्याभूषण विरचितायां सुबोधिन्यां
नाडीव्रणरोग निदानं समाप्तम् ।

नाडी विशेषता से संख्याकी तुल्यता से नाड़ी व्रणके अनन्तर
भगन्दर का वर्णन करते हैं ॥

अथ भगंदर निदानम् ।

गुदस्य द्व्यंगुले क्षेत्रे पार्श्वतः पिडिकार्तिकृत् ॥
भिन्ना भगन्दरो ज्ञेयः स च पंचविधो मतः ॥१॥

भाषा-गुदाके पास दो अंगुल ऊंचे ठिकाने में एक पिड़िका (फुंसी) उसमें बहुत दर्द होता है वह पिड़िका जब फूटै तब उसको भंगदर रोग कहत हैं । सुश्रुतमें इसकी निरुक्ति इस प्रकार लिखी है ॥ गुदभगबस्ति प्रदेश दारणात् भगंदरः " इति । भग शब्द यहां गुदाका वाचक है जैसा कि भोजने कहाभी हैं । भगंयथा परिसंमताश्च गुदंबास्तिस्तथैव च । भगवद्दारये यस्मात्तस्मात् ज्ञेयो भगंदरः ॥ " इति । वह भगंदर रोग पांचें प्रकारका है पांचं प्रकारकी संख्या कहनाकेवल रक्तज द्वंद्वज भंगदर संभावना इनके निवारणार्थ जानें ।

इसके पूर्व रूप सुश्रुतमें इस प्रकार लिखे हैं ।

कटी कपाल वेदना गुदकण्डूर्दाहः शोथश्च गुदस्य भवति ॥

भाषा-कमरमें कपालास्थि में वेदना होना गुदा में खुजार चले जलन होय सूजन होय ये लक्षण जब भंगदरहोनहार होते हैं । इस जगह भी कपालास्थि पूर्वोक्त जाननी अर्थात् जो नाडीव्रणमें कह आये हैं ॥

शतपोनकके लक्षण कहतेहैं ।

कषायरूक्षैरतिकोपितोऽनिलस्त्वपानदेशे पिडिका करोति या
उपेक्षणात्पाकमुपैति दारुणं रुजा च भिन्नारुणफेनवाहिनी २
तत्रागमो मूत्रपुरीषरेतसां व्रणैरनेकैः शतपोनकं वदेत् ॥

भाषा-कषेले और रूखे पदार्थों के खानेसे अत्यंत कुपित हुआ वायु गुदास्थानमें जो पिड़िका फुंसी करे, उनकी उपेक्षा करनेसे वे फुंसी पकें और फट जांय तब पीड़ा होती है, तथा लाल झाग मिली राध बहे तथा उसमें अनेक छिद्र होजांय, उन छिद्रोंमें होकर मूत्र मल और रेत (शुक्र) बहे, चालनीकेसे अनेक छिद्र होय, इसी कारण इस रोगको शतपोनक कहाहै शतपोनक चालनी को कहते हैं ॥

उष्ट्रग्रीव के लक्षण कहतेहैं ।

प्रकोपणैः पित्तमतिप्रकोपितंकरोतिरक्तांपिडकांगुदाश्रिताम् ॥ ३ ॥
तदाशु पाकाद्दिमपूयवाहिनीं भगंदरं तूष्ट्रशिरोधरं वदेत् ॥

भाषा-पित्तके कोपकराने वाले पदार्थों से अत्यंत कुपित हुआ जो पित्त

यह गुदामें, लाल रंगकी पिड़िका पैदा करे, तबवह शीघ्र पककर उनमेंसे गरम राध बहानेवाली हो और ऊंटकी नाडके समान पिड़िका फुंसी जिसमें होय उसको उष्ट्रशिरोधर कहते हैं ॥

परिस्रावी भगंदरके लक्षण कहतेहैं ॥

कंडूयेना घनस्रावी कठिनो मंदवेदनः ॥
श्वेतावभासः कफजः परिस्रावी भगंदरः ॥५॥

भाषा-खुजली चले तथा उसमेंसे गाढ़ी राध बहे तथा वहे पिड़िका कठिन होय, उसमें मंद २ पीड़ा होय उसका रंग श्वेत होय उसको परिस्रावी भगंदर कहते हैं यह कफजन्य भगंदर जानना ॥

सान्निपात जन्य शंबुकावर्तके लक्षण कहते हैं ।

बहुवर्णरुजास्रावा पिडिका गोस्तनोपमा ॥
शंबूकावर्तवन्नाडीशंबूकावर्त्तको मतः ॥६॥

भाषा-बहुत प्रकारका रंग पीड़ा और स्राव होय गौके थन समान अनेक पिड़िका होय और व्रण शंखके आंटेके समान गोल होय उसकोशम्बूकावर्त कहते हैं जैसा भोजने कहा है " नदीनां परिपूर्णानां शम्बूकावर्तका यथा-समुत्तिष्ठन्ति वेगेन तोयवेग समीरिताः ॥ इसका अर्थ स्पष्ट ही है ॥

उन्मार्गि भगंदरके लक्षण कहतेहैं।

क्षताद्गतिः पायुगता विवर्धते ह्युपेक्षणात्स्युः कृमयो विदार्य ते॥
प्रकुर्वते मार्गमनेकधा मुखैर्व्रणैस्तदुन्मार्गि भगंदरं वदेत् ॥७॥

भाषा-कांटे आदिके गुदामें लगनेसे क्षत (घाव) होजाय उस घावकी गति उपेक्षा करनेसे बढ़जाय उसमें कृमि पड़ जांय वे कृमि उस क्षतको विदारण करे, ऐसे वह घाव गुदापर्यंत बढ़कर पहुंचे तथा कृमि उसमें अनेक मुख कर लेवें इसको उन्मार्गी भगंदर कहते हैं ॥ तत्रान्तर में तो इसको अर्शोभगंदर बवासीर का भगंदर कहा है जैसे-कफापित्तेतु पूर्वोत्थे दुर्नामाश्रित्य कुप्यतः ॥ अर्शो मूले ततः शोथः कण्डुदाहार्तिमान् भवेत् ॥ स शीघ्रं पक्वभिन्नोऽस्य क्लेदयन्मूलमर्शसः ॥ स्रवत्यजस्रं गतिभिरयमर्शो भगंदरः ॥ इस प्रकार समझना चाहिये ॥

प्रतीकार प्रयत्नके उपाय कहते हैं ।

घोराः साधयितुं दुःखाः सर्व एव भगंदराः ॥
तेष्वसाध्यस्त्रिदोषोत्थः क्षतजश्च विशेषतः ॥८॥

भाषा-सबही भगंदर घोर रूप धारण करते हुए दुःसाध्य हैं तिसमेंभी त्रिदोषका भगंदर असाध्य है और विशेष करके क्षतजन्य तो असाध्य ही हैं ॥

अवस्था में असाध्यता कहते हैं ॥

वातमूत्रपुरीषाणि क्रमयः शुक्रमेव च ॥
भगंदरात्स्रवन्तस्तु नाशयन्तितमातुरम् ॥९॥

भाषा-जिस भगंदर से अधोवायु मूत्र, विष्टा, कृमि और वीर्य ये बहते रहें उस रोगीको यह नष्ट करदेते हैं ॥

वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसूनु सोहनलाल शास्त्रि
विद्या भूषण विरचितायां सुबोधिन्या टीकायां
भगंदर निदानं समाप्तम् ॥

अथोपदंशनिदानम् ।

स्थान के पासके सम्बन्ध से भगंदर के पीछे
उपदंश को कहते हैं ॥

उपदंश के कारण कहते हैं ॥

हस्ताभिघातान्नखदन्तघाताद्धावनाद्त्युपिसेवनाद्वा ॥
योनिप्रदोषाच्च भवंतिशिश्ने पंचोपदंशा विविधापचारैः१

भाषा-हाथकी चोट लगनेसे और नखदांतके लगनेसे यह बात यद्यपि अयोग्य तथा अनुक्त भी है तथापि नखदन्त घातात् ऐसा जो लिखा है वहां काम्य शास्त्र की विधि की ओर ध्यान देना जैसा लिखा है "शास्त्रस्य

विषयास्तावद्या वन्मन्दरसानराः प्रवृत्ते रतिचक्रेतुनशास्त्रं नापि च क्रमः" इस प्रकार जाने अच्छी रीतिसे न धोनेसे अत्यंत स्त्रीसंगके करनेसे अथवा योनि के दोषसे अर्थात् दीर्घ कड़े बाल जिस योनि पर हों उससे संयोग होने पर अथवा खारी गरम जलके धोनेसे, ब्रह्मचर्यवाली स्त्रीसे गमन करनेसे इत्यादि कारणोंसे लिंगमें उपदंश (आतशक अर्थात् गर्मी) होताहै वह पांच प्रकारकाहै ॥

वातोपदंश के लक्षण कहते हैं ।

सतोदभेदस्फुरणैः सकृष्णैः स्फोटैर्व्यवस्येत् पवनो पदंशम् ॥

भाषा-लिंगके ऊपर काले चकत्ता उठे, उनमें चोटनेकीसी पीडा होय तोड़ने कीसी पीड़ाहोय और फड़कन ये लक्षण वातजन्य उपदंश के जाने॥

पित्तजन्य उपदंश व रक्तोपदंशके लक्षण कहतेहैं।

पीतैर्बहुक्लेदयुतः सदाहैः पित्तेन रक्तात्पिशितावभासैः॥ २ ॥

भाषा—पितके उपदंशसे मांसके समान लाल रंगके फोड़े (चटें) होते हैं, उनमें से पानी बहुत बहे, दाह होय, रुधिर के उपदंश से मांस के समान लाल रंग की चट होती हैं ॥

और रक्त जन्य उपदंश को कहते हैं ।

स्फोटैःसकृष्णैरुधिरंस्रवन्तं रक्तात्मके पित्तसमान लिंगम् ॥

भाषा-कालोंच लिये हुए चकत्ते (फोड़े) होय और उनमेंसे रुधिर झरै और पित्त के समान चिन्ह हो उसको रक्त जन्य उपदंश कहते हैं ॥

कफजन्य उपदंश क लक्षण कहते हैं ।

सकंडुरैः शोथयुतैर्महाद्भिः शुक्लैर्घनस्रावयुतैः कफेन ॥ ३ ॥

भाषा-कफके उपदंशसे सफेद मोटे फोड़े (चटें) होय, उनमें खुजलीचले सूजन होय और गाड़ी राध बहतीहै ॥

सन्निपात जन्य उपदंश क लक्षण कहते हैं ।

नानाविधस्रावरुजोपन्नमसाध्यमाहुस्त्रिमलोपदंशम् ॥

भाषा-जिस उपदंशमें अनेक प्रकार का स्राव होय, पीड़ा होय उस त्रिदोषजन्य उपदंशको असाध्य कहतेहैं ॥

उपदंशके असाध्य लक्षण कहते हैं ॥

विशीर्णमांसं कृमिभिः प्रजग्धं मुष्कावशेषं परिवर्जयेच्च॥४॥

भाषा–जिस उपदंशसे लिंगका मांस गल गया हो और कृमि योंने लिंगको खालिया होय केवल अंडकोश मात्र शेषहों उसको वैद्य त्यागदेय ॥

और असाध्य लक्षण कहते हैं ।

संजातमात्रे न करोति मूढः क्रियां नरो यो विषये प्रसक्तः ॥
कालेन शोथक्रिमिदाहपाकैर्विशीर्णशिश्नो म्रियते स तेन॥५॥

भाषा—उपदंशके उत्पन्न होने मात्र से जो मूर्ख मनुष्य विषयमें फंस कर इसका उपचार न करे उसके लिंगमें थोड़े दिनमें सूजन और कीडे पड़ें और उसमें दाह पाकभी होय, पीछे वह गल जाय उससे वह रोगी मर जाता है ॥

लिंगार्शको कहते हैं ।

अंकुरैरिव संघातैरुपर्युपरि संस्थितैः ॥
क्रमेण जायते वर्त्ति स्ताम्रचूडशिखोपमा ॥ ६ ॥
कोषस्याभ्यन्तरे संधौ सर्वसंधिगतापि वा ॥
सवेदनापिच्छिला च दुश्चिकित्स्या त्रिदोषजा ॥
लिंगवर्तिरिति ख्याता लिंगार्श इति चापरे ॥ ७ ॥

भाषा-अंकुर (टोआ कुला) के तुल्य कुछ दीर्घ मांसको चोट पहुंचानै वाले एकके ऊपर एक स्थित हुए जो बढ़े हुए मांस उनमें क्रमसे एक बत्तीसी बन जाती है वह मुरगे की चोटी के तुल्य होतीहै अण्डकोशके बीचमें संधि यों वा सब छिद्रोंकी सन्धि में प्राप्त हुई वेदना करके युक्त चमक वाली त्रि दोष से उत्पन्न हुई लिंगवर्ति नाम से कहलाती है वह दुश्चिकित्स्य है इस ही को कोई लिंगार्श ऐसा भी कहते हैं ॥

सुश्रुत में कहीं स्त्रियोंके भी उपदंश होता है ऐसा कहा है ॥

मेढ्र संधौव्रणाः केचित्केचित् सर्वाश्रयास्तथा ॥

कुलत्थाकृतयः केचित् केचित् पद्मदलोपमाः ॥ ॥१॥
रुजा दाहार्त्ति बहुलाः कृष्णास्तोदसमान्विताः ॥
शीघ्रं केचित् विसर्पन्ति शनैः केचित्तथापरे ॥ २ ॥
स्त्रीणां पुंसां च जायन्ते उपदंशाः सुदारुणाः ॥ ३ ॥

भाषा—मेढ्र (लिंग) की संधि में कोई व्रण (फोड़ा) होते हैं कोई सबछिद्रों की संधिमें होते हैं कोई कुलथी कीसी आकृति के होते हैं कोई कमल के पत्ते कीसी आकृति वाले होते हैं तकलीफ व जलन जिनमें बहुतहो कालेरंगके होंय सुई चुभनेकी पीड़ा जिनमें होय कोई शीघ्र फैलजांय कोई धीरे २ फैलें ऐसे बड़े कठिन उपदंश (आतशक) स्त्री पुरुषों के होते फिरंगरोगका निदान परिशिष्टि में दिया गया है उसको देखनेसे आतश्यक सम्बन्धी बातोंका और भी पता लगैगा ॥

इतिश्री वैद्यराज ख़ल्लास्वामि सूरिसुनु सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकाया मुपदंश निदानं समाप्तम् ।

अथ शूकदोष निदानम् ।

सम्प्राप्ति कहते हैं ।

अक्रमाच्छेफसो वृद्धिं योऽभिवाञ्छति मूढधीः ॥
व्याधयस्तस्य जायन्ते दश चाष्टौ च शूकजाः ॥ ॥

भाषा-जो मंदबुद्धि वाला मनुष्य शास्त्रोक्त क्रमके विना लिंगको मोटे करने की इच्छा रक्खे वा विषकृमिका लिंगके ऊपर लेपादिक करे अथवा काम सूत्रमें कहे हुए प्रयोगोको लिंग वृद्धिको साधन करे उसके १८ प्रकार के शूकज रोग होते हैं ॥

सर्षपिकाके लक्षण कहते हैं ।

गौरसर्षपसंस्त्याना शूकदुर्भग्नहेतुका ॥
पिडिका श्लेष्मवाताभ्यां ज्ञेया सर्षपिका च सा ॥२॥

भाषा—दुष्ट जलजंतुओं को दुष्ट रीतिसे लेप करने से कफवात कुपित होकर सपेद सरसों के समान जो पिडिका [फुँसी] होय उसको सर्षपिका कहते हैं ॥

अष्ठीलिका के लक्षण कहते हैं।

कठिना विषमैर्भुग्नैर्वायुनाष्ठीलिका भवेत् ॥

भाषा-अशस्त शूकोंके लेप से कुपित हुए वायु से कड़ी व गुठली के तुल्य पिडि़का होय और विषम नाम कोई छोटी और कोई बड़ी और भग्न नाम टेढ़े ऐसे शूक मांसां कुर उनसे व्याप्त होय उसको अष्ठीलिका कहते हैं ॥

ग्रंथितके लक्षण कहते हैं ॥

शूकैर्यत्पूरितं शश्वग्रंथितं नाम तत्कफात् ॥ ३ ॥

भाषा—निरंतर शूकलेप करनेसे लिंगेन्द्रियके ऊपर गांठ पैदा होय उसको ग्रंथित कहते हैं यह कफसे होता है ।

कुंभिकाके लक्षण कहते हैं ।

कुंभिका रक्तपित्तोत्था जांबवास्थिनिभाऽशुभा ॥

भाषा—रक्तपित्तसे उत्पन्न हुई जामुनकी गुठलीके समान काले रंगकी पिडिका होवै उसको कुम्भिका ऐसा कहते हैं वह अशुभ होती है ।

अलजीके लक्षण कहते हैं ।

तुल्यजां त्वलजीं विद्याद्यथा प्रोक्तांविचक्षणः ॥ ४ ॥

भाषा-यह पिडिका प्रमेहपिडिका में जो अलजी नाम पिड़िका कह आये हैं उस के समान लाल काले फोड़ोंसे व्याप्त होय तथा उस के लक्षण पूर्वोक्त पिडिका कैसे होय ऐसे विद्वान् जानलेय ।

मृदितके लक्षण कहते हैं ।

मृदितं पीडितं यत्तु संरब्धं वातकोपतः ॥

भाषा-शूककी पीड़ा होनेके अनंतर लिंगको हाथोंसे मीड़नेसे अथवा दाब नेसे वायुके कोपसे लिंग सूज जाता है उसको मृदित कहते हैं ॥

संमूढपिड़िकाके लक्षण कहते हैं ।

पाणिभ्यां भृशसंमूढे संमूढपिडिका भवेत् ॥ ५ ॥

भाषा-लेप करनेके बाद जब लिंगमें खुजली चले तब उसको दोनों हाथोंसे खूब खुजावे, तब एक मूढ़ (बिना मुंह) पिड़िका होय उसको संमूढ़ पिड़िका कहते हैं ॥

अधिमंथके लक्षण कहते हैं ।

दीर्घाबह्वश्च पिडिका दीर्यन्ते मध्यतस्तु याः ॥
सोऽधिमंथः कफासृग्भ्यां वेदनारोमहर्षकृत् ॥ ६ ॥

भाषा-कफरक्तसे लम्बी और अनेक तथा बीच बीचमें फूटी हुई ऐसी जो फुन्सी लिंगमें होय, उनके होनेसे रोमांच और पीड़ा होय इस रोग को अधिमंथ ऐसा कहते हैं ॥

पुष्करिकाके लक्षण कहते हैं ।

पित्तशोणितसंभूता पिडिका पिडिकाचिता ॥
पद्मकर्णिकसंस्थाना ज्ञेया पुष्करिका च सा ॥ ७ ॥

भाषा—पित्त और रक्तसे उत्पन्न हुई पिड़िका उसके चारों ओर बहुत छोटी छोटी फुँसी होंय और कमलके भीतरकी केसरके समान सब फुँसी होय उसको पुष्करिका ऐसा कहते हैं ॥

स्पर्शहानिके लक्षण कहते हैं ।

स्पर्शहानिं तु जनयेच्छोणितं शूकदूषितम् ॥

भाषा-शूल विषका लेप करनेसे रुधिर दूषित होकर त्वचाके स्पर्श ज्ञानक नष्ट करदेता है ॥

उत्तमाके लक्षण कहते हैं ।

मुद्गमाषोद्गमा रक्ता रक्तपित्तोद्भवाश्च याः ॥
व्याधिरेषोत्तमा नाम शूकाजीर्णनिमित्तजः ॥ ८ ॥

भाषा-शूकका बारंबार लेप करनेसे रक्तपित्त से उत्पन्न हुई जो कुपित मूंग उरदके समान लाल फुँसी लिंगन्द्रियपर होंय उनको उत्तमा कहते हैं। यह अजीर्णके कारण से होती है ॥

शतपोनकके लक्षण कहते हैं ।

छिद्रैरणुमुखैर्लिंगं चितं यस्य समंततः ॥९॥

वातशोणितजो व्याधिर्विज्ञेयः शतपानिकः ॥

भाषा-अनेक बारीक मुखवाले छिद्रों से जिस पुरुषके लिंग चारों तरफ से घिराहो वह व्याधि वात शोणित से प्रगट हुई जाने. उसको शतपान के कहते हैं ॥

त्वक्पाक के लक्षण कहते हैं।

वातपित्तकृतो यस्तु त्वक्पाको ज्वरदाहकृत् १०॥

भाषा-वातपित्त से जो हुआ होय लिंगकी त्वचा पक जाय और ज्वर दाह को करै उसको त्वक पाक कहते हैं ॥

शोणितार्बुदके लक्षण कहते हैं।

कृष्णैः स्फोटैः सरक्ताभिर्पिडिकाभिर्निपीडितम् ॥

यस्य वास्तुरुजा चोग्रा ज्ञेयं तच्छोणितार्बुदम् ॥११॥

भाषा—जिस आदमीको लिंगेन्द्रियके ऊपर काले लाल फोडे पेदा होय तथा उनमें पीड़ा होय उसको शोणितार्बुद कहते हैं ॥

मांसार्बुदके लक्षण कहते हैं।

मांसदोषेण जानीयादर्बुदं मांससंभवम् ॥

भाषा-मांस दुष्ट होने से मांसार्बुद रोग पेदा होता है ॥

मांसपाक के लक्षण कहते हैं ॥

शीर्यन्ते यस्य मांसानि यस्य सर्वाश्च वेदनाः ॥

विद्यात्तं मांसपाकं तु सर्वदोषकृतं भिषक् ॥१२॥

भाषा-जिस आदमीको लिंगका मांस गलजाय और अनेक तरह की पीड़ा होय इस व्याधि को मांसपाक कहते हैं यह व्याधि त्रिदोषज है

विद्रधिके लक्षण कहते हैं ॥

विद्रधिं सन्निपातेन यथोक्तमभिनिर्दिशेत् ॥१३॥

भाषा—विद्रधिनिदान में जो सन्निपात विद्रधिके लक्षण कहे हैंव ही यहां विद्रधिशूल के लक्षण जानने ॥

तिलकालक के लक्षण कहते हैं

कृष्णानि चित्राण्यथ वा शूकानि सविषाणि तु ॥

पातितानि पचंत्याशु मेढ्रं निरवशेषतः ॥१४॥
कालानि भूत्वा मांसानि शीर्यंते यस्य देहिनः ॥
सन्निपातसमुत्थांस्तु तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥१५॥

भाषा-काले या चित्र विचित्र रंगकेसे विषशूकोंका लेप करनेसे तत्काल सब लिंग पक जाय और सब मांस तिलके जैसा काला होकर गल जाय इस त्रिदोसे पैदा हुए रोग व्याधिको तिलकालक ऐसा कहतेहैं ॥

असाध्य शूकदोषें के लक्षण कहतेहैं ।

तत्र मांसार्बुदं यच्च मांसपाकश्च यः स्मृतः॥
विद्रधिश्च न सिद्ध्यंति ये च स्युस्तिलकालकाः ॥१६॥

भाषा-उस शूकदोषमें मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक ये चार सिद्ध नहीं होते हैं ॥

इतिश्री वैद्यराज ब्रह्मास्वामिसूरिसूनु शा० सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां शूकरोग निदानं समाप्तम्।

॥ अथ कुष्ठनिदानम् ॥

विरोधीन्यन्नपानानि द्रवास्निग्धगुरूणि च ॥
भजतामागतां च्छर्दिवेगांश्चान्यान्प्रतिघ्नताम् ॥१॥
व्यायाममतिसंतापमतिभुक्त्वा निषेविणाम् ॥
शीतोष्णलंघनाहारान् क्रमं मुक्त्वा निषेविणाम् ॥२॥
घर्मश्रम भयार्त्तानां द्रुतं शीतांबुसेविनाम् ॥
अजीर्णाध्यशिनां वै पंचकर्मापचारिणाम् ॥३॥
नवान्नदधिमत्स्यादिलवणाम्लानिषेविणाम् ॥
माषमूलकपिष्टान्नातिलक्षीरगुडाशीनाम् ॥

व्यवायं चाप्यजीर्णेऽन्ने निद्रां च भजतां दिवा॥४॥
विप्रान्गुरून्धर्षयतां पापं कर्म च कुर्वताम् ॥
वातादयस्त्रयो दुष्टास्त्वग्रक्तं मांसमंबु च ॥५॥
दूषयंति सकुष्ठानां सप्तको द्रव्यसंग्रहः ॥
अतः कुष्ठानि जायंते सप्त चैकादशैव च ॥६॥

भाषा-क्षीरमत्स्यादि, विरोधी, पतले, चिकने, भारी ऐसे अन्नपान के सेवन करनेसे छर्दिके वेगको रोकने से और अन्य वेग मल मूत्रादि वेगों के रोकने से भोजन करके अत्यंत व्यायाम (दंड कसरत अथवा अतिसंताप धूप वगैरह सहनेसे, शीत, गरमी, लंघन और आहार इनका उक्त क्रम छोड कर सेवन करनेसे, पसीना श्रम और भय इनसे पीडित हो और उसी समय जल पीवे इन हेतुओंसे, अजीर्ण अन्न खाने से और भोजन के ऊपर भोजन करने से, वमन, विरेचन, निरूहण, अनुवासन, नस्य कर्म इन पांचों कर्मों के करते समय कुपथ्य करने से नया अन्न, दही, मछली खारी, खट्टे पदार्थके सेवन करनेसे उड़द, मूरी, मिष्टान्न पेठेका बना हुआ मोमनका व फैटा हुआ पदार्थ तिल, दूध, गुड़ इनका पदार्थ खानेसे, अन्नके पचे विना स्त्रीसंग करनेसे तथा दिन में सोनेसे ब्राह्मण, गुरु इनको तिरस्कार करनेसे, पाप कर्मके आचरण करनेसे ऐसे पुरुषोंके वातादिकतीनों दोष त्वचा रुधिर मांस और जल इनको दुष्ट कर कुष्ठरोग (कोढ) उत्पन्न करे। कुष्ठ पैदाहो वातादि दोष त्वचादि सात धातु अवश्य कारण हेतु हैं । इनसे ही अठारह प्रकारके कुष्ठ होते हैं । तिनमें सात महाकुष्ठ और ग्यारह क्षुद्र कुष्ठ कहे हैं ॥

कुष्ठोंको त्रिदोषजत्वभी होने से दोषाधिक्यसे वे सात प्रकार के हैं वह कहते हैं ।

कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथग्द्वंद्वैः समागतः ॥
सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधिकोमतः ॥७॥

भाषा-अलग २ दोषों से ३, द्वंद्वज ३ और सन्निपातसे १ सब मिलकर सात कुष्ठ हुए। सबकुष्ठ त्रिदोषज होनेपर भीजो दोष जिसमें अधिक होंय, उसी में व्यवहार करना चाहिये अर्थात् जिस दोष के लक्षण मिलें उसको उसी

दोषका कुष्ठ जानना जैसे " वातेन कुष्ठं कापालं " अर्थात् वाताधिक्य होने से कापाल कुष्ठ होता है

कुष्ठ के पूर्वरूप कहते हैं ॥

अतिश्लक्ष्णखरस्पर्शस्वेदास्वेदेविवर्णता ॥
दाहः कण्डूस्त्वचिस्वापस्तोदः कोष्ठोन्नतिः क्रमः ८॥
व्रणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरास्थितिः
मूढानामपि रूक्षत्वं निमित्तेऽल्पेऽपिकोपनम् ॥९॥
रोमहर्षोऽसृजः कार्ष्ण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम् ॥

भाषा–जहां कुष्ठ होय वहां अत्यन्त चमक होय अथवा खरदरा मालूम होय, उस ठिकाने पसीना आवे अथवा नहीं आवे तथा उस जगह का रंग बदल जाय, दाह होय, खुजार, त्वचाका स्पर्श मालूम न होय, चोंटनेकीसी तकलीफ होय, पिवारी माखीके सदृश चकत्ता उठे, परिश्रम करे बिना देहमें श्रम होय, व्रण में पीड़ा अधिक होय, उन फोड़ों की उत्पत्ति शीघ्र होकर बहुत दिन तक रहे, फोड़ा भरने के समय रूखापन हो थोड़ी निमित्त होने परभी कोप होय, रोमांच होय और रुधिर काला हो जाय यह कुष्ठ होने के पूर्व रूपके लक्षण होते हैं ॥

सप्त महाकुष्टों को कहते हैं वहां पहिले कपाल कुष्ठको कहते हैं॥

कृष्णारुणकपालाभं यद्रूक्षं परुषं तनु ॥१०॥
कापालं तोदबहुलं तत्कुष्ठं विषमं स्मृतम् ॥

भाषा— काले तथा लाल ठिकड़ा के तुल्य रूखी कठोर पतली ऐसी त्वचावाले तथा चोंटने जैसी पीड़ा बहुत होय वह विषम [दुश्चिकित्स्य हैं] अर्थात् हैं चिकित्सा करने में कठिन है । इसको कापालकुष्ठ कहते हैं ॥

औदुंबरकुष्ठ के लक्षण कहते हैं ॥

रुग्दाहरागकण्डूभिःपरीतं रोमपिंजरम् ॥११॥
उदुंबरफलाभासं कुष्ठमौदुंबरं वदेत् ॥

भाषा-पीड़ा दाह,लाल और खुजली इनसे युक्त होय इसमें बाल पीले रंगके होजांय गूलरफलके समान होय उसको औदुम्बर कुष्ठ कहते हैं ॥

मंडलकुष्ठके लक्षण कहते हैं ॥

श्वेतं रक्तं स्थिरं स्त्यानं स्निग्धमुत्सन्नमंडलम् ॥१२॥
कृच्छ्रमन्येन संयुक्तं कुष्ठं मंडलमुच्यते ॥

भाषा-सफेद, लाल कठिन, गीला, चिकना, जिसका आकार मंडलके तुल्य होय तथा एक दूसरे से मिला होय ऐसा जो कुष्ठहोय उसको मंडलकुष्ठ कहते हैं वह कष्टसाध्य है ॥

ऋष्यजिह्वाकुष्ठ के लक्षण कहतेहैं।

कर्कशं रक्तपर्यंतमन्तः श्यावं सवेदनम् ॥१३॥
यदृष्यजिह्वसंस्थानमृष्यजिह्वं तदुच्यते ॥

भाषा-कठोर, चारों तरफ लाली हो बीचमें काला होय, पीड़ा युक्तहो तथा ऋष्य (नीलाण्ड नाम हिरन विशेष) की जीभके समान होय उस को ऋष्यजिह्व कहते हैं ॥

पुण्डरीकिकुष्ठ के लक्षण कहतेहैं ॥

सश्वेतं रक्तपर्यंतं पुण्डरीकदलोपपम् १४॥
सोत्सेधं च सरागं च पुण्डरीकं प्रचक्षते ॥

भाषा-पुण्डरीक (कमल) पत्रके समान सफेद होय और उसके अंत भाग लाल होयें, ऊंचाई लिये होय और मध्यमें थोड़ा लाल होय उस को पुण्डरीककुष्ठ कहते हैं ॥

सिध्मकुष्ठके लक्षण कहते हैं।

श्वेतं ताम्रं च तनु यद्रजो घृष्टं विमुंचति ॥१५॥
प्रायश्चोरसि तत्सिध्ममलाबु कुसुमोपमम् ॥

भाषा-सफेद, लाल पतला, खुजानेसे धूरसी उड़े यह विशेष करके छाती में होता है और घीयाके फूलके आकार होताहै उसको सिध्मकुष्ठकहते हैं ॥

काकणकुष्ठके लक्षण कहते हैं।

यत्काकणंतिकावर्णं सपाकं तीव्रवेदनम् ॥१६॥
त्रिदोषलिंगं तत्कुष्ठं काकणं नैव सिद्ध्यति ॥

भाषा-जो चिरमिटीके समान लाल अर्थात् बीचमें काला होय और ओरपास लालहोय, अथवा बीचमें लाल होय और ओरपास काला होय, और पकावट लियेहोय औरवेदना जिसमें हो तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों यह कुष्ठ अच्छा नहीं होता उसको काकण कुष्ठ कहते हैं ॥

ग्यारह क्षुद्रकुष्ठोंके लक्षण कहते हैं उनमें प्रथम
चर्मकुष्ठके लक्षण कहते हैं ।

अस्वेदनं महावास्तु यन्मत्स्यशकलोपमम् ॥१७॥
तदेककुष्ठं चर्माख्यं बहलं हस्तिचर्मवत् ॥

भाषा-पसीना न आवे मोटी जगह, होजाय मछली की त्वचासमान अर्थात् अभ्रकके पत्र सरीखी गोल गोल होय और जिसका चमड़ा हाथीके चमड़ा जैसा मोटा और कठोर होये उसको चर्मकुष्ठ कहतेहैं ॥

किटिभकुष्ठके लक्षण कहते हैं ।

श्यावं किणखरस्पर्शं परुषं किटिभं स्मृतम् ॥१८॥

भाषा-काला फोड़ेकी जगह जैसा खरखरा स्पर्श हो और कठिन होय उसको किटिभ कुष्ठ कहते हैं ॥

वैपादिककुष्ठके लक्षण कहते हैं ।

वैपादिकं पाणिपादस्फुटनं तीव्रवेदनम् ॥

भाषा-जिसमें हाथकी हथेली और पैरका तालू फट जांय और पीड़ा बहुत होय, उसको विपादिका कहतेहैं यह वैपादिक बिवाई का वाचक नहीं कारण यह है बिवाई केवल पैरमेंही होती है और बिवाईको शास्त्रमें पाददारी कहते हैं और वैपादिकमें हाथ पैरोंमें फुँसी काली होतीहै और उन फुंसियोंमें झड़न तथा खुजारहो, इसीसे पाददारीको भिन्न और वैपादिकको भिन्न कहाहै ॥

अलसकुष्ठके लक्षण कहते हैं ।

कंडूमद्भिः सरागैश्च गंडैरलसकं चितम् ॥१९॥

भाषा-खुजारयुक्त लाली लिये हुए जो फुन्सी उन से घिरा हुआ जो होय उसको अलसकुष्ठ कहते हैं ॥

दद्रुमंडलकुष्ठके लक्षण कहते हैं ।

सकंडू रागपीटिकं दद्रुमंडलमुद्गतम् ॥

भाषा-खुजार यक्त लाली लिये जो फोड़ा और वह ऊँचे उठ आवें मंडलके आकार और रोग पैदा होंय इसीसे इसको दद्रुमंडल कहते हैं ॥

चर्मदलकुष्ठके लक्षण कहते हैं।

रक्तं सशूलं कंडूमत्स्फोटं यद्दलयत्यपि ॥
तच्चर्मदलमाख्यातंसंस्पर्शासहमुच्यते ॥२०

भाषा-लाल शूलयुक्त, फोड़ोंसे व्याप्त होकर फूट जाय, इसमें हाथ लगाने से सहा न जाय, इसमें त्वचा फट जाय, उसको चर्मदलकुष्ठ कहतेहैं।

पामाकुष्ठके लक्षण कहते हैं।

सूक्ष्मा बह्वयः पिडकाःस्राववत्यः पामेत्युक्ताः कंडुमत्यःसदाहाः॥

भाषा-जिसमें छोटी और बहुतफुन्सी होय, उसमें से स्राव होय तथा खुजली चले और दाह होय इस कुष्ठको पामा (खाज) कहते हैं ॥

कच्छुकुष्ठके लक्षण कहते हैं ॥

सैव स्फोटैस्तीव्रदाहैरुपेता ज्ञेयापाण्योःकच्छुरुग्रास्फिजोश्च२२

भाषा-वहही पामा तीव्रदाह वाले फोड़े होंय और हाथोंमें होय उसको कच्छु कहते हैं। कमरमें जो होंती है उग्र है ॥

विस्फोटककुष्ठके लक्षण कहते हैं।

स्फोटाःश्यावारुणाभासा विस्फोटाः स्युस्तनुत्वचः ॥

भाषा-काले लाल रंगके फोड़े होंय और जिनकी त्वचा पतली होय उसको विस्फोटक कहते हैं ॥

शतारुकुष्ठके लक्षण कहते हैं।

रक्तं श्यावं सदाहार्ति शतारु स्याद्बहुव्रणम् ॥२३॥

भाषा-लाल काला होय, जलन सहित होय शूलहो तथ जिसमें अनेक फोड़े होंय उसको शतारुकुष्ठ कहते हैं ॥

विचर्चिकाके लक्षण कहते हैं।

सकंडूः पिडिका श्यावा बहुस्रावा विचर्चिका ॥

भाषा-खुजली से युक्त काले रंगकी फुन्सी (माताके समान) होंय और उनमें से स्राव बहुत होय उसको विचर्चिका कहते हैं ॥

क्षुद्र कुष्ठ ११ कहेहै सो चर्मकुष्ठसे विचर्चिकातक गिननेपर १२ होतेहैं यहां जो यह संख्या बढ़ती है उसी विषयकी शंकाका समाधान इस प्रकार करतेहैं विचर्चिका पैरोंमें होकर फूटकरही विपादिका होतीहै इसी कहनेसे संख्या नहीं बढ़तीहै इस विषय में भोजका मत इसप्रकारहै (१)

तीनों दोषोंके नियत स्वरूप जो कुष्ठों के हैं उनके लक्षण कहतेहैं ।

खरं श्यावारुणं रूक्षं वातात्कुष्ठं सवेदनम् ॥२३ ॥
पित्तात्प्रकुपितं दाहरागस्रावान्वितं स्मृतम् ॥
कफात्क्लेदि घनं स्निग्धं सकंडू शैत्यगौरवम् ॥२४॥
द्विलिंगं द्वंद्वजं कुष्ठं त्रिलिंगं सान्निपातिकम् ॥

भाषा-वातसेजो कुष्ठ होताहै वह खरदरा, काले रंगका अथवा लालवर्ण, रूक्ष और पीड़ा युक्त ऐसा होता है। पित्त से जो कुष्ठ होता है उस कुष्ठमें दाह, लाल स्राव युक्त होता है कफ से जो कुष्ठ होता है उससे क्लेद युक्त सघन चिकना खुजली ठण्ड भारापन लियें होताहै द्वन्द्वज कुष्ठमें दो दोषोंके लक्षण होते हैं । सन्निपातके कुष्ठमें तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं

अब उत्तरोत्तर रसादि सप्तधातुगत कुष्ठों के क्रमसे लक्षण कहते हैं।

त्वक्स्थे वैवर्ण्यमंगेषु कुष्ठे रौक्ष्यचं जायते ॥२५॥
त्वक्पाको रोमहर्षश्च स्वेदस्यातिप्रवर्त्तनम् ॥

भाष-त्वचा के कहने से यहां रस को जाने इस से रस धातुगत कुष्ठ होने से अंगका वर्ण पलट जाता है अंग में रूखापन होताहै त्वचा पकीसी होय रोमांच हों और पसीना बहुत आवै यह लक्षण होते हैं ॥

रक्तगत कुष्ठके लक्षण कहते हैं ॥

कंडूर्विपूयकश्चैव कुष्ठे शोणितसंश्रये ॥२६॥

भाषा—रक्तमें कुष्ठ जबआश्रय ले तब खुजार और राध बहुत होय यह लक्षण होते हैं ॥

मांसगत कुष्ठ के लक्षण कहते हैं ॥

बाहुल्यं वक्त्रशोषश्च कार्कश्यं पिडिकोद्गमः ॥

---

१ दोषाः प्रभूतत्वङ्मांसंपाणिपाद समाश्रिताः पिड़कां जनयन्त्या शुदाह कण्डू समन्वितास् ॥तथाच दाल्यते त्वक्खरा रूक्षा पाण्योर्ज्ञेया विचार्चिका ॥ पादे विपादिका ज्ञेया स्थानान्यत्वत्त द्विचर्चिका इति गदाधरेणाप्युक्तम् ॥

तोदः स्फोटस्थिरत्वं च कुष्ठे मांससमाश्रिते ॥२७॥

भाषा-मांस में कुष्ठके प्राप्त होने पर मुख बहुत सूखे,अंगमें कर्कशपना होय देहमें फुन्सी पैदा होय सुई चुभानेकीसी पीड़ा होय स्थिर फोड़ा होय यह लक्षण होते हैं ॥

मेदोगत कुष्ठ के लक्षण कहतेहैं ॥

कौण्यं गतिक्षयोऽगानां सभेदः क्षतसर्पणम् ॥
मेदःस्थानगते लिंगं प्रागुक्तानि तथैव च ॥२८॥

भाषा-कौण्य कर भंग अर्थात् हाथ का गिरना हो चलने की शक्ति का नाश हो घाव फैलजाय और पूर्वोक्त लक्षण (रस रक्तमांसगत कुष्ठ के लक्षण समान होवें यह मेद स्थान मेस्थित होनेंवाले कुष्ठके लक्षण जानै ॥

अस्थिमज्जागत कुष्ठ के लक्षण कहते हैं ॥

नासाभंगोऽक्षिरागश्च क्षतेषु कृमिसंभवः ॥
स्वरोपघातश्च भवेदस्थिमज्जासमाश्रिते ॥२९॥

भाषा-(हड्डी और मज्जागत कुष्ठ होने से नाक गिर पड़े नेत्र लाल होय, घावों में कीड़ाओं की उत्पत्ति हो स्वर का नाश होय ये लक्षण होते हैं ॥

शुक्रार्त्तवगत कुष्ठ के लक्षण कहते हैं ।

दंपत्योः कुष्ठबाहुल्याद्दुष्टशोणितशुक्रयोः ॥
यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम् ॥ ३०॥

भाषा—जिन स्त्रीपुरुषों के रुधिर आर्तव शुक्र कुष्ठाधिक्य से दूषित होंय, उस दुष्ट हुए वीर्य और रजसे उत्पन्नहुई संतान कोढ़ी होती है । इस जगह दुष्ट हुआ शुक्र और आर्तव सर्वथा बीजत्वन नष्ट न होनेसे संतान के करने वाले होते हैं ॥

कुष्ठके साध्यादि भेदों को कहते हैं ।

साध्यं त्वगूक्तमांसस्थं वातश्लेष्माधिकं च यत् ॥
मेदसि द्वंद्वजं याप्यं वर्ज्यं मज्जास्थिसंश्रितम् ॥३१॥
कृमितृड्दाहमन्दाग्निसंयुक्तं यत्त्रिदोषजम् ॥

प्राभिन्नं प्रसुतांग च रक्तनेत्रं हतस्वरम् ॥ ३२ ॥
पँचकर्णगुणातीतं कुष्ठं हंतीह मानवम् ॥

भाषा—रस, लोहू मांस इन धातुओं में स्थित जो कुष्ठ वे साध्य होते हैं तथा जिस कुष्ठमें वायु और कफ प्रधान होंय वहभी साध्य हैं और मेदो धातुगत कुष्ठ तथा द्वंद्वज कुष्ठ याप्य (यत्नसाध्य) जानना मज्जा, अस्थि इन दोनों धातुओंमें कुष्ठ पहुंच गया हो तथा जो शुक्रगत हो वह असाध्य है। उसको छोड़देना चाहिये तथा जिस कुष्ठमें कृमि तृषाजलन मन्दाग्नि यह होय तथा त्रिदोषज होय वह असाध्य है। जो कुष्ठ फूटकर बहने लगे तथा जिस कुष्ठसे रोगी के नेत्र लाल हो अथवा स्वर बैठ गया होय और वमन विरेचनादि पंचकर्मके गुण जिस पुरुषके नहीं हों ऐसे रोगी को कुष्ठ नष्ट कर देता है ॥

कुष्ठोंमें चिकित्सा के लिये प्रधानदोषको कहते हैं।

वातेन कुष्ठं कापालं पित्तेनौदुंबरं कफात् ॥३३॥
मण्डलाख्यं विचर्ची च ऋष्याख्यं वातपित्तजम् ॥
चर्मैककुष्ठं किटिभं सिध्मालसविपादिकाः ॥३४॥
वातश्लेष्मोद्भवाः श्लेष्मपित्ताद्दद्रुः शतारुषी ॥
पुण्डरीकं सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा ॥३५ ॥
सर्वैः स्यात्काकणं पूर्वं त्रिकं दद्रु सकाकणम् ॥
पुण्डरीकर्ष्यजिव्हे च महाकुष्ठानि सप्त तु ॥३६॥

भाषा—वातसे कपालकुष्ठ, पित्तसे औदुंबर, कफसे मंडल, और विचर्चिका वात पित्त से ऋष्यजिह्व, वातकफ से चर्मकुष्ठ किटिभ, सिध्म, अलस और विपादिका, कफपित्त से दद्रू, शतारु, पुंडरीक विस्फोटक, पामा, चर्मदल, त्रिदोषसे काकणकुष्ठ होता है। पहिला त्रिक (कपाल, उदंबर और मंडल) तथा दद्रु, काकण, पुंडरीक और ऋष्यजिह्व ये सात महाकुष्ठ जानने ॥

त्वचाकी दुष्टिके तुल्य किलास का वर्णन करते हैं।

कुष्ठैकसंभवं श्वित्रं किलासं चारुणं भवेत् ॥

निर्दिष्टमपरिस्रावि त्रिधातूद्भवसंश्रयम् ॥३७॥

भाषा-कोढ़के होनेके जो कारण (अहित भोजनादि) कहे हैं इन्हीं कारणोंसे श्वित्र (सफेद कोढ़) और किलास [लाल कोढ़] ये होते हैं। इनमें स्राव नहीं होताहै तथा ये तीन धातुओंका आश्रय करते रहते हैं अर्थात् तीन दोष और रुधिर, मांस तथा मेद इनका आश्रय करते हैं ॥

वातादिभेदसे उसके लक्षण कहते हैं ।

वाताद्रूक्षारुणं पित्तात्ताम्रं कमलपत्रवत् ॥
सदाहं रोमविध्वंसि कफाच्छ्वेतं घनं गुरु ॥३८॥
सकण्डूरं क्रमाद्रक्तमांसमेदस्सु चादिशेत् ॥
वर्णेनैवेदृगुभयं कृच्छ्रं तच्चोत्तरोत्तरम् ॥३९॥

भाषा-वायुसे रूक्ष और लाल होंय, पित्तसे कमलकेपत्ते तुल्य लाल होय और दाह कर युक्त होय। उसके ऊपरके बाल गिर पड़ें। कफके योगसे वह कोढ़ सफेद गाढ़ा और भारी होय वह खुजारयुक्त होय। इसी क्रम से रुधिर मांस और मेदकाभी स्थानजानें अर्थात् रक्ताश्रित दोष होनेसे लाल मांसाश्रित दोष होनेसेतामेके रंगऔर मेदआश्रित होनेसे सफेद किलास होताहै।

श्वित्रके साध्यासाध्य लक्षण कहते हैं।

अशुक्लरोमा बहलमसंश्लिष्टमथो नवम् ॥
अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं वर्ज्यमतोऽन्यथा ॥४०॥

भाषा-जो श्वित्र कोढ़ सफेद बालवाला नहुआ होय अर्थात् उसके ऊपर के बाल सफेद न हुए होंय तथा जो पतले होकर आपसमें मिले न होवे तथा नये हो तथा अग्निदग्ध न हों वह श्वित्र कोढ़ साध्य जानना चाहिये इससे विपरीत असाध्य जानना चाहिये। चरक में भी "यत् शुक्लरोम बहुलं यत् संलग्नंपरस्परम् ॥ यच्च वर्षगणोत्थितं तच्छ्वित्रं नैव सिध्यति, इस प्रकार लिखा है ॥

किलासके असाध्य लक्षण कहते हैं।

गुह्यपाणितलौष्ठेषु जातमप्याचिरतनुम् ॥
वर्जनीयं विशेषेण किलासं सिद्धिमिच्छता ॥४१॥

भाषा-गुह्यस्थानों में, हाथोंमें, पैरोंके तले में, और होठोंमें उत्पन्न हुआ जो किलास कुष्ठ जिसकेहो चाहै वह थोड़े दिनका भी होय तोभी सिद्धिकी इच्छा वाले वैद्यको वहसेगी छोड़देना चाहिये ॥

कुष्ठके संसर्गजन्य प्रसंगसे सब संसर्ग जन्यरोगों को कहते हैं ॥

प्रसंगाद्गात्रसंस्पर्शान्निश्वासात्सहभोजनात् ॥
सहशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥४२ ॥
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च ॥
औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम् ॥४३॥

भाषा-मैथुनादि करने से अथवा शरीरके स्पर्शसे, श्वासके लगनेसे, साथ बैठकर एक पात्रमें भोजन करनेंसे, एकं साथ एक शय्या (पलंग) पर सोनेंसे तथा एक साथ मिलकर बैठनेसे, पास रहनेसे, धारण करे वस्त्र को धारण करनेसे, सूँघे पुष्पको सुंघनेसे अथवा पहरी हुई मालाको पहरने से लगाये हुए चंदनके लगानेसे कोढ़, ज्वर, धातुशोष अर्थात् क्षयका रोग, नेत्ररोग (आंख दूखना) और औपसर्गिक रोग नाम शीतलादिक और भूतोपसर्गादिक ये संक्रामक रोग एक पुरुषसे उड़ कर दूसरे मनुष्य के हो जाते हैं इस रोगकी बराबर दूसरा कोई नहीं यह पूर्व तथा नवीन पापको (१) प्रगट करताहै॥

इतिश्री वैद्यराज झल्लास्वामिसूरिसूनु शा० सोहनलाल विद्याभूषण
विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां
कुष्ठरोगनिदानं समाप्तम् ।

॥ अथ शीतपित्तोदर्दकोठनिदानम् ॥

शीतपित्तकी निदानपूर्वक संप्राप्ति कहते हैं ॥

शीतमारुतसंस्पर्शात्प्रदुष्टौ कफमारुतौ ॥
पित्तेन सह संभूय बहिरंतर्विसर्पतः ॥१॥

भाषा-ठण्डीवायु के स्पर्श से कफ वायु दूषित हो पित्तसे मिलकर भीतर रक्तादिकों और बाहर त्वचाम विचरते है ॥

---

१ म्रियते यदि कुष्ठेन पुनर्जातस्य तद्भवे ॥ नातो निंद्यतरो रोगो तथा कुष्ठं प्रकीर्तितम् ॥

उसका पूर्वरूप कहते हैं ।

पिपासारुचिहृल्लासदेहसादांगगौरवम् ॥
रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूपस्य लक्षणम् ॥२॥

भाषा-प्यास, अरुचि, उवाकी आना, देहमें पीड़ा और उसका भारी होना नेत्रमें सुरखी ये उन शीतपित्त आदिके पूर्वरूप जाने ॥

उदर्दके लक्षण कहते हैं ॥

वरटीदष्टसंस्थानः शोथः संजायतेःबहिः ॥
सकंडूस्तोदबहुलच्छर्दिज्वराविदाहवान् ॥३॥
उदर्दमिति तं विद्याच्छीतपित्तमथापरे ॥

भाषा-बर्र के कांटने के तुल्य त्वचा के ऊपर चकत्ता पड़जाय जांय उन में खुजली चले और सुई चुभानेकीसी पीड़ा होय। इसके संयोगसे वमन, ज्वर और दाह होंय, इस रोगको उदर्द कहते हैं। कोई इसको शीतपित्त कहते है। इसको पित्ती भी कहते हैं इसमें खुजली कफसे होती है। चुभाषट वायुसे होती है और वमन ज्वर और दाह ये पित्तसे होते हैं ऐसे जाने ॥

वाताधिकं शीतपित्तमुदर्दस्तु कफाधिकः ॥४॥

भाष—वात प्रधान जिसमें हो वह शीतपित्त होता है तथा कफ प्रधान जिसमें हो वह उदर्द होता है ॥

उदर्द के और धर्मों को कहते हैं ॥

सोत्संगैश्च सरागैश्च कंडूमद्भिश्च मंडलैः ॥
शैशिरः कफजो व्याधिरुदर्द इतिकीर्तितः ॥५॥

भाषा-ठण्ड से कफसे उत्पन्न हुआ जिसमें अंगके उपर लाल चकत्ता उठे, उसमें उनमें खुजली बहुत चले और वे मंडलके समान गोल हों बीचमें कुछ नीचे ओर पास ऊँचे होंय ऐसीव्याधिको उदर्द कहते हैं ॥

त्वचाकी खराबी की समतासे यहां ही कोठके लक्षण कहते हैं ॥

असम्यग्वमनोदीर्णपित्तश्लेष्मान्ननिग्रहैः ॥
मंडलानि सकंडूनि रागवन्ति बहूनि च ॥
उत्कोठः सानुबंधश्च कोठ इत्यभिधीयते ॥६॥

भाषा—अच्छे प्रकार वमन न कराने वाली दवासे अर्थात् साफ वमन नहोनेसे

तथा वेग जिनके बढ़े ऐसे पित्त कफ और अन्न इनके वेग रोकने से देहके ऊपर लाल और बहुत चकत्ता उठें, उनमें खुजली चले इस रोगको उत्कोठ कहते हैं बारंबार होयं और जो क्षणभरमें उत्पन्न होकर नाश होजाय उसको कोठ कहते हैं, यहां उत्कोठ और कोठमें भेद केवल यह है जो सानुबन्ध होता है वह उत्कोठ और जो अनुबन्ध रहित होता है वह कोठ कहलाता है ॥

इतिश्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसुनु शा० सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां शीतपित्तोदर्दकोठ निदानं समाप्तम् ।

कोठके हेतुमें पित्तश्लेष्मका जो उल्लेख किया है उसमें पित्तश्लेष्म मिलने रूप जो अम्लपित्त उसके निदान को कहते हैं ।

अथाम्लपित्त निदानम् ।

निदानपूर्वक अम्लपित्तका स्वरूप कहते हैं ।

विरुद्धदुष्टाम्लबिदाहिपित्तप्रकोपि पानान्नभुजो विदग्धम् ॥
पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रवदंति संतः ॥१॥

भाषा-विरुद्ध (क्षीरमत्स्यादि) और दुष्टान्न, (बिगड़ा अन्न) खट्टा, जलन करने वाला पित्तका बढ़ानेवाला, ऐसे अन्नपानके सेवन पहिले वर्षादि ऋतु में जलौषधिगत विदाहादि स्वकारणों से इकट्ठा हुआ पित्त दुष्ट होय उसको अम्लपित्त कहते हैं ॥

अम्लपित्तके लक्षण कहते हैं ॥

अविपाकक्लमोत्क्लेदतिक्ताम्लोद्गारगौरवैः ॥
हृत्कंठदाहारुचिभिश्चाम्लपित्तं वदेद्भिषक् ॥२॥

भाषा-अन्नका न पचना, बिना परिश्रम करे परिश्रमसा मालूम होना उबाकी आना कडुवी, तथा खट्टी डकार आना देहका भारी रहना हृदय और कंठ में दाह होना, अरुचि होना, इत्यादि लक्षणों से वैद्य यह अम्ल पित्त है ऐसा कहे ॥

अम्लपित्त दो प्रकारका एक उर्ध्वगत तथा दूसरा अधोगत उसमें पहिले अधोगतके लक्षण कहते हैं ।

तृड्दाहमूर्च्छाभ्रममोहकारि प्रयात्यधो वा विविधप्रकारम् ॥
हृल्लासकोठानलसादकर्णस्वेदांगपीतत्वकरं कदाचित् ॥३॥

भाषा-अधोगत अम्लपित्त होनेसे प्यास, दाह, मूर्च्छा भ्रम, मोह (इन्द्रिय थता मनमें मोह), सूखी रद्द, मदाग्नि, कोठ, कानमें पसीना, देहमें पीलापन ये लक्षण होकर गुदाके द्वारा काला लाल दुर्गन्धियुक्त अनेक वर्णका पित्त गिरे यह लक्षण होते हैं ॥

ऊर्ध्वगत अम्लपित्तके लक्षण कहते हैं ।

वांतं हरित्पीतकनीलकृष्णमारक्तरक्ताभमतीव चाम्लम् ॥
मांसोदकाभं त्वतिपिच्छलाच्छंश्लेष्मानुजातं विविधं रसेन४
भुक्ते विदग्धे त्वथवाप्यभुक्ते करोति तिक्ताम्लवमिं कदाचित्॥
उद्गारमेवंविधमेव कण्ठे हृत्कुक्षिदाहं शिरसो रुजं च ॥५॥

भाषा-ऊर्ध्वगत पित्तसे हरे, पीले, नीले, काले, तामे के रंगके, लाल, अत्यन्त खट्टे, मांस धोनेके जलके तुल्य, अत्यन्त गाढ़े, स्वच्छ, कफमिले, खारी, कषैले आदि संयुक्त ऐसे पित्त गिरें । कभी कभी भोजन किया अन्न विदग्धावस्थाको प्राप्त होकर अथवा भोजन करनेके पहिले कड़वी खट्टी ऐसी वमन होजाय तथा ऐसीही डकारें आवें, कण्ठ, कूख और हृदय इनमें जलन होय, माथा दूखनेलगे यह लक्षण होते हैं ॥

कफपित्तजन्य अम्लपित्तके लक्षण कहते हैं ॥

करचरणदाहमौष्ण्यं महतीमरुचिं ज्वरं च कफपित्तम् ॥
जनयति कण्डूमण्डलपिडिकाशतनिचितगात्ररोगचयम् ॥

भाषा-हाथ पैरोंमें दाह, अंगोंमें गरमी, अन्न में अरुचि, ज्वर कण्डू, (खुजली) रुधिरके बिगड़नेसे देहमें चकत्ता हों, सैकड़ों पिडिका और अविपाकादि अनेक उपद्रव ये लक्षण होते हैं ॥

साध्यासाध्यताका वर्णन करते हैं ।

रोगोऽयमम्लपित्ताख्यो यत्नात्संसाध्यते नवः ॥

चिरोत्थितो भवेद्याप्यः कृच्छ्रसाध्यः स कस्यचित् ॥७॥

भाषा-यह अम्लपित्त नामक रोग नया होय तो यत्न करनेसे साध्य (सिद्ध होता) है और बहुत दिनका होय तो याप्य (यत्न साध्य) होता है और वहही किसी कुपथ्य आहार आचार करने वाले पुरुषके बहुत कालसे पैदा हुआ भी कृच्छ्रसाध्य होता है ॥

तहां अम्लपित्तमें ही केवल वायुका और वातकफका
संसर्ग होता सो कहते हैं ।

सानिलं सानिलकफं च तत सकफं लक्षयेत् ॥
दोषलिंगेन मतिमान् भिषङ्मोहकरं हितम् ॥८॥

भाषा-वायुसहित अम्लपित्त वातकफयुक्त अम्लपित्त और कफयुक्त अम्लपित्त ऐसे तीन प्रकार अम्लपित्त बुद्धिमान वैद्य दोषोंके लक्षणोंसे जाने । इसका कारण यह है कि ऊर्ध्वगत अम्लपित्तमें वमन रोगका भास होता है और अधोगत अम्लपित्तमें अतिसारकीसी चेष्टा मालूम होती है, इसीसे वैद्य को मोह होता है । इसी से वैद्यको इस रोग की चिकित्सा बड़ी बुद्धिमानी से विचार पूर्वक करनी चाहिये ॥

वातयुक्त अम्लपित्तके लक्षण कहते हैं ।

कंपप्रलापमूर्च्छाचिमिचिमिगात्रावसादशूलानि ॥
तमसो दर्शनविभ्रमप्रमोहहर्षाण्यनिलकोपात् ॥९॥

भाष-वातके कोपसे हुए अम्लपित्तमें कंप प्रलाप, मूर्च्छा, चिमचिमाहट शरीरमें ग्लानि, पेट दूखना नेत्रोंके आगे अँधकार दीखे, भ्रांति इन्द्रियमन का मोह, तथा रोमांच खड़े होना यह लक्षण होते हैं ॥

कफयुक्त अम्लपित्तके लक्षण कहते हैं ॥

कफनिष्ठीवनगौरवजडताऽरुचिशीतसादवमिलेपाः ॥
दहनबलसादकंडूनिद्रा चिह्नं कफानुगते ॥१०॥

भाषा—कफके अनुगत अम्लपित्तमें कफको थूके शरीरमें भारापन अत्यंत जड़पना, अरुचि ठण्डलगना अंगमें ग्लानि, वमन, मुख लिहसासा रहे मंदाग्नि और बलका नाश होना, खुजली और निद्रा ये लक्षण होते हैं ॥

वातकफयुक्त अम्लपित्तके लक्षण कहते हैं ॥

उभयमिदमेव चिन्हं मारुतकफसंभवे भवत्यम्ले ॥

तिक्ताम्ल कटुकोद्गार हृत्कुक्षिकंठ दाहकृत् ॥११॥

भाषा-वातकफसे उत्पन्नहुए अम्लपित्तमें ऊपर कहेहुए दोनोंके लक्षण कडुवी खट्टी चिरपरी डकार आना हृदय कूख कंठ इनमें जलन होना यह चिह्न होते हैं ।

कफपित्तके लक्षण कहते हैं ।

भ्रमो मूर्च्छाऽरुचिश्छर्दिरालस्यं च शिरोरुजा ॥
प्रसेको मुखमाधुर्यं श्लेष्मपित्तस्य लक्षणम् ॥१२॥

भाषा—भ्रम, मूर्च्छा,अरुचि, वमन आलस्य, मस्तकपीड़ा, मुखसे पानी बहना मुखमें मीठापन ये कफपित्तयुक्त अम्लपित्तके लक्षण होते हैं ॥

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सुरिसूनु शा० सोहनलाल विद्याभूषण
विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकाया
मम्लपित्त निदानं समाप्तम् ।

अम्लपित्तसे उत्पन्न होनेवाली छर्दिके वेग रोकनेसे रक्तकी खराबी होने पर विसर्प रोगकी उत्पत्ति के कारण की समानता से अम्लपित्त के अनन्तर विसर्प निदान कहते हैं ।

॥ अथ विसर्पनिदानम् ॥

उसकी निदान पूर्वक संख्यारूप संप्राप्ति और निरुक्ति कहते हैं ।

लवणाम्लकटूष्णादिसंसेवादोषकोपतः ॥
विसर्पः सप्तधा ज्ञेयः सर्वतः परिसर्पणात् ॥१॥

भाषा—नोंनका, खट्टा, कडुआ, गरम आदि पदार्थ सेवन करनेसे वातादि दोषोंका कोप होकर सात प्रकारका विसर्प रोग होता है वह सर्व जगह फैल जाय, इसीसे इसको विसर्प कहते हैं ।

विसर्प की निरुक्ति चरकसे ।

विविधंसर्पतियतो विसर्पस्तेनसः स्मृतः ॥
परिसर्पोऽथवानाम्ना सर्वत परिसर्पणात् ॥

भाषा—अनेक प्रकार से जिस रोगकी फैलावट हो इससे वह विसर्प कहा है चारों तरफ को फैलने से उसको परिसर्प भी कहते हैं ॥

पृथक् त्रयस्त्रिभिश्चैको विसर्पा द्वन्द्वजास्त्रयः ॥
वातिकः पैत्तिकश्चैव कफजः सन्निपातिकः ॥२॥
चत्वारएते वीसर्पावक्ष्यन्ते द्वन्द्वजास्त्रयः ॥
आग्नेयो वातपित्ताभ्यां ग्रन्थ्याख्यः कफवातजः ॥
यस्तुकर्दमकोघोरः सपित्तःकफसम्भवः ॥

भाषा—पृथक् २ दोषोंसे तीन सन्निपातसे एक द्वन्द्व से ३ विसर्प इस प्रकार सात होते हैं वातका पित्तका कफका सन्निपात का चारतो ये और वातकफका पित्तकफका और वातपित्तका यह तीन इस प्रकार सात होते हैं वातपित्तसे आग्नेयनाम विसर्प और कफवातसे ग्रन्थि नामक और पित्तकफसे घोर कर्दम नाम विसर्प होता है ॥

सर्व प्रकारके विसर्प रक्तादिक चार दूष्य और वातादि तीन दोष इनसे होते हैं सो कहते हैं।

रक्तं लसीकात्वङ्मांसं दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः ॥४॥
विसर्पाणां समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्त धातवः ॥

भाषा–रुधिर, मांसका जल, त्वचा, मांस ये दूष्य हैं और वातादि तीन दोष ये सात धातु विसर्प के उत्पन्न होने के कारण हैं ॥

वात विसर्प के लक्षण कहते हैं।

तत्र वातात्सवीसर्पो वातज्वरसमव्यथः ॥५॥
शोफस्फुरणनिस्तोदभेदायासार्तिहर्षवान् ॥

भाषा–वातसे जो विसर्प होता है उसके लक्षण वातज्वरके समान होते हैं तथा उसमें सूजन, फरकना, नोंचनेकीसी पीड़ा, तोड़नेकीसी पीड़ा, दर्द और रोमांच खड़े हों तथा वह विसर्प लंबा होता है ॥

पित्त विसर्प के लक्षण कहते हैं।

पित्ताद् द्रुतगतिः पित्तज्वरलिंगोऽतिलोहितः ॥

भाषा—पित्तके विसर्पकी गति शीघ्र होय अर्थात् वह जल्दी फैलजाय यथा पित्तज्वरके लक्षण इनमें मिलते हों तथा अत्यन्त लालहोता है ॥

कफविसर्प के लक्षण कहते हैं।

कफात्कंडूयुतः स्निग्धः कफज्वरसमानरुक् ॥

भाषा-कफको विसर्प में खुजली बहुत होय तथा चिकना हट होंय और उसमें कफज्वरकीसी पीड़ा होती है ॥

सन्निपात विसर्प के लक्षण कहते हैं ।

सन्निपातसमुत्थश्च सर्वरूपसमन्वितः ॥७॥

भाषा-सन्निपातजन्य विसर्पमें जो वातादिकोंके लक्षणकहेहैं वे सबहोतेहैं ।

अग्नि विसर्प के लक्षण कहते है ।

वातपित्ताज्वरच्छर्दिमूर्च्छातिसारतृड्भ्रमैः ॥
अस्थिमंदाग्निसदनतमकारोचकैर्युतः ॥८॥
करोति सर्वमंगं च दीप्तांगारावकीर्णवत् ॥
यं यं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेच्च सः ॥९॥
शा[illegible]ो नीलो रक्तो वाऽशुचचीयते ॥
अग्[illegible]इव स्फोटैः शीघ्रगत्वाद् द्रुतं च सः ॥१०॥
मर्मानु[illegible]री वीसर्पः स्याद्वातोतिबलस्ततः ॥
व्यथतोंग हरेत्संज्ञां निद्रां च श्वासमीरयेत् ॥११॥
हिक्कां च सततोऽवस्थामीदृशीं लभते न ना ॥
क्वचिच्छर्मारतिग्रस्तो भूमिशय्यासनादिषु ॥१२॥
चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहसमुद्भवाम् ॥
दुर्बोधश्चाश्नुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प उच्यते ॥१३॥

भाषा-वात पित्तसे उत्पन्न विसर्प, ज्वर, वमन, मूर्च्छा, अतिसार, प्यास, घुमेर, हड़फूटन, मदाग्नि, अँधेरा छाजाना अरुचि इन लक्षणोंसे युक्त हुआ सब शरीरको जले हुए अंगारों से घिरा हुआ सा करे अर्थात् सब शरीर अगारोंसे भरासा मालूम होय जिस २ जगह वह विसर्प फैले उसी उसकी जगह ठण्डे अंगारके समान काला, लीला, लाल हो शीघ्र वृद्धिको प्राप्तहो सूजे, अग्नि के जले हुए फफोलों के तुल्य शीघ्र गति होनेसे जल्दी हृदय में जाकर मर्मानुसारी विसर्प होय अथवा वह अत्यन्त बलवान् होय अर्थात् अंगोंको व्यथा करै, संज्ञा और निद्राका नाश करै और श्वासको बढ़ावे तथा हिचकी बढ़ावे ऐसी मनुष्यकी अवस्था होती है इस अवस्थाको प्राप्त हुआ पृथ्वी

शय्या,आसन इत्यादिकोंमें कभी सुखको प्राप्त नहीं होता उसका किसी बात में मन नहीं लगता हलने चलनेसे क्लेश होय, मन तथा देहको क्लेश जिस को होवे संज्ञा जिसकी जाती रहे निद्रा मरणरूपी निद्रा कों प्राप्त होय इस रोगको आग्नि विसर्प कहते हैं ॥

ग्रन्थि विसर्प के लक्षण कहत है ।

कफेन रुद्धः पवनो भित्त्वा तं बहुधा कफम् ॥
रक्तं च वृद्धरक्तस्य त्वक्शिरास्नायुमांसगम् ॥१४॥
दूषयित्वा च दीर्घाणुवृत्तस्थूलखरात्मनाम् ॥
ग्रन्थीनां कुरुते मालां रक्तानां तीव्ररुग्ज्वराम् ॥१५॥
श्वासकासातिसारास्यशोषहिक्कावमिभ्रमैः ॥
मोहवैवर्ण्यमूर्च्छांगभंगाग्निसदनैर्युताम् ॥१६॥
इत्ययंग्रन्थिवीसर्पः कफमारुतकोपजः ॥

भाषा-अपने कारण विशेष से कोपको प्राप्त हुए कफसे रुका हुआ वायु उसकफको बहुत प्रकारसे भेदकर और बढ़े हुए रक्तको भेदकर त्वचा, नस, नाड़ी और मांस इनसे प्राप्तहो और इनको दुष्ट कर लम्बी, छोटी, गोल, मोटी, खरदरी, लाल गांठोंकी माला पैदा करे। उन गांठोंमें पीड़ा, अधिक होय, ज्वर होय, श्वास, खांसी, अतिसार, मुखका सुखना, हिचकी, वमन मोह रंग बदलना, मूर्च्छा अंगोंका टूटना, मंदाग्नि इन लक्षणोंसे युक्त वह ग्रन्थि माला होती है। इस रोगको ग्रन्थिविसर्प कहते हैं। यह कफवायुके कोपसे उत्पन्न होता है। सुश्रुतमें इसको अपची इस नाम से पढ़ते हैं ॥

कर्दमविसर्प के लक्षण कहते हैं।

कफपित्ताज्ज्वरस्तंभो निद्रा तंद्रा शिरोरुजः ॥१७॥
अंगावसादविक्षेपौप्रलोपारोचकभ्रमाः ॥
मूर्च्छाग्निहानिर्भेदोऽस्थ्नां पिपासेन्द्रियगौरवम् ॥१८॥
आमोपवेशनं लेपः स्रोतसां स चसर्पति ॥
प्रायेणामाशयं गृह्णन्नेकदेशं न चातिरुक् ॥१९॥

पिंडकैरवकीर्णोऽतिपीतलोहितपांडुरैः ॥
स्निग्धोऽसितो मेचकाभो मलिनः शोथवान् गुरुः॥२०॥
गंभीरपाकः प्राज्योष्मा स्पष्टः क्लिन्नोऽवदीर्यते ॥
पंकवच्छीर्णमांसश्च स्पष्टस्नायुशिरागणः ॥२१॥
शवगंधी च वीसर्पं कर्दमाख्यमुशंति तम् ॥

भाषा—कफपित्तसे ज्वर, अंगोंका जिकड़बंद होना नींद झपनी, माथे में दर्द अंगमें ग्लानि, हाथ पैरोंका फड़कना, अनर्थवाद करना, अरुचि, घुमेर मूर्च्छा, मन्दाग्नि, हड़फूटन, प्यास, इन्द्रियोंमें भारापन, आमका गिरना, मुखादि स्रोतों (छिद्रों) में कफका लेप इत्यादि लक्षण होते हैं। तथा वह विसर्प आमाशयमें उत्पन्न हो पीछे सर्वत्र फैले, उसमें पीली, तामेके रंगकी सफेद रंगकी पिड़िका होय तथा वह विसर्प चिकनी, स्याहीके समान काली मलिन, सूजनयुक्त, भारी, गंभीरपाक कहिये भीतरसे पकीहो। उसमें घोर दाह हो और यह दवाने से तत्क्षण गीली हो जाय तथा वह फटजाय तथा नीचके समान होकर उसका मांस गलजाय। उसमें शिरा नाड़ी (नस) दीखने लगे, उसमें मुर्देकीसी वास आवे, इस विसर्पको कर्दम कहते हैं ॥

क्षतज विसर्प के लक्षण कहते हैं ॥

बाह्यहेतोः क्षतात्क्रुद्धः सरक्तं पित्तमीरयन् ॥२२॥
विसर्पं मारुतः कुर्यात् कुलित्थसदृशैश्चितम् ॥
स्फोटैः शोथज्वररुजा दाहाढ्यं श्यावशोणितम् ॥२३॥

भाष-बाह्य कारणोंसे घाव से कुपित हुआ वायु वह रुधिर स. हित पित्तको व्रणमें प्राप्त करे विसर्परोग उत्पन्न करे। उसमें कुल्थीके समान श्यामवर्णके फोड़े होते हैं। सूजनहो, ज्वरहो, और दाह होय। उसका रुधिर काला निकले यह विसर्पको पित्तविसर्प के अन्तर्गत जानना चाहिये इससे विरोध नहीं पड़ता जैसा भोज ने ''शस्त्रप्रहारै स्तैस्तैस्तु व्याड दन्तनखैरपि ॥ क्षतेवाप्यथवाभग्नेवहुदोषस्य देहिनः॥ रक्तं पित्तंच कुपितं व्रण माशु प्रपद्यते ॥ कुरुतस्ते समेतेतु व्रणशोथंसुदारुणम् ॥ आचित्ततनुविस्फोटैः कृष्णैः पीतक सन्निभैः ॥ पित्त वीसर्प वल्लिंगं तस्य शेषं विनिर्दिशेत् ॥ कहा है ग्रन्थवि. स्तार भयसे अथ नहीं दिया है ॥

विसर्पों के उपद्रव कहते हैं ॥

ज्वरातिसारौ वमथुस्त्वङ्मांसदरणं क्लमः ॥
अरोचकाविपाकौ च विसर्पाणामुपद्रवाः ॥२४॥

भाषा-ज्वर, अतिसार, वमन, त्वचा व मांसका गलना, थकावट होना, अरुचि, अन्नका न पचना ये विसर्प रोगके उपद्रव जानने चाहिये ॥

साध्यअसाध्य लक्षण कहते हैं ।

सिध्यंति वातकफपित्तकृता विसर्पाः सर्वात्मकाः क्षतकृतश्च न सिद्धिमेति ॥ पित्तात्मकोऽञ्जनवपुश्च भवेदसाध्यः कृच्छ्राश्च मर्मसु भवंति हि सर्व एव ॥ २५ ॥

भाषा—वात, कफ पित्त इनसे उत्पन्न जो विसर्प वह साध्यहोते हैं। सन्निपातजन्य और क्षतजन्य विसर्प सिद्ध नहीं होताहै पित्तसे उत्पन्न हुआ विसर्प जिसका काजलक समान अंगहोय वह असाध्य और जो विसर्पमर्म स्थान परहोतेहैं वे सर्व (१) कष्टसाध्यहोते हैं ॥

इति श्रीवैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसुनु शा० सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां विसर्परोग निदानं समाप्तम् ॥

अथ विस्फोटक निदानम् ।

उसके लक्षण कहते हैं ।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्षारैरजीर्णाध्यशनातपैश्च ॥
तथर्तुदोषेण विपर्ययेण कुप्यंति दोषाः पवनादयस्तु ॥१॥
त्वचमाश्रित्य ते रक्तं मांसास्थीनि प्रदूष्य च ॥
घोरान् कुर्वन्ति विस्फोटान् सर्वान् ज्वरपुरःसरान् ॥२॥

भाषा-कडुए, खट्टे, तीखे, गरम दाह करने वाले, रूखे, खारी, अजीर्ण, भोजनके ऊपर भोजन, और गरमी, तथा ऋतुदोष जैसे शीतोष्णका अतियोग

(१) यदाह भोजः-वर्ज्यस्तु क्षतजस्तेषों सन्निपातात्तुयोभवेत् ॥ भिषजा जानतात्या-ज्यः सर्व एवतु मर्मजः ॥

अथवा ऋतु विपर्यय (ऋतुका बदलना) इन कारणोंसे वातादि दोष कुपित हों त्वचाका आश्रय कर रुधिर, मांस और हड्डी इनको दूषित कर भयंकर विस्फोटक (फोड़ा) पैदा करतेहैं। उनमें उत्पन्न होनेसे पूर्व ज्वर पैदा होताहै ॥

विस्फोटकोंके स्वरूपके लक्षण कहते हैं।

अग्निदग्धनिभाः स्फोटाः सज्वरा रक्तपित्तजाः ॥
क्वचित्सर्वत्र वा देहे विस्फोटा इति ते स्मृताः ॥३।

भाषा–ऐसे आग्निसे जरेके तुल्य फोड़ा ज्वर सहित अगंमें किसी एक जगह सब देहमें होय उनको विस्फोटक ऐसा कहते हैं वह रक्त पित्तसे पैदा होतेहैं यहां रक्तपित्तजा जो ऐसा पाठहै सो सब जगहही विस्फोकटमें रक्तपित्तकी अव्य' भिचारताहै अर्थात् इनको कभी फोड़ोंसे सम्बन्ध अलग नहीं होता जैसा देहमें वायु किसी न किसी रूपमें अवश्य रहता है उसको वहां व्यभिचार नहीं होता। यहां पर वायु काभी अनुबन्ध जानना जैसा भोजने (१) कहाहै।

वात विस्फोटके लक्षण कहते हैं।

शिरोरुक् शूलभूयिष्ठं ज्वरतृट्पर्वभेदनम् ॥
सुकृष्णवर्णता चेति वातविस्फोटलक्षणम् ॥४॥

भाष-माथे में पीड़ा बहुत दर्दहोना, देहमें ज्वर, प्यास, संधियों में पीड़ा, फोड़ोंका रंगकाला होना ये वातविस्फोटके लक्षण होते हैं ॥

पित्तविस्फोटके लक्षण कहते हैं।

ज्वरदाहरुजास्रावपाकतृष्णाभिरन्वितम् ॥
पीतलोहितवर्णं च पित्तविस्फोटलक्ष्म ॥५॥

भाषा–ज्वर, दाह, पीड़ा; स्राव, फोड़ोंका पकना, प्याससे युक्त देहका रंग पीला अथवा लालवर्ण हो ये पित्तविस्फोटके लक्षण जानने ॥

कफविस्फोट के लक्षण कहते हैं।

छर्द्यरोचकजाड्यानि कंडूकाठिन्यपांडुताः ॥
अवेदनश्चिरात्पाकी स विस्फोटः कफात्मकः ॥६॥

भाषा-वमन. अरुचि जड़ता खुजलीयुक्त फोड़ाहोना कठिन और पीलापन

(१) "यदा रक्तं च पित्तं च वातेनानुगतं त्वचि। अग्निदग्धनिभान् स्फोटान् कुरुतः सर्वदेहगान् सज्वरान् सपरीदाहान् ॥ विद्याद्विस्फोटकांस्तु तान्" इति।

और उनमें पीड़ा न होय और वे बहुत कालमें पक यह विस्फोटक कफका जानै।

वातपित्तात्मक विस्फोटक के लक्षण कहते हैं ।

वातपित्तकृतो यस्य कुरुते तीव्रवेदनाम् ॥

भाषा-वातपित्तकाविस्फोटक जिसकें हो उसके तीव्र पीड़ा करता है ॥

कफवातात्मकके लक्षण कहते हैं ।

कंडूस्तैमित्यगुरुभिर्जानीयात्कफवातिकम् ॥

भा षा-खुखली, गीलापन, भारीपना इन लक्षणोंसे कफावातको विस्फोट जानना ।

कफ पित्तात्मकके लक्षण कहते हैं ।

कंडूर्दाहो ज्वरश्छर्दिरेतैस्तु कफपैत्तकः ॥

भाषा-खुजर, दाह, ज्वर, और वमन, इन लक्षणों से युक्त कफ पित्त जन्य विस्फोटक जानना ।

सन्निपातविस्फोट के लक्षण कहते हैं ।

मध्ये निम्नोन्नतोऽन्ते च कठिनोऽल्पप्रपाकवान् ॥८॥
दाहरोगतृषामोहच्छर्दिमूर्च्छारुजो ज्वरः ॥
प्रलापो वेपथुस्तन्द्रा सोऽसाध्यश्च त्रिदोषजः ॥९॥

भाषा-जो फोड़ा बीचमें नीचा होय और ओरपाससे ऊँचा होय कठिन थोड़ा पका होय । तथा जिसमें दाह, अंगमें लाली, प्यास मोह, वमन मूर्च्छा, पीडा, ज्वर, प्रलाप, तन्द्रा ये लक्षण होते हैं वह सन्निपात का विस्फोट असाध्य होता है ॥

रक्तज विस्फोटके लक्षण कहते हैं ॥

रक्ता रक्तसमुत्थाना गुंजा विद्रुम सन्निभाः ॥
वेदितव्यास्तु रक्तेन पैत्तिकेन च हेतुना ॥१०॥
न ते सिद्धिं समायांति सिद्धैर्योगशतैरपि ॥

भाषा-रक्त से उत्पन्न हुआ विस्फोट तामे के रंगका गुंजाके समान वा मूंगे के जैसा लालहो वह रुधिरके दुष्ट होनेस अथवा पित्तके दुष्ट होनेसे होते है। वह सैकडों अनुभव किये औषधके योगों से भी सिद्ध नहीं होते हैं ।

इसके साध्यासध्य का विचार कहते हैं ।

एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः

सर्वदोषोत्थितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥॥११

भाषा-एकदोषसे उत्पन्नहुआ जो विस्फोट वह साध्यहै । द्विदोषका कष्ट साध्य है और सर्व लक्षणयुक्त होय वह भयंकर तथा असाध्य है और जिसमें उपद्रव बहुत होय वह विस्फोट भी असाध्य है ॥

इतिश्री वैद्यराज झल्लास्वामिसूरिसूनु शा० सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां विस्फोटक निदानं समाप्तम् ।

॥ अथ मसूरिकानिदानम् ॥

मसूरिकाके कारण और संप्राप्ति कहते हैं ॥

कट्वम्ललवणक्षारविरुद्धाध्यशनाशनैः ॥

दुष्टनिष्पावशाकाद्यैःप्रदुष्टपवनोदकैः ॥१॥

क्रूरग्रहेक्षणाच्चापि देशे दोषाः समुद्धताः ॥

जनयंति शरीरेऽस्मिन्दुष्टरक्तेन संगताः ॥२॥

मसूराकृतिसंस्थानाः पिडिकाः स्युर्मसूरिकाः ॥

भाषा—कडुए, खट्टे नोंनके, खारी, विरुद्ध भोजन, भोजन के ऊपर भोजन, दुष्ट अन्न, (शिंबीबीज, उरद, मूंग) आदि शाक, विषैले फूल, आदिसे मिला पवन तथा जल, शनैश्चरादि खोटे ग्रहोंका देखना इन सब कारणोंसे शरीरमें वातादि दोष कुपित होकर दुष्ट रुधिरमें मिलकर मसूर के समान देहमें अनेक मरोरी उत्पन्न करे, उनको मसूरिका (१) ऐसा कहते हैं । "दुष्टरक्तेन संगता" इसरुधिरका कटु अम्लादि हेतुकरके विशेष कोपदिखाया इसीसे और ग्रन्थोंमें पित्त शोणितसंसृष्टं यदा दूषयति त्वचम् ॥तदा करोति पिडिकाः सर्वगात्रेषु देहिनाम् ॥ मसूरमुद्गमाषाणां तुल्यः कालोपमा इति ॥ मसूरिकास्तु ता ज्ञेयाः पित्तरक्ताधिका बुधैः " इस प्रकार लिखा है ॥

(१) इसको कोई शीतला व माता ऐसा भी कहते हैं ॥

मसूरिकाके पूर्व लक्षण कहते हैं ।

तासां पूर्वं ज्वरः कंडूर्गात्रभंगोऽरुचिर्भ्रमः ॥३॥
त्वचि शोफः सवैवर्ण्यो नेत्ररागस्तथैव च ॥

भाषा-उनके पहिले ज्वर होय खुजली चले, देहमें फूटनी होय किसी बात की इच्छा न होय घुमेर होय, अंगके ऊपरकी त्वचामें सूजन होय तथा रंग बदलजाय, नेत्र लाल होवे ये उनके पूर्वरूप होते हैं ॥

वातकी मसूरिकाके लक्षण कहते हैं ।

स्फोटाः कृष्णारुणा रूक्षास्तीव्रवेदनयान्विताः ॥४॥
कठिनाश्चिरपाकाश्च भवंत्यनिलसंभवाः ॥
संध्यस्थिपर्वणां भेदः कासः कंपोऽरतिः क्लमः ॥५॥
शोषस्ताल्वोष्ठजिह्वानां तृष्णा चारुचिसंयुता ॥

भाषा-वातसे उत्पन्न मसूरिकाके फोड़ा काले, लाल और रूखे होतेहैं । वे तीव्र पीड़ा युक्त होते हैं कठिन होते हैं शीघ्र पके नहीं, इसके योग से संधि, हाड और पर्वों में फोड़नेकीसी पीडा होती है खांसी, कंप, चित्त स्थिर नहीं होता बिना परिश्रमके श्रम होता है तालु होठ और इनका सूखना प्यास अरुचि इनसे युक्त होय है यह उसके लक्षण है ॥

पित्तकी मसूरिकाके लक्षण कहते हैं ॥

रक्ताः पित्ताः सिताः स्फोटाः सदाहास्तीव्रवेदनाः ॥६॥
भवंत्यचिरपाकाश्च पित्तकोपसमुद्भवाः ॥
विड्भेदश्चांगमर्दश्च दाहतृष्णाऽरुचिस्तथा ॥७॥
मुखपाकोऽक्षिपाकश्च ज्वरस्तीक्ष्णः सुदारुणः ॥

भाषा-लाल पीली सफेद दाह सहित तथा बहुत पीड़ावाली और शीघ्र पकें । ऐसी मसूरिका पित्तके कोपसे उत्पन्न जानें उनमें मल पतला होय अंग टूटे दाह प्यास अरुचि. मुखपाक और नेत्रपाक होय,ज्वर तीव्र हो ये लक्षण होते हैं ॥

रक्तजन्य मसूरिकाके लक्षण कहते हैं ।

रक्तजायां भवंत्येते विकाराः पित्तलक्षणाः ॥८॥

भाषा—रक्तजन मसूरिकामें पित्तजन मसूरिकाके लक्षण जैसे विकार होतेहैं ।

कफजन्य मसूरिकाके लक्षण कहते हैं ।

कफप्रसेकः स्तैमित्यं शिरोरुग्गात्रगौरवम् ॥
हृल्लासः सारुचिर्निद्रा तंद्रालस्यसमन्विता ॥९॥
श्वेताः स्निग्धाः भृशं स्थूलाः कंडूरा मंदवेदना ॥
मसूरिका कफोत्थाश्च चिरपाकाः प्रकीर्तिताः ॥

भाषा-कफका गिरना अंगमें गीले कपड़े से बंधासा तथा मस्तकमें शूल. और शरीरमें भारापन उवाकी अरुचि, निद्रा, झपनी आलस्य इनसे युक्त होय । और फोड़ा सफेद, चिकने, अत्यंत मोटे इनसे खुजली बहुत चले पीड़ा मंद होय और वे बहुत दिनमें पके यह कफजन्य मसूरिका कही हैं । यह उसके लक्षण जाने ॥

त्रिदोषजन्य मसूरिका के लक्षण कहते हैं ।

नीलाश्चिपिटविस्तीर्णा मध्ये निम्ना महारुजः ॥
चिरपाकाः पूतिस्रावाः प्रभूताः सर्वदोषजाः ॥

भाषा-नीले, चिपटे, लम्बे बीचमे नीचे ऐसे जिसमें फोड़े होंय उनमें पीड़ा अत्यंत होयें तथा वे बहुत दिनमें पकें और उनमें से दुगधयुक्त स्राव होय वे फोड़े बहुत होंय ऐसी त्रिदोषजन्य मसूरिका कही हैं ॥

चर्म संज्ञक पिड़िका के लक्षण कहते हैं ।

कंठरोधोऽरुचिस्तंद्राप्रलापारतिसंयुताः ॥
दुश्चिकित्स्याः समुद्दिष्टाः पिड़िकाश्चर्मसंज्ञिताः १२

भाषा-जिस फोड़े के होनेसे कण्ठ रुक जाय, अरुचि, तन्द्रा, प्रलाप चैन पड़ै ये लक्षण होंय । जिनकी औषधि नहीं हो सके ऐसी चर्म संज्ञक पिडिका कही है ॥

रोमांतिक क लक्षण कहते हैं ।

रोमकूपोन्नतिसमा रागिण्यः कफपित्तजाः ॥
कासारोचकसंयुक्ता रोमांत्यो ज्वरपूर्विकाः ॥२३॥

भाषा-कफ पित्तसे उत्पन्न केशों (बालों) के छिद्रक समान बारीक और लाल ऐसी मसूरिका होय । इनक होनेसे खांसी अरुचि होय तथा इनके होनेसे पहिले ज्वर होय । इनको रोमांती ऐसा कहते हैं ।

रसादि सप्तधातुगत मसूरिका के लक्षण कहते हैं।

तहां रसगत मसूरिकाओंके लक्षण कहते हैं।

तोयबुद्बुदसंकाशास्त्वग्गताश्च मसूरिकाः॥
स्वल्पदोषाः प्रजायंते भिन्नास्तोयं स्रवंति च ॥१४॥

भाषा-रसमेंप्राप्त मसूरिकापानीके बबूलाके सदृशहों इनके फूटनेसेपानी बहे यह त्वग्गत मसूरिकाकही है। इसका कारण दोषका थोड़ा होना है॥

रक्तगत मसूरिकाके लक्षण कहते हैं।

रक्तस्था लोहिताकाराः शीघ्रपाकास्तनुत्वचः॥
साध्या नात्यर्थदुष्टाश्च भिन्ना रक्तं स्रवंति च ॥१५॥

भाषा-रक्तमेंस्थित मसूरिका तामेके रंगकी. जलदी पकने वाली होतीहैं। ऊपरकी त्वचा इनकी पतली होती है। यह अत्यंत दुष्टन होनेसे साध्य होय और यह फूटने पर रक्त को छोड़तीहै॥

मांसगत मसूरिकाके लक्षण कहते हैं।

मांसस्थाः कठिनाः स्निग्धाश्चिरपाका घनत्वचः॥
गात्रशूलतृषाकंडूज्वरारतिसमन्विताः ॥१६॥

भाषा-मांसमेंस्थित मसूरिका कठिन,चिकनी,बहुत दिनमें पकैतथाइसकी त्वचा घनी मोटी होय, अंगमें शूल होय, प्यासलगे खुजारचले और किसी चीज़की इच्छा नहो इस प्रकार के लक्षण युक्त होती हैं॥

मेदोगत मसूरिका के लक्षण कहते हैं।

मेदोजा मंडलकारा मृदवः किंचिदुन्नताः॥
घोरज्वरपरीताश्च स्थूलाः स्निग्धाः सवेदनाः ॥१७॥
संमोहारतिसंतापाः कश्चिदाभ्यो विनिस्तरेत्॥

भाषा-मेदोजन्य जा मसूरिका वह मंडलके आकार अर्थात् गोल होय नरम, कुछ ऊँची मोटी तथा चिकनी तथा वेदना से युक्त होती हैं और भयंकर ज्वर युक्त इन्द्रिय मनको मोह, किसी चीजकी इच्छा न होना और संताप ये लक्षण होतेहैं।इन मसूरिकाओंसे काई मनुष्यबचे इसमें यह मालुम होता है कि यह अत्यंत कच्छ्रसाध्य है॥

अस्थिमज्जागतके लक्षण कहते हैं ।

क्षुद्रागात्रसमारूक्षाश्चिपिटाःकिंचिदुन्नताः ॥१८॥
मज्जोत्था भृशसंमोहवेदनारतिसंयुताः ॥
छिंदंति मर्मधामानि प्राणानाशु हरंति ताः ॥ १९॥
भ्रमरेणेव विद्धानि कुर्वंत्यस्थीनि सर्वतः ॥

भाषा—अस्थिमज्जागत मसूरिका देहके समान, रूखी चिपटी, कुछ ऊँची होती है, अत्यंत चित्तविभ्रम, पीड़ा अस्वस्थता होना इन लक्षणों से युक्त होती है मर्मस्थानोंको भेदकरके शीघ्र वह प्राण हरण करतीहै भौंरे के काटनेके तुल्य सब प्रकार से इसमें हड्डियां पीड़ायुक्त होती हैं ॥

शुक्रगत मसूरिकाके लक्षण कहते हैं ।

पक्वाभाः पिडिकाः स्निग्धाःश्लक्ष्णाश्चात्यर्थवेदनाः२०॥
स्तैमित्यारतिसमोहदाहोन्मादसमन्विताः
शुक्रजायां मसूर्यां तु लक्षणानि भवंति च ॥२१॥
निर्दिष्टं केवलं चिह्नं दृश्यते तनु जीवितम् ॥
दोषमिश्रास्तुसप्तैता द्रष्टव्या दोषलक्षणैः॥२२॥

भाषा—शुक्रसे उत्पन्न हुई मसूरिका पकेके समान, चिकनी, चमकदार पीड़ायुक्त होती है गीले कपड़े से बंधासा देह,किसी बातकी इच्छा न होना मोह, दाह, उन्माद इन लक्षणोंसे युक्त होती है शुक्रजन्य मसूरिकामें यह चिह्न होते हैं परन्तु यह केवल लक्षण कहे हैं इनमें कोई बचने का आसार नहीं दीखता हैं इस से यह असाध्य है यह सप्तधातुगत मसूरिका वातादिकोंके लक्षणों से तीन दोषोंसे मिलकर प्रगट हुई जाने ॥

इसमें जो साध्य हैं उनको कहते हैं ।

त्वग्गता रक्तजाश्चैव पित्तजाः श्लेष्मजास्तथा ॥
पित्तश्लेष्मकृताश्चैव सुखसाध्या मसूरिकाः॥२३॥

भाषा-रसगत, रक्तजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य पित्तकफजन्ययें मसूरिका सुखसाध्य है । यह बिना औषधके भी मनुष्यके शांत होजाती है ॥

जो कष्टसाध्य हैं उनको कहते हैं।

वातजा वातपित्तोत्था वातश्लेष्मकृताश्च याः॥
कृच्छ्रसाध्या मतास्तास्तु यत्नादेता उपाचरेत् ॥२४॥

भाषा-वातजन्य वात पित्तजन्य वातकफजन्य जो मसूरिकासो कष्टसाध्य कही है यह यत्नसे चिकित्सा करने योग्य होती है॥

असाध्य मसूरिकाके लक्षण कहते हैं।

असाध्याः सन्निपातात्थास्तासां वक्ष्यामि लक्षणम्॥
प्रवालसदृशाः काश्चिकाश्चिज्जंबूफलोपमाः ॥२५॥
लोहजालसमाः काश्चिदतसीफलसन्निभाः॥
आसां बहुविधा वर्णा जायन्ते दोषभेदतः ॥२६॥

भाषा-सन्निपात से उत्पन्न हुईमसूरिका असाध्यहैं उनके लक्षण कहूंगा कोई मूंगाके समान लाल होंय कोई जामन के समान और कोई लोहजाल के समान तथा अलसीके फलके तुल्य होती हैं। दोष भेदसे इनके अनेक प्रकार के लक्षण होते हैं॥

सर्व मसूरिकाके अवस्थाविशेषसे लक्षण कहते हैं।

कासो हिक्का प्रमोहश्च ज्वरस्तीव्रःसुदारुणः॥
प्रलापश्चारतिर्मूर्च्छा तृष्णा दाहोऽतिर्घूणता ॥२७॥
मुखेन प्रस्रवेद्रक्तं तथा घ्राणेन चक्षुषा॥
कण्ठे घुर्घुरकं कृत्वा श्वसित्यत्यर्थवेदनम्॥ २८॥
मसूरिकाभिभूतस्य यस्यैतानि भिषग्वरैः॥
लक्षणानिचदृश्यन्ते नदद्यादत्र भेषजम् ॥२९॥
मसूरिकाभिभूतो यो भृशं घ्राणेन निःश्वसेत्॥
सभृशं त्यजति प्राणांस्तृष्णार्तो वायुदूषितः॥ ३०॥

भाषा-खांसी हिचकी, मोह, दारुण तीव्रज्वर, प्रलाप, किसी पदार्थकी इच्छा होना मूर्च्छा, प्यास, दाह, नेत्र टेढ़ें, तिरछे हों, थके हों फटेसे हो ये लक्षण होते हैं। मुख, नाक और नेत्र से उसके रुधिर गिरे कंठ में घुरघुर

शब्द होय और श्वास ले और भयंकर वेदना युक्त हो। मसूरिका रोगवाले जिस रोगीके यह दीखे वैद्य वहां दवा न देवे ॥ जो मसूरिका पीडित रोगी केवल नाकके द्वारा श्वास लेय वह पुरुषतथा तृषासे पीडित हुआ वायु जिसका दूषित होगया हो वह तत्काल प्राण त्याग करदेता है ॥

मसूरिकाके उपद्रव कहते हैं।

मसूरिकांते शोथः स्यात्कूर्परे मणिबंधके ॥
तथांसफलके वापि दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः ३१ ॥

भाषा-मसूरिका के अंतमें कूर्परमें पहुँचेमेंतथा कंधों में सूजन होय। तो वह दुश्चिकित्स्य है और अत्यंत कठिन है ॥

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसूनु शा० सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां मसूरिका निदानं समाप्तम् ।

॥ अथ क्षुद्ररोगनिदानम् ॥

अजगल्लिका का लक्षण कहते हैं ॥

स्निग्धाः सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसन्निभाः ॥
कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिका ॥१॥

भाषा-चिकनी, त्वचाके रंगके तुल्य वर्ण होय, गांठसी बँधीहुई पीड़ा जिसमें न होय तथा मूगके तुल्य जो बालकोंके कफवात से उत्पन्न पिड़िका होय उसको अजगल्लिका है ऐसे जाननी ॥

यव प्रख्याके लक्षण कहते हैं ॥

यवाकारा सुकठिना ग्रथिता मांससंश्रिता ॥
पिडिका श्लेष्मवाताभ्यां यवप्रख्येति सोच्यते ॥ २ ॥

भाषा—जौके आकार वाली कठिन, गांठके सदृश मांसको आश्रय करने वाली जो पिडिका होय उसको यवप्रख्या कहतेहैं वह कफवातसे होतीहै।

अंत्रलजीके लक्षण कहते हैं ॥

घनामवक्त्रां पिडिका मुन्नतां परिमंडलाम् ॥
अंत्रालजीमल्पपूयां तां विद्यात्कफवातजाम् ॥ २ ॥

भाषा-कठिन, जिस में मुख न हो तथा ऊँची ऐसी पिडिका होय तथा जो चारों ओर मंडलाकार हो और जिसमें राध थोड़ी होय उसको कफवात से उत्पन्न अंत्रालजी कहतेहैं॥भोज ने अंत्रालजी(१)स्नायुगत होतीहै ऐसाकहाहैं ॥

विवृतपिडिकाके लक्षण कहतेहैं ॥

विवृतास्यांमहादाहां पक्वोदुंबरसन्निभाम् ॥
विवृतामिति तां विद्यात्पित्तोत्थां पारिमण्डलाम् ॥ ४॥

भाषा-फटे मुखवाली अत्यंतदाहयुक्त, पकेगूलरके समान चारों ओरवल पड़ी हुई जो पिडिका होय उसको पित्तजन्य विवृता ऐसी कहते हैं।

कच्छपिकाके लक्षण कहते हैं ॥

ग्रथिताः पंच वा षड् वा दारुणाः कच्छपोपमाः ॥
कफानिलाभ्यां पिडिका ज्ञेया कच्छपिका बुधैः ॥ ५॥

भाषा-गांठ बँधीसी पांचवा छः कठिन कछुए के पीठ के समान ऊंची जो पिडिका होय वह कफवातसे उत्पन्न कच्छपिका है ऐसे जाननी चाहिये ॥

वल्मीकपिडिकाके लक्षण कहते हैं ॥

ग्रीवांसकक्षाकरपाददेशे संधौ गले वा त्रिभिरेव दोषैः ॥
ग्रन्थिःसवल्मीकवदक्रियाणां जातःक्रमेणैव गतः प्रवृद्धिम्॥६॥
मुखैरनेकैःस्रुतितोदवद्भिर्विसर्पवत्सर्पति चोन्नताग्रैः ॥
वल्मीकमाहुर्भिषजो विकारं निष्प्रत्यनीकं चिरजं विशेषात्॥७

भाषा-नाड़ कन्धा, बगल, हाथ, पैर सन्धि गला इनमें तीनों दोषोंसे सर्प की बांबीके समान गांठ होय उसका उपाय न करै तब वह धीरे धीरे बढ़ै उसमें अनेक मुख होजाय, उनमेंसे स्राव होय, नोंचनेकीसी पीड़ा होय तथा वह मुख के ऊपर कुछ ऊँची होकर विसर्प के समान फैल जाय इस रोगको वैद्य वल्मीकऐसी कहते हैं ॥ यह बहुत दिनकी विशेषकर चिकित्सा करने में नहीं आती है ॥

---

१ श्लेष्मानिलौ त्रिसौ स्नायु पिडकां परिमण्डलाम् ॥ दुष्टौ जनयतोऽ घनामल्प पूया लकण्डुराम् ॥ आमोदुम्बर संकाशां विद्यादन्त्रालजी तु ताम् ॥

इन्द्रवृद्धा के लक्षण कहते हैं ॥

पद्मकर्णिकवन्मध्ये पिडिकाभिः समाचिताम् ॥
इंद्रवृद्धां तु तां विद्याद्वातपित्तोत्थितां भिषक् ॥ ८ ॥

भाषा-कमलकीपंखरीके तुल्य बीचमें एक पिडिकाओं से युक्त अर्थात् बीचमें एक पिडिका होय उसके चारों ओर छोटी छोटी फुन्सी हों उसको इन्द्रवृद्धा ऐसा जाने । यह वातपित्तसे उत्पन्न होती है ॥

गर्दभिकाके लक्षण कहते हैं ॥

मंडलं वृत्तमुत्सन्नं सरक्तं पिडिकाचितम् ॥
रुजाकरीं गर्दभिकां तां विद्याद्वातपित्तजाम् ॥ ९ ॥

भाषा-एक मंडल गोल ऊंचा तथा लाल और फोडों से व्याप्त ऐसा होय वह बहुत दूखे उसको और वातपित्तसे उत्पन्न हुई गर्दभिका ऐसे कहते है ॥

पाषाणगर्दभ के लक्षण कहते हैं ॥

वातश्लेष्मसमुद्भूतः श्वयथुर्हनुसंधिजः ॥
स्थिरो मंदरुजः स्निग्धो ज्ञेयः पाषाणगर्दभः ॥१०॥

भाषा-वातकफसे ठोडीकी सन्धिमें उत्पन्न हुआ कठिन, मन्द पीडा चिकनी ऐसी सूजन जिसमें वह पाषाणगर्दभ ऐसा जानना चाहिए ॥

पनसिकाके लक्षण कहते हैं

कर्णस्याभ्यंतरे जातां पिडिकामुग्रवेदनाम् ॥
स्थिरां पनसिकां तां तु विद्याद्वातकफोत्थिताम् ॥११॥

भाषा-कानके भीतर जो फुन्सी उग्रवेदनासहित प्रगट होती है और वह स्थिर होय, वातकफ से उत्पन्न हो उसको पनसिका कहते हैं ॥ इसका लक्षण भोजका कहा टिप्पिणी में देखो ॥

जालगर्दभ के लक्षण कहते हैं ॥

विसर्पवत्सर्पति यः शोथस्तनुरपाकवान् ॥
दाहज्वरकरः पित्तात्स ज्ञेयो जालगर्दभः ॥१२॥

भाषा—पित्तसे विसर्पके तुल्य इधर उधर को जो सूजनफैले पतली तथा

---

१ 'कफवातौ प्रकुपितौ मांसमाश्रित्य कर्णयोः॥समन्ततःपरिस्तब्धाकुरुतःपिडिकां स्थिराम्। विषमां दाहसयुक्तां विद्यात्पनसिकां तु ताम्। इति "

कुछ पकनेवाली ऐसी सूजनहोय उसमें दाह होय इसको जालगर्दभ कहते हैं भोज कहते हैं१ कि इसमें पकता नहीं होती और जतुकर्ण का मत यहहै कि पकता है इसमें यथायथ विचारना चाहिये ॥

इरिवेल्लिकाके लक्षण कहते हैं ॥

पिडिकामुत्तमांगस्थां वृत्तामुग्ररुजाज्वराम्॥
सर्वात्मिकां सर्वलिंगां जानीयादिरिवेल्लिकाम् ॥१३॥

भाषा—मस्तकमें स्थित गोल, अत्यंत पीडा और ज्वर करनेवाली,त्रिदोषकेलक्षण संयुक्त ऐसीपिडिका होय उसको त्रिदोषसे उत्पन्नइरिवेल्लिकाकहते

कक्षा (खकराई) के लक्षण कहते हैं।

बाहुकक्षांसपार्श्वेषु कृष्णस्फोटां सवेदनाम् ॥
पित्तकोपसमुद्भूतां कक्षामित्यभिनिर्दिशेत् ॥१४॥

भाषा—बाहु बगल कंधा और पसवाडे इन ठिकानों में पित्त के कोप से उत्पन्न काले फोड़ोंसे व्याप्त तथा वेदनायुक्त जो पिडिका हो उसको कक्षा वा कखलाई ऐसा कहे ॥

गंधमाला के लक्षण कहते हैं।

एकामेतादृशीं पिडिकां स्फोटसन्निभाम् ॥
त्वग्गतां पित्तकोपेन गंधनाम्नीं प्रचक्षते ॥१५॥

भाषा-पित्तके कोपसे जो एक पिडिका फोडोंके समान बड़ी त्वचाके भीतर होय उसको गंधमाला नाम वाली ऐसे कहतेहैं ॥

अग्निरोहिणी (काली फुन्सी)के लक्षण कहते हैं॥

कक्षभागेषु ये स्फोटा जायंते मांसदारुणाः ॥
अंतर्दाहज्वरकरा दीप्तपावकसन्निभाः ॥१६॥
सप्ताहाद्वाद्वादशाहाद्वा पक्षाद्वा हंतिमानवम् ॥
तामग्निरोहिणींविद्यादसाध्यां सर्वदोषजाम् ॥१७॥

भाषा—बगल में मांसके विदारण करनेवाले जो फोडे होते हैं वह अंतर

पित्तोत्कटास्त्रयो दोषा जनयंति त्वगाश्रिताः। श्यावं रक्तं तनुं शोथमपाकं बहुवेदनम् ॥ विसर्पिणं सदाहं च तृष्णाज्वरसमन्वितम्। विसर्पमाहुस्तं व्याधिमपरे जालगर्दभम् ॥

दाह तथा ज्वर करनेवाले । वे फोड़ा प्रदीप्त अग्निके समान लाल होतेहैं इन फोड़ाओंमें वायु अधिक होने से सात दिन, पित्ताधिकसे बारह दिन और कफाधिकसे ९ दिनमें रोगी मरता है । यह अग्निरोहिणी नामक त्रिदोषज पिडिका असाध्य है यह कठिन है ॥ चरक में भी अग्निरोहिणी को इस प्रकार कहा है (१)

चिप्प के लक्षण कहते हैं ॥

नखमांसमधिष्ठाय वातः पित्तं च देहिनाम् ॥
कुर्वाते दाहपाकौ च तं व्याधिं चिप्पमादिशेत ॥१८॥
तदेवाल्पतरैर्दोषैः कुनखं परुषं वदेत् ॥१९॥

भाषा—वायु और पित्त नखोंके मांसमें स्थित होकर दाह और पापको करे इस रोगको चिप्प ऐसा कहतेहैं।अल्प दोषोंसे होयतो इसको कुनखकहतेहैं

अनुशयी के लक्षण कहते हैं ॥

गम्भीरामल्पसंरंभां सवर्णामुपरिस्थिताम् ॥
पादस्यानुशयीं तां तु विद्यादंतःप्रपाकिनीम् ॥२०॥

भाषा-पैरोंमें त्वचाके समान वर्ण यत्किंचित् सूजनयुक्त, भीतरसे पकी जो पिडिका होय उसको अनुशयी ऐसा कहते है ॥

विदारिकाके लक्षण कहते हैं ॥

विदारीकंदवद्वृत्ता कक्षावंक्षणसंधिषु ॥
विदारिका भवेद्रक्ता सर्वजा सर्वलक्षणा ॥२१॥

भाषा-विदारीकंद के समान गोल,कांखमें अथवा वंक्षणस्थानमें जो गांठ तांबेके रंगकीसी होय उसको विदारिका ऐसा कहतेहैं यह सन्निपातसे होतीहै अर्थात् इसमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं ॥

शर्कराके लक्षण कहते हैं ॥

प्राप्य मांस शिरा स्नायुः श्लेष्म मेदस्तथानिल ॥
ग्रंथिं करोत्यसौ भिन्नो मधुसर्पिर्वसानिभम् ॥२२॥
स्रवत्यास्रावमनिलस्तत्र वृद्धिं गतः पुनः ॥
मांसं विशोष्य ग्रथितां शर्करां जनयेत्ततः ॥२३॥

---

१ सन्तिह्येवं विधाःरोगाः साध्या दारुण संमताः ॥ येहन्युरनुपक्रांता मिथ्यारम्भेण वापुनः ॥ तत्रान्तरेऽपि ॥ पित्तरक्तोत्कटा दोषा प्रदीप्तांगार सन्निभा ॥ कक्षभागेषु कुर्वन्ति तत्र दाहरुजाज्वराम् ॥ मांसावदारणात् स्फोटान् येहन्युरनुपक्रमात् ॥ पक्षाद्दशाहाद्वाग्वा साज्ञेया वह्नि रोहिणी ॥

भाषा-कफ, मेद और वायु ये मांस, शिरा और स्नायु इनमें प्राप्त हो गांठ बांधतेहैं जब वह फटे तब उसमें सहत, घृत, चर्बी इनके समान रिसाव हो उससे वायु फिर बढ़कर मांस को सुखाकर उसको छोटी गुथी हुईसी गांठकरे इसको शर्करा कहते हैं

शर्करार्बुद के लक्षण कहते हैं

दुर्गंधि क्लिन्नमत्यर्थं नानावर्णं ततः शिराः ॥
स्रवंति रक्तं सहसा तद्विद्याच्छर्करार्बुदम् ॥ २४ ॥

भाषा-शर्करा होने के बाद नाड़ियों से दुर्गन्ध, क्लेदयुक्त, अनेक प्रकार के वर्णका (घृत, मेद और वसा इनके वर्णका), रुधिर रिसे, उसको शर्करार्बुद कहते हैं । परंतु भोजने शर्करार्बुद को शर्करा रोगके अन्तर्गत मानकर संख्या नहीं बढ़ाई है सो इस प्रकार " तमेव भिन्नदुर्गंधं घृतमेदो- निभं शिरां । स्रवंति स्रावमनिशं सदा स्याच्छर्करार्बुदम्,, जानना ॥

पाददारीके लक्षण कहते हैं ।

परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरूक्षयोः ॥
पादयोः कुरुते दारीं पाददारींतमादिशेत् ॥ २५ ॥

भाषा-बहुत चलनेवाले पुरुषकेअत्यंत रूखे जो पैर उनमेंवायुअत्यंत रूक्ष होकर पैरोंके तलुओंको बिदीर्ण करदे (फाड़ दे) उसको पाददारी कहते हैं अर्थात् बिवाई कहते हैं ।

कदर (ठेक) के लक्षण कहते हैं

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कंटकादिभिः ॥
ग्रंथिः कोलवदुत्सन्नो जायते कदरं तु तत् ॥ २६ ॥

भाषा-कंकडों से छिदेहुए पैरों में अथवा कांटा लगने से बेर के समान ऊँची गांठ पैदा होय, उसको कदर अर्थात् ठेक कहते हैं । यहां "ग्रंथिः कालवदुत्सन्नो" की जगह "ग्रंथिः कीलवदुत्सन्नो" ऐसाभी कहीदेखा गयाहै उसकाअर्थ कीलके समान जो गांठ होय उसको कदर कहतेहैं। ऐसाजानना यह कदर रोग हाथों में भी होता है सो भोजने लिखा भी है ।

अलसक के लक्षण कहते हैं

क्लिन्नांगुल्यंतरौ पादौ कंडूदाहरुजान्वितौ ॥

दुष्टकर्दमसंस्पर्शादलसं तं विभावयेत् ॥ २७ ॥

भाषा-अँगुलियों के बीच कीच भरने से जब पैर गन्दे होवें तब खुजार दाह, तकलीफ इनसे युक्त पैर होवें यह सड़े जल वा सड़ी कीच आदि के स्पर्श से होता है और कफ रक्त जन्य विकार है इसको, अलसक ऐसा जानै भाषा में पाकुया व खारुआ इसको कहते हैं इसमें अंगुलियों के जोड़ में सफेद दाद होते हैं।

इन्द्रलुप्त के लक्षण कहते हैं

रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्छितम् ॥ प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः ॥२८॥ रुणद्धि रोमकूपांस्तु ततोऽन्ये-षामसंभवः ॥ तदिंद्रलुप्तं खालित्यं रुह्येतिच विभाव्यते॥२९॥

भाषा-वायु के साथ कुपित होकर रोम कूप में प्राप्तहुआ पित्त रोमों को (बालों को) झड़ावे तब रुधिर सहित कफ रोम के छिद्रों को रोकै तब फिर और पैदा नहोंवे उसको इन्द्रलुप्त कहते हैं, खालित्य भी कहते हैं और रुह्या भी यह स्त्रियों के नहीं होता यहां विदेह के वाक्य को कहते हैं ",अत्यन्तसुकुमाराग्यैरजोदुष्टंस्रवान्तिच ॥ अव्यायामरतायस्मात्तस्मान्नखलितिः स्त्रियाः ॥ व्यायाम न करने से, वात पित्त के कोप न होने से, अत्यन्त बाल नहीं झड़ते रज के झड़ने से और सोतों के न रुकने से, झड़ेहुए रोमों की फिर उगाई होती है किन्तु स्त्रियों में भी कहीं २ यह रोग नजर आता है, इससे विदेहने प्रायःऐसाभी कहा है अर्थात् यह रोग प्रायः स्त्रियों के नहींहोता इन्द्रलुप्तके खालित्यऔर रुह्या यह पर्याय वाचकशब्दहै जैसा भोजने कहा है- " तदिन्द्रलुप्तमित्याहुः खल्वींरुह्यां च केचन" कार्तिकाचार्यनेतो इन्द्रलुप्त मूर्छा में होता है, खालित्य सिर मेंही होता है और रुह्या सब देह में होता है ऐसा कहा है।

दारुणक के लक्षण कहतेहैं

दारुणा कंडुरा रूक्षा केशभूमिः प्रपाट्यते ॥
कफमारुतकोपेन विद्याद्दारुणकं तु तम् ॥ ३० ॥

भाषा-कफ और वात के कोप से केशों की भूमि अत्यन्त कठोर हो, खुजार हो, रूखी होय तथा जिल्द फटनेलगे उसको दारुणक ऐसा कहते हैं.

यद्यपि कफ वात के कोप से यह रोग होता है ऐसा कहा है, तब भी पित्त तथा रक्त का सम्बन्ध भी यहां जानना चाहिये जैसे विदेह ने " यदत्र पटला भासं सरजस्कं शिरस्त्वचि। परुषं जायते जंतोस्तस्य रूपं विशेषतः ॥ तोदैः समन्वितं वातसकण्डु गौरवं कफात्। सपिपासं सदाहार्तिरागं पित्तासृजं तथा," कहा है इस बचन में पित्त से दाह पूर्वक रोग और पीड़ा सहित रक्तसे जाने आर्ति जो है वह रक्त जन्य भी होता है जैसा कहा है "रक्तंहि व्यम्लतां याति तच्चेन्नास्तिनचार्तिरुक्" इसको लोकेमेंरुक्खी कहते हैं।

अरुंषिका के लक्षण कहते हैं

अरूंषि बहुवक्राणि बहुक्लेदानि मूर्धनितु ॥
कफासृक्कृमिकोपेन नृणां विद्यादरूंषिकाम् ॥ ३१ ॥

भाषा-कफऔर रुधिर और कृमि इनके कोपसे मनुष्योंके अरूंषिका होय ऐसाजाने माथेमेंबहुत फुन्सी होजांयउनमेंबहुत मुंह होय बहुत चेपवहै यह लक्षण होतं हैं ॥

पलित सफेद बाल के लक्षण कहतेहै।

क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः ॥
पित्तं च केशान्पचति पलितं तेन जायते ॥ ३२ ॥

भाषा-क्रोध, शोक और श्रम उत्पन्न हुआ जो शरीरका उष्मा (गरमी) वह और पित्त यह मस्तकमें गयाहुआ बालोंको पकावें अर्थात् सफेद करदे उससे यह पलितरोग होता है ॥

युवान पिडिका के लक्षण कहते हैं

शाल्मलीकंटकप्रख्याः कफमारुतरक्तजाः ॥
युवानपिडका यूनां विज्ञेया मुखदूषिकाः ॥ ३३ ॥

भाषा- कफ वायु और रक्त से उत्पन्न हुई कोप से सेमर के कांटे के तुल्यतरुण(जवान पुरुष के मुखकेऊपरजोंफुंसीहोयउनकोयुवानपिडकाजाननी तथा उनकोलोक में वरण्डका वामुहासे कहैं उनकोंही मुख दूषिका कहतेहैं। यह मुख को दूषित (बुरा) करदेती है।

पद्मिनीकंटक के लक्षण कहते हैं

कंटकैराचितं वृत्तं मंडलं पाण्डु कण्डरम् ॥
पद्मिनीकंटकप्रख्यैस्तदाख्यं कफवातजम् ॥३४॥

भाषा-कमलनी के कंटके तुल्य कांटे से चारों ओर युक्तहो,गोल,पीले रंगका खुजार जिनमें चलै मण्डल हो और कफ वात से उत्पन्न हो उसको पद्मिनीकंटक कहते हैं।

जतुमणि के लक्षण कहते हैं

सममुत्सन्नमरुजं मंडलं कफरक्तजम् ॥
सहजं लक्ष्म चैकेषां लक्ष्यो जतुमणिः स्तुसः ॥ ३५ ॥

भाषा-कफ रक्त से उत्पन्न जो मण्डल वह सम (बराबर) तथा कुछ ऊंचा, पीड़ा जिसमें नहोय गोल देह में होवे तथा जन्म सेही जो पैदाहुआ चिह्न होय वह जतुमणि इस नाम से लक्ष्य करना चाहिये यह लहसन कह. लाता है इनका शुभा शुभ ज्योतिष से देखे।

मषक के लक्षण कहते हैं

अवेदनं स्थिरं चैव यस्मिन् गात्रे प्रदृश्यते ॥
माषवत्कृष्णमुत्सन्नमनिलान्माषमादिशेत् ॥ ३६ ॥

भाषा-वायु से शरीर में उडद के तुल्य काला पीड़ा रहित, स्थिर, कठिन कुछ ऊँचा गांठ सदृश उत्पन्न हुआ दीखै उसको माष (मस्सा) ऐसा कहतेहैं। चकार से यहां कफ और मेद का ग्रहणकर बतलाया है कि यह उनसे भी होते हैं जैसा भोजने " वातेरिते त्वचि यदा दूष्येते कफमेदसी। श्लक्ष्णं मृदु सवर्ण च कुरुते मषकं वदेत्" दिखाया है।

तिलकालक के लक्षण कहते हैं

कृष्णानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि च ॥
वातपित्तकफोच्छोषात्तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ ३७॥

भाषा-वात पित्त के कारण कफके सूखने से काले तिल के समान पीड़ा रहित त्वचा के बराबर मिलै ऐसे अंग में दाग होते हैं उनको तिल

कालक (तिल) जानै, कोई अचार्य वातपित्तासृगुच्छोषात् इस प्रकार पाठ कहते हैं वह चरक का अवलम्बन करतेहैं उसका अर्थ है वात पित्त और रुधिर के सूखने से तिल होते हैं यथा चरक में और दूसरे तंत्रवाले "वात पित्तकफोच्छोषात् ,, यह पाठ करते हैं वहां वात पित्त और कफ के बढ़ोतरी से तिल होते हैं जैसे-मारुतः पित्तमादाय कफरक्तसमाश्रितः। चिनोति तिलमाषाणि त्वचि ते तिलकालकाः॥ किन्तु इस ग्रन्थ में भी कफ रक्त समाश्रित इस कहने से कफ रक्त के आश्रित वायु से पित्त सहित सूखना होता है उससे तिलकालक में कृशता की उत्पत्ति होती है इससे वात पित्त कफोच्छोषात् यह पाठ योग्य है।

न्यच्छक लक्षण कहते हैं।

महद्वा यदि वाऽल्पं श्यावं वा यदि वा सितम्॥
नीरुजं मण्डलं गात्रे न्यच्छमित्यभिधीयते॥ ३८॥

भाषा-शरीरमें [मुखको छोड़कर अन्य) स्थानमें शरीरके ऊपर बड़ा अथवा छोटा, काला अथवा सफेद और पीडारहित दाग होय उसको न्यच्छ कहते हैं॥

व्यंग (झांई) के लक्षण कहते हैं

क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः॥
मुखमागत्य सहसा मण्डलं विसृजत्यतः॥ ४०॥
नीरुजं तनुकं श्यावं मुखे व्यंगं तमादिशेत्॥

भाषा-क्रोध और श्रम इनसे कुपितहुआ वायुसो जव पित्त संयुक्त होकर मुख में प्राप्त होकर एक मण्डल उत्पन्न करे, वह दूखे नहीं, पतला तथा श्याम वर्ण होय उसको व्यंग कहते हैं।

नीलिकाके लक्षण कहते हैं

कृष्णमेवंगुणं गात्रे मुखे वा नीलिकां विदुः॥ ४१॥

भाषा-व्यंग के लक्षण जो काला मण्डल अंगमें होय अथवा मुखपरहोय उसको नीलिका कहते हैं। भोजने-" मारुतः क्रोधहर्षाभ्यामूर्ध्वगो मुख. माश्रितः। पित्तेन सह संयुक्तः करोति वेदनं त्वचि॥ नीरुजं तनुकं श्यामं

व्यगं तामिति निर्दिशेत्। कृष्णामेव त्वंच गात्रे मीलिकां तां विनिर्दिशेत् "॥
इस प्रकार लक्षण कहे हैं॥

परिवर्तिकाके लक्षण कहते हैं।

मर्दनात्पीडनाद्वापि तथैवाप्यभिघाततः॥
मेढ्रचर्म यदा वायु र्भजते सर्वतश्चरन्॥ ४१॥
तदावातोपसृष्टत्वात्तच्चर्मपरिवर्त्तते॥
मणेरधस्तात्कोशस्तु ग्रंथिरूपेण लंबते॥ ४२॥
सहजां वात संभूतां तां विद्यात् परिवर्तिकाम्॥
सकंडूःकठिना वापि सैव श्लेष्मसमुत्थिता॥ ४३॥

भाषा–लिंगके मीड़ने से अथवा रगड़ने से उसी प्रकार लिंगमें किसी प्रकार की चोट लगनेसे व्यान वायु कुपित होकर उसके चर्म में प्रवेश कर सर्वत्र विचरे उस समय वात संस्पर्श हेतु से लिंग की चर्म पृथक् हो जाय और शिश्नका कोश सूज कर मणिके नीचे गांठके समान होके लटके उसमें पीड़ा होय, तकलीफ हो वह वात से उत्पन्न होने वाली परिवर्तिका है ऐसी जानै और वहही जो कफ से होय तो खुजाल तथा कठिनता होती है॥

अवपाटिका के लक्षण कहते हैं।

अल्पीयःखां यदा हर्षाद्बलाद्गच्छेत्स्त्रियं नरः॥
हस्ताभिघातादथ वा चर्मण्युद्वर्तिते बलात्॥ ४४॥
यस्यावपाट्यते चर्म तां विद्यदपाटिकाम्॥

भाषा–छोटे छिद्र वाली अर्थात् कम उमर औरत जिस की भग का छिद्र छोटा हो ऐसी स्त्री से बल पूर्वक मैथुन करने से अथवा हाथ के अभिघात [चोट] से, बल से लिंगके चाम को उलटने से उस पुरुष के लिंगकी चाम फट जाय इस पीड़ा को अवपाटिका कहते हैं।

निरुद्धप्रकश के लक्षण कहते हैं।

वातोपसृष्टे मेढ्रे तु चर्म संश्रयते मणिम्॥ ४५॥

मणिश्चर्मोपनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च ॥
निरुद्धप्रकशे तास्मिन् मंदधारमवेदनम् ॥ ४६ ॥
मूत्रं प्रवर्तते जंतोर्मणिर्विव्रियते न च ॥
निरुद्धप्रकशं विद्यात्सरुजं वात सम्भवम् ॥ ४७ ॥

भाषा—वायु के योगसे लिंग पीडित होनेसे चमड़ा सुज मणि भागमें प्राप्त होय। वह मणि चर्मके संकोच होने से मूत्र को रोध करे तब उस पुरुषका मूत्र ठहर ठहर कर निकले, परंतु पीडा नहीं होय और मणि बाहर नहीं निकले, इस लक्षण वातजन्य पीडा को निरुद्ध प्रकश कहते हैं। चर्म के संकोच होने की निरुद्ध कहते हैं और मूत्र की धार मन्द निकलनें को प्रकश कहते हैं।

सन्निरुद्ध गुदके लक्षण कहते हैं।

वेगसंधारणाद्वायुर्विहतो गुदसंश्रितः ॥
निरुणद्धि महास्रोतः सूक्ष्मद्वारं करोति च ॥ ४८ ॥
मार्गस्य सौक्ष्म्यात्कृच्छ्रेण पुरीषं तस्य गच्छति ॥
सन्निरुद्धगुदं व्याधिमेनं विद्यात्सुदारुणम् ॥४९॥

भाषा—वेगोंके रोकने से गुदाश्रित अपान वायु कुपित हुआ स्रोत (गुदा) का अवरोध करे और वह द्वारको छोटा करे, पीछे मार्ग छोटा होने से उस पुरुष का मल कष्ट से बाहर निकले, इस भयंकर रोग को सन्निरुद्धगुद कहते हैं। निरुद्धप्रकश के तुल्य यहां भी चर्म के संकोच से सन्निरुद्ध गुद ऐसा कहा है ॥

अहिपूतना के लक्षण कहते हैं।

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत्॥
स्विन्ने वास्नाप्यमाने वा कंडू रक्तकफोद्भवा ॥ ५० ॥
कडूंयनात्तत :क्षिप्रं स्फोटाः स्रावश्च जायते ॥
एकीभूतं व्रणैर्घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥ ५१ ॥

भाषा—बच्चेके मल मूत्र करने के बाद गुदा के न धोने से अथवा पसीना आनेपर तथा धोने के बाद रुधिर कफ से खुजली उत्पन्न होय,

तदनन्तर खुजाने से शीघ्र फोडा उत्पन्न हो और उनसे स्राव होय पीछेये सब मिलकर इस भयंकर व्याधि को प्रगट करें । इसे अहिपूतना कहते हैं ॥

वृषणकच्छूके लक्षण कहते हैं ।

स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंस्थितः ॥
यदा प्रक्लिद्यते स्वेदात्कंडूः जनयते तदा ॥५२॥
कंडूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटाः स्रावश्च जायते ॥
प्राहुर्वृषणकच्छूं तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम् ॥५३॥

भाषा—जो मनुष्य स्नान करते समय लगे हुए मलको नहीं धोवे उस पुरुषका मल अंडकोशोंमें संचित होय पीछे वह पसीना आनेसे गीला होय तब अंडकोशोंमें घोर पीडा होय और खुजानेसे तत्काल फोडा होय। पीछे वे फोडा स्रवकर आपसमें मिल जातेहैं । कफरक्तके कोपसे होनेवाली इस व्याधिको वृषणकच्छू कहते हैं ॥

गुदभ्रंशके लक्षण कहते हैं ॥

प्रवाहणातीसाराभ्यां निर्गच्छति गुदं बहिः ॥
रूक्षदुर्बलदेहस्य गुदभ्रंशं तमादिशेत् ॥५४॥

भाषा—रुखे और दुर्बलदेह वाले पुरुषके प्रवाहण तथा अतिसार इस कारणों से गुदा बाहर निकल आवे अर्थात् कांच बाहर निकल आवे उस रोगको गुदभ्रंश रोग कहते हैं ॥

वराहदंष्ट्रके लक्षण कहते हैं ॥

सदाहो रक्तपर्यंतस्त्वक्पाकी तीव्रवेदनः ॥
कंडूमान् ज्वरकारी च सः स्याच्छूकरदंष्ट्रकः ॥५५॥

भाषा-दाहसहित चारों ओर लाल होय,जिसकी त्वचा पकनेवालीहोय तीव्र पीडावाला खुजलीयुक्त तथा ज्वर करनेवाला ऐसा जोशोथ सूजन अथवा व्रणहोय उसको शूकरदंष्ट्र कहते हैं ॥

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसूनु शा० सोहनलाल विद्याभूषण
विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां
क्षुद्ररोग निदानं समाप्तम् ।

॥ अथ मुखरोगनिदानम् ॥

आनूपपिशितक्षीरदधिमत्स्यादिसेवनात् ॥
मुखमध्ये गदान्कुर्युः क्रुद्धा दोषाः कफोत्तराः ॥१॥

भाषा-जलके समीप होनेवाले प्राणियोंके मांस, दूध,दही, मत्स्य आदि पदार्थोंके सेवन करनेसे कुपित हुए कफादिक दोष मुखके बीचमें रोगोंको पैदा करतेहैं । यह मुखरोग६५प्रकारके होतेहैं जैसा भोजने (१)कहाहै दन्तोंमें ८ होठोंमें ८ दान्तोंकी जड़में १५ तालुमें ९ जीभमें ५ कंठमें १७ और ३ संवंसर (इन स्थानोंमें चाहे जहांहोजाय) यह ६५ प्रकार के हैं ॥

वहां ८ ओष्ठगत जो हैं उनके लक्षण कहते हैं तिनमें
वातजन्य ओष्ठरोगके लक्षण कहत हैं ॥

कर्कशौ परुषौ स्तब्धौ सम्प्राप्तानिलवेदनौ ॥
दाल्येते परिपाट्येते ओष्ठौ मारुतकोपतः ॥२॥

भाषा—वादीके कोपसे होठ कर्कश, कठिन कठोर होते हैं ॥ प्राप्त हुई तीव्र वेदना जिनमें ऐसे होंय चिरजाय फटजाय ऐसे होते हैं यह वात कोप से जानने ॥

पित्तजन्य के लक्षण कहते हैं ।

चीयते पिडिकाभिस्तु सरुजाभिः समंततः ॥
सदाहपाकपिडिकौ पीताभासौ च पित्ततः ॥३॥

भाषा-पित्तसे होंठ चारों तरफ दर्द सहित फुंसियोंसे युक्तहो दाह और पाक युक्त फुंसी वाले और पीले रंगके होजाते हैं यह पित्तजन्य ओष्ठ रोग का लक्षण जाने ॥

कफजन्य ओष्ठरोग के लक्षण कहते हैं ॥

सवर्णाभिस्तु चीयेते पिडिकाभिरवेदनौ ॥
भवतस्तु कफादोष्ठौ पिच्छिलौ शीतलौ गुरू ॥४॥

---

१ दन्तेष्वष्टावोष्ठयोश्च मूलेषु दश पंच च ॥ नव तालुनि जिह्वायां पंच सप्तदशामयाः कंठे त्रयः सर्वसरा एकषष्टिश्चतुःपरे ॥

भाषा-कफसे होंठ त्वचाके रंगके तुल्य जो फुन्सी उनसे व्याप्त होंय वेदना रहित हों तथा चिकने और शीतल तथा भारी होते हैं ॥

सन्निपातिक ओष्ठरोगके लक्षण कहते हैं ॥

सकृत्कृष्णौ सकृत्पीतौ सकृच्छ्वेतौ तथैव च ॥
सन्निपातेन विज्ञेयावनेकपिडिकान्वितौ ॥ ६५ ॥

भाषा-सन्निपातसे होंठ कभी काले कभी पीले तथा कभी सफेद तथा अनेक प्रकारकी फुंसियोंसे व्याप्त होतेहैं ॥ ऐसे जानना चाहिए ॥

रक्तजन्य ओष्ठरोगके लक्षण कहते हैं ॥

खर्जूरीफलवर्णाभिः पिंडिकाभिर्निपीडितौ ॥
रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवतः शोणितप्रभौ ॥ ६ ॥

भाषा-रुधिरके दोषसे व्याप्तजो होंठ वह खजूरफलके रंगकी फुसियों से पीडित होवै और रुधिर उनमेंसे झडे और लाल रंगके होंय यह रक्त जन्य ओष्ठरोगके लक्षण जानै ॥

मांसजन्य ओष्ठरोगके लक्षण कहतेहैं ॥

मांसदुष्टौ गुरूस्थूलौ मांसपिंडवदुद्गतौ ॥
जन्तवश्चात्र मूर्च्छंति नरस्योभयतोमुखम् ॥ ७ ॥

भाषा-मांस दोषसे व्याप्त होठ भारी और मोटे होतेहैं मांसपिंड के समान ऊँचे होतेहैं, इस रोगमें मनुष्य के दोनों तरफके गलफडोंमें कृमि पैदा होकर बढ़ने लगतेहैं होठोंमें अथवा होठोंके प्रांतभागमें कीडे पड जाते हैं ॥

मेदोजन्य ओष्ठरोगके लक्षण कहतेहैं ।

सर्पिर्मंडप्रतीकाशौ मेदसा कंडुरौ गुरू ॥
अच्छ स्फटिकसंकाशमास्त्रावं स्रवतो भृशम् ॥८॥
तयोर्व्रणा न संरोहेन्मृदुत्वं च न गच्छति ॥

भाषा-मेदसे होठ घृतके फूलके तुल्य खुजली युक्त तथा भारी होय तथा वह साफ स्फटिक मणि जैसे सफेद(पानीसे) पदार्थ को बहुत झड़ावें इनमें हुआ व्रण फुन्सी न भरें और न वहै और न नरमही पड़ता है ॥

अभिघातजन्य ओष्ठरोगके लक्षण कहतेहैं ।

क्षतंजाभो विदार्येते पाट्येते चाभिघाततः ॥९॥
ग्रथितौ च समाख्याता वोष्ठौ कंडू समन्वितौ ॥

भाषा-चोट लगनेसे होठ घावके तुल्यहों सर्वत्र फटनेलगे गांठ पडजाय तथा वे खुजली युक्तहों यहां कफ रक्तका अनुबन्धसमझना जैसा भोजने क्षतावभिहतौ चाभि रक्ताचोष्टौ सवेदनौ। भवतः सपरिस्रावौ कफरक्तप्रदूषितौ,, इस प्रकार कहा है वायुभी यहां अभिघात कहने से प्राप्त होता है और यह अभिघात जन्य शोथसे यथारीति कहे जो लक्षण कारण इन भेदोंसे तथा वातजन्य ओष्ठके कोपसेभी कफरक्तरूप कारण भेदका योग उससेभिन्नहोताहै

दंतमूल में प्राप्त १५ रोगोंका वर्णन करतेहैं ।

तहां शीतादके लक्षण कहतेहैं ॥

शोणितं दन्तवेष्टेभ्यो यस्याकस्मात्प्रवर्तते ॥
दुर्गन्धीनि सकृष्णानि प्रक्लेदीनि मृदूनि च ॥ १० ॥
दंतमांसानि जीर्यन्ते पचंति च परस्परम् ॥
शतादो नाम स व्याधिः कफशोणितसंभवः ॥ ११ ॥

भाषा-जिसके अकस्मात् मसूढ़ोंमेंसे रुधिर बहै और दांतोंके मांस दुर्गंधयुक्त, काला पीवसहित तथा नरम होकर गिरनेलगे और एक दांतका मसूढ़ा पककर वह दूसरे मसूढ़ेको पकायदे यह कफरुधिर से उत्पन्न हुआ व्याधि शीताद ऐसा कहा है ॥

दन्त पुप्पुटके लक्षण कहते हैं ॥

दंतयोस्त्रिषु वा यस्य श्वयथुर्जायते महान् ॥
दंतपुप्पुटको नाम स व्याधिः कफरक्तजः ॥१२॥

भाषा—दो अथवा तीन दांतोंके मूल में जिसके जड़में महान् सूजन होय उस व्याधिको दंतपुप्पुट नाम कहते हैं । यह कफरक्तसे उत्पन्न होताहै परन्तु कफ रक्तसे जो शौषिर होता है उससे यह भिन्न है ॥

दंतवेष्टके लक्षण कहते हैं ॥

स्रवंति पूयं रुधिरं चला दंता भवन्ति च ॥
दंतवेष्टः स विज्ञेयो दुष्टशोणितसंभवः ॥१३॥

भाषा-दूषित रुधिर से उत्पन्न हुआ दंतवेष्ट होताहैउसमें दांतों से रुधिर तथा राध बहे तथा दांत हलने लगतेहैं ॥

शौषिरके लक्षण कहतेहैं।

श्वयथुर्दंतमूलेषु रुजावान्कफरक्तजः ॥
लालास्रावी स विज्ञेयः शौषिरो नाम नामतः ॥१४॥

भाषा—कफरुधिरसे उत्पन्न दांतोंकी जडमें सूजन करनेवाला और पीडा वाला और लार टपकै वह शौषिर रोग जानना चाहिए पूर्वोक्त दंत पुप्पुटमें पीडा होय और स्राव नहीं होता है इसीसे यह पृथक् है ॥

महाशौषिरके लक्षण कहते हैं ॥

दन्ताश्चलन्ति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्यते ॥
यस्मिन्स सर्वतो व्याधिर्महाशौषिरसंज्ञकः ॥ १५ ॥

भाषा-इस त्रिदोष जन्य व्याधिसे मसुढेके पासके दांतहलें और तालुए में छिद्र पडजाय और दांत और होठभी फटजाय उसको महाशौषिर रोग कहतें हैं । यह रोग मनुष्यको सात दिनमें मारदेता है जैसा भोजने "सदाहो दंतमूलेषु शोथः पित्त कफानिलात् । जातः कफं क्षपयति क्षीणे तस्मिन्सशोणितम् ॥ विवृद्धमनिशं दंतांस्तात्वोष्ठमपि दारयेत् ॥ महाशौषिरमित्येतत्सप्तरात्रान्निहन्त्यसून् इस प्रकार कहा है ॥

परिदरके लक्षण कहतेहैं ॥

दंतमांसानि शीर्यन्ते यस्मिन्ष्ठीव्यति चाप्यसृक्
पित्तासृक्कफजो व्याधिर्ज्ञेयः परिदरो हि सः ॥१६॥

भाषा-जिसरोगमें दांतों का मांस फटजाय और उसमें रुधिर थूकै पित्त रुधिरकफसे उत्पन्न हुए वह व्याधि परिदर ऐसा जानना चाहिये ॥

उपकुश के लक्षण कहते हैं ॥

वेष्टेषु दाहः पाकश्च ताभ्यां दन्ताश्चलंति च ॥
अवाक्कृताः प्रस्रवंति शोणितं मन्दवेदनाः ॥१७॥
यस्मिन्नुपकुशो नाम पित्तरक्तकृतो गदः ॥१८॥

भाषा-जिस रोगमें मसूढोंमें दाह और पाकहो और दांत चलायमान

हों वह पित्तरक्त से उत्पन्न हुआ रोग उपकुश ऐसा कहलाताहैं

वैदर्भके लक्षण कहते हैं ॥

घृष्टेषु दन्तमूलेषु संरम्भो जायते महान् ॥
भवंति चपला दन्ताः स वैदर्भोऽभिघातजः ॥१९॥

भाषा—मसुढ़ों के रगड़नेपर सूजन बहुत होय और दांत हलने लगें उसको वैदर्भरोग कहते हैं । यह रोग चोट लगने से होता है ॥

खलिवर्धनके लक्षण कहते हैं ॥

मारुतेनाधिको दन्तो जायते तीव्रवेदनः ॥
खलिवर्द्धनसंज्ञो वै जाते रुक् च प्रशाम्यति ॥२०॥

भाषा-वादी के योगसे दांत तीव्रवदनायुक्त होय जब वह दांतऊग आवे तब पीड़ा शांत होजाय उसको खलिवर्धन कहते हैं ॥

करालके लक्षण कहते हैं ।

शनैः शनैः प्रकुरुते वायुर्दन्तसमाश्रितः ॥
करालान्विकटान्दंतान्करालो न च सिद्ध्यति ॥२१॥

भाषा-बायु धीरे धीरे मसुढ़की सहाय लेकर दांतोंको टेढ़े तिरछे करै उसको करालरोग कहते हैं यह रोग साध्य नहीं होता हैं ॥

अधिमांसके लक्षण कहते हैं ॥

हानव्ये पश्चिमे दंत महाञ्छोथो महारुजः ॥
लालास्रावी कफकृतो विज्ञेयो ह्यधिमांसकः ॥२२॥

भाषा—डाढ़के नीचे जिसके मसुढ़ेमें बहुत सूजन हो और घोर पीड़ा वाला होय तथा लार टपकें उसको अधिमांसक कहते हैं वह कफ के कोप सेउत्पन्न हुआ अधिमांसक कहलाता है ॥

नाडीव्रणके लक्षण कहते हैं ।

दन्तमूलगता नाड्यः पंच ज्ञेया यथेरिताः ॥

भाषा-जैसे नाडीव्रण निदान में पांच प्रकारके नाडीव्रण हैं उसही तरह दांतों की जड़ में पांच नाडी जाननी ।

अथ दान्तके रोग लिखे हैं ।

वहां दालनके लक्षण कहते हैं ।

दीर्यमाणेष्विव रुजा यस्य दन्तेषु जायते ॥
दालनो नाम स व्याधिः सदागतिनिमित्तजः ॥२३॥

भाषा-जिसके दांतोंमें फोडनेकीसी पीड़ा होय उसको दालनरोग कहते हैं। यहरोग वादीसे होताहै ॥

कृमिदंतके लक्षण कहते हैं ॥

कृष्णाश्छिद्रश्चलस्रावी ससंरम्भो महारुजः ॥
अनिमित्तरुजो वातात्स ज्ञेयः कृमिदन्तकः ॥२४॥

भाषा-वातकेविकारसे दांतोंमें काले छेद होजांय तथा हलने लगें उनमेंसे झरावहोय थरांहटहोय पीड़ायुक्त बिनाकारण दुखे उसकोकृमिदंतरोग कहतेहैं

भंजनकके लक्षण कहते हैं ॥

वक्त्रं वक्रं भवेद्यस्य दन्तभंगश्च जायते ॥
कफवातकृतो व्याधिः स भंजनकसंज्ञितः ॥२५॥

भाषा—जिस व्याधिसे मुख टेढ़ा होकर दांत फटने लगे, यह व्याधि कफवात युक्तहोताहै दान्त भंगकारी दोषके प्रभावसे मुखभी टेढा होजाताहै

दंतहर्षके लक्षण कहतेहैं ॥

शीतरूक्षप्रवाताम्लस्पर्शानामसहा द्विजाः ॥
पित्तमारुतकोपेन दन्तहर्षः स नामतः ॥२६॥

भाषा—पित्तवायुके कोपसे ठंढे रूखे खट्टे आदि पदार्थ और वायु इनके स्पर्शको सहनहीं सकै उसकोदंतहर्ष कहतेहैं ।

दंतशर्कराके लक्षण कहते हैं ॥

मलो दन्तगतो यस्तु पित्तमारुतशोषितः ॥
शर्करेव खरस्पर्शा सा ज्ञेया दन्तशर्करा ॥२७॥

भाषा-दांतोंका जो मल वह पित्तवायुसे सूखाहुआ रेतके तुल्य खरखराहट युक्त स्पर्श वाला होय उसरोगको दंतशर्करा ऐसा कहते हैं ॥

कपालिकाके लक्षण कहते हैं ॥

कपालेष्विव दीर्यत्सु दन्तानां सैव शर्करा ॥

कपालिकेति सा ज्ञेया सदा दंतविनाशिनी ॥२८॥

भाषा.मट्टीके घडाका जिसप्रकार टुकडो वैसाही दांतोंका मल जब होय तब यहां दांतोंके नाश करनेवाली यह कपालिका नामसे जाननी चाहिए ॥

श्यावदंतके लक्षण कहते हैं।

असृङ्मिश्रेण पित्तेन दग्धो दंतस्त्वशेषतः ॥

श्यावतां नीलतां वापि गतः स श्यावदन्तकः ॥२९॥

भाषा-लोहूसे मिले पित्तसे जोदांत सब प्रकार जलेके समान सब काले होजाय उनको श्यावदंत कहते हैं ॥

हनुमोक्षके लक्षण कहते हैं।

वातेन तैस्तैर्भावैस्तु हनुसंधिर्विसंहतः ॥

हनुमोक्ष इति ज्ञेयो व्याधिरर्दित लक्षणः ॥३०॥

भाषा-वादीकी खराबीसे उनर भावोंसे चोट लगने आदिसे ठोडी दांतो से अलगरहो उसको हनुमोक्ष कहतेहैं यह अर्दितरोगके लक्षणके तुल्य लक्षण वाला जानना जो सुश्रुतने इस रोगको दांतोंके समीप होनेसे दंतरोग कहा है भोजने इसकी वात व्याधि मे लिखा है ॥

अथ जिह्वागत रोगों को कहते हैं

वातजन्य जिह्वा रोगके लक्षण कहते हैं

जिह्वाऽनिलेन स्फुटिता प्रसुप्ता भवेच्च शाकच्छदनप्रकाशा ॥

भाषा-वायुसे जिह्वा फटीसी सोईभी और शाकके पेडके पत्रके तुल्य काटोंसे युक्त होय यह रोग जाड़ी इसनामसे विख्यात है ॥

पित्तजन्य जिह्वारोगके लक्षण कहतेहैं।

पित्तेन पीता परिदह्यते च दीर्घैः सरक्तैरपि कंटकैश्च ॥

भाषा-पित्तसे जिह्वा पीली हो उसम दाहहोय, उसमें लंबेर औरलाली लिए हुए और कांटों होते हैं ॥

कफजन्य जिह्वाके लक्षण कहते हैं।

कफेन गुर्वी बहला चिता च मांसोच्छ्रयैः शाल्मलिकंटकाभैः ३१

भाषा-कफसे जिह्वा भारी लड खड़ाहट युक्त होतीहै और सेभरके कांटे के समान मांसक (अंकुर से) बढ़ीहुई होती है ॥

अलासके लक्षण कहते हैं ।

जिह्वातले यः श्वयथुः प्रगाढः सोऽलाससंज्ञः कफरक्तमूर्तिः॥
जिह्वां स तु स्तंभयति प्रवृद्धो मूले च जिह्वा भृशमेति पाकम् ॥

भाषा-जिह्वातलमें जो सूजन भारीहो वह कफरक्तकी मूर्ति वाला वह अलासरोगकहलाताहै बढ़ाहुआ जीभकावह स्तम्भन करताहै और मूलमें जिह्वा अत्यन्त पाकको प्राप्त होतीहै ॥

उपजिह्विकके लक्षण कहते हैं ।

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुर्हि जिह्वामुन्नम्य जातः कफरक्तमूलः ॥
लालाकरः कण्डुयुतः सचोषः सा तूपजिह्वा पठिता भिषग्भिः

भाषा-कफरक्त जिसका मूल जीभके आगेहुआ जो सूजन वह जीभको झुका (दवा) कर पैदा हुआ लार करे अर्थात् लारं टपकावे खुजलाहट युक्तहो अग्निके तापके समानभभकहोरक्तकी योनि(कारण) जो पित्तउससेचोष होता है वह उपजिह्विका कहा है ॥

तालुगत रोगों को कहतेहैं ।

कंठशुडीके लक्षण कहते हैं ।

श्लेष्मासृग्भ्यां तालुमूले प्रवृद्धोदीर्घःशोथोध्मातबास्तिप्रकाशाः
तृष्णाकासश्वासकृत्तं वदन्ति व्याधिर्वैद्याःकंठशुंडीतिनाम्ना३२

भाषा-श्लेष्मा और रक्तसे तालुके मूलमें बढ़ीहुई वायुसे भरीहुई मसक के तुल्य लम्बी बड़ी सूजन हो वह प्यास, खांसी, श्वास,इनको पैदा करते हैं उस व्याधिको कण्ठशुन्डी इसनामसे वैद्य कहतेहैं।

तुंडिकेरीके लक्षण कहतेहैं

शोथःशूलस्तोददाहप्रपाकौ प्रागुक्ताभ्यां तुंडिकेरी मता तु ॥

भाषा-पहिले कफ रक्तों से तालू में बनकपास के फल के तुल्य सूजन होय और पीड़ा हो सुई छेदनेकासा दुःख, दाहहोकरपके उसे तुंडिकेरी कहते हैं

अध्रुषके लक्षण कहते हैं ।

मृदुःशोथोलोहितोशोणितोत्थोज्ञेयोऽध्रुषःसज्वरस्तीव्ररुक्च ३४

भाषा—रक्त से उत्पन्न हुए तालुए में कोमल सूजन लाल रंगकी हो ज्वर सहित तीव्र तकलीफ हो वह अध्रुष नाम से जानना चाहिये ।

कच्छपके लक्षण कहते हैं ॥

कूर्मोन्नतोऽवेदनोऽशीघ्रजन्मा रोगो ज्ञेयः कच्छपःश्लेष्मणा वा ॥

भाषा-कफ से तालुए में कछुए की पीठके समान ऊंची सूजन होय उस में पीड़ा नहीं होय, शीघ्र नहीं बढ़े वह रोग कच्छप ऐसे जानना ।

ताल्वर्बुद के लक्षण कहते हैं ।

पद्माकारं तालुमध्ये तु शोथं विद्याद्रक्तादर्बुदं प्रोक्तलिंगम् ॥३५॥

भाषा—रक्तके विकार से तालुए के बीच में कमलकी कर्णिकाके समान शोथ होय, इसको ताल्वर्बुद कहते हैं इसके लक्षण अर्बुद निदान में कहे हैं भोज ने इसके लक्षण इस प्रकार कहे हैं ।

" उपर्येव भवेन्मध्येयथा पद्मस्य कार्णिका ॥ पार्श्वतश्चांकुरैर्दीर्घै र्नासा चाप्यघसी इति ॥ श्लेष्मरक्त समुत्थानं तत्ताल्वर्बुद संज्ञितम् "

मांससंघात के लक्षण कहते हैं ॥

दुष्टं मांस नीरुजं तालुमध्ये कफाच्छूनं मांससंघातमाहुः ॥

भाषा—कफसे तालुए के बीच दुष्ट मांस हो के जो सूजन होय और उस में तकलीफ होय उसको मांस संघात कहते हैं ।

तालुपुप्पुटके लक्षण कहते हैं ॥

नीरुक्स्थायी कोलमात्रः कफात्स्यान्मेदोयुक्तःपुप्पुटस्तालुदेशे ३६

भाषा-कफ से मेद सहित तालुए में पीडा रहित और स्थिर और बेर के तुल्य फफोटा (सूजन) होय उसको तालुपुप्पुट ऐसा कहते हैं ॥

तालुशोष के लक्षण कहते हैं ।

शोषोऽत्यर्थं दीर्यते चापि तालुः श्वासश्चोग्रस्तालुशोषोऽनिलाच्च

भाषा-और वायु से तालु अत्यंत सूखे और फट जाता है तथा उग्र श्वास

होताहै उसको तालुशोष कहते हैं कोई आचार्य कहते हैं कि यह रोग पित्त से होता है क्यों कि शोष जो है वह पित्त से होता है इस वजह से परन्तु भोज ने अपने ग्रन्थ में " तालु शोषो भवेद्वातात् " ऐसा ही कहा हैं ।

तालुपाक के लक्षण कहते हैं ।

पित्तं कुर्यात्पाकमत्यर्थघोरं तालुन्येवं तालुपाकं वदंति ॥३७॥

भाषा-पित्त कुपित हुआ तालुए में अत्यंत घोर पकी फुन्सीयों को पैदा करै उसको तालुपाक कहते हैं ॥

कण्ठगत १७ रोहिण्यादिकों को कहते हैं ।

तहां पांच रोहिणीयो की सामान्य सम्प्राप्ति कहते हैं ।

गलेऽनिलः पित्तकफौ च मूर्च्छितौ प्रदूष्यमांसंचतैथैवशोणितम्
गलोपसंरोधकरैस्तथांकुरैर्निहंत्यसून्व्याधिरियं हि रोहिणी ३८॥

भाषा-कण्ठ में वायु और पित्त कफ ये दुष्ट हुए मांसको तथा लोहू को दूषित करके गले को रोकने वाले उत्पन्न हुए अंकुरों (कांटों) से प्राणों को रोकै यह रोहिणी इस नाम से प्रसिद्ध रोग जाने सब रोहिणी सन्निपात से उत्पन्न होती है उत्कर्ष अपकर्ष आदि के लिये वायु आदिका मिस है और आचार्य तो अलग २ व सन्निपात से तथा रुधिर से पैदा होती है ऐसा पाठ करके सुश्रुत में एक दोष जन्य ही है ऐसा भी कह देते हैं भोज ने भी कहा है " वात पित्त कफ रक्तान्येकशः सर्वशोऽपिवा ॥ कण्ठं यदा निषेवन्ते " इस प्रकार जाने " निहन्त्य सून् " इस से यद्यपि सामान्य रूप से असाध्यता कही है तथापि सप्ताहादि कहने से पृथक् तीनों दोषों से उत्पन्न हुई जो रोहिणी उन के विधान न करने से ही असाध्यत्व समझे ऐसे ही रक्तजन्य का भी विचार करै और सन्निपात जन्य जो हैं वह तो पैदा होते ही असाध्य हैं जैसा भोजने " तालुः शुष्यति कण्ठश्च वातेनाधम्यतें यदा ॥ कण्ठेस्यात्र प्रसज्येत सप्ताहात् सजहात्यसून् इस प्रकार कहा है इसका विधान मधुकोष में बहुत लिखा है

वातजा रोहिणी के लक्षण कहते हैं ।

जिह्वासमन्तादृशवेदनास्तु मांसांकुराः कण्ठविरोधिनोये ॥
सा रोहिणी वातकृता प्रदिष्टा वातात्मकोपद्रवगाढयुक्ता ३९॥

भाषा-जिह्वाके चारों ओर अत्यन्त वेदना देनेवाले मांसाङ्कुर जो कंठ को अवरोध कर पैदा होय वह वात जन्य रोहिणी कहिहै वह वातके जो उपद्रव स्तम्भ कम्प आदि इनसे युक्त होय ॥

पित्तजा के लक्षण कहते हैं।

क्षिप्रोद्गमा क्षिप्रविदाहपाका तीव्रज्वरा पित्तनिमित्तजाता ॥

पित्तसे उत्पन्न हुई रोहिणी शीघ्र बढ़े तथा शीघ्रही पके वह तीव्र ज्वर देनेवाली है ॥

कफजा रोहिणी के लक्षण कहते हैं।

स्रोतोविरोधिन्यचलोद्गताच स्थिराङ्कुरा याःकफसंभवासा॥४०॥

भाषा-कफ से जो रोहिणी उत्पन्न होती है वह कण्ठ के स्रोतों (मार्गों) को रोके तथा चलायमान ऊंची होवे तथा उसके अंकुर कठिन होते हैं ॥

त्रिदोष रोहिणी लक्षण कहते हैं ॥

गम्भीरपाकिन्यनिवार्यवीर्या त्रिदोषलिंगा त्रितयोत्थिता च ॥

भाषा-दोष त्रय से पैदा हुई रोहिणी गंभीरपाकिनी जिसमें राध बहुत होय जिसका प्रभाव निवारण करने में न आवे और तीनों दोषों के लक्षणों से युक्त होय ऐसी जाने इसको पहिले असाध्य कह आये हैं

रक्तजा रोहिणी के लक्षण कहते हैं।

स्फोटैश्चिता पित्तसमानलिंगासाध्या प्रदिष्टा रुधिरात्मकातु ४१

भाषा-रुधिरकी जो रोहिणी है वह पित्तकी रोहिणी के तुल्य जाननी तथा फोडों से व्याप्त हुई यह साध्य कही है ॥

कंठशालूकके लक्षण कहते हैं।

कोलास्थिमात्रः कफसंभवो यो ग्रन्थिर्गले कंटकशूकभूतः ॥
खरः स्थिरःशस्त्रनिपातसाध्यस्तं कंठशालूकमिति ब्रुवन्ति ४२॥

भाषा-कफ से उत्पन्न हुई गले में बेरकी गुठली के समान गांठ होय, तथा कांटे के तुल्य व शूक के तुल्य दर्द होय तथा खरदरी और स्थिर होय यह रोग नश्तर आदि शस्त्र क्रिया करने से साध्य होता है इसको कंठशालूकरोग कहते हैं।

अधिजिह्व के लक्षण कहते हैं ॥

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः कफात्तु जिह्वोपरिष्टादपिरक्तमिश्रात् ॥
ज्ञेयोऽधिजिह्वः खलु रोग एष विवर्जयेदागतपाकमेनम् ॥४३

भाषा-रक्त से मिले हुए कफ से जिह्वा से अग्रभागसदृश जिह्वा में शोथ होय वह अधिजिह्व रोग जानना चाहिये पकावट आने पर उसको छोड़देय।

बलय के लक्षण कहते हैं।

बलास एवायतमुन्नतं च ग्रंथिं करोत्यन्नगतिं निवार्य ॥
तं सर्वथैवाप्रतिवार्यवीर्यं विवर्जनीयं बलयं वदन्ति ॥४४॥

भाषा-कफ ही अन्न की गति को रोक कर फैली हुई ऊंची गांठ पैदा करे उसको सर्वथाही जिसका बल रोकने में न आवे इस प्रकार का बलय नामक कहते हैं यह चिकित्सा कर ने योग्य रोग नहीं किन्तु छोडने योग्य जानना

बलासके लक्षण कहते हैं ॥

गले तु शोथं कुरुतः प्रवृद्धौ श्लेष्मानिलौ श्वासरुजोपपन्नम् ॥
मर्मच्छिदं दुस्तरमेनमाहुर्बलाससंज्ञं निपुणा विकारम् ॥४५॥

भाषा-बढ़े हुए कफ और वायु सो गलेमें श्वास और तकलीफ सहित सूजन पैदा करें इस विकारको मर्मच्छेदी दुस्तर बलास जिसका नाम ऐसे विद्वान् कहते हैं ॥

एकवृन्दके लक्षण कहते हैं ॥

वृत्तोन्नतोऽतः श्वयथुः सदाहः सकंडुरोऽपाक्यमृदुर्गुरुश्च ॥
नाम्नैकवृन्दः परिकीर्तितोऽसौ व्याधिर्बलासक्षतजप्रसूतः ॥४६॥

भाषा—कफ तथा रुधिरसे प्रगट गलेमें गोल, ऊँचा दाहयुक्त खुजारयुक्त ऐसी और पीछे सूजन जिसमें होय वह कुछ पके और कुछ नरम होय तथा भारी होय यह एकवृन्द नाम व्याधि है ॥

वृन्दके लक्षण कहते हैं।

समुन्नतं वृत्तममंददाहं तीव्रज्वरं वृंदमुदाहरंति ॥
तंचापिपित्तक्षतजप्रकोपाद्विद्यात्सतोदंपवनात्मकं तु ॥४७॥

भाषा-गलेमें ऊँची, गोल तीव्रदाह तथा तीव्र ज्वरयुक्त जो शोथ होय

उसको वृन्द कहते हैं उसको भी रक्तपित्तके कोपसे जाने और जिसमें सुइ सी चुभे उसको वायुयुक्त समझे यहां शंका होती है कि कंठ के १७ रोग सप्तदशामया कहेहैं और वृन्दको मिलानेसे अठारह रोग होतेहैं यहां यहक्या बात है इसका जवाब यहहै कि तुल्यस्थान आकृति होनेसे एकवृन्दकाही भेद वृन्दरोग जानना चाहिए। ऐसा माननेसे संख्यामें बिरोध नहीं पडेगा यद्यपि एकवृन्द कफरक्तजन्य हैं और वृन्दरोग पित्तरक्तजन्य पढ़ाहै तबभी जैसे वृन्द को चोटनी जैसी वेदनायुक्त होनेसे वातात्मकता कही है तोभी एकवृन्दकी अवस्था विशेष होनेसे वृन्दको एकवृन्दके साथ प्राप्ति होतीहो जैसे कामला में उसके लक्षणसे भिन्न हेतु लक्षण वाले हलीमकका मिलानकरतेहैं जैसे वातज मदात्ययसे ध्वंसके विक्षेपकके अत्यन्त भेदपर भी वहही समझा जाता है और फिर उसकी अलाहिदा ग्रहण नहीं किया है इसही प्रकार वृन्द एक वृन्द के विषयमें वृन्दको एक वृन्दजन्यही कहाहै ॥ (१)

शतघ्नीके लक्षण कहते हैं ॥

वर्तिर्घना कंठनिरोधिनी या चिताऽतिमात्रं पिशितप्ररोहैः ॥
अनेकरुक् प्राणहरी त्रिदोषा ज्ञेया शतघ्नीचशताघ्निरूपा४८

भाषा-कंठमें लंबी वत्तीसी और कठिन कंठको रोकनेवाली सूजन होय और वह और उस मासके अंकुरोंसे बहुत घिरीहोय तथा वह वातपित्त कफ जन्य तोद व्यथा दाह खुजार आदि वेदना युक्त यह लोहेके कांटोंसे युक्त शतघ्नी बड़ी शिलाके समानहो इससे इसको शतघ्नी कहतेहैं ॥ यहअसाध्य है भोजने भी शंकुनेव गले विद्धा शतघ्न्येषा न सिद्ध्यति इस प्रकार कहा है ॥

गलायुके लक्षण कहते हैं ॥

ग्रन्थिर्गलेत्वामलकास्थिमात्रःस्थिरोऽल्परुक्स्यात्कफरक्तमूर्तिः॥
संलक्ष्यते सक्तमिवाशनं च स शस्त्रसाध्यस्तु गलायुसंज्ञः ४९॥

भाषा-कफरक्त से उत्पन्न गलेमें आंवलेकी गुठलीके बराबर गांठ उत्पन्न

---

१ "श्लेष्मरक्तसमुत्थानमेकवृन्द विभावयेत्। तुल्यस्थानाकृतिर्वृन्दो वृन्दजो रक्तपित्तजः॥" इति। और गदाधर तो कारण भेदसे तथा धर्म मद से उत्पन्न होने से और एक कार्य कारण के अभेद प्रसंग कहकर वृन्द शब्दको छन्द न बिगडै इससे आदिके लोपसे एक वृन्दसे ही बना कहते हैं ॥

होवे वह गांठ कठिन मंदपीडावाली हो इसके होनेसे अन्न गलेमें अटकतासा मालूम होवे यह रोग शस्त्रके द्वारा अर्थात् शस्त्रके काटनेसे साध्य होवे इसको गलायु कहते हैं ॥

गलविद्रधि के लक्षण कहते हैं ।

सर्वं गलं व्याप्य समुत्थितो यः शोथो रुजः सांति च यत्रसर्वाः॥
स सर्वदोषो गलविद्रधिस्तु तस्यैव तुल्यः खलु सर्वजस्य ।५०।

भाषा-जो सब गलेमें व्याप्त उठा जो शोथ (सूजन) उसमें सब प्रकारकी पीडा होय वह विद्रधि निदान में जो त्रिदोषकी विद्रधि कहाहै उसके समान गलविद्रधिके लक्षण जानने ॥

गलौघ के लक्षण कहते हैं।

शोथो महानन्नजलावरोधी तीव्रज्वरो वायुगतेर्निहन्ता॥
कफेनजातोरुधिरान्वितेन गले गलौघःपरिकीर्त्यतेऽसौ५१

भाषा-रक्तसे कफसे गलेमें भारी अन्न तथा जलका अवरोध करनेवाला शोथ (सूजन) होय तीव्र ज्वर जिसमें होय तथा वायुके संचारको रोके यहरोग वैद्यों द्वारा गलौघ रोग है ऐसा कहा गया है ॥

स्वरघ्नके लक्षण कहते हैं।

यस्ताम्यमानः श्वसिति प्रसक्तं भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकंठः ॥
कफोपदिग्धेष्वनिलायतेषु ज्ञेयः स रोगः श्वसनात्स्वरघ्नः५२॥

भाषा-वायुके मार्गोंमें कफसे लिप्त हुए अंधकारसे में डूबा हुआ जोपुरुष अत्यन्त श्वासको छोड़े अथवा मूर्च्छा आकर जिसको श्वास निकले जिसको भिन्न स्वर होय कंठ सूखे और विमुक्त कहिये कंठ स्वाधीन न हो अर्थात् थोड़ाभी अन्न खाया हो तथापि कंठसे नीचे न उतरे यह वातजन्य रोग स्वरघ्न है ऐसा जाने ॥

मांसतान के लक्षण कहते हैं ।

प्रतानवान्यः श्वयथुः सुकष्टो गलोपरोधं कुरुते क्रमेण ॥
समांसतानःकथितोऽवलम्बी प्राणप्रणुत्सर्वकृतो विकारः५३।

भाषा-जो अत्यन्त फैलने वाला बहुत कष्टकर सूजन गले में उत्पन्न

होकर गलेको रोकता है वह त्रिदोष विकार वाला मांसतान ऐसे कहा है । यह विकराल रोग प्राणों का नाश करनेवाला है ।

विदारी के लक्षण कहते हैं ।

सदाहतोदं श्वयथुं सुतीव्रमन्तर्गले पूतिविशीर्णमांसम् ॥
पित्तेनविद्याद्वदने विदारींपार्श्वेविशेषात्सतुयेनशेते॥५४॥

भाषा–गलेमें दाह चबक सहित सूजन हो तथा भीतर गले में दुर्गंधि युक्त मांस सड़जाय और रोगी जिस करवट सोवे उसी तर्फ वह रोग होता है मांसके विदारण करने से उस रोगको पित्तसे विदारी ऐसा जाने ।

सर्वसर (मुखपाक या मुखका आना) तीन प्रकारहै उसको कहतेहैं ।

स्फोटैः सतोदैर्वदनं समंताद्यस्याचितंसर्वसरःसवातात् ॥
रक्तैःसदाहैःपिडकैःसपीतैयस्याचितंचापिसपित्तकोपात्॥
अवेदनैःकण्डुयुतैःसवर्णैर्यस्याचितंचापिसवैकफेन॥५५॥

भाषा-वायुसे मुखमें सर्वत्र छाले हो जांय और वह चिनमिनावे, मुख, जिह्वा, गला, होंठ, मसूड़े, दांत और तालु इन सबमें व्याप्ति होनेसे इस रोगको सर्वसर जाने । पित्तसे मुखमें लाल तथा पीले छाले होंय और दाह होवे ॥ कफसे मुखमें मन्द पीड़ा और त्वचा के समान वर्ण जिनका ऐसे छाले सर्वत्र होंय ।

असाध्यमुखरोगके लक्षण कहते हैं ।

ओष्ठप्रकोपे वर्ज्याः स्युर्मांसरक्तप्रकोपजाः ॥
दन्तमूलेषु वर्ज्यौ तु त्रिलिंगगतिशौषिरौ ॥ ५६ ॥
दन्तेषु न च सिध्यन्ति श्यावदालनभञ्जनाः॥
जिह्वारोगेष्वलासस्तु तालव्येष्वर्बुदं तथा ॥ ५७ ॥
स्वरघ्नो वलयो वृन्दो बलाशश्च विदारिका ॥
गलौघो मांसतानश्च शतघ्नी रोहिणी गले ॥ ५८ ॥
असाध्या कीर्तिता ह्येते रोगा नव दशैव तु ॥

तेषु चापि क्रियां वैद्यः प्रत्याख्याय समाचरेत् ॥६९॥

भाषा— ओष्ठरोगके प्रकोपमें मांसज, रक्तज और त्रिदोषज यह असाध्य हैं इन्हे छोड़ मसूड़ों के रोगोंमें सन्निपात, नाड़ी और सौषिर । और दांतों के रोगों में श्यावद, दालन और भंजन । जिह्वा के रोगों में आलस और तालुएके रोगोंमें अर्बुद तथा गलेके रोगोंमें स्वरघ्न, वलय, वृन्द, वलाश, विदारिका. गलौघ, मांसतान, शतघ्नी और रोहिणी ये उन्नीस रोग असाध्य हैं। उनपर वैद्य जो क्रिया भी करै तो पहिले ही प्रत्याख्यान करके (अर्थात करते तो हैं पर आराम होना मुश्किल है ऐसा करके) चिकित्सा करे ॥

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसूनु शास्त्रि सोहनलाल
विद्या भूषण विरचितायां माधव सुबोन्धियां
मुखरोग निदानं समाप्तम् ।

मुख रोग में जिह्वाश्रय रोग कहा जिह्वा इन्द्रियों का अधिष्ठान है इस से इन्द्रियाधिष्ठान की दुष्टिकी समान धर्मता से कर्ण रोग का निदान कहते हैं ।

॥ अथ कर्णरोगनिदानम् ॥

कर्णशूल के लक्षण कहते हैं ।

समीरणःश्रोत्रगतोऽन्यथाचरन्समंततःशूलमतीवकर्णयोः॥
करोतिदोषैश्चयथास्वमावृतःसकर्णशूलःकथितोदुराचरः १

भाषा—कानमें प्राप्त हुआ वायु दोषों से 'कफ पित्त रुधिर से' व्याप्त होकर कानों में उलटा फिरे तब कानोंमें अत्यन्त दरदहो इसरोगका कर्णशूल कहते हैं । यह रोग कष्टसाध्य है । कर्णशूल का कष्ट पना मूर्छादि जो उपद्रव उनके योग से जानै *

कर्णनादके लक्षण कहत हैं ।

कर्णस्रोतः स्थिते वाते शृणोति विविधान्स्वरान् ॥

*मूर्छा दाहो ज्वरःकासः क्लमोऽथ वमथुस्तथा । उपद्रवाः कर्णशूले भवन्त्येते भविष्यतः ।

भेरीमृदंगशंखानां कर्णनादः स उच्यते ॥ २ ॥

भाषा—वायु के कानके छिद्रमें स्थित होनेपर अनेक प्रकारके स्वर तथा भेरी, मृदंग और शंख इनके शब्द सुनाई देवें इस रोगको कर्णनाद कहते हैं इसमें भृंगारी आदि के शब्द का श्रवण भी होता है भेरी आदि तो उप लक्षण मात्र हैं यहां विदेह का मत यह है:-

शिरोगतो यदावायुः श्रोत्रयोः प्रति पद्यते ॥
तदा तु त्रिविधान् शब्दान् समीरयति मारुतः ॥
भृंगारक्रौंचनादंवा मण्डूककाकयोस्तथा ॥
तंत्रीमृदंगशब्दं वा सामतूर्यस्वनं तथा ॥
गीताध्ययनवन्शानां निर्घोषंक्ष्वेडनं तथा ॥
अपामिवपतन्तीनां शकटस्यैवगच्छतः ॥
श्वसतामिव सर्पाणां सदृशं श्रूयतेस्वनः ॥
यदा शब्दवहं वायुः स्रोत आवृत्य तिष्ठति ॥
शुद्धश्लेष्मान्वितो वापि बाधिर्यं तेन जायते ॥३॥

भाषा-शिरोगत जो वायु जब कानों में प्राप्त होता है तब अनेक प्रकार के शब्द कानों में करता है अर्थात् अनेक शब्द कानोंमें सुन पड़ते हैं भृंगारी 'घरघुली कीड़ा' कौंच इनकासा शब्द मेंड़क काककासा शब्द वीणा मृदंग सामतुरी गाने पढ़ने बन्शी आदिका शब्द अलगोजाकासा, ऊपर से गिरते हुए जलकासा, चलती हुई गांड़ीकासा श्वास लेते हुए सर्पोंकासा शब्द जिसमें सुनाई पड़े वह कर्णनाद जानना । जब वायु अथवा कफसे युक्त वायु शब्द बहानेवाले स्रोत में स्थित हो उससे उस पुरुष के बाधिर्य (बहरापन) प्राप्त होता है ॥२०३॥

कर्ण क्ष्वेडके लक्षण कहते हैं ।

वायुः पित्तादिभिर्युक्तो वेणुघोषोपमं स्वनम् ॥
करोति कर्णयोः क्ष्वेडं कर्णक्ष्वेडः स उच्यते ॥४॥

भाषा-पित्तादि दोषों सहित वायु कानों में वेणु (बंसी) के शब्द करै वह कर्णक्ष्वेड * कहलाता है ।

* तथाच विदेहः-मारुतः कफपित्ताभ्यां संसृष्टः शोणितेन च ॥ कर्णक्ष्वेडं संजनयेत् क्ष्वेडनं वेणु घोषवत् ॥

कर्णस्रावके लक्षण कहते हैं ।

शिरोऽभिघातादथ वा निमज्जतो जले प्रपाकादथवापिविद्रधेः
स्रवेद्धि पूयं श्रवणोऽनिलार्दितः स कर्णसंस्राव इतिप्रकीर्तितः ६

भाषा—शिरमें किसी प्रकार की चोट लगनेसे अथवा पानी में डूबने से अथवा कानमें विद्रधि पकनेसे वायु से पीड़ित कानों से राध बहे वह कर्ण स्राव कहा है ॥

कर्णकण्डू कर्ण गूथके लक्षण बताकर कर्ण प्रतिनाह के लक्षण कहेंगे ।

मारुतः कफसंयुक्तः कर्णकंडूं करोति च ॥
पित्तोष्मशोषितः श्लेष्मा जायते कर्णगूथकः ॥६॥

भाषा-कफ से मिला हुआ वायु कानों में खुजली उत्पन्न करता है पित्तकी गरमी से सूखकर कफ कानमें मैल जमे उसको कर्णगूथ कहते हैं ॥

कर्णप्रतिनाहके लक्षण कहते हैं ।

स कर्णगूथो द्रवतां यदा गतो विलायितो घ्राणमुखं प्रपद्यते ॥
तदा स कर्णप्रतिनाहसंज्ञितो भवेद्विकारः शिरसोऽर्द्धभेदकृत् ७॥

भाषा—वही कानका मैल जब पतला होवै अथवा स्नेह स्वेदादिकों से पतला होकर मुख और नाकमें लीन होय तब उसको कर्णप्रतिनाह कहते हैं यह आधाशीशी पैदा करता है ॥

क्रिमिकर्णके लक्षण कहते हैं ।

यदा तु मूर्च्छंत्त्यथवापिजंतवःसृजन्त्यपत्यान्यथवापिमक्षिकाः॥
तद्व्यंजनत्वाच्छ्रवणोनिरुच्यतेभिषग्भिराद्यैःक्रिमिकर्णकोगदः ८

भाषा—जब कानोंमें कीड़े बहुत पड जांय अथवा मक्खी अण्डा छोडें तब कृमि लक्षण व्यंजित होने से पहिले वैद्यों से यह क्रिमिकर्ण रोग है ऐसे कहा जाता है ॥

कानमें पतंगादि कीडा धसने के लक्षण कहते हैं ।

पतंगाः शतपद्यश्च कर्णस्रोतः प्रविश्य हि ॥
अरतिं व्याकुलत्वं च भृशं कुर्वन्ति वेदनाम् ॥९॥

कर्णौ निस्तुद्यते तस्य तथा फुरफुरायते ॥
कीटे चरति रुक्तीव्रा निस्पन्दे मन्दवेदना ॥१०॥

भाषा—पतंग, कानखजूरा, गिजाई आदि कान के स्रोतमें घुसकर बेचैनी करै जीवकर व्याकुलता कान में अत्यन्त पीड़ा करै कान चुटने लगें वह कीड़ा कानके भीतर फटफटावै उस समय कीड़ा के डोलने समय घोर पीड़ा होय और जब वह बन्द हो तब पीडा बन्द होवे यह लक्षण होतेहैं ।

कर्ण विद्रधि के लक्षण कहते हैं ।

क्षताभिघातप्रभवस्तु विद्रधिर्भवेत्तथा दोषकृतोऽपरः पुनः ॥
सरक्तपीतारुणरक्तमास्रवेत्प्रतोदधूमायनदाहचोषवान् ॥११॥

भाषा-कानमें खुजाने से व्रण हो जाय अथवा चोट लगनेसे कानमें व्रण होकर विद्रधि होय, उसी प्रकार वातादि दोषों से दूसरे प्रकारकी विद्रधि होय है । जब वह फूटे तब उसमें से लाल पीला रुधिर बहे, नोंचनेकीसी पीड़ाहोवे, धुआंसा निकलता मालूमहोवे, दाह होवे, चूसनेकीसीपीड़ाहोवे।

कर्णपाकके लक्षण कहते हैं ॥

कर्णपाकस्तु पित्तेन कोथविक्लेदकृद्भवेत् ॥
कर्णे विद्रधिपाकाद्वा जायते चाम्बुपूरणात् ॥१२॥

भाषा-पित्तसे अथवा कान विद्रधि के पकने से कानमें पानी भर जाने से कर्ण पाकरोग होता है वह कर्ण पाक कहलाता है और सड़ावट तथा कान में भिजावटसी करता है ।

पूतिकर्ण के लक्षण कहते हैं ।

पूयं स्रवति वा पूतिस ज्ञेयः पूतिकर्णकः ॥

भाषा—जिनके कानमें से राध निकले वा बास आवे उसको पूतिकर्ण कहते हैं ॥

अब संख्या पूरी करने को कर्णशोथ कर्णार्बुद कर्णार्श को कहते हैं ।

कर्णशोथार्बुदार्शांसि जानीयादुक्तलक्षणैः ॥१३॥

भाषा-कानकी सूजन, कानका अर्बुद और कानका अर्श (मसे) ये

रोग होंय तो इनके लक्षण उसी २ निदान के द्वारा जानने । विशेषता यहहै कर्णशोथ चार प्रकार का है । वात, पित्त, कफ, रक्तज इन भेदों से इसी प्रकार कर्णार्श कानका मसा भी चारही प्रकारका है ।

कर्णार्बुद रोग वात, पित्त, कफ, मांस, मेदा और शिरा इन भेदों से सात प्रकार का है कर्णरोग सुश्रुत में कहे हुए २८ प्रकारके हैं अब चरक में कहे वात, पित्त, कफ, सान्नपात जन्ये भेदेस कर्णरोग ४ प्रकार कहाहै ।

तहां वातजन्यकर्ण रोग के लक्षण कहते हैं ।

नादोऽतिरुक्कर्णमलस्य शोषः स्रावस्तनुश्चाश्रवणं च वातात्॥

भाषा-वादी से कानमें शब्द होय, अत्यन्त दर्द होय, कानका मैल सूख जाय, पतला स्राव होय अर्थात् बहने लगे सुनाई नहीं देवे अर्थात् बहरा होजाय यह लक्षण होते हैं ।

पित्तजन्य कर्णरोग के लक्षण ।

शोथः सरागो दरणं विदाहः सपीतपूतिस्रवणंचपित्तात॥१४॥

भाषा-पित्तसे कानमें सूजन होय. कान लाल हो, फटने लगे दाह हो पीला दुर्गंधि युक्त पदार्थ बहै यह लक्षण होते हैं ।

कफजन्य के लक्षण कहते हैं ।

वैश्रुत्यकण्डूस्थिरशोथशुक्ला स्निग्धा स्रुतिः स्वल्परुजःकफाच्च ॥

भाषा-और कफ से विरुद्ध सुनना. खुजली चले, स्थिरता सूजन सफेद और चिकना पदार्थ कानसे बहै यह लक्षण होते हैं ।

सन्निपातजन्य कर्णरोग के लक्षण कहते हैं ।

सर्वाणि रूपाणि च सन्निपातात्स्रावश्च तत्राधिकदोषवर्णः॥१६

भाषा-सन्निपात से सब लक्षण होंय, स्राव होय वा जौनसा दोष अधिक होय वैसाही दोषानुसार वर्णका स्राव होत है ॥

कर्णके अवयव होनेसे कर्णपालीके रोग कहते हैं ।

तहां कर्णशोथ के लक्षण कहते हैं ।

सौकुमार्याच्चिरोत्सृष्टे सहसापि प्रवर्द्धिते ॥

कर्णशोथो भवेत्पाल्यां सरुजः परिपोटवान् ॥

भाषा-सुकुमार स्त्री अथवा बालक कानकी लौरको एक साथ बहुत बढ़ावे तौ कानकी पाली (लार) में सूजन होकर फूल जावे और दुखे ॥

परिपोट के लक्षण कहते हैं ।

कृष्णारुणानिभः स्तब्धः स वातात्परिपोटकः ॥

भाषा-काला लाल और कठिन ऐसा फूल जाय वह परिपोटक वात से जानना ॥

उत्पातके लक्षण कहते हैं ।

गुर्वाभरणसंयोगात्ताडनाद्धर्षणादपि ॥
शोथः पाल्यां भवेच्छ्यावो दाहपाकरुजान्वितः ॥१७॥
रक्तो वा रक्तपित्ताभ्यामुत्पातः स गदो मतः ॥

भाषा-भारी आभरण (गहना) पहनने से अथवा चोट के लगने से अथवा कानको खींचने से कानकी पाली म काली सूजन होय वह दाह पकावट और पीड़ा युक्त हो अथवा रक्त पित्त से लाल सूजन होय वह उत्पात संज्ञक रोग कहा है ।

उन्मन्थकके लक्षण कहते हैं ।

कर्णं बलाद्वर्धयतः पाल्यां वायुः प्रकुप्यति ॥१८॥
कफसंगृह्य कुरुते शोफं स्तब्धमवेदनम् ॥
उन्मंथकः सकण्डूको विकारः कफवातजः ॥१९॥

भाषा-कानको बलपूर्वक बढ़ाने वाले पुरुष स्त्री व बच्चे के पाली (लौर) में वायु कुपित होता है वह कफ संग लेकर कठिन तथा पीड़ा रहित सूजन को उत्पन्न करता है वह वात से हुआ खुजार जिसमें होय ऐसा उन्मन्थक नाम विकार कहा है ॥

दुःखवर्द्धकनके लक्षण कहते हैं ।

संवर्ध्यमाने दुर्विद्धे कण्डूदाहरुजान्वितः ॥
शोफो भवति पाकश्च त्रिदोषो दुःखवर्द्धनः ॥२०॥

भाषा-खोटी तरहसे कानको छेदने से खुजार, दाह, पीड़ा इससे युक्त ऐसी सूजन होय वह पक जाय वह त्रिदोषसे होता उसको दुःखवर्द्धनकहतेहैं।

पररिलेहीके लक्षण कहते हैं ।

कफासृक् क्रिमयः क्रुद्धाः सर्षपाभा विसर्पिणः ॥
कुर्वन्ति पाट्यां पिडका कण्डूदाहरुजान्विताः ॥२१॥
कफासृक्कृमिसंभूतः स विसर्पन्नितस्ततः ॥
लिह्त स शष्कुलीं पालीं परिलेहीति स स्मृतः ॥२२॥

भाषा-कफ रक्त से उत्पन्न क्रिमि क्रुद्ध हुई सरसों की बराबर फैल ने वाली कानकी लौर में खुजार दाह युक्त फुन्सी पैदा करती है वह कफ रुधिर और कृमि इनसे उत्पन्न हुआ शोथ (सूजन) कानकी पालीमें इधर उधर फैले वह कानकी पालीको घेरे युक्त खाय जाय अर्थात् उसका मांस झरने लगे वह परिलेही कहा है ॥

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसूनु शास्त्रि सोहनलाल
विद्याभूषण विरचितायां माधव सुबोधिन्यां
कर्णरोग निदानं समाप्तम् ।

अथ नासारोग निदानम् ।

पीनस क लक्षण कहते हैं ।

आनह्यते यस्य विशुष्यते च प्रक्लिद्यते धूप्यति चापिनासा ॥
न वेत्ति यो गंधरसांश्च जन्तुर्जुष्टं व्यवस्येत्स तु पीनसेन ॥
तं चानिलश्लेष्मभवंविकारंब्रूयात्प्रतिश्यायसमानालिंगम् ॥१॥

भाषा-वायु से सूखे हुए कफसे जिसकी नाक खिंचे सूखे और जो गन्ध रसको जो जानही जाने वह पीनस से होता है उस वात कफ से उत्पन्न हुए विकार को प्रतिश्याय (जुकाम) के लक्षणों में तुल्य लक्षण वाला कहै ।

पूतिनस्यके लक्षण कहते हैं ।

दोषैर्विदग्धैर्गलतालुमूले संमूर्छितो यस्य समीरणस्तु ॥

निरेति पूतिर्मुखनासिकाभ्यां तं पूतिनस्य प्रवदंति रोगम् ॥२॥

भाषा-गले और तालुमूलमें दुष्ट हुवा पित्तरक्तादि दोषों से मिश्रित होकर नाक और मुखके मार्गों से दुर्गंधि निकळे इस रोगको पूत. नस्य कहते हैं ॥

नासापाकके लक्षण कहते हैं ।

घ्राणाश्रितं पित्तमरूंषि कुर्याद्यस्मिन्विकारे बलवांश्च पाकः ॥
तन्नासिकापाकमिति व्यवस्येद्विक्लेदकोथावथवापि यत्र ॥३॥

भाषा—जिस विकारमें नाकमें पित्त दूषित होकर फुन्सी पैदा करै और नाक भीतरसे पक जाय उसको नासिकापाक ऐसा जाने जिसमें नाकसे राध और बास आने लगती है ।

पूयरक्तके लक्षण कहते हैं ।

दोषैर्विदग्धैरथवापि जन्तोर्ललाटदेशेऽभिहतस्य तैस्तैः ॥
नासा स्रवेत्पूयमसृग्विमिश्रं तं पूयरक्तं प्रवदान्ति रोगम् ॥४॥

भाषा-दोष दूषित होनेसे अथवा प्राणीके कपालमें चोट लगनेसे नाक में से राध बहे और रुधिर बहे इस रोगको पूयरक्त कहते हैं ॥

क्षवथु (छींक) के लक्षण कहते हैं ।

घ्राणाश्रितं मर्माणि संप्रदुष्टो यस्यानिलो नासिकया निरेति ॥
कफानुयातो बहुशोऽतिशब्दं तं रोगमाहुः क्षवथुं विधिज्ञाः ॥५॥

भाषा—नासिकाश्रित मर्म (शृंगाटक) में वायु दुष्ट होकर कफसहित भारी शब्दको नासिकाके बाहर निकाले उसको क्षवथु (छींक) कहते हैं ॥

आगंतुज क्षवथुके लक्षण कहते हैं ।

तीक्ष्णोपयोगादतिजिघ्रतो वा भावान्कटूनर्कनिरीक्षणाद्वा ॥
सूत्रादिभिर्वा तरुणास्थिमर्मण्युद्घाटितेऽन्योक्षवथुर्निरेति ॥६॥

भाषा—तीखे पदार्थ के खानेसे अथवा कडुए खाने से, मिरच आदि तीखे वस्तुओं के अत्यन्त सूंघनेसे, सूर्य के देखने से अथवा कपड़ेकी बत्ती बनाकर नाकमें तरुणास्थि मर्म (शृंगाटक) में लगाने से, आगंतुज क्षवथु (छींक) आती है यह आगंतुज और दोषज छींक एकही है ॥

भ्रंशथु के लक्षण कहते हैं॥

प्रभ्रश्यते नासिकया हि यस्य सांद्रो विदग्धो लवणः कफस्तु॥
प्राक्संचितो मूर्द्धनि सूर्यतप्ते तं भ्रंशथुं रोगमुदाहरन्ति ॥७॥

भाषा-सूर्य से मस्तक तपने पर पूर्व संचित हुआ विदग्ध, गाढ़ा, खारी ऐसा कफ नाकसे गिरे उस व्याधि को भ्रंशथुरोग कहते हैं॥

दीप्त के लक्षण कहते हैं।

घ्राणे भृशं दाहसमन्विते तु विनिश्चरेद्धूम इवेह वायुः॥
नासा प्रदीप्तेव च यस्य जंतोर्व्याधि तु तं दीप्तमुदाहरन्ति ॥८॥

भाषा—अत्यन्त दाहयुक्त नाकके होने पर उस में वायु धुआं के सदृश विचरे और जिस जीवके नाक प्रदीप्तकी तुल्य होय इस रोगकोदीप्तकहतेहैं॥

प्रतिनाहके लक्षण कहते हैं।

उच्छ्वासमार्गं तु कफः सेवातो रुंध्यात्प्रतीनाहमुदाहरेत्तम्॥

भाषा-वायु के साथ कफ श्वासके मार्गको बन्द करे तब नाकका स्वर अच्छी रीति से नहीं चले इसको प्रतिनाह कहते हैं।

नासास्रावके लक्षण कहते हैं।

घ्राणाद् घनः पीतसितस्तनुर्वा दोषः स्रवेत्स्रावमुदाहरेत्तम् ॥९॥

भाषा-नाकसे गाढ़ा पीला अथवा सफेद पतला दोष (कफ) स्रवे उसको स्राव कहते हे॥

नासा शोषके लक्षण कहत हैं।

घ्राणाश्रिते स्रोतसि मारुतेन गाढं प्रतप्ते परिशोषिते च॥
कृच्छ्राच्छ्वसेदूर्ध्वमधश्च जंतुर्यस्मिन्स नासापरिशोष उक्तः १०

भाषा-वायुसे घ्राणेन्द्रियके आश्रित स्रोतके अत्यन्त भतप्त होनेपर और सूखने पर मनुष्य बड़े कष्टसे ऊपर नीचेको श्वास जिसमें लेय उस रोगको नासापरिशोष कहते हैं॥

चिकित्सा भेद के लिए पीनसके आमपकके लक्षण।

शिरोगुरुत्वमरुचिर्नासास्रावस्तनुः स्वरः॥
क्षामः ष्ठीवेत्तथाऽभीक्ष्णमामपीनसलक्षणम् ॥११॥

आमैर्लिंगान्वितःश्लेष्मा घनश्चाप्सु निमज्जति ॥
स्वरवर्ण विशुद्धिश्च पक्वपीनसलक्षणम् ॥ १२ ॥

भाषा—माथे का भारापन अरुचि पतले पदार्थ का टपकना, मन्दा स्वर और शरीर कृश हो निरन्तर थूके यह आम (कच्चे) पीनसके लक्षण होतेहैं और आम पीनसकेभी लक्षणोंसेयुक्त गाढ़ा होगया हो और जलमें डालनेसे डूब जाय और मुखसे स्वर और अक्षर शुद्ध निकले और मुखका रंग अच्छा होय यह पके हुए पीनसके लक्षण जाने ॥

प्रतिश्यायकी संप्राप्ति ।

संधारणाजीर्णरजोऽतिभाष्यक्रोधर्त्तुवैषम्यशिरोभितापैः
प्रजागरातिस्वपनाम्बुशीतावश्यायतो मैथुनबाष्पशोषैः ॥
संस्त्यानदोषे शिरसि प्रवृद्धो वायुः प्रतिश्यायमुदीरयेच्च॥ १३

भाषा—वेगोंके रोकने से अजीर्ण पदार्थोंके खानेसे रज (धूल) के नासिकाके भीतर जानेसे बहुतबोलने से और बहुत क्रोध गुस्सा करनेसे तथा ऋतु विपर्यय अर्थात् एक ऋतुमें दूसरे ऋतुके लक्षण होने से, शिरोभिताप अर्थात् ग्रीष्म ऋतुमें शिरसे अत्यन्त धूप सेवन करने से, रात्रि में जागने से, दिनमें अत्यन्त सोनेसे और ठंडे पदार्थोंके ज्यादा सेवन से तथा कोहल से, अत्यन्त मैथुन करने से पसीना अथवा आंसुओंके रुकनेसे शिरमें कफके इकट्ठे होने पर वायु वृद्धिंगत होकर प्रतिश्याय रोग पीनस को पैदा करता है ॥

चयादिक्रमसे इसका दूसरा निदान कहते हैं ॥

चयं गता मूर्द्धनि मारुतादयःपृथक् समस्ताश्च तथैव शोणितम्॥
प्रकुप्यमाणाः विविधप्रकोपणास्ततः प्रतिश्यायकरा भवन्ति१४

भाषा—माथेमें पृथक् वातादि तथा सब दोष और रुधिर संचय को प्राप्त अनेक प्रकार के कारणोंसे कुपित हुए इकट्ठे हुए प्रतिश्यायको पैदा करतेहै ॥

पूर्वरूपके लक्षण कहते हैं ॥

क्षवप्रवृत्तिः शिरसोऽतिपूर्णता स्तम्भोऽगमर्दःपरिहृष्टरोमता ॥
उपद्रवाश्चाप्यपरे पृथग्विधा नृणां प्रतिश्यायपुरःसराःस्मृताः१५

भाषा—छींकका आना माथेका अत्यन्त भारापन अंगोंका जकड़ जाना

तथा अंगड़ाई रोमांच होना और घ्राण धूमायन अवमंथ से आदि ले और तत्काल होनेवाले उपद्रव होंय जब पीनस होनहार होती है तब ये लक्षण होते हैं जैसा विदेहने कहा है "पूर्वरूपाणि दृश्यंते प्रतिश्याये भविष्यति।घ्राण धूमायनं मथंक्षवथुस्तालुदारुनम् । कण्ठध्वंसो मुखस्रावःशिरस्यापूरणं तथा"

वातिक प्रतिश्यायके लक्षण कहते हैं ॥

आनद्धा पिहिता नासा तनुस्रावप्रसेकिनी ॥
गलताल्वोष्ठशोषश्च निस्तोदःशंखयोस्तथा ॥ १६ ॥
क्षवप्रवृत्तिरत्यर्थं वक्त्रवैरस्यमेव च ॥
भवेत्स्वरोपघातश्च प्रतिश्यायेऽनिलात्मजे ॥ १७ ॥

भाषा-जिसकी नाक बँधी सी ढकीसी थोड़ा२ पानी निकले गला तालु होठ ये सूखै और कनपटी दूखने लगे अत्यन्त छींक आवै और मुख का जायका बिगड जाय तथा स्वर बिगड़ जाय ॥ ये लक्षण वातजन्य पीनसमें होतेहैं॥

पित्तजन्य प्रतिश्यायके लक्षण कहते हैं ॥

उष्णःसपीतकः स्रावो घ्राणात्स्रवतिपैत्तिके ॥
कृशोऽतिपाण्डुः सन्तप्तो भवेदुष्णाभिपीडितः १८ ॥
सधूममग्निं सहसा वमतीव समानवः ॥

भाषा-पित्तजन्य प्रतिश्याय में नाकसे दाह गरम और पीला स्राव हो वह मनुष्य कृश और अत्यन्त पीला होजाय और गरमी से तपायमानहो नाकसे धुआं सहित अग्निसी निकले यह लक्षण होतेहैं ॥

कफजन्य प्रतिश्याय के लक्षण कहते हैं ॥

घ्राणात्कफःकफकृते श्वेतःपीतःस्रवेद्बहु ॥
शुक्लावभासःशूनाक्षो भवेद्गुरुशिरा नरः ॥ १९ ॥
कंठताल्वोष्ठशिरसां कंडूभिरभिपीडितः ॥

भाषा—कफजन्य प्रतिश्यायमें नासिकासे ठंडा पीला बहुत कफ गिरे सफेद देह होय सफेद नेत्र हों और वह भारी शिरवाला होय गला तालु ओष्ठ और माथोंका खुनार युक्त होना यह लक्षण होतेहैं ॥

सन्निपातके लक्षण कहतेहैं ॥

भूत्वा भूत्वा प्रतिश्यायो यस्याकस्मान्निवर्त्तते ॥ २० ॥

स पक्वो वाप्यपक्वो वा स तु सर्वभवः स्मृतः ॥

भाषा-जिसकेप्रतिश्याय बार २ होकर वह पक्व वा अपक्व हुआ पकायक बन्द होजाय वह प्रतिश्याय सन्निपात जन्य कहाहै ।

एक दोषवालेके भी दुरुपचार से दो दोषोंके अनुबन्ध से दूषित हुए त्रिदोष सम्बन्धकी समतासे सन्निपातजन्यके बाद उस दुष्ट प्रतिश्याय के लक्षण कहते हैं ।

प्रक्लिद्यते पुनर्नासा पुनश्च परिशुष्यति ॥ २१ ॥
पुनरानह्यते चापि पुनर्विव्रियते तथा ॥
निश्वासो वाति दुर्गंधो नरो गंधं न वेत्ति च ॥२२॥
एवं दुष्टप्रतिश्यायं जानीयात्कृच्छ्रसाधनम् ॥

भाषा-बारंबार जिसकी नाक झड़ा करे और सूख जाय और नाक से अच्छी तरह श्वास नहीं आवे, नाक रुक जाय और फिर खुल जाय श्वास लेनेमें गंध आवै तथा उस रोगीको सुगंध दुर्गंधका ज्ञान नष्ट होजाय ऐसे लक्षण होनेसे इसको दुष्ट प्रतिश्याय कहते हैं। यह कष्टसे साध्य होताहै यह प्रतिश्याय पांच प्रतिश्यायोंके अन्तर्गत जानना यह इनकाही भेद है ॥

रक्तप्रतिश्यायके लक्षण कहते हैं ॥

रक्तजे तु प्रतिश्याये रक्तस्रावः प्रवर्तते ॥२३॥
ताम्राक्षश्च भवेज्जंतुरुरोघातप्रपीडितः ॥
दुर्गंधोच्छ्वासवदनो गंधानपि न वेत्ति सः ॥२४॥

भाषा-रक्तजन्यप्रतिश्यायमें नाकसे रुधिर गिरे,नेत्र लाल होंय उरःक्षतकी पीड़ाके तुल्य पीड़ा होंय, श्वास अथवा मुखमें दुर्गंध आवै, दुर्गंधिका ज्ञान नहीं होय, उरोघात के लक्षण तन्त्रांतरमें "उरःक्षतं गुरुः स्तब्धः पूतिकर्णकफो रसः । सकासः सज्वरो ज्ञेयं उरोघातः सपीनसः ॥" अत्र पित्तप्रतिश्यायलिंगान्यपि बोद्धव्यानि तुल्यात् पित्तरक्तयोः ॥ लिखे हैं सो जाने । कहीं "पित्तप्रतिश्यायकृतैर्लिंगैश्चापि समन्वितः" ऐसा पाठहै इसका अर्थ यह है कि जिसमें भी पित्तकी पीनसके लक्षण मिलते हैं ॥

असाध्य लक्षण कहते हैं ॥

सर्व एव प्रतिश्याया नरस्याप्रतिकारिणः ॥

दुष्टतां यान्ति कालेन तदाऽसाध्या भवंति च ॥२५॥
मूर्च्छंति कृमयश्चात्र श्वेताः स्निग्धास्तथाऽणवः ॥
कृमिजो यः शिरोरोगस्तुल्यं तेनास्य लक्षणम् ॥२६॥

भाषा—सर्वही प्रतिश्याय औषधी न करने वालेके असाध्य होतेहैं इसमें नाकमें कीडा पड बढ़ने लगजांय वे कृमि सफेद चिकने और बारीक होते है कृमिज शिरोरोगोंके सदृश लक्षण होय, कृमिजन्य शिरोरोगके लक्षण शिरोरोगमें कह आए हैं ॥

प्रतिश्याय और विकारों को भी करताहै उनको कहते हैं ॥

बाधिर्यमांध्यमघ्रत्वं घोरांश्च नयनामयान् ॥
शोथाग्निसादकासादीन् वृद्धाः कुर्वन्ति पीनसाः ॥२७॥

भाषा—बढ़े हुए पीनस, बहरापन, मन्द दीखना, गंधका आना, भयंकर नेत्ररोग होना, सूजन, मदाग्नि, खांसी इत्यादि विकारों को पैदाकरते हैं ॥ सुश्रुतमें नासिकाके ३१ रोग कहे हैं और इस जगह पीनससे लेकर प्रतिश्याय पर्यन्त १५ रोग कहे हैं बाकी १६ रोगोंके संख्यापूर्ति के लिए लिखते हैं ॥

अर्बुदं सप्तधा शोथाश्चत्वारोऽर्शश्चतुर्विधम् ॥
चतुर्विधं रक्तपित्तमुक्तं घ्राणेऽपि तद्विदः ॥२८॥

भाषा—सात प्रकार के अर्बुदरोग चार प्रकार के शोथ (सूजन) चार प्रकारके अर्श और चार प्रकारके रक्तपित्त ये पूर्वोक्त कहे रोग सोलह होतेहैं वात पित्त कफ रुधिर मांस भेदकरसे छः हुए और सातवां शालाक्यसिद्धांत के मतसें सन्निपातका ऐसैं सात प्रकारकैं अर्बुदरोग हुए। वात पित्त कफ सान्निपातकें भैद सें चार प्रकारकी सूजन हुई तथा वात पित्त कफ सन्निपातकैं भेद सैं चारही प्रकारकी अर्श बवासीर और चारही प्रकार का रक्त, रक्तपित्तकी समानतासैं एकही जाने ॥ पूर्वोक्त पीनससे लेकर प्रतिश्याय पर्यंत १५हुए ओर अर्बुदादि १६ हुए ऐसे सब मिलकर नासिका रोग ३१ होते हैं ॥

वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिधनु शा० सोहन लाल विद्या
भूषण विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्याः
टीकायां नासिकारोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ नेत्ररोग निदानम् ।

उनके कारण कहते है ।

उष्णाभितप्तस्य जलेप्रवेशाद्दूरेक्षणात्स्वप्नविपर्ययाच्च ॥
स्वेदाद्रजोधूमनिषेवणाच्चछर्देर्विघाताद्वमनातियोगात् १॥
द्रवान्नपानातिनिषेवणाच्च विण्मूत्रवातक्रमनिग्रहाच्च ॥
प्रसक्तसंरोदनशोककोपाच्छिरोऽभिघातादतिमद्यपानात् २
तथा ऋतूनां च विपर्ययेण क्लेशाभिघातादतिमैथुनाच्च ॥
बाष्पग्रहात्सूक्ष्मनिरीक्षणाच्चनेत्रेविकारान् जनयंतिदोषाः ३

भाषा—गरमाईसे तप्त होकर जलमें प्रवेश (स्नानादि करनेसे ठंडमें घिरे रहने से शरीरकी गरमी ऊपर चढ़कर नेत्रके तेजको नष्ट करे उससे नेत्ररोग उत्पन्न होता है) दूरकी वस्तुको देखने, दिनमें सोनेसे रात्रिमें जागनेसे नेत्रमें पसीना जानेसे बाफ लगने से नेत्रोंमें धूल जानेसे, धुआं जानेसे वमन के वेगको रोकनेसे बहुत वमन होनेसे. पतले अन्नपानके अत्यंत सेवन करने से, विष्टा मूत्र और अधोवायु इनके वेगको धारे २ रोकने से निरंतर रोनेसे शोकसे मस्तकमें चोट लगनेसे, अति मद्यपान करनेसे उसी प्रकार ऋतुके विपर्यय अर्थात् शीत कालमें गरमी और गरमीमें शीतकाल होनेसे क्लेश चोंट लगनेसे अति मैथुन अश्रुपातका वेग धारण करनें और सूक्ष्म पदार्थका अवलोकन करनेसें वातादि दोष नेत्रोंमें रोग पैदा करतें हैं ।

सुश्रुतोक्त नेत्ररोगकी सम्प्राप्ति कहते हैं नोट में देखो ।

शिरानुसारिभिर्दोषैर्विगुणैरूर्ध्वमाश्रितः ॥
जायन्ते नेत्रभागेषु रोगाः परमदारुणाः ॥

भाषा—कुपित हुए वातादि दोष नेत्रोंकी नसोंमें प्राप्त हो नेत्रोंका हिस्से को घेरलेंवे तब उनमें भयंकर रोग उत्पन्न होवाहै । ये वात,पित्त, कफ,रुधिर सन्निपात और आगंतुक इनसे होनेवाले ऐसे नेत्ररोग हैं ॥

नेत्ररोगमें प्रायः अभिष्यंद (नेत्र आना) होता है
इसीसे प्रथम उसको कहते हैं ।

यथाह सुश्रुतः—प्रायेण सर्वेनयनामयास्ते भवन्त्यभिष्यन्द निमित्त मूलाः ।

वातात्पित्तात्कफाद्रक्तादभिष्यन्दश्चतुर्विधः ॥
प्रायेण जायते घोरः सर्वनेत्रामयाकरः ॥४॥

भाषा-वात, पित्त, कफ और रक्तसे चार प्रकारका अभिष्यंद रोग होता है इसकी पीड़ा नष्ट नहीं होय, तथा यह अभिष्यंदरोग सर्व नेत्ररोग का (अधिमंथादिक) उत्पत्तिस्थान जाने ॥

वाताभिष्यंदके लक्षण कहते हैं ॥

निस्तोदनस्तंभनरोमहर्षसंघर्षपारुष्यशिरोऽभितापाः ॥
विशुष्कभावः शिशिराश्रुता च वाताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥

भाषा-वादीसे नेत्र दूखने आये होंय, उनमें सुई चुभानेकीसी पीड़ा हो नत्रोंका स्तम्भन (ठहर जाना) रोमांच, नेत्रोंमें रेत गिरनेके समान खटके, तथा रूक्ष होंय मस्तकमें पीड़ा हो, नेत्रोंसे ठंडा पानी गिरे साथ ही आंख सुखीसी रहे ॥

पित्ताभिष्यंदके लक्षण कहते हैं ।

दाहप्रपाको शिशिराभिनन्दा धूमायनं बाष्पसमुच्छ्रयश्च ॥
उष्णाश्रुता पीतकनेत्रता च पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥६॥

भाषा—पित्तसे नेत्र दूखने आनेसे शरीरमें बहुत दाह हो, नेत्र पक जाय उनमें ठंडा पदार्थ लगानेकी इच्छा हो, नेत्रोंसे धुआं निकले अथवा नेत्रोंमें धुआं लगनेकीसी पीडाहो तथा नेत्रोंसे अश्रु (आंसु) बहुत पड़ें और गरम पानी निकले आंख पीलीसी मालुम पड़े ॥

कफजाभिष्यंदके लक्षण कहते हैं ।

उष्णाभिनन्दा गुरुताभिशोथः कण्डूपदेहावतिशीतता च ॥
स्रावो बहुः पिच्छिल एव चापि कफाभिपन्ने नयने भवन्ति।७।

भाषा—गरम वस्तु नेत्रोंमें लगानेसे आराम मालूम हो अर्थात् नेत्रोंमें सेकसा मालुम हो तथा नेत्र भारी होंय, सूजनहो खुजली चले, कीचड़से नेत्र दूषित हों, और शीतल हों उनमेंसे स्राव होय सो गाढ़ा और बहुत होय कफ दोषसे व्याप्त नयनोंके होनेसे यह लक्षण होते हैं ।

रक्तजाभिष्यंदके लक्षण कहते हैं ॥

ताम्राश्रुता लोहितनेत्रता च राज्यः समंतादतिलोहिताश्च ॥

पित्तस्य लिंगानि च यानि तानि रक्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥८॥

भाषा—रक्ताभिष्यंदसे नेत्रोंसे लाल पानी गिरै, नेत्र लाल होंय और नेत्रोंमें ओरपास रेखासी लाल लाल दीखें और जो पित्ताभिष्यंदके लक्षण कहे हैं वे सब लक्षण इसमें होवें ॥

अभिष्यंदसे अधिमंथ की उत्पत्ति होती है सो कहते हैं।

वृद्धैरेतैरभिष्यंदैर्नराणामक्रियावताम् ॥
तावंतस्त्वधिमंथाः स्युर्नयने तीव्रवेदनाः ॥९॥

भाषा—अभिष्यन्द (ज्यों वातपित्त कफ रक्त जन्य) उनसे वह बढ़े हुए उनसे क्रियानहीं करने वाले मनुष्योंको नयनों में घोर तकलीफ देनेवाले उतने ही अधिमन्थ रोग पैदा होतेहैं तीव्र वेदना यह सामान्य लक्षणहै वेदना शब्द से यहां व्यथा मात्र जानना इससे वात जन्य अभिष्यन्दसे वातिक अधिमन्थ हो तीव्र वातजन्य तोद (चोटनेकी सी तकलीफ आदि सब वेदना युक्त जानना ऐसाही पैत्तिक आदि जानने ॥

इसके दूसरे सामान्य लक्षण कहते हैं ॥

उत्पाटयत इवात्यर्थं नेत्रं निर्मथ्यते तथा ॥
शिरसोऽर्द्धं च तं विद्यादधिमंथं स्वलक्षणैः ॥१०॥

भाषा-उपाडनेकी सी पीडा अथवा तोड़नेकी तथा मथनेकी सी, आधे माथे में पीड़ा होय, आंख फड़के और फटीसी जाय उसे अपने लक्षणोंसे युक्त कहे हुए वातादि अभिष्यन्द के लक्षण उनसे वह अधिमन्थ उसही दोष के अनुरूप जाने ॥

जितने समयसे मिथ्या आचार करने से दृष्टि को
नष्ट करै वह कहते हैं

हन्याद्दृष्टिं श्लैष्मिकः सप्तरात्रादधि मंथो रक्तजः पंचरात्रात् ॥
षड्रात्राद्वा वातिको वै निहन्यान्मिथ्याचारात्पैत्तिकःसद्य एव १२

भाषा-कफका अधिमंथ सात दिनमें दृष्टिका नाश करे, रक्तज अधिमंथ पांच दिनमें, वातिक अधिमंथ छः दिनमें और पैत्तिक अधिमंथ मिथ्योपचार से तत्काल (तीन दिनमें) दृष्टिको नष्ट करताहै अर्थात् आंख नष्ट होजाती है

लंघन प्रलेपादि विधानके लिये अञ्जन आदिके निषेध के लिये

नेत्ररोगके सामान्य लक्षण कहते हैं ।

उदीर्णवेदनं नेत्रं रागशोथ समन्वितम् ॥
घर्षनिस्तोदशूलाश्रुयुक्तमामान्वितं विदुः ॥ १२ ॥

भाषा-जिस नेत्ररोगमें पीड़ा विशेष होय, लाल और सूजन इनसे युक्त उसमें घर्ष (रेत गिरनेसे जैसी पड़ा) होय, सुई चुभानेकीसी: पीड़ा होय शूलसा चले और आंसू झड़ें इन नेत्रोंको आमयुक्त जानना ॥

निरामके लक्षण कहते हैं ॥

मन्दवेदनता कण्डूः संरम्भाश्रुप्रशान्तता ॥
प्रसन्नवर्णता चाक्ष्णोः संपक्वं दोषमादिशेत् ॥१३॥

भाषा-नेत्रोंमें मन्दपीड़ा होय खुजार चले, सूजन मंद होय,आंसुओं का गिरना बन्द होय, नेत्रोंका रंग साफ होय ये दोष पक्व होनेके लक्षण हैं ॥

शोथसहित नेत्रपाकके लक्षण कहते हैं ॥

कण्डूपदेहाश्रुयुतःपक्वोदुंबरसन्निभः ॥
संरम्भी पच्यते यस्तु नेत्रपाक स शोफजः ॥
शोथहीनानि लिंगानि नेत्रपाके त्वशोथजे ॥ १४ ॥

भाषा-खुजारयुक्त चिपचिपाहट युक्त आंसू बहे और पके गूलरके तुल्य लाल होय ये लक्षण शोथसहित नेत्ररोगके हैं और शोथ (सूजन) के विना जो नेत्रपाकहोय उसमें शोथको छोड़कर सबलक्षण होंय यह व्याधि त्रिदोष जन्य है इससे अशोथ पाकज ऐसा कहाहै ॥

हताधिमंथके लक्षण कहते हैं ॥

उपेक्षणादक्षि यथाऽधिमंथो वातात्मकः सादयति प्रसह्य॥
रुजाभिरुग्राभिरसाध्यएव हताधिमंथ खलु नेत्ररोगः॥ १५

भाषा-वातजन्य अधिमंथकी उपेक्षा करनेसे वह नेत्रोंको सुखाय देवे उस मनुष्यके नेत्रोंमें तोद(सुईके चुभानेकीसी पीड़ा) दाहादि भारी तकलीफ होय हतादिमंथनासक नेत्ररोग असाध्य है यह रोग विदेहने दृष्ट्युत्क्षेप इसनाम से कहाहै"अंतर्गतः शिराणां तु यदा तिष्ठति मारुतः । स तदा नयनं प्राप्य शीघ्रं दृष्टिं निरस्यति॥ तस्यां निरस्यमानायां निर्मथन्निव मारुतः । नयनं निर्वमत्याशु

शूलतोदादि मंथनैः ॥ " इसप्रकार जानै सुश्रुतमें इसप्रकार लिखाहै अंतः शिराणां श्वसन स्थितो दृष्टिं च प्रक्षिपन् । हताद्विमंथं जनयेत्तमसाध्यंविदुर्बुधा

वात पर्ययके लक्षण कहते हैं ॥

वारं वारं च पर्येति भ्रुवौ नेत्रे च मारुतः ॥
रुजश्च विविधास्तीव्रा स ज्ञेयो वातपर्ययः॥ १६ ॥

भाषा—वायुक्रमसे वार२ भ्रकुटीमें प्राप्त हो और वार२ नेत्रोंमें प्राप्त होकर और अनेक प्रकारकी तीव्र वेदना करै उसको वातपर्यय कहते हैं ॥

शुष्काभिपाकके लक्षण कहतेहैं ॥

यत्कूणितं दारुणरूक्षवर्त्मसंदह्यते चाविल दर्शनं च ॥
सुदारुणं यत्प्रतिबाधने च शुष्काक्षिपाकोपहतं तदीक्ष॥ १७

भाषा–जो नेत्र मिचे हुए रहैं और जिनकी विनूनी कठोर व रूखी होय जो जलन युक्तहों आकुलतासे देख पड़े अच्छी तरह न दीखे और जो खोलनेमें बहुत दुख देवै उन नेत्रोंको शुष्काभिपाक नामक रोगसे पीडित जानै यह रोग रक्तसहित वादी जन्य जानना ॥

अन्यतोवातके लक्षण कहते हैं ॥

यस्यावटूकर्णशिरोहनुस्थो मन्यागतो वाप्यनिलोऽन्यतो वा॥
कुर्याद्रुजं व भ्रुवि लोचने च तमन्यतोवातमुदाहरंति ॥ १८ ॥

भाषा–जिसकी अवटु घाटा कान,मस्तक ठोडी मन्या नाड़ी इनमें अथवा औरजगहोंमेंव्याप्त जो वायु मोहवआंखोंमें पीडाकरै इसरोगकोअन्यतोवातरोग कहतेहैं यानी औरठिकानेमें स्थितहोकर और ठिकानेमें वेदनाकरै इससे इसका नाम अन्यतो वात है जैसा विदेहने कहाहै मन्यानामन्तरे वायुरुत्थितः पृष्ठतोऽपि वा । करोति मेदोनिस्तोदे शंखे चाक्ष्णोः स्रवस्तथा । तमाहुरन्यतोवातं रोग दृष्टिविदो जनाः ॥

अम्लाध्युषितके लक्षण कहते हैं ॥

श्यावं लोहितपर्यन्तं सर्वं चाक्षि प्रपच्यते ॥
सदाहशोथं सास्रावमम्लाध्युषितमम्लतः॥ १९ ॥

भाषा—काली लिए हुए काला और आस पास लाल भराहों ऐसे नेत्र पकजाय और उनमें पीले रंगकी फुन्सी होंय उनमें दाह होकर सूजन होय तथा नेत्रोंसे पानी झरनेलगै यह रोग अम्ल (खटाई) आदि खानेसे होता है॥

शिरोत्पातके लक्षण कहते हैं ॥

अवेदना वापि सवेदना वा यस्याक्षिराज्यो हि भवंति ताम्राः॥
मुहुर्विरज्यंति च याः सतादृग्व्याधिः शिरोत्पातइतिप्रदिष्टः॥२०

भाषा-जिसकी आंखोंकी नस पीडारहित वा वेदना युक्त तांबेके समान लाल रंगकी होंय और वार२ विशेष लाल होंय जिस व्याधि में उसको शिरोत्पात सबलवायु कहते हैं यह व्याधिरक्तज है ॥

सिरोप्रहर्षके लक्षण कहते हैं ॥

मोहाच्छिरोत्पात उपेक्षितस्तु जायेत रोगस्तु शिराप्रहर्षः ॥
ताम्राभमस्रं स्रवति प्रगाढं तथा न शक्नोत्यभिवीक्षितुं च॥२१

भाषा-मोहसे शिरोत्पात (सबल) वायुको उपेक्षा करनेसे अर्थात् इलाज न करनेसे शिराप्रहर्षरोग होता है । उसमें नेत्रोंसे लाल स्वच्छ ऐसे आंसू गिरें और उस रोगीको नेत्रोंसे कुछ दिखलाई न देवे ॥

अब सव्रणशुक्रके लक्षण कहते हैं ।

निमग्नरूपंतु भवेद्धि कृष्णे सूच्येव विद्धं प्रतिभाति यद्वै ॥
स्रावं स्रवेदुष्णअतीव यच्च तत्सव्रणं शुक्रमुदाहरंति ॥२२॥

भाषा-आंखके कारे हिस्से में जो शुक्रफूलहो वह भीतर गड़ासा होजाय उनमें सुई चुभानेकीसी पीड़ा होवे तथा नेत्रोंसे अति गरम और बहुतसा स्राव होवे इस रोगको सव्रणशुक्र कहते हैं ।

सव्रणशुक्रके साध्यासाध्य लक्षण कहते हैं ।

दृष्टेः समीपेन भवेत्तु यच्च न चावगाढं नच संस्रवेद्धि ॥
अवेदनं वा नचयुग्मशुक्रं तत्सिद्धिमायातिकदाचिदेव॥२३॥

भाषा-दृष्टिके पास जो फूल न होय और न बहुत गहरा होय और न बहुत झरे जिसमें पीड़ा न होय और एकही स्थानमें दो बूंद (फूल) न होंय ऐसा शुक्र कभीही अच्छा होताहै ।

अव्रणशुक्रके लक्षण कहते हैं ।

स्यन्दात्मकं कृष्णगतं सचोषं शंखेन्दुकुन्दप्रतिमावभासम् ॥
वैहायसाभ्रप्रतनु प्रकाशमथाव्रणं साध्यतमं वदन्ति ॥२४॥

भाषा-अभिष्यंदसे उत्पन्न होकर काले भागमें प्राप्त हुआ चोष सहित अर्थात् कोई चीजछिदैफिर उसका दर्दहोशंख चन्द्रकुन्द पुरुपइनके समानसफेद आकाशके समान पतला ऐसाजो व्रणरहित शुक्रहोय उसको सुखसाध्यकहतेहैं ।

अव्रणशुक्रकोही अवस्था भेदसे कृच्छ्रव असाध्यता कहतेहैं॥

गम्भीरजातंबहुलंचशुक्लंचिरोत्थितंचापिवदन्तिकृच्छ्रम्॥

भाषा—जो फूला गंभीर हो अर्थात् दो त्वचाके भीतर हुआ हो तथा मोटाहो उसको कृच्छ्रसाध्य कहते हैं ॥

अव्रणकोही अवस्थाभेदसे असाध्यता होती है ।

विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतंवाचलं शिरासूक्ष्ममदृष्टिकृच्च॥
द्वित्वग्गतंलोहितमन्ततश्च चिरोत्थितंचापिविवर्जनीयम्॥

भाषा—जो फूलेके बीचका मांस छिन्न होजाय, इसीसे शुक्रके स्थान में गढ़ेला हो जाय अथवा पिशितावृत यानी उसके चारों ओर मांस होय,चंचल हो शिराओंसे व्याप्त हो, सूक्ष्म हो दृष्टिको नाश करे (यह ' दृष्टेः समीपे न भवेत ' इसका उलटाहै दो पटल नाम दो परदोंके भीतर हुआ हो, चारों तरफसे लाल हो और बीचमें सफेद और बहुत दिनका फूला जोहै सो छोड़ देना चाहिये ॥

दूसरे असाध्य लक्षण कहते हैं ।

उष्णाश्रुपातः पिडिकाचनेत्रेयस्मिन्भवेन्मुद्गनिभं चशुक्रम् ॥
तदप्यसाध्यंप्रवदंतिकेचिदन्यच्च यत्तित्तिरिपक्षतुल्यम् ॥२६॥

भाषा-जिस नेत्रसे गरम आंसु गिरै और फुंसी पैदा होवे यहभी दूसरे पटल में होताहै और जिसमें मूंगके तुल्य शुक्र होवे ऐसा नेत्रका फूला भी असाध्य है और तीतरके पंखके समान कहिये काले रंगका होवे उसको भी कोई आचार्य असाध्य कहते हैं ॥

अब अक्षिपाकात्ययके लक्षण कहते हैं ।

श्वेतः समाक्रामति सर्वतो हि दोषेण यस्यासितमण्डलं च ॥

तमक्षिपाकात्ययमक्षिपाकं सर्वात्मकं वर्जयितव्यमाहुः ॥२७॥

भाषा-जिस नेत्रके कृष्णभागमें दोषोंके योगसे चारों ओर सफेद फूली फैल जावे यह सन्निपातजन्य अक्षिपाकात्ययनामक रोग त्याज्यहै ऐसा कहाहै

अजकाजातके लक्षण कहते हैं ॥

अजापुरीषप्रतिमो रुजावान्सलोहितो लोहितपिच्छिलाश्रुः ॥
विगृह्य कृष्णंप्रचयोऽभ्युपैतितच्चाजकाजातमितिव्यवस्येत्२८

भाषा—बकरीके विष्ठाके समान, दूखनेवाला,लाली सहित, और गाढे चमकदार आंसु बहें काले हिस्सेंको गृहणकर तीसरे पटलको ग्रहण करनेसे भेद का प्रचय (बढ़बार) हो उसको अजकाजात ऐसा जानना चाहिये जैसा विदेह ने कहाहै कृष्णैरक्षणोर्भवेच्छुक्के छगलीविट्समं प्रभम्। सार्द्रं पिच्छिलरक्ताश्रं त्रिस्वग्गा त्वजकेति सा ॥" इति ॥

काली पुतलीके आश्रित होनेसे दृष्टि मण्डलगत दृष्टिके रोगों का वर्णन।

पहले पटलमें दोष जानेसे उसके लक्षण कहतेहैं।

प्रथमे पटले यस्य दोषो दृष्टिं व्यवस्थितः ॥
अव्यक्तानि च रूपाणि कदाचिदथ पश्यति ॥२९॥

भाषा-जिसके पाहिले पटलमें दोष दृष्टिको आश्रय करता है वह पुरुष अव्यक्तरूप अर्थात् साफ न दीख पडे ऐसे रूपोंको कदाचित् देखता है दृष्टि का प्रमाण सुश्रुतने मसूरदलमात्रांतु पंचभूतप्रसादजाम्" इस प्रकार कहा है अर्थात् आधे मसूरदलके समान पंचभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु,आकाश) से प्रगटहै। मसूरकी दालका प्रमाण "पंचभूतात्मिका दृष्टिर्मसूरार्द्धदलोन्मिता इससे जाने ॥"

द्वितीयपटलास्थित दोषके लक्षण कहते हैं।

दृष्टिभ्रंशं विह्वलति द्वितीयं पटलं गते ॥
मक्षिकामशकांश्चापि जालकानि च पश्यति ॥३०॥
मण्डलानि पताकांश्च मरीचिकुण्डलानि च ॥

परिप्लुवांश्च विविधान्वर्षमभ्रं तमांसि च ॥२१॥
दूरस्थानि च रूपाणि मन्यते स समीपतः ॥
समीपस्थानि दूरे च दृष्टेर्गोचरविभ्रमात् ॥
यत्नवानपि चात्यर्थं सूचीपाशं न पश्यति ॥२२॥

भाषा-दूसरे पटलमें दोषके प्राप्त होनेपर दृष्टि विह्वलहो जातीहै अर्थात् पदार्थोंके देखनेमें असमर्थ होय उसी प्रकार नेत्रोंके आगे मक्खी, मच्छर, बाल, जाली, मंडल, पताका किरण कुंडल आदि मढ़क आदि अनेक प्रकार के जलके समूह, वर्षा मेघ (बादल) अंधकार दीखने लगें और दूरस्थ पदार्थों का पास दीखनाहो और समीपस्थ पदार्थ दूर दीखे यह दृष्टिके देखनेकी शक्ति के भ्रमसें होताहै बड़ी कोशिश करने वाला भी सुईके नकुआको नहीं देख सकता है ॥

तृतीयपटलगत दोषके लक्षण कहते हैं।

ऊर्ध्वं पश्यति नाधस्तात्तृतीयं पटलं गते ॥२३॥
महान्त्यपि च रूपाणि च्छादितानीव चांबरैः ॥
कर्णनासाक्षिहीनानि विकृतानीव पश्यति ॥२४॥
यथादोषं च रज्येत दृष्टिर्दोषे बलीयसि ॥

भाषा-तीसरे पटलमें दोषके प्राप्त होनेपर ऊपरको देखे नीचेको नहीं देखै जो वस्तु बड़ी और भव्य होवै वह वस्त्रसे ढकीसी दीखे कान नाक और नेत्र इनसे विकृतरूप वाले पुरुषोंको देखै टेढ़े बांके दीखे और जिस वातादि दोषका रुधिर मांस मेदादिकोंके सहाय होनेसे उनमें जो दोष बलवान् होय उसका जैसा रूप (रंग) होवै उसी प्रकारका दीखे अर्थात् जिस जिस दोषका जैसा वर्ण होय वैसा दीखै ॥

अधःस्थिते समीपस्थं दूरस्थं चोपरिस्थिते ॥२५॥
पार्श्वस्थिते तथादोषे पार्श्वस्थं नैव पश्यति ॥
समंततः स्थिते दोषे संकुलानीव पश्यति ॥२६॥
दृष्टिमध्यस्थिते दोषे महद्ध्रस्वं च पश्यति ॥

द्विधा स्थिते द्विधा पश्येद्बहुधा वाऽनवस्थिते ॥३७॥
दोषे दृष्टि स्थिते तिर्यगेकंवे मन्यते द्विधा ॥

भाषा-दोष नीचे स्थित होय तो समीपस्थ वस्तु नहीं दीखे और ऊपर दोष स्थित होय तो दूरकी वस्तु न दीखे और दोष पार्श्व (पसवाड़े)में स्थित होनेसे पसवाडेकी वस्तु नहीं दीखे और दोष दृष्टिके मध्यमें सबजगह स्थित होवे तो उस पुरुषको सब चीज मिलीसी दीखे । दृष्टिके बीचमें जानेसे बडी वस्तु छोटी दीखे, दो ठिकाने दोष रहनेसे एक वस्तुकी दो दीखें और दोष अव्यवस्थित अर्थात् एकही स्थानमें स्थित न होनेसे एक वस्तुके दो टुकड़े से दिखलाई देवे, दृष्टिगत दोष तिरछे स्थित न होनेसे एक वस्तुके दो टुकड़े दिखलाई देवें यह स्वरूपोंका दीखना तीसरे पटलसे प्रारम्भ होताहै । यथा-स्वं रज्यते दृष्टिर्दोषैस्त्रिपटलस्थितैः । चतुर्थ पटलं प्राप्तैः मण्डलं त्यज्यते तु तः ॥ इसप्रकार विदेहके लिखने से भी जाना जाता है ॥

चतुर्थपटलगत तिमिरलक्षणको कहतेहैं ।

तिमिराख्यः स वै रोगश्चतुर्थपटलंगतः ॥३८॥
रुणाद्धि सर्वतो दृष्टिं लिंगनाशमतः परम् ॥
अस्मिन्नपि तमोभूते नातिरूढे महागदे ॥३९॥
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रावंतरिक्षे च विद्युतः ॥
निर्मलानि च तेजांसि भ्राजिष्णूनि च पश्यति ॥४०॥

भाषा-वह तिमिर रोग चौथे परदे में प्राप्त हुआ चारों ओर से दृष्टिको रोके इस से बढ़ने पर जो दशा उस को लिङ्ग नाश कहते हैं यह अंधकारमय रोग जब तक अत्यन्त न बढ़े तबतक उस मनुष्यको आकाशमेंचन्द्र.सूर्य नक्षत्र बिजुली और निर्मल तेज यथार्थ नहीं,दीखेंतेजके पुंजसे दीखें हकीम लोग इस तिमिर रोग को नज़ला और लिंगनाश को मोतिया बिन्द कहते हैं ॥

तृतीयपटलाश्रित काचदोषकी दूसरी संज्ञा ॥

स एव लिंगनाशस्तु नीलिकाकाचसंज्ञितः ॥

भाषा-तीसरे पटलगत काच (मोतियाबिन्दु) की उपेक्षा करने से वहीं

फिर चौथे पटलमें पहुंचता है तब उसे लिंगनाश और नीलिका कहते हैं यह रोग असाध्य है ऐसा निमिआचार्य "काच इत्येव विज्ञेयो यावत्त्रिपटलस्थितैः चतुर्थपटलं प्राप्तो लिंगनाशः स उच्यते" लिखते हैं ॥

तत्र वातेन रूपाणि भ्रमन्तीव हि पश्यति ॥४१॥ आविला-न्यरुणाभानि व्याविद्धानीव मानवः ॥ पित्तेनादित्यखद्यो तशक्रचापतडिद्गुणान् ॥ ४२ ॥ नृत्यन्तश्चैव शिखिनः सर्वं नीलं च पश्यति ॥ कफेन पश्येद्रूपाणि स्निग्धानि च सिता-नि च ॥ ४३ ॥ पश्येदसूक्ष्माण्यत्यर्थं व्यभ्रमेवाभ्रसंभवम् ॥ सलिलप्लावितानीव परिजाड्यानि मानवः पश्येद्रक्तेनर क्तानि तमांसि विविधानि च ॥४४॥ ससितान्यथ कृष्णानि पीतान्यपि च मानवः ॥ सन्निपातेन चित्राणि विप्लुतानि च पश्यति ॥४५॥ बहुधा च द्विधा वापि सर्वाण्येव समंततः॥ हीनांगान्यधिकांगानि ज्योतींष्यपि च पश्यति ॥४६॥

भाषा-वायु से रोगी घूमते हुए पदार्थ देखे तथा गदले लाल टेढे ऐसे देखें ॥ पित्तते सूर्य पटबीजना इन्द्र का धनुष बिजुली की लहर और नाचते हुए तथा कभी २ सबही नीला दीखे कफसे चिकनी और सफेद तथा पानी में डुबाकर निकालने के समान अत्यन्त स्थूल पदार्थ तथा आकाश से घिराव आकाश रहित देखे और भारी ऐसा रूप दीखे,रुधिर से लाल और अनेक प्रकारका अंधकार तथा किंचित् सफेद काली और पीली ऐसी वस्तु दीखे सन्निपात से अनेक प्रकार के विपरीत अर्थात् एकको अनेक दो अथवा अनेक प्रकार के रूप दीखें हीन अंग के अथवा अधिक अंग के रूप रोगी देखे और ज्योतिस्वरूप से सब पदार्थ देखे ॥

पित्तसे दूसरा परिम्लायिसंज्ञक तिमिर होता है ।

पित्तं कुर्यात्परिम्लायि मूर्च्छितं रक्ततेजसा ॥
पीता दिशस्तुखद्योतान्भास्करं चापिश्यति ॥४७॥
विकीर्यमाणान्खद्योतैर्वृक्षांस्तेजोभिरेव च ॥

बढ़ा हुआ पित्त परिम्लायि रोग को पैदा करता है इस के योग से रोगी को दिशा, आकाश और सूर्य ये पीले दीखें और सर्वत्र सूर्य ऊगेसे दीखें तथा वृक्षभी तेजस्वरूपसे दीखें। परिम्लायि पित्तको नील कहते हैं।

राग भेद से लिंगनाशको षड्विधत्व कहते हैं।

वक्ष्यामि षड्विधं योगैर्लिंगनाशमतः परम् ॥ ४८ ॥
रागोऽरुणो मारुतजः प्रदिष्टो म्लायी च नीलश्च तथैव पित्तात्
कफात्सितः शोणितजः सरक्तो समस्त दोषप्रभवो विचित्रः ४९

भाषा-इसके बाद रोग भेद से छः प्रकार का लिंगनाश होता है सो इस प्रकार है। वातजन्य रंगलाल होता है पित्तसे म्लायी, पीला, नीला अथवा नीलाही रंग होता है॥ कफसे सफेद और रुधिर से लाल तथा सब दोषों से अनेक प्रकार का रंग होता है॥

वातिकरोग के विशेष लक्षण कहते हैं॥

अरुणं मण्डलं दृष्ट्यां स्थूलकाचारुणप्रभम् ॥
परिम्लायिनि रोगे स्यान्म्लायि नीलं च मण्डलम् ५०
दोषक्षयात्कदाचित्स्यात्स्वयं तत्र प्रदर्शनम् ॥

भाषा-इस रोग में आंख की ज्योति के ऊपर मोटा काचके समान लाल मण्डल होता है वह म्लान, वा नीला मण्डल होता है। उस में दोष घटने से कदाचित् देखने की शक्ति होय यहां दोष शब्द से कोई कर्मका ग्रहण करते हैं

दृष्टिमण्डलगत रोग के लक्षण कहते हैं॥

अरुणं मण्डलं वाताच्चंचलंपुरुषंतथा॥५१॥पित्तान्मण्डलमानीलं कांस्याभं पीतमेव च ॥ श्लेष्मणा बहुलं स्निग्धं शंखकुन्देन्दु पाण्डुरम् ॥५२॥ चलत्पद्मपलाशस्थः शुक्लो बिन्दुरिवांभसः मृज्यमाने च नयने मण्डलं तद्विसर्पति ॥ ५३ ॥ प्रवालपद्म-पत्राभं मण्डलं शोणितात्मकम् ॥ दृष्टिरागो भवेच्चित्रो लिंगनाशे त्रिदोषजे ॥ यथास्वं दोषलिंगानि सर्वेष्वेव भवंति हि ॥५४॥

भाषा-वात से दृष्टिमण्डल लाल चंचल और खरदरा होता है। पित्त

से दृष्टिमण्डल कुछ नीला तथा कांच के तुल्य पीला होय । कफसे भारी चिकना, शंख, कुंद के फूल और चन्द्र इनके समान सफेद होय और उसके नेत्र में चलायमान कमल पत्रके ऊपर पानी की बूंदके तुल्य टेढी तिरछी सफेद बूंद फैलीसी दिखाईदे । दृष्टिमण्डल मूंगोंके समान अथवा लालकमल के समान लाल होवे वह रुधिरसे जाने त्रिदोषजन्य लिंगनाशमें तरह तरह के मण्डल होते हैं तथा यथा योग्य दोषोंके चिह्न सबमें ही होते हैं ॥

अब आगे कहे हुए और पीछे कहे ऐसे जानने वाले ऐसे दृष्टिरोगोंकी संख्याका वर्णन करते हैं ॥

षड्लिंगनाशाःषडिमेच रोगादृष्ट्याश्रयाःषट्चषडेव बाच्याः ॥

भाषा-पाहिले छः लिंगनाश रोग और आगे विदग्धदृष्ट्यादि कहे गये छः ऐसे सब मिलकर बारह दृष्टिरोग होते हैं ॥

पित्तविदग्धके लक्षण कहते हैं ।

पित्तेन दुष्टेन गतेनवृद्धिं पीता भवेद्यस्य नरस्यकिंचित्५५
पीतानि रूपाणि च तेन पश्येत्स वै नरःपित्तविदग्धदृष्टिः॥

भाषा— दूषित हुए पित्तके बढ़नेसे जिस मनुष्यकी दृष्टि पीली होय तथा उसके योगसे उस मनुष्यको सब पदार्थ पीले रंगके दीखें उसको पित्तविदग्ध दृष्टि कहते हैं ॥

दिवांधके लक्षण कहते हैं ॥

प्राप्ते तृतीयंपटलं च दोषेदिवान पश्यन्निशि चेक्षतेसः ॥५६॥
रात्रौच शीतानुगृहीतदृष्टिः पित्ताल्पभावादपि तानिपश्येत् ।

भाषा—तीसरे पटलमें दोष (पित्त) जानेसे दिनमें रोगीको नहीं दीखै, रात्रिमें शीतलताके कारण पित्त कम होनेसे दीखे ॥

कफविदग्ध दृष्टिके लक्षण कहते हैं ।

तथा नरः श्लेष्मविदग्धदृष्टिस्तान्येव शुक्लानि तु मन्यतेसः ॥५७॥

भाषा-इसी प्रकार जो आदमी कफविदग्ध दृष्टि जो हो वह उन देखे हुए सब पदार्थों को सफेदही मानै । यह रोगभी पूर्वोक्त रोग तुल्य दिवांध जानना

रक्तांध (रतौंध) के लक्षण कहते हैं ।

त्रिषु स्थितो यः पटलेषु दोषो नक्तांध्यमापादयाति प्रसह्य ॥

दिवासमूर्यानुगृहीतदृष्टिः पश्येत्तुरूपाणि कफाल्पभावात ।५८।

भाषा—जो दोष (कफ) तीनों पटल में स्थित हुआ वह रक्तांध(रतौंध) को बल पूर्वक पैदा करै वह दिवस में सूर्यके तेजसे जिसको दीखने लगै और कफ के कम होनेस दिनमें रूपोंको देखै ।

धूमदर्शीके लक्षण कहते हैं ॥

शोकज्वरायासशिरोभितापैरभ्याहता यस्य नरस्य दृष्टिः ॥
धूम्रांस्तथा पश्यति सर्वभावान्स धूमदर्शीति नरः प्रदिष्टः॥५९॥

भाषा-शोक, ज्वर, मिहनत और माथेकी पीड़ा इन कारणोंसे जिसकी दृष्टि ताड़ितहो वह सब पदार्थोंको धूमरे देखै वह मनुष्य धूमदर्शी कहागयाहै इस को दिन में धूमरे दीखे और रात्रिमें पित्तका तेज घटने से निर्मल दीखने लगताहै ॥

ह्रस्वजाड्यके लक्षण कहते हैं ।

यो ह्रस्वजात्यो दिवसेषु कृच्छ्राद्ध्रस्वानि रूपाणिच तेनपश्येत् ॥

भाषा-जो ह्रस्वजात्य पुरुष होताहै उसको दिनमें बड़े पदार्थ छोटे दीखें। इसका कारण यह है कि उस समय दृष्टिके मध्यगत दोष होताहै । यह रोग भी पित्त जन्य है ॥

नकुलांध्यके लक्षण कहते हैं ॥

विद्योतते यस्य नरस्य दृष्टिर्दोषाभिपन्ना नकुलस्य यद्वत् ॥ ६० ॥
चित्राणि रूपाणि दिवा स पश्येत्सवै विकारो नकुलांध्यसंज्ञः ॥

भाषा-जिस पुरुषको दृष्टि दोषोंसे व्याप्त होकर नोलेकी दृष्टिके समान चमके वह पुरुष दिनमें अनेक प्रकारके रूप देखे वह नकुलांध्य कहाताहै ॥

गम्भीरदृष्टिके लक्षण ॥

दृष्टिर्विरूपा श्वसनोपसृष्टा संकोचमभ्यंतरतस्तु याति ॥ ६१ ॥
रुजावगाढ़ाच तमक्षिरोगं गम्भीरकेति प्रवदंति तज्ज्ञाः ॥

भाषा-जो दृष्टि वायुसे विकृत होकर भीतरको संकुचित होवे तथा उन में पीड़ा होवे उसको गंभीरदृष्टि कहते हैं ॥

आगंतुज लिंगनाशके लक्षण कहते हैं ॥

बाह्या पुनर्द्वाविह संप्रदिष्टौ निमित्ततश्चाप्यनिमित्ततश्च ॥ ६२ ॥

निमित्तमस्तत्र शिरोभितापाज्ज्ञेयस्त्वभिष्यंदनिदर्शनः सः ॥

भाषा-बाह्य आगन्तुज लिंगनाश दो प्रकारकाहै । एक निमित्तजन्य दूसरा अनिमित्तजन्य । तिनमें शिरोभितापकरके (विषवृक्षके फलसे मिले पवनका मस्तकमें स्पर्श होनेसे) होय उसको निमित्तजन्य कहते हैं इसमें रक्ताभिष्यंद के लक्षण होते हैं ॥

अनिमित्तके लक्षण कहते हैं ।

सुरर्षिगंधर्वमहोरगाणां सन्दर्शनेनापि च भास्करस्य ॥ ६३ ॥
हन्येत दृष्टिर्मनुजस्य यस्य स लिंगनाशस्त्वनिमित्तसंज्ञः ॥
तत्राक्षिविस्पष्टमिवावभाति वैदूर्यवर्णा विमला च दृष्टिः ॥६४॥

भाषा-सुर ऋषि, गंधर्व, महासर्प और सूर्य इनके सन्मुख दृष्टिको देखनें से जिस मनुष्यकी दृष्टि नष्ट होय उसको अनिमित्त लिंगनाश कहते हैं इस रोगमें नेत्र स्वच्छ से दीखते हैं और दृष्टि वैदूर्यमणिके समान होतीहै और निर्मल होते हैं ॥

अर्मरोगके लक्षण कहतेहैं तहां शुक्लार्मके लक्षण ॥
रक्तार्मके लक्षण कहते हैं ॥

प्रस्तार्यर्मतनुस्तीर्णं श्यावं रक्तनिभं सिते ॥
सश्वेतं मृदु शुक्लार्म शुक्ले तद्वर्द्धते चिरात् ॥ ३९ ॥
पद्माभं मृदुरक्तार्म यन्मांसं चीयते सिते ॥
पृथु मृद्वधिमांसार्म बहुल च यकृन्निभम् ॥
स्थिरं प्रस्तारि मांसाढ्यं शुष्कं स्नाय्वर्म पंचमम् ॥ ६६

भाषा-नेत्रोंके सफेद भागमें पतला, विस्तीर्ण, श्यामवर्ण तथा लाल ऐसा जो मांस बढे उसको प्रस्तारि अर्मरोग कहते हैं । शुक्लभागमें सफेद मृदु मांस बहुत दिनमें बढ़े उसको शुक्लार्म कहते हैं । कमलके समान लाल तथा मृदुजो मांस बढ़े उसको रक्तार्म कहते हैं । जो मांस विस्तीर्ण, स्थूल, कलेजाके समान कुछ काला लाल दीखे तौ उसको अधिमांसार्म कहते हैं जो कठिन और फैलनेवाला स्रावरहित मांस बढ़े उसको स्नाय्वर्म कहते हैं ॥

शुक्तिरोग के लक्षण कहते हैं ॥

श्यावाः स्युः पिशितानिभाश्च विंदवो ये ॥

शुक्त्याभाः सितिनियताः स शुक्तिसंज्ञः ॥

भाषा-नेत्रका सफेद नियतभाग श्यामवर्णहो और मांस तुल्य तथा सीपीके समान जो बिंदु होय जिसमें उसको शुक्ति ऐसा कहते हैं ॥

अर्जुनके लक्षण कहते हैं ॥

एकोयःशशरुधिरोपमश्चबिन्दुःशुक्लस्थोभवतितदर्जुनंवदंति६७

भाषा-शुक्लभागमें स्थित शशेके रुधिर के समान जो एक बूंद नेत्र में उत्पन्न होय उसको अर्जुन कहते हैं ॥

पिष्टकके लक्षण कहते हैं ॥

श्लेष्ममारुतकोपेन शुक्ल पिष्टं समुन्नतम् ॥
पिष्टवत्पिष्टकं विद्धि मलाक्तादर्शसन्निभम् ॥ ६८ ॥

भाषा— कफ और वायुके कोपसे शुक्लभागमें पिसासा जो मांस सफेदी लिये बढ़े उसको पिष्टक कहते हैं। वह मलसे मिल बवासीर के तुल्य होता है ॥

शिराजालके लक्षण कहते हैं ॥

जालाभः कठिनशिरो महान् सरक्तः ॥
संतानः स्मृत इह जालसंज्ञितस्तु ॥

भाषा—नेत्रके सफेदी के हिस्सेमें नस का समूह जालीके समानहोय और वह कठिन तथा रुधिरके समान लालहोवे उसको जाल कहतेहैं यहरक्तजन्यहै

शिराज पिंडिकाके लक्षण कहते हैं ॥

शुक्लस्थाः सितपिडिकाःशिरावृता यास्ताः—
ब्रूयादसितसमीपजाः शिराजाः ॥

भाषा—नेत्रके सफेदीके हिस्सेमें नसों से घिरी ऐसी सफेद फुन्सी होय, उसको शिराजपिडिका कहते हैं। यह काली पुतली के पास होती है

बलास ग्रथित के लक्षण कहते हैं ॥

कांस्याभोऽमृदुरथवारिबिंदुकल्पोविज्ञेयोनयनसितेबलासंसज्ञः

भाषा-नेत्रके शुक्लभागमें कांसेके समान कठिन पानीकीअथवा पानी के बूंद के समान कुछ ऊंची जो गांठ होय वह बलास कहाता है यह रोग सफेदी में होते हैं ॥

नेत्रकी संधिके रोग कहते हैं ॥

वह संधि छः हैं जैसा सुश्रत में पक्ष्म वर्मगतः सधिर्वैमशुक्लगतोऽपरः ॥ शुक्ल कृष्णगत स्त्वन्यः कृष्णदृष्टिगतस्तथा ॥ कानीनिकागतो ज्ञेयः षष्ठश्चापांगगः स्मृत इसप्रकार जाने ॥

पूयालसके लक्षण कहते हैं ॥

पक्वः शोथः संधिजो यः सतोदः स्रवेत्पूयं पूति पूयालसाख्यः ॥

भाषा-आंखोंकी संधिमें उत्पन्न जो सूजन वह पकजाय उसमें से राध बहे वह पूयालस कहाहै ॥

श्लेष्मोपनाहके लक्षण कहते हैं ॥

ग्रंथिर्नाल्पो दृष्टिसंधावपाकी कण्डुप्रायोनीरुजस्तूपनाहः ॥७०

भाषा-दृष्टिकी संधिमें बड़ी गांठ होवे वह कुछ पकै उसमेंखुजली बहुत हो तकलीफ हो वह उपनाह ऐसा कहते हैं ॥

स्रावों को सम्प्राप्ति कहते हैं ॥

गत्वा संधीनश्रुमार्गेण दोषाः कुर्युःस्रावंलक्षणैःस्वैरुपेतान् ॥
तं हि स्रावं नेत्रनाडीति चैके यस्या लिंग कीर्तयिष्ये चतुर्धा७१

भाषा-वात पित्त कफ अश्रुमार्गसे संधियोंमें प्राप्त होकर अपने लक्षणों से युक्त जो स्रात्र उनको पैदा करें जिसके लक्षण चार प्रकार से कहेंगे व्याधि स्वभाव से पित्त जन्य गलगण्डकी तुल्य उस स्रावको कोई नेत्रनाड़ी कहतेहैं वात जन्य स्रावतो नहीं होता है ॥

चार प्रकारके स्राव के बीच पूयस्राव के लक्षण कहते हैं ॥

पाकः संधौ संस्रवेद्यस्तु पूयं पूयास्रावोऽसौ गदःसर्वजस्तु ॥
श्वेतंसांद्रं पिच्छिलं संस्रवेद्धि,श्लेष्मास्रावोऽसौ विकारी मतस्तु

१" मारुतो पीडितः श्लेष्मा शुक्लभागे व्यवस्थितः। जलबिंदुरिवाछुलना मृदुःस कफ संभवः। बलासग्रथितं नाम तं शोफं बुतमादिशेत् ॥ इति । २ " सन्निपातात्कफाद्रक्तात्पित्तात्स्रावोऽक्षिसंधिषु इति ॥

रक्तास्रावः शोणितस्रावो विकारः स्रवेदुष्णं तत्र रक्तं प्रभूतम् ॥
हरिद्राभं पीतमुष्णं जलं वापित्तास्रावः संस्रवेत्संधिमध्यात् ॥७३॥

भाषा-पूयास्राव नेत्रकी संधि में सूजन होकर पके तथा उसमें से राध बहै। यह रोग सन्निपातात्मक है श्लेष्मा स्राव जिसमें से सफेद गाढ़ा और चिकनी राध बहै। जिस विकार में विशेष गरम रुधिर बहै उसको रक्तास्राव कहते हैं। जिसके संधिसे हलदीके समान पीला गरम जल बहै उसको पित्तास्राव कहते हैं ॥

पर्वणी के लक्षण कहते हैं।

ताम्रातन्वीदाहपाकोपपन्ना ज्ञेया वैद्यैः पर्वणी वृत्तशोथा ॥

भाषा-नेत्रकी सफेद काली सधियोंमें तांबेके समान छोटी गोल जो फुन्सी होवें और वह फुन्सी दाह होकर पके उसको पर्वणी कहते हैं

जातासन्धौशुक्लकृष्णेऽलजीस्यात्तस्मिन्नेवाख्यापितापूर्वलिंगैः॥

भाषा-उसी उसी ठिकानें पूर्वरूपसंयुक्त बड़ी फुन्सी उठे उसको अलजी कहतेहैं पर्वणी और अलजीमें छोटी व बड़ी फुन्सियों का भेदही क्रमसे जानै

कृमिग्रन्थिके लक्षण कहते हैं।

कृमिग्रंथिर्वर्त्मतःपक्ष्मणश्च कण्डूं कुर्युः कृमयः संधिजाताः॥
नानारूपा वर्त्मशुक्लांतसंधौ चरंत्यंतर्लोचनं दूषयंतः॥७५॥

भाषा—जिसके नेत्रसे शुक्लभागकी सन्धि में और पलकोंकी सन्धि में उत्पन्न हुई अनेक प्रकारकी कृमि खुजली और गांठ उत्पन्न करे और नेत्रके पलक और सफेदी भागकी सन्धि में प्राप्त होकर नेत्रके भीतरके भागको दूषित कर खालेतेहैं और भीतर फिरे उसको कृमिग्रन्थि कहतेहैं यह सन्निपात जन्य जाननी ॥

वर्त्ममर्मस्थान के रोग।

उत्संगपिडिकाके लक्षण कहते हैं।

अभ्यन्तरमुखी ताम्रा बाह्यते वर्त्मनश्च या ॥
सोत्संगोत्संगपिडिका सर्वजा स्थूलकण्डुरा ॥७६॥

भाषा—आंखोंकी बिनुनियोंमें फुन्सी होंय और वह भीतर की तरफ मुख वाली होंय लालहों बड़ी हों तथा खुजलीसंयुक्त होंय उसको उत्संग पिडिका कहते हैं यह रोग सन्निपात से होता है ।

कुंभिकाके लक्षण कहते हैं ॥

वर्त्मांते पिडिका ध्माता भिद्यंते च स्रवति च ॥
कुंभीकबीजसदृशाः कुंभीकाः सन्निपातजाः ७७ ॥

भाषा—आंखोंके पलकोंके पास कुंभिकाके बीजके तुल्य होंय वह पक कर फूट जाय और फूटकर बहने लगे उसको कुंभिका कहते हैं ॥

पोथकीके लक्षण कहते हैं ॥

स्राविण्यःकण्डुरा गुर्व्यो रक्तसर्षपसन्निभा ः ॥
रुजावंत्यश्च पिडिकाः पोथक्य इति कीर्तिताः ७८ ॥

भाषा—जिस मनुष्यके कोएमें लाल सरसोंके बराबर रुधिर झरै खुजार चले भारापन और पीड़ासमेत फुन्सी होय उसको पोथकी कहते हैं ॥

वर्त्मशर्कराके लक्षण कहते हैं ॥

पिडिका या खरा स्थूला सूक्ष्माभिरभिसंवृता ॥
वर्त्मस्था शर्करा नाम स रोगो वर्त्मदूषकः ॥ ७९ ॥

भाषा—जिस मनुष्य के कोए में जो पीडिका कठिन और बड़ी होकर सर्वत्र छोटी छोटी फुन्सियोंसे व्याप्त होय वहरोग वर्त्मशर्करा कहलाताहै और वह कोएओं को बिगाड़ता है ॥

अर्शोवर्त्मके लक्षण कहते हैं ॥

एर्वारुबीजप्रतिमाः पिडिका मंदवेदनाः ॥
श्लक्ष्णाः खराश्च वर्त्मस्थास्तदर्शोवर्त्म कीर्त्यते ॥

भाषा-गरमीमें पैदाहुई ककडीके बीजके तुल्य मंद पीड़ा वाली पृथक पृथक चमकदार ऐसी फुन्सीकोएमें उठै वह अर्शो वर्त्म कहलाता है किसी किसीके मतसे यह सन्निपातात्मक व कठिन है ।

शुष्कार्शके लक्षण कहते हैं ॥

दीर्घांकुरः खरः स्तब्धो दारुणोऽभ्यन्तरो द्भवः ॥

व्याधि रेपोऽतिविख्यातः शुष्कार्शो नाम नामतः ॥

भाषा-आंख कोएमें लम्बा, खरदरा, कठिन, दुखदेनेवाला ऐसा जो मांसांकुर जिसमें होय उस व्याधिको शुष्कार्श कहते हैं। यह सन्निपात जन्य जानै

अंजानके लक्षण कहते हैं।

दाहतोदवती ताम्रा पिडिका वर्त्मसंभवा ॥

मृद्वी मंदारुजा सूक्ष्मा ज्ञेया साऽञ्जननामिका ॥ ८२ ॥

भाषा-जिसके आंखोंके कोहे में दाह पीड़ा युक्त, लाल, नरम, छोटी, धीरे पीडा करनेवाली ऐसी फुंसी होय उसको अंजना कहते हैं। यहभी सन्निपात जन्य जाननी ॥

बहुलवर्त्मके लक्षण कहते हैं ॥

वर्त्मोपचीयते यस्य पिडिकाभिः समंततः ॥

सवर्णाभिः स्थिराभिश्च विद्याद्बहुलवर्त्म तत् ॥ ८३॥

भाषा—जिसके आंखोंके कोए त्वचाके तुल्य रंग और स्थिर जो फुन्सियोंसे व्याप्त होकर बढ़ेउसकोबहुलवर्त्म रोग कहे यहभी सन्निपातसेहीहोताहै

वर्त्मबंधनके लक्षण कहते हैं ॥

कण्डूमताऽल्पतोदेन वर्त्मशोथेन ये नराः ॥

न संप्रच्छादयेदक्षि यत्रासौ वर्त्मबंधकः ॥ ८४ ॥

भाषा-जिसरोगमें खुजार युक्त थोड़ी पीड़ा जिसमें हो ऐसी जो कोए म सूजन उससे जो आदमी आंखोंकोनहीं ढक सकै (बन्द न कर सकै यह वर्त्मबंधन कहाहै ॥ यह सन्निपात जन्य है।

क्लिष्टवर्त्मके लक्षण कहते हैं ॥

मृद्वल्पवेदनं ताम्रं यद्वर्त्म सममेव च ॥

अकस्माच्च भवेद्रक्तं क्लिष्टवर्त्मेति तद्विदुः ॥ ८५ ॥

भाषा-आंखके दोनों कोये नरम हों, थोड़ी पीड़ा, तांबक रंगहाकर अकस्मात् लाल होजाय तो इस रोगको क्लिष्टवर्त्मरोग कहतेहैं। यहरोग कफरक्तज है ॥

वर्त्मकर्दमके लक्षण कहते हैं ।

क्लिष्टं पुनः पित्तयुक्तं शोणितं विदहेद्यदा ॥
ततःक्लिन्नत्वमापन्नमुच्यते वर्त्मकर्दमः ॥ ८६ ॥

भाषा—जब क्लिष्टवर्त्म फिर पित्तयुक्त रुधिरको जलावे वह, दूध, माखन के समान गीला होजाय, अतएव इस व्याधिको वर्त्मकर्दम कहते हैं । यह पित्ताधिक सन्निपातात्मक है ॥

श्यावववर्त्मके लक्षण कहते हैं ।

यद्वर्त्म बाह्यतोऽन्तश्च श्यावं शूनं सवेदनम् ॥
तदाहुः श्याववर्त्मेति वर्त्मरोगविशारदाः ॥८७॥

भाषा-जिसके आंखोंके कोएके बाहर तथा भीतर काले वेदना सहित सुजन होय उसको कोएके रोगोंको जानने में चतुर श्याववर्त्म ऐसा कहते हैं यह वाताधिक विकार है ॥

प्रक्लिन्नवर्त्मके लक्षण कहते हैं ।

अरुजं बाह्यतः शूनं वर्त्म यस्य नरस्य हि ॥
प्रक्लिन्नवर्त्म तद्विद्याक्लिन्नमत्यर्थंमततः ॥८८॥

भाषा-अल्पपीड़ा तथा बाहरसे सूजे हुए अत्यन्त कीचड़से युक्त जिसके कोयेहों उसको प्रक्लिन्नवर्त्म कहतेहैं यह विकार कफजन्य है ॥

अक्लिन्नवर्त्म के लक्षण कहते हैं ।

यस्य धौतान्यधौतानि संबध्यंते पुनः पुनः ॥
वर्त्मान्यपरिपक्कानि विद्यादक्लिन्नवर्त्म तत् ॥८९॥

भाषा—जिस मनुष्यके आंखोंके पलक धोये हुए अथवा न धोयेहुए वार२ चिपर कर चिपकें और कोए पककर राधसे नहीं चिकटें तो यह रोग अक्लिन्नवत्म हैं ऐसा जाने हैं ।

वातहतवर्त्मके लक्षण कहते हैं ।

विमुक्तसंधि निश्चेष्टं वर्त्म यस्य न मील्यते ॥
एतद्वातहतं वर्त्म जानीयादक्षिचिन्तकः ॥९०॥

भाषा—जिसके आंखके पलक पृथक२ होंय, तथा जिसके पलक न मिच और न खुलें आंखकी चिकित्सा करने वाले उसको वातहतवर्त्म कहते हैं ऐसा जाने ॥

अर्बुदके लक्षण कहते हैं।

वर्त्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम् ॥
आचक्षतेऽर्बुदमिति सरक्तमविलंबितम् ॥९१॥

भाषा-आंखके कायके भीतर गोल, थोड़ा२ दर्द जिसमें हो कुछ लाल, जल्दी बढ़ने लगै ऐसी गांठ जो हो उसको अर्बुद कहै ॥

निमिषके लक्षण कहते हैं।

निमेषिणीः शिरा वायुः प्रविष्टो संधिसंश्रयाः ॥
प्रचालयत्यक्षि वर्त्मानि निमेषं नाम तद्विदुः ॥९२॥

भाषा-संधिमें आश्रय लेने वाली जो निमेषिणी (पलक लगाने वाली) शिरा (नाड़ी) उनमें प्रविष्टहुआ वायु आंखोंके वर्त्म (पलकों) को चलायमान करै आंख (मिचकावै) उसको निमेष कहतेहैं ऐसा जानै ॥

शोणितार्शके लक्षण कहते हैं।

यः स्थितो वर्त्म मध्ये तु लोहितो मृदुरंकुरः ॥
तद्रक्तजं शोणितार्शश्छिन्नं छिन्नं प्रवर्द्धते ॥९३॥

भाषा—जो पलकोंके बीचमें लाल कोमल अंकुरसा रुधिर के सम्बन्ध स पैदा हुआ बढ़ने लगे और टुकड़ा२ दीखे उसको शोणितार्श ऐसा कहते हैं ॥

नगणके लक्षण कहते हैं।

अपाकी कठिनः स्थूलो ग्रंथिवर्त्मभवोऽरुजः ॥
नगणो नाम स व्याधिः लिंगतः परिकीर्तितः ॥

भाषा-आंखके कोयेमें बेरके समान बड़ी, कठिन खुजली संयुक्त चिकनी गांठ होय, उसको नगण कहते हैं।

विसवर्त्मके लक्षण कहते हैं।

त्रयो दोषा बहिः शोथं कुर्युश्छिद्राणि वर्त्मनोः ॥

प्रस्रवत्यंतरुदकं बिसवद्बिसवर्त्म तत् ॥९५॥

भाषा-तीनों दोष कुपित हुए बाहर सूजन करै और आंखोंके कोयों में छिद्र होजाय और कमलकी डंडीकी तुल्य भीतरसे पानी टपके उसको बिसवर्त्म कहते हैं ।

कुंचनके लक्षण कहते हैं ।

वाताद्या वर्त्मसंकोचं जनयंति यदा मलाः ॥
तदा द्रष्टुं न शक्नोति कुंचनं नाम तद्विदुः ॥९६॥

भाषा-वातादि दोष जब कोयेके मार्गको संकुचित करदे तब मनुष्य नेत्रको उघाडकर देख नहीं सकता है। इस रोगको कुंचन कृच्छोन्मीलन ऐसा जाने ॥

पक्ष्मकोपके लक्षण कहते हैं ॥

प्रचालितानि वातेन पक्ष्माण्यक्षिणि विशंति हि ॥
घृष्यंत्यक्षि मुहुस्तानि संरम्भं जनयंति च ॥९७॥
असिते सितभागे च मूलकोशात्पतंत्यपि ॥
पक्ष्मकोपः स विज्ञेयो व्याधिः परमदारुणः ॥९८॥

भाषा-वादीसे चलायमान आंखोंके पलका के बाल आंख में पडें और वह वारंवार नेत्रकों रगड़े जाय इसीसे नेत्रके काले वं सफेद भागमें सूजन होय वह केश (बाल) जड़से टूट जावे व्याधि पक्ष्मकोप ऐसा जानना चाहिए यह बड़ा दुःखके देने वाला है ॥

पक्ष्मशात के लक्षण कहते हैं ।

वर्त्म पक्ष्माशयगतं पित्तं रोमाणि शातयेत् ॥
कण्डू दाहं च कुरुते पक्ष्मशातं तमादिशेत् ॥९९॥

भाषा-पलकोंकी जड़में स्थित हुआ पित्त कुपित होकर आखों (बाल) (चिनूनी) उनको नाश करै नेत्रोंमें खुजार चले दाह होय उसको पक्ष्मशात कहते हैं ॥

नेत्ररोगों की संख्या प्रक्षिप्त ।

नव संध्याश्रयास्तेषु वर्त्मजा स्त्वेकविंशतिः ॥
शुक्लभागे दशैकश्च चत्वारः कृष्णभागजाः ॥१॥
सर्वाश्रयाः सप्तदश दृष्टिजा द्वादशैव तु ॥
बाह्यजौ द्वौ समाख्यातौ रोगौ परमदारुणौ ॥
भूय एतान्प्रवक्ष्यामि संख्यारूपचिकित्सतैः ॥२॥

भाषा-सन्धिमें होनेवाले नेत्ररोग ९ प्रकारके हैं उनसे कोयेमें होने वाले रोग २१ हैं, नेत्रके सफेद भागमें होनेवाले रोग ११ हैं काले भागके ४ हैं सर्वसर अर्थात् सर्व नेत्रमें होनेवाले रोग १७ हैं, दृष्टिके रोग १२ हैं और नेत्रके बाहरके रोग २ हैं फिर इनका संख्या रूप और चिकित्सा इनसे कहैंगे ऐसें यहदो श्लोक क्षेपक हैं ॥

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सुरिसूनु शास्त्रि सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधव सुबोधिन्यां नत्ररोग निदानं समाप्तम् ।

अथ शिरोरोग निदानम् ।

शिरोरोगास्तु जायंते वातपित्तकफैस्त्रिभिः ॥
सन्निपातेन रक्तेन क्षयेण कृमिभिस्तथा ॥
सूर्यावर्त्तानंतवातार्द्धावभेदकशंखकैः ॥१॥

भाषा-वात, पित्त, कफ इनसे ३, सन्निपात से १, रक्तसे १ क्षयसे १ कृमियोंसे १, सूर्यावर्त १, अनन्तवात १, अर्धावभेदक (आधासीसी) १ और शंखक १ इसप्रकार ११ तरहके शिरकेरोग होते हैं ॥

वातज शिरोरोग के लक्षण कहते हैं ।

यस्यानिमित्तं शिरसो रुजश्च भवन्ति तीव्रा निशिचातिमात्रम्

बन्धोपतापैः प्रशमश्च यत्र शिरोभितापः स समीरणेन ॥२॥

भाषा-जिसको बिनाप्रयोजन शिरकी पीड़ा हो तथा रातमें अत्यन्त दूखै और विशेष दुख, बांधनेसे अथवा सेकने से शांति हो उसको वातज शिरो रोग जानना चाहिये ॥

पित्तजन्यशिरोरोग के लक्षण कहते हैं।

यस्योष्णमंगारचितं तथैव भवेच्छिरो दह्यति वाऽक्षि नासा ॥
शीतेन रात्रौ च भवेच्छमश्च शिरोभितापःस तु पित्तकोपात्॥३॥

भाषा-जिसका शिर अंगार से तपायक तुल्य हो आंख बलने लगे गरम, होवे और नाक के साथ शीतल पदार्थसे और रात्रिमें शान्ति हो वह पित्तके कोपसे शिर दर्द जानना ॥

कफजन्यशिरोरोग के लक्षण कहते हैं।

शिरो भवेद्यस्य कफोपदिग्धं गुरु प्रतिस्तब्धमथो हिमं च ॥
शूनाक्षिकूटं वदनं च यस्य शिरोभितापः स कफप्रकोपात्॥४॥

भाषा-जिस आदमी का माथा कफ से लिहसासा हो, भारी, जिकड़ा सा और ठंडा हो आंखजिसमें सूजैऐसा मुख होजाय जैसा चरकमें लिख है " शिरो मन्दरुजं तेन गुरुस्ति मित भारिकम् ॥ यह कफके कोप स होता है ॥"

सन्निपातिकाशिरोरोगके लक्षण कहतेहैं ॥

शिरोभितापे त्रितयप्रवृत्ते सर्वाणि लिंगानि समुद्भवन्ति ॥

भाषा-त्रिदोष से उत्पन्न हुए मस्तक रोग में तीनों दोषोंके सब लक्षण होते हैं ॥,

रक्तजन्यके लक्षण कहतेहैं।

रक्तात्मकः पित्तसमानलिंगः स्पर्शासहत्वं शिरसो भवेच्च॥५॥

भाषा—रक्त से उत्पन्न हुआ माथे का रोग उसमें पित्त के मस्तक रोगके तुल्यलक्षण मिलतेहैं तथा और माथेपर हाथ तक नहीं लगायाजाताहै॥

क्षयजन्यशिरोरोग के लक्षण कहते हैं।

असृग्वसाश्लेष्मसमीरणानां शिरोगतानामिह संक्षयेण ॥

क्षयप्रवृत्तिः शिरसोऽभितापः कष्टो भवेदुग्ररुजोऽतिमात्रम् ॥
संस्वेदनच्छर्दनधूमनस्यैरसृग्विमोक्षैश्च विवृद्धिमेति ॥ ७ ॥

भाषा-मस्तक गतजो रुधिर,वसा,कफ और वात इनसे क्षय की प्रवृत्ति होतीहै अत्यन्त शिरमें पीड़ा हो और गरमरहै स्वेदन, वमन. धूम्रपान, नस्य और रुधिर निकलना (फस्त पछना जोंक आदिसे) इनस वह क्षय जन्य शिरः शूल बढ़ता है ॥

कृमिजन्य रोग शूलके लक्षण कहतेहैं ॥

निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं संभक्ष्यमाणं स्फुरतीव चांतः ॥
घ्राणाच्च गच्छेद्रुधिरं सपूय शिरोभितापःकृमिभिः स घोरः॥७॥

भाषा-जिसका मस्तक टांकी के तोडने कीसी पीड़ा वाला होवे तथा कृमिसे भीतर खाया हुआ सा फड़क तथा नाक से राध सहित रुधिर जाय वह शिरो भिताप (सिर दर्द) कृमिज ऐसा कहा है ॥

सूर्यावर्त्त शिरोऽभिताप के लक्षण कहत हैं।

सूर्योदयं वा प्रतिमन्दमन्दमाक्षि भ्रुवं रुक्समुपैति गाढम् ॥
विवर्द्धते चांशुमता सहैव सूर्याप्रवृत्तौ विनिवर्तते च ॥
सर्वात्मकं कष्टतमं बिकारं सूर्यापवर्त्तं तमुदाहरन्ति ॥ ८ ॥

भाषा-सूर्योदयके होनें पर धीरे २ मस्तक दूखने का आरभ होय और जसे सूर्य बढ़े तैसे तेसे वह शूल नेत्र और भ्रकुटी (भौंह) इनमें दो प्रहरदिन बढेतक बढ़ता जाय और सूर्यके साथ बढ़कर फिर जैसे सूर्य अस्त होय तैसे तैसे पीड़ा मन्द होती जाय, इस सन्निपातिक विकारको सूर्यावर्त्त कहतेहैं ॥

अनन्तवात के लक्षण कहते हैं ॥

दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यां संपीड्यघाटासु रुजां सुतीव्राम्॥
कुर्वंति योक्षिभ्रुवि शंखदेशे स्थितिं करोत्याशु विशेषतस्तु॥९॥
गंडस्य पार्श्वे च करोति कंपं हनुग्रहं लोचनजांश्च रोगान् ॥
अनन्तवातं तमुदाहरन्ति दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारम् ॥१० ॥

भाषा—तीनों दोष (वात पित्त कफ) दुष्ट हुए मन्यानाडीको पीडित करके नाडके पिछले हिस्से में तीव्र पीड़ा को पैदा करे तथा जो आंख कन पटियों में विशेष करके पैदा करै और गंडस्थान के पसवाड़े में कंप ठोडी जिकडना और नेत्ररोगोंको पैदा करै त्रिदोषजन्य इस शिर रोग को अन. न्तवात कहते हैं ॥

अर्धावभेदक के लक्षण कहते हैं ॥

रूक्षाशनात्यध्यशनप्राग्वातावश्यायमैथुनैः ॥
वेगसंधारणायासव्यायामैः कुपितोऽनिलः ॥ ११ ॥
केवलःसकफो वाद्ध गृहीत्वा शिरसा बली ॥
मन्याभ्रूशंखकर्णाक्षिललाटाऽर्धेतिवेदनाम् ॥ १२ ॥
शस्त्रारणिनिभां कुर्यात्तीव्रां सोऽर्धावभेदकः ॥
नयनं वाथवा श्रोत्रमतिवृद्धो विनाशयेत् ॥ १३ ॥

भाषा—रूखा अन्न बहुत भोजन.अध्यशन(भोजन के ऊपर भोजन)पूर्वकी हवाका सेवन कोहल मैथुन इनसे मलादिके वेगोंके धारण से मिहनत और दंड कसरत करनेसें इन कारणोंसे कुपित हुआ केवल वायु अथवा कफसहित वायुसो आधे मस्तकको ग्रहण कर,मन्यानाडी भ्रूकुटी, कनपटी, कान, आंख ललाट के आधे हिस्से में अत्यन्त दर्द करै हथियारसे वा अरणी (अग्नि मन्थन काष्ठ)के मथने कीसी पीड़ा होय उसको अर्धावभेदक (आधाशीशी) कहतेंहैं यह रोग अत्यंत बढ़ाहुआ एक तरफकी आंख वाए तरफके कानको नष्ट कर देता है ॥ जैसा विदेहने कहाहै शिरसोन्यतरे पार्श्वे कुपितो मारुत यदा ॥ श्लेष्मणा रुध्यते जन्तो स्तोद स्फुटनदालनैः ॥ शूलावदालनैर्गाढमर्ध तदेव रुध्यते ॥ नयनं चावदीर्येत सोऽर्धभेदः कफानिलात् ॥ तथा ऽयहात् सपक्षाहात् पक्षान्मासाच्चदेहिनाम् ॥ इस प्रकार लिखाहै–

शंखकके लक्षण कहते हैं।

रक्तपित्तानिला दुष्टाः शंखदेशे विमूर्च्छिताः ॥
तीव्ररुग्दाहरागं हि शोथं कुर्वन्ति दारुणम् ॥१४॥

स शिरो विषवद्वेगी निरुध्याशु गलं तथा ॥
त्रिरात्राज्जीवितं हन्ति शंखको नामतः परं ॥
त्र्यहाज्जीवति भैषज्यं प्रत्याख्यासमाचरेत ॥ १९ ॥

भाषा-दुष्ट हुये जो पित्त, रक्त और वायु सो विशेष बढ़कर नेत्रों में भयंकर सूजन उत्पन्न करें और इसमें घोर पीड़ा होय, घोर दाह होय तथा नेत्र लाल बहुत हों और यह विषके समान बढ़कर गलेमें जाकर गलेको रोक दे, इस शंखरोगसे रोगीका तीन दिनमें प्राणोंका नाश होय इस कोमात्या ख्यानकरके चिकित्सा करै अर्थात् तीन रात्रिसे ऊपर साध्यता कहीहै इसी विषयमें विदेहने "चीयतेवुतदायित्तं शंखयोरनिलाचितम् ॥ निरुणद्धित्ततो मर्म परिपूरित मुल्वणम् ॥ तत' शंखौ प्रयुज्येत दह्येत इववह्निना ॥ सुचीं भिरिव तुद्येते निकृत्स्येत इवासिना॥ शंखको नाम शिरसि व्याधि रेषः सुदारुणः तृष्णा मूर्छा ज्वर करस्त्रिरात्रात् परमन्तकृत् ॥ कुशलेन तूपक्रान्त स्त्रिरात्रा देवजीवति इस प्रकार जानै ॥

वैद्यराज झल्लास्वामी सूरिसूनु पाठक सोहनलाल शास्त्रि
विद्याभूषण विरचितायां माधवसुबोधिन्यां
शिरोरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ असृग्दर(प्रदर] रोगनिदानम् ।

विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद्गर्भप्रपातादतिमैथुनाच्च ॥
यानातिशोकादतिकर्षणाच्च भाराभिघाताच्छयनादिवा च ॥
तंश्लेष्मपित्तानिलसन्निपातैश्चतुः प्रकारं प्रदरं वदंति ॥१॥

भाषा-विरुद्ध (क्षीरमत्स्यादि)मद्य,अध्यशन भोजनके ऊपर भोजन अजीर्ण गर्भपात, अतिमैथुन, चलना, बहुत शोक, उपवासादिक व्रतादिसे कर्शन अर्थात् व्रतके करनेसे सूख जाना, भारके ले जानेसे अर्थात् भारी वस्तु उठाकर चलनेसे, काष्ठ नाम लकड़ी आदिके चोट लगनेसे, दिनमें सोनेसे

इन कारणोंसे कफ, पित्त, वायु और सन्निपात इन भेदोंसे चार प्रकार का प्रदररोग होता है ॥

प्रदररोगके सामान्यरूप कहते हैं ।

असृग्दरं भवेत्सर्वं सांगमर्दं सवेदनम् ॥

भाषा-सब प्रदरोंमें अंगोंका टूटना तथा हाथपैरोंमें पीड़ा होती है ॥

उपद्रवोंको कहते हैं ।

तस्यातिवृद्धौ दौर्बल्यं भ्रमो मूर्च्छा मदस्तृषा ॥
दाहः प्रलापः पांडुत्वं तंद्रारोगाश्च वातजाः ॥२॥

भाषा-उस प्रदर रोगके बहुत बढ़ने पर दुर्बलता होय, भ्रम होय, मूर्छा आवे, मद, प्यास, दाह, प्रलाप (अट्टसट्ट बोलना) देह का पीलापन तन्द्रा यह और वातजरोग (आक्षेप अपतान कंपादिक) होते हैं ॥

श्लैष्मिकादिभेद से विशेष लक्षण कहते हैं ।

आमं सपिच्छं प्रतिमं सपाण्डु पुलाकतोयप्रतिमं कफात्तु ॥

भाषा-कफसे आम (कच्चा) रस चिकनाई चमक सहित किंचित् पीला पनलिये हुए मांसके धोनेसे जलके तुल्य स्राव होताहै यह श्वेतप्रदर कहाताहै

पित्तजन्य प्रदररोग कहते हैं ।

सपीतनीलासितरक्तमुष्णं पित्तार्तियुक्तं भृशवेगि पित्तात् ॥३॥

भाषा-पीला,नीला,काला,लाल,और गरम पित्तके दाह युक्त चिमचिमा हटआदिपीड़ा युक्तहोय तथा उसका वेग अत्यन्त होय यह प्रदरपित्तसे होताहै॥

वायुजन्य प्रदरके लक्षण कहते हैं ।

रूक्षारुणं फेनिलमल्पमल्पं वातार्तिवातात्पिशितोदकाभम् ॥

भाषा—रूखा लाल झाग युक्त मांसके जल के तुल्य और सफेद पानी थोड़ा२ प्रदर बहे उसमें बादी(आक्षेपकादिकी)पीड़ा होतीहै यह वायुसे जानना॥

त्रिदोष जन्य प्रदरके लक्षण कहते हैं ।

सक्षौद्रसर्पिर्हरितालवर्णं मज्जप्रकाशं कुणपं त्रिदोषात् ॥४॥
तच्चाप्यसाध्यं प्रवदन्ति तज्ज्ञा न तत्र कुर्वीत भिषक् चिकित्साम्॥
शश्वत् स्रवन्ती मास्रावं तृष्णा दाहज्वरान्विताम् ॥५॥

भाषा—जो प्रदर शहद घृत हरिताल और मज्जा इनके रंगके तुल्य तथा मुर्दाकीसी दुर्गंधियुक्त होय उसप्रदरको त्रिदोषसे जानना चाहिए यह असाध्य है अर्थात् इसकी वैद्य चिकित्सा न करे ॥ निरन्तर प्यास ज्वर इससे युक्तहों और पदार्थ स्रवता रहे और रक्तक्षीण होगया हो दुर्बलहो ऐसी प्रदरवाली स्त्री को असाध्य जाननी चाहिए ।

चिकित्सानिवृति के लिए विशुद्धार्त्तवके लक्षण कहते हैं ।

मासान्निष्पिच्छदाहार्ति पंचरात्रानुबंधि च ॥
नैवातिबहुलाल्पं यदार्तवं शुद्धमादिशेत् ॥ ६॥
शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम् ॥
तदार्तवं प्रशंसन्ति यच्चाप्सु न विरज्यते ॥ ७ ॥

भाषा-जो आर्त्तव (रजोदर्शनका रुधिर) चिकना नहीं होवे तथा जिसमें दाह शूलादिक न हो तथा जिसका अनुबंध महीनेमें पांच दिवस पर्यन्त होय तथा बहुत न निकले और थोडाभी न होय (मध्यम प्रमाणका होय उस को शुद्ध आर्तव जानना चाहिये और जो आर्तव शशेके रुधिरके समान होवे अथवा लाखके रंगकासा लाल होवे और जिसका रंगा कपड़ा जलमें डाल नेसे रंग नहीं पलटे उसको शुद्ध आर्तव कहते हैं ॥

वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसूनु शा० सोहनलाल पाठक विद्या भूषण विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां नासिकारोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ योनिव्यापन्निदानम् ।

विंशतिर्व्यापदो योनौ निर्दिष्टा रोगसंग्रहे ॥
मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्त्तवेन च ॥ १ ॥
जायंते बीजदोषाच्च दैवाच्च शृणु ताः पृथक् ॥

भाषा—रोगोंकासंग्रहजिसमेंऐसेग्रन्थनिदानमेंयोनिमेंक्लेशकरनेवालेबीसरोग कहे हैं वह मिथ्या आचार अर्थात् मिथ्या अहार और मिथ्या विहार करनेसे स्त्रियोंके होते हैं तथा रज (रुधिर) के दूषित होने के कारण से बीजदोष

से और देवकी इच्छासे होते हैं उनके लक्षण पृथक्पृथक् सुन ऐसे गुरु अपने शिष्यके प्रति उपदेश करते हैं ॥

कफजन्य योनिदोष के लक्षण ।

सा फेनिलमुदावृत्ता रजः कृच्छ्रेण मुंचति ॥२॥
वंध्यां नष्टार्तवां विद्याद्विप्लुतां नित्यवेदनाम् ॥
परिप्लुतायां भवति ग्राम्यधर्मेण रुग्भृशम् ॥३॥
वातला कर्कशा स्तब्धा शूलनिस्तोदपीडिता ॥
चतसृष्वपि चाद्यासु भवंत्यनिलवेदनाः ॥ ४ ॥

भाषा-जिससे ऋतुका झगीला रक्त निकले और निकलते समय बड़ा कष्ट हो वह उदावृत्ता योनि कही है और जिसका आर्तव नष्ट हो उसको वन्ध्या कहते हैं जिसके बराबर पीडा हो उसको विप्लुता जानै परिप्लुता योनि में मैथुन करनेमें अत्यन्त पीडा होती है । जो योनि कठोर स्तब्ध होकर शूलतोदयुक्त होवे उसको वातला कहते हैं। कहीं ग्राम्य धर्मे रुचिभृंश ऐसा पाठहै वहां भोग करनेमें अत्यन्त रुधिर हो ऐसा अर्थ जानै पहले जो चार योनि । उदावृत्ता, वंध्या, विप्लुता,परिप्लुता) कही इनमें वातकीपीडा होतीहै

पित्तकी योनि को कहते हैं ॥

सदाहं क्षीयते रक्तं यस्या सा लोहितक्षया ॥
सवातमुद्गमेद्वीजं वामिनी रजसान्वितम् ॥
प्रस्रंसिनी स्रंसते तु क्षोभिता दुष्प्रजायिनी ॥
स्थितं स्थितं हन्ति गर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंक्षयात् ॥६॥
अत्यर्थं पित्तला योनिर्दाहपाकज्वरान्विता ॥
चतसृष्वपि चाद्यासु पित्तलिंगोच्छ्रयो भवेत् ॥७॥

भाषा-जिस योनि में दाहसहित रुधिर बहै वह लोहितक्षया कही है । जिसमेंसे रजोयुक्त शुक्र वायु बराबर बहै उसको वामिनी कहतेहैं। जो योनि स्थानभ्रष्ट होय उसको प्रस्रंसिनी कहते हैं जिसमें अंग बाहर निकल बहै

और यह विमर्दित करमेंसे प्रसव योग नहीं होता है जिस योनि में रुधिर क्षय होनेसे गर्भ न रहे उसको पुत्रघ्नी कहते हैं। जोयोनि अत्यन्त दाह पका घट और ज्वर इन लक्षणों से संयुक्त होय उसको पित्तला कहते हैं। इनमें पहली चार (रक्तक्षया वामिनी प्रस्रंसिनी और पुत्रघ्नी) में पित्त के लक्षण विशेष होतेहैं इनमें कफ जन्य में कफ के, वातला में वातके, पित्तला में पित्तके लक्षण यथा योग्य जानने ॥

अत्यानन्दा न संतोषं ग्राम्यधर्मेण गच्छति ॥
कर्णिन्यां कर्णिकायोनौ श्लेष्मासृग्भ्यां च जायते ॥८॥
मैथुनाचरणात्पूर्वं पुरुषादतिरिच्यते ॥
बहुशश्चातिचरणात्तयोर्बीजं न विंदति ॥ ९ ॥
श्लेष्मला पिच्छिला योनिः कण्डूयुक्ताऽतिशीतला ॥
चतसृष्वपि चाद्यासु श्लेष्मालिंगोच्छ्रयो भवेत् ॥ १० ॥

भाषा-जो योनि अति मैथुन से भी संतोष को प्राप्त न होवे उसके अत्यानन्दा कहते हैं। जिसमें कफ रुधिर से कर्णिका (मांसकन्द) कारग्रन्थि हो उसको कर्णिनी कहते हैं। जो योनि थोड़े मैथुन से लिंग से पहले स्रवे उसको चरणा कहते हैं अर्थात् जबतक पुरुषको सुख नहीं हो उसके पहले ही द्रवीभूत होकर वीर्यको ग्रहण नहीं करे। जो योनि बहुवार मैथुन करने से पुरुषके पीछेद्रवे उसको अतिचरणा योनि कहतेहैं यह कफ जनितहैं इनमें बीज स्थिर नहीं होता है कफजन्य चमकदार खुजार युक्त अत्यन्त शीतल कफकीमें अत्यन्त ठंडका उपलक्षण मात्रहै साथही वेदनादिक भी जानने जैसा और ग्रन्थोंमें लिखाहै कफोऽभिष्यन्दिभिः योनि चेत् दूषयते स्त्रियाः सकुर्यात् पिच्छिलां शीतां कण्डू ग्रस्तां सवेदनां इस प्रकार जानै पहिली जो चार उसमें कफके चिह्नोंकी बढ़ोतरी होती है ॥

सान्निपातिके के लक्षण कहते हैं ॥

अनार्तवास्तनी षण्ढी खरस्पर्शा च मैथुने ॥
अतिकायगृहीतायास्तरुण्यास्त्वण्डली भवेत् ॥ ११ ॥

विवृता च महायोनिःसूची वक्राति संवृता ॥
सर्व लिंग समुत्थाना सर्व दोषप्रकोपजा ॥ १२ ॥
चतसृष्वपि चाद्यासु सर्वलिंगो च्छ्रयो भवेत् ॥
पञ्चासाध्या भवन्तीह योनयःसर्वं दोषजाः ॥ १३ ॥

भाषा-आर्तव ऋतुधर्म] जिसको न होता होय कुछ२स्तन दीखै षन्ढी मैथुन करने में स्पर्श खरखरा जिसका हो अथवा जिसकी छोटी योनि हो उस का बड़े लिंगवाले से विषय होवै तब उस तरुणी की योनि अण्डा के तुल्य भीतर से बाहरको हो उसको अण्डली कहते हैं जो बहुत फैली चौड़ी फटी हो वह महायोनि है जो बहुत सिकुड़ी हो वह सूची वक्रा कही है सब दोषों के चिह्न जिसमें दीखें वे पैदा हो उसको सब दोषों के कोपसे हुई जानै पहिली जो चार उनमें सब दोषोंकी बढ़ोतरी होती है यहा सब दोषोंसे अत्यन्त हुई पांचै योनि असाध्य होती हैं ॥

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसूनु शा० सोहनलाल पाठक
विद्या भूषण विरचितायां माधवनिदानस्य
सुबोधिन्यां योनि व्यापन्निदानं समाप्तम् ॥

अथयोनि कन्द निदानम् ।

दिवास्वप्नादति क्रोधाद्व्यायामादतिमैथुनात् ॥
क्षताच्च नखदन्ताद्यैर्वाताद्यैः कुपिता यदा ॥ १ ॥
पूय शोणित संकाशं निकुचाकृति सन्निभम् ॥
जनयन्ति यदायोनौ नाम्न कन्दःसयोनिजः ॥ २ ॥

भाषा—दिनके सोनेसे अत्यन्त क्रोधसे व्यायाम से अत्यन्त मैथुन करने से घाव होनेसे नखदन्त कांटे आदिके लगने से घाव होनेसे जब बात पित्त कफ कुपित होते हैं तब राध लोहू के रंगका बर्तके टुकड़े के तुल्य पैदा करैं तब योनिसे उत्पन्न हुआ वह नामसे योनिकन्द कहलाता है ॥

वातजन्य योनिकन्द को कहते हैं ।

रूक्षं विवर्णं स्फुटितं वातिकं तंविनिर्दिशेत् ॥

भाषा-रूखा वेरंगका फटा२ जो योनिकन्द का स्वरूप होयतो उसको वातजन्य कहै ॥

पित्तजन्य योनिकन्द को कहते हैं ।

दाहरागज्वरयुतं विद्यात् पित्तात्मकं तु तम् ॥३॥

भाषा-जो योनिकन्द दाह राग (रक्त) ज्वर इन से जो युक्त हो उसको पित्तका जानै ॥

कफात्मक योनिकन्द को कहते हैं ।

नीलपुष्प प्रतीकाशं कण्डूमन्तं कफात्मकंम् ॥

भाषा-अलसीके फूलके तुल्य नीला खुजार युक्त जो हो उसको कफका योनिकन्द कहै ॥

सन्निपात जन्य योनिकन्द को कहते हैं ।

सर्वलिङ्गसमायुक्तं सन्निपातात्मकं विदुः ॥४॥

भाषा-वात, पित्त, कफ, के सब लक्षण जिसमें मिलते हों उसका सन्नि पातका यानिकन्द जानै ॥

इति श्री वैद्यराज झल्लास्वामि सुरिसुनु शास्त्रि सोहनलालपाठक
विद्याभूषण विरचितायां माधव सुबोधिन्यां
योनिकन्द निदानं समाप्तम् ॥

अथ मूढगर्भ निदानम् ।

योनि स्थानके जो विकार उनकी जो अनुवृति हुई उससे
स्त्रीरोग निदानका आरम्भ करतेहैं तहां प्रथम
गर्भपात निदानको कहते हैं ।

भयाभिघातात्तीक्ष्णोष्णपानाशन निषेवणात् ॥
गर्भेपतति रक्तस्य सशूलं दर्शनं भवेत् ॥१॥

भाषा—भयसे चोट लगने से तीखे गरम पदार्थोंके खाने पीने व सेवन करनेसे इनको उप लक्षण मात्र समझना इससे औरभी ग्राम्य धर्मयान वाहन पतन स्खलन आदिभी जानने चाहिये गर्भके गिरने पर यहां पर पतित यह

जो क्रिया प्रयोग में लाई गई है उससे गर्भस्राव व गर्भपात दोनोंका बोध होता है फिर दर्द सहित (रज आर्तव) दीखे अर्थात् जब रज आवै तब बड़ा दर्द हो यह इस रोगका पूर्वरूप है यह दिखाया है ॥

गर्भस्राव व गर्भपात इनका काल कृत भेद कहते हैं ।

आचतुर्थात्ततोमासात् प्रस्रवेद्गर्भविद्रवः ॥
ततःस्थिर शरीरस्य पातः पञ्चम षष्ठयोः ॥२॥

भाषा-चौथे मास पर्यन्त गर्भ विद्रव (लोथरा का पात) होता है अर्थात् बहुत कठिन अवयव जिस गर्भके न हुएहोंय ऐसे गर्भके गिरनेको गर्भ विद्रव गर्भस्राव कहते हैं जैसा भोजने" आतृतीयात्ततोमासात् गर्भः स्रवति शोणि. तम् ॥ ऊर्ध्वं सघातभूतस्तु गर्भः पततियोषित्ताम् " इस प्रकार कहा है और सुश्रुत में चौथे महीना तक स्राव कहा है इसके अनन्तर स्थिर शरीर जिसका हो उसको गर्भपात कहते हैं यह पांचवे छठे महीना में होता है कहीं२ जहां विगुण जनन (दोषोंके विगुण होने पर) होता है तहां सातवें महीना में भी गर्भपात होता है और अनुगुण जननमें तो सातवें महीना बच्चा पूरा पाठा होता ऐसे बहुत से बच्चे जीते जागते पाये जाते हैं वहां पात नहीं होता है ॥

गर्भके वे समय गिरने में निदानपूर्वक दृष्टान्त कहते हैं ।

गर्भोभिघातविषमाशनपीडनाद्यैः पक्वंद्रुमादिवफलंपतति क्षणेन॥
मूढः करोतिपवनः खलुमूढ़गर्भं शूलंचयोनिजठरादिषुमूत्रसंगम्३।

भाषा-चोट का लगना, विषम पदार्थोंका खाना पीड़नादिक इन कारणों से जैसे पका हुआ फल वृक्षसे चोट लगने से क्षण भरमें गिर जाता है इसी प्रकार गर्भ भी इन कारणोंसे गिरता है ॥ मूढ़ नाम कुंठितगति वायु गर्भको मूढ़ (टेढ़ा कर दे और योनि तथा पेट इनमें शूल उत्पन्न करे तथा मूत्रोत्संग धीरे धीरे पीड़ासहित पेशाब निकलता है ॥

मूढ़गर्भकी आठ प्रकारकी गति कहते हैं ॥

भुग्नोऽनिलेन विगुणेन ततः स गर्भः संख्यामतीत्य बहुधा समु-
पैति योनिम् ॥ द्वारं निरुध्य शिरसा जठरेण कश्चित् कश्चिच्छ-

रीरपरिवर्तितकुब्जदेहः ॥ ४ ॥ एकेन कश्चिदपरस्तु भुजद्वयेन तिर्यग्गतो भवति कश्चिदवाङ्मुखोऽन्यः॥ पार्श्वप्रवृत गतिरेति तथैव कश्चिदित्यष्टधा गतिरियं हि परा चतुर्धा ॥ ५॥ संकीलकः प्रतिखुरः परिघोऽथ बीजस्तेषूर्ध्वबाहुचरणैः शिरसा च योनिम् ॥ संगी च या भवीति कीलकवत्सकीलो दृश्यैः खुरैः प्रतिखुरैः स हि कायसंगी ॥ ६ ॥ गच्छेद्भुजद्वयशिराःस च बीजकाख्यो योनौ स्थितः सपरिघः परिघेन तुल्यः ७ ॥

भाषा—त्रिगुण वायुसेगर्भ टेढ़ाहोकर अनेक प्रकारसे योनिकेद्वारमेंआयकर अड़ जाता है उसकी आठ प्रकारकी संज्ञा होतीहै सो वह इस प्रकार है । १ कोई गर्भ मस्तक से योनिके द्वारको बन्द कर देता है । २ कोई पेटसे योनि के मार्गको रोकदेय । ३ कोई शरीरके विपरीतपनेसे योनिके मार्गको रोक देता है । ४ कोई एक हाथसे योनिके मार्गको रोक दे । ५कोई मूढगर्भ दोनों हाथोंको बाहर निकालकर योनि के द्वारको रोक दे । ६ कोई गर्भ तिरछा होकर योनिके मार्गको रोक दे । ७ कोई गर्भ मन्यानाडीके मुडनेसे नीचेको मुख होय वह योनिके द्वारको रोक दे । ८ उसी प्रकार कोई पार्श्वभंग होनेसे योनिके द्वारको रोकदे । इस प्रकार मूढगर्भ के आठ लक्षण हैं । दूसरी चार प्रकारकी गति और होती हैं उनको कहते हैं । १ संकील,२ प्रतिखुर३ परिघ ४बीज । इनमें जो गर्भ हाथ पैर ऊपरको कर मस्तक से योनिको कील के समान रोक दे उसको संकीलक कहते हैं।जिस गर्भके हाथ पेर खुरके सदृश बाहर निकल आवें और शरीर योनिके भीतर अटका रहे उसको प्रतिखुर कहते हैं। जो गर्भ दोनों हाथ और मस्तक आगे करके अटक जाय उसको बीजक और आगल के तुल्य योनिमें गर्भ अटक जाय उसको परिघ कहते हैं ॥

असाध्य मूढगर्भ और गर्भिणीके लक्षण कहते हैं ॥

अपविद्धाशिरा या तु शीतांगी निरपत्रपा ॥
नीलोद्धतशिरा हन्ति सा गर्भं स च तां तथा ॥ ७ ॥

भाषा—नीचेकोशिरवालीजोस्त्रीहोऔरजिसकी देह शीतल होयतथा लज्जा जाती रहे और जिसकी कोखमें हरी नीली शिरा नस उठ खड़ी होय तो वह गर्भिणी उस गर्भको और गर्भ गर्भिणीको अन्योऽन्य नाश करते हैं ॥

मृतगर्भके लक्षण कहते हैं ॥

गर्भास्यन्दनमावीनां प्रणाशः श्यावपांडुता ॥
भवेदुच्छ्वासपूतित्वं शूनतांतर्मृते शिशौ ॥ ८ ॥

भाषा-गर्भ हले चले नहीं प्रसववेदना पीडा बंदहोजाय देह में कालापन व पीलापन होय, जिसकी श्वासमें दुर्गंध आवे, पेटके भीतर सूजन होय अर्थात् पेटमें आंतोंके फूलनेसेपेट सूजजाय ये गर्भमें जबबालक मरजाय उसके लक्षणहैं

और असाध्य गर्भिणीके लक्षण कहते हैं ॥

योनिसंवरणं संगः कुक्षौ मक्कल एव च ॥
हन्युःस्त्रियं मूढगर्भा यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः ॥ १० ॥

भाषा-योनिका संकोच, गर्भका अटकना और कूख में मक्कलशूल (वातरक्तकी पीड़ा) तथा आक्षेपक खांसी, श्वासादिक उपद्रव होनेसे वह मूढ गर्भवाली गर्भिणीको नष्ट कर देते हैं योनि संवरण औरतन्त्रों में इस प्रकार लिखाहै ॥ (वायुः प्रकुपितः कुर्यात् संरुध्य रुधिरं स्रुतम् ॥ सूतायाः हृच्छिरो बस्ति शूलं मक्कल संज्ञकम् ॥

इतिश्री वैद्यराज झल्ला स्वामि सूरिसूनु शा० सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां मूढगर्भनिदानं समाप्तम् ॥

अथ सूतिकारोग निदानम्

अंगमर्दो ज्वरः कंपः पिपासा गुरुगात्रता ॥
शोथः शूलातिसारौ च सूतिकारोगलक्षणम् ॥ १ ॥

भाषा—कुपित हुआ वायु झरते हुए रुधिरको रोककर जच्चा के हृदय मस्तक बस्ति इनमें मक्कल संज्ञक दर्द करै ॥ अंगोंका टूटना ज्वर हो, कंप, प्यास अंगोंकाभारी होना सूजन तथा शूल और अतिसार ये सूतिकारोगकेलक्षणहोतेहैं

सूतिरोगके निदान को कहते हैं ॥

मिथ्योपचारात्संक्लेशाद्विषमाजीर्णभोजनात् ॥
सूतिकायाश्च ये रोगा जायन्ते दारुणाः स्मृताः ॥

भाषा—प्रसूति स्त्री के मिथ्या उपचार करनेसे अथवा संक्लेश नाम दोष जनक अन्नपान के सेवन करनेसे अथवा संक्लेश नाम अत्यंत कोप के करने से अथवा विषमाशन अजीर्ण भोजनादिके करनेसे प्रसूतके रोग होते हैं वह घोर दुःखदायक हैं ॥

इसके लक्षण कहते हैं।

ज्वरातीसारशोथाश्च शूलानाहबलक्षयाः ॥
तन्द्रारुचिप्रसेकाद्याःकफवातामयोद्भवाः ॥
कृच्छ्रसाध्या हि ते रोगाः क्षीणमांसबलग्नयः ॥
ते सर्वे सूतिकानाम्ना रोगास्ते चाप्युपद्रवाः ॥४॥

भाषा-ज्वर, अतिसार, सूजन, शूल, अफरा और बलक्षय तथा कफ वात जन्य रोग से उत्पन्न होनेवाले तन्द्रा, अन्नद्वेष और मुखसे पानी का गिरना इत्यादि विकार असामर्थ्य तथा अग्नि मंद होने से कृच्छ्रसाध्य होता है। इन सब ज्वरादिकों को प्रसूति रोग कहते हैं। इनमें कोई प्रधान और कोई उपद्रव इस नामसे प्रसिद्ध होते हैं ॥

इतिश्री वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसूनु शा० सोहनलाल
विद्याभूषण विरचितायां माधवसुबोधिन्यां
सूतिका रोगनिदानं समाप्तम्

अथ स्तनरोगनिदानम्।

सक्षीरो वाप्यदुग्धौ वा दोषः.प्राप्य स्तनौ स्त्रियः ॥
प्रदूष्य मांसरुधिरे स्तनरोगाय कल्पते ॥ १ ॥

भाषा—वातादिक दोष गर्भिणी अथवा प्रसूता स्त्री के सदुग्ध अथवा अदुग्ध स्तनोंमें प्राप्त हो मांस रक्तको दुष्ट करके स्तनरोग उत्पन्न करे।

पंचानामपि तेषां हि रक्तजं विद्रधिं विना ॥
लक्षणानि समानानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ २ ॥

भाषा—स्तनरोग वात, पित्त, कफ, सन्निपात, आगंतुक के भेद से पांच प्रकार के हैं। इन पांचों के लक्षण रक्त विद्रधि को त्यागकर बाह्यविद्रधि के

समान होतेहैं । सो विद्रधि निदान जो पीछे कह आये हैं उससे जान लेना चाहिये ॥

इतिश्री वैद्यराज ब्रह्मस्वामि सुरिसुनु शा० सोहनलाल
विद्याभूषण विरचितायां माधवसुबोधिन्यां
स्तनरोग निदानं समाप्तम्

अथ स्तन्यदुष्टिनिदानम् ।

गुरुभिर्विविधैरन्नैर्दुष्टैर्दोषैः प्रदूषितम् ॥
क्षीरं मातुः कुमारस्य नानारोगाय कल्पते ॥ १ ॥

भाषा-गुर्वादिक अनेक प्रकारके अन्नों से दोष (वात, पित्त, कफ) दुष्ट होकर माताके दूधका नाश करके उस दुष्ट दूधसे बालक के नानाप्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं ॥

वातादिकसे दूषित दूधके लक्षण कहते हैं ।

कषायं सलिलप्लावि स्तन्यं मारुतदूषितम् ॥
कट्वम्ललवणं पीतराजिमत्पित्तसंज्ञितम् ॥ २ ॥
कफदुष्टं घनं तोये निमज्जति सुपिच्छलम् ॥
द्विलिंगं द्वंद्वजं विद्यात्सर्वलिंगं त्रिदोषजम् ॥ ३ ॥

भाषा-कैषला अथवा पानी के ऊपर तैरने वाला जो दूध होय उसको वात दूषित जानना और जो कडुआ, खट्टा और खारी होकर जिसमें पीली रेखासी प्रतीत हो उसको पित्तदूषित जानना और जो दूध संघन चिकनासा होवे और पानी में डालनसे नीचेको बैठ जाय उसको कफसे दुष्ट जानना चाहिये । दो दोषों के लक्षण जिसमें मिलें उसे द्वंद्वज जाने और जिसमें तीनों दोषों के लक्षण मिलें उसे त्रिदोष दूषित जाने ॥

अविकृत (शुद्ध) दूधके लक्षण कहते हैं ।

अदुष्टं चाम्बुनिक्षिप्तमेकी भवति पाण्डुरम् ॥
मधुरं चाविवर्णं च प्रसन्नंतत्प्रशस्यते ॥ ४ ॥

भाषा-जो दूध पानी में डालनेसे मिल जाय तथा जो दूध कुछ पीला

हो और मीठा होकर बेरंगका न हो वह दुध अच्छा होता है ॥

इतिश्री वैद्यराज श्रद्धास्वामि सूरिसूनु शा० सोहनलाल विद्याभूषण विरचितायां माधवसुबोधिन्यां स्तनदुष्टिनिदानं समाप्तम् ॥

अथ बालरोग निदानम् ।

वातादिसे दूषित स्तन्यके रोगोंको कहते हैं ॥

वातदुष्टं शिशुः स्तन्यं पिबन्वातगदातुरः ॥
क्षामस्वरः कृशांगःस्याद्बद्धविण्मूत्रमारुतः ॥१॥
स्विन्नो भिन्नमलो बालः कामलापित्तरोगवान् ॥
तृष्णालुरुष्णसर्वांगः पित्तदुष्टं पयः पिबन् ॥ २ ॥

भाषा-जो बालक वातसे दूषित दूधको पीताहै वह वात रोगसे पीड़ित होता है वह झीने स्वर वाला कृष देहवाला होय और मल मूत्र तथा अधोवायु यह बद्ध होजाय अर्थात् न आवें पित्तदूषित दूधको पीनेवाला स्विन्न (उसके पसीना आवे) मल पतला हो जाय,कामलारोग उसके होवे प्यासवाला हो सर्वांग जिसका गरम रहताहै ॥

कफदुष्टं पिबन् क्षीरं लालालुः श्लेष्मरोगवान् ॥
निद्रार्दितो जडः शूनः शुक्लाक्षश्छर्दनः शिशुः॥३॥

भाषा-कफ से दूषित दूधको जो बालक पिवै तथा कफ के रोगों से युक्त होय निद्रा से पीडित अंग वाला होय सूजन युक्त सफेद आंख वाला वमन करने लगता है ॥

द्विलिंग द्वंद्वजं विद्यात्सर्वलिंग त्रिदोषजे ॥

भाषा—पूर्वोक्त जो वातादि दूषित दुग्धके लक्षण कहे हैं उनमें दो दोषों के लक्षण मिलने से द्वंद्वज रोग जानना और त्रिदोष के लक्षण मिलने से सन्निपात का रोग जानना ।

बालकों के बोलनें में सामर्थ्य न होने से अंतर्गत पीडा जानने का उपाय ॥

शिशोस्तीव्रामतीव्रां च रोदनाल्लक्षयेद्रुजम् ॥ ४॥ स यं

स्पृशेद्भृशं देशं यत्र च स्पर्शनाक्षमः ॥ तत्र विद्याद्रुजं मूर्ध्नि रुजं चाक्षिनिमीलनात् ॥ ५ ॥ कोष्ठे विबंधवमथुस्तनदंशांत्रकूजनैः ॥ आध्मानपृष्ठनमनजठरोन्नमनैरपि ६ वस्तौगुह्ये च विण्मूत्रसंगो त्रासादिगीक्षणैः ॥ स्रोतांस्यंगानि संधीश्च पश्येद्यत्नान्मुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥

भाषा—बालकों के रुदन (रोने) से उस के थोडी वा बहुत पीडा का लक्ष करे बालक जिस जगह को अत्यन्त बारंबार हाथ से छुए उस ठिकाने और जिस जगह औरके हाथको न लगाने दे उस ठिकाने उस के पीडा जाननी चाहिये । आंखों के मूंदने स मस्तकपीडा जाने मलावरोधवमन, स्तन (छाती को) चबाना तथा पेट का गूंजना, पेटका फूलना तथा पेटका ढलढला इन लक्षणों से बालक के पेट में पीडा जाने मलमूत्रके रुकने तथा डरने से और सर्वत्र देखने से इन लक्षणों से उसके मुत्रस्थान और गुदा में पीडा जाने । वैद्य बालक के स्रोत (नाक, मुंख, कान, आदि छिद्रों को हाथ पैर से आदि ले अवयवों और संधियोंको बारंबार देखे तब उस से रोग का यथार्थ ज्ञान हो जाता है ।

बालकों के खराबा दूध पीने से वर्त्म रोग होता है उस को कहते हैं ।

कुकूणकः क्षीरदोषाच्छिशूनामेव वर्त्मनि ॥ जायते तेन नेत्रं च कण्डूरं च स्रवेन्मुहुः ॥८॥ शिशुः कुर्याल्ललाटाक्षिकूटनासाविघर्षणम् । शक्तो नार्कप्रभां द्रष्टुं न वर्त्मोन्मीलनक्षमः॥९॥

भाषा—दूध के दोष से बालकों के आंखों के पलक व कोयो में कुकणक (कोथया वा रोहे इस को कहते हैं) नेत्र रोगहोता है इस से उस बालक के नेत्र खुजार युक्त हों और उन में से बार २ खराब पानी निकलता रहताहै तब वह बालक नाक को रगडे धूप के सामने देखने की सामर्थ्य न रखता हो और न पलकों के खोलते मूंदने की सामर्थ्य रखताहै ॥

पारिगर्भिक के लक्षण कहते हैं ।

मातुः कुमारो गर्भिण्याः स्तनं प्रायः पिबन्नपि ॥
कासाग्निसादवमथुतंद्राकार्श्यारुचिभ्रमैः ॥ १० ॥

युज्यते कोष्ठ वृद्धचा च तमाहुः पारिगर्भिकम् ॥
रोगं परिभवाख्यं च युज्यात्तत्राग्निदीपनम् ॥ ११ ॥

भाषा-गर्भिणी माता का दूध प्राय पीने वाला बालक भी खांसी, मंदाग्नि वमन, तन्द्रा, कृशता, अरुचि, और श्रम इन से युक्त और उसके पेटकी वृद्धि होय इस रोग को वैद्यगण पारिगर्भिक अथवा परिभव कहते हैं इस रोग में अग्निदीपन करने वाली औषधि का बालक को प्रयोग करे ।

तालुकंटकके लक्षण कहते हैं ।

तालुमांसे कफः क्रुद्धः कुरुते तालुकंटकम् ॥
तेन तालुप्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते ॥१२॥
तालुपातः स्तनद्वेषः कृच्छ्रात्पानं शकृद् द्रवम् ॥
तृडक्षिकंठास्यरुजा ग्रीवादुर्वहता वमिः ॥ १३ ॥

भाषा-तालु के मांसमें कुपित हुआ कफ तालुकंटक रोग को पैदा करे इसके होने से तालुके ऊपरका हिस्सा नीचा होजाय तथा भीतर से बालक का तालुआ विध जाय इसी से बालक स्तन (छाती) को नहीं दावे और पीवे भी तो बड़े कष्ट से पीवे, पतला मल हो जाय, प्यास लगे, नेत्र कंठ मुख इन में पीडा होय नार गिरी पड़े और जो दूध पीवे उसे डाल दे

महा पद्मनाम बिसर्प के लक्षण कहते हैं ॥

विसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनो बस्तिशीर्षजः ॥
पद्मवर्णो महापद्मनामा दोषत्रयोद्भवः ॥ १४ ॥
क्षुद्र रोगे च कथिते त्वजगल्ल्यहि पूतने ॥
शंखाभ्यां हृदयं याति हृदयाद्वा गुदं ब्रजेत् ॥१५॥

भाषा-बालक के जो मूत्रस्थान और माथे में विसर्प होय वह बालक के प्राणों का नाश कर देता है जो विसर्प लाल कमल के पत्र के समान लाल होय है यह महापद्मरोग त्रिदोषज है ॥ यह कनपटी में उत्पन्न होकर हृदय पर्यंत जाय है अथवा हृदय में होकर गुदापर्यंत जाता है और क्षुद्र रोग में जो अजगल्ली अहिपूतना आदि वह भी बालकों के होते हैं ॥

और विकार जो बालकोंके होते हैं उनको कहते हैं ।

ज्वराद्या व्याधयः सर्वे महतां ये पुरेरिताः ॥
बालदेहेऽपि ते तद्वाद्विज्ञेयाः कुशलैः सदा ॥१६॥

भाषा—ज्वरादिक और सर्व व्याधि जो बड़े मनुष्योंके होते हैं अर्थात् जिन रोगोंको पूर्व कह आये हैं वे सब रोग बालकोंकी देहमें भी कुशल वैद्यों को जानने चाहिए ॥

प्रायः करके शौच भ्रंश आदि से जो कंदग्रहआदि
बालकों के देहमें असर करते हैं इससे उनके
ज्ञानके लिए सामान्य ग्रहजुष्टके लक्षण कहते हैं ।

क्षणाद्वाद्विजते बालः क्षणात्त्रस्यति रोदिति ॥
नखैर्दन्तैर्दारयति धात्रीमात्मानमेव च ॥१७॥
ऊर्ध्वं निरीक्षते दन्तान् खादेत्कूजति जृम्भते ॥
भ्रुवौ क्षिपति दंतोष्ठं फेनं वमति चासकृत् ॥१८॥
क्षामोऽतिनिशि जागर्ति शूनांगो भिन्नविट्स्वरः ॥
मांसशोणितगन्धिश्च न चाश्नाति यथा पुरा ॥१९॥
सामान्यग्रहजुष्टानां लक्षणं समुदाहृतम् ॥

भाषा—क्षणभरमें बालक डरने लग जाय कभी क्षणभरमें घबराजाय रोवे नख और दांतोंसे अपने शरीर और माता को खसोटे, ऊपरको देखे, दांतों को चबावे, किलकारी मारे, जँमाई लेय भौंह को तिरछी करे दांतों से होठोंको खाय वारंवार मुखसे झाग डाले, अत्यन्त क्षीण होय रात्रमें सोवेनहीं देहमें सूजन होय, मल पतला होय स्वर बैठ जाय, उसके देहमें रुधिर मास कीसी वास आवै, जितना पहले खाता होय उतना नहीं खाय ये सामान्य ग्रहव्याप्त बालकके लक्षण हैं ।

सामान्य लक्षण कहकर विशेष लक्षण कहते हैं ।

एकनेत्रस्य गात्रस्य स्रावः स्यंदनकंपनम् ॥२०॥
ऊर्ध्वदृष्ट्या निरीक्षेत वक्रास्यो रक्तगंधिकः ॥
दंतान् खादति वित्रस्तः स्तन्यं नैवाभिनन्दति ॥२१॥

स्कन्दग्रहगृहीतानां रोदनं चाल्पमेव च ॥

भाषा—बच्चाके एक नेत्र का पानी गिरे और एकही किसी अंगका स्राव पसीना बहे एक ओरका अंग फडके थर थर कांपे वह बालक आधी दृष्टिसे देखे मुख टेढा होजाय रुधिरकीसी दुर्गंध आवे दांतोंको चबावे अंग शिथिल होजाय स्तनको नहीं पीवे और थोडा रोवे ये स्कन्दग्रह लगे बालक के लक्षण हैं ॥

स्कंदापस्मार के लक्षण कहते हैं ।

नष्टसंज्ञो वमेत्फेनं संज्ञावानतिरोदिति ॥
पूयशोणितगन्धिश्च स्कन्दापस्मारलक्षणम् ॥२२॥

भाषा—होश हवाश जिसके दुरुस्त नहीं ऐसा बच्चा होजाय मुख से झाग डाले होश होने पर रोवे उसकी देहमें रुधिरकीसी दुर्गंध आवे इन लक्षणोंकरके स्कन्दापस्मारके लक्षण जानने ॥

शकुनिग्रह के लक्षण कहते हैं ।

स्रस्तांगो भयचकितो विहंगगन्धिः संस्रावव्रणपरि-
पीडितः समन्तात् ॥ स्फोटैश्च प्रचिततनुः सदा-
हपाकैर्विज्ञेयो भवति शिशुः क्षतः शकुन्या ॥२३॥

भाषा—शकुनी ग्रहसे पीडित बालक शिथिल देह वाला होता है भयसे चकित होय, उसके अंगमें पक्षीके समान वास आवे, घाव होकर उसमें से लस बहे, सर्व अंगोंमें फोडा उत्पन्न होय और पके तथा दाह होती है ॥

रेवतीग्रहके लक्षण कहते हैं ।

व्रणैः स्फोटैश्चितं गात्रं पंकगंधमसृक् स्रवेत् ॥
भिन्नवर्चा ज्वरो दाही रेवतीग्रहलक्षणम् ॥२४॥

भाषा—बालकका अंग घाव और फोडायुक्त होय, उनमेंसे रुधिर बहे उसमें कीचकीसी वास आवै, दस्त होय, ज्वर होय, अंगमें दाह होय यह रेवती ग्रहसे पीडित बालक के लक्षण जानै ॥

पूतनाग्रहके लक्षण कहते हैं ॥

अतीसारो ज्वरस्तृष्णा तिर्यक्प्रेक्षणरोदनम् ॥

नष्टनिद्रस्तथोद्विग्नः स्रस्तः पूतनया शिशुः ॥२५॥

भाषा—दस्त, ज्वर, प्यास, टेढी दृष्टि से देखना रोना व्याकुल होना शिथिल होना ये लक्षण पूतना ग्रह से युक्त हुए बच्चे के होते हैं ॥

पूतना ग्रहके और भेदों को कहते हैं तहां

अंध पूतना के लक्षण कहते हैं ॥

छर्दिः कासो ज्वरस्तृष्णा बसागंधोऽतिरोदनम् ॥

स्तन्यद्वेषोऽतिसारश्च अंधपूतनया भवेत् ॥२६॥

भाषा-वमन खांसी, ज्वर, प्यास, चर्बीकीसी बास बहुत रोना छाती को मुखसे न दावना और अतिसार ये लक्षण अंध पूतना से पीडित बालक के जानने चाहिये ॥

शीत पूतना ग्रहके लक्षण कहते हैं।

वेपते कासते क्षीणो नेत्ररोगी विगंधिता ॥

छर्द्यतीसारयुक्तश्च शीतपूतनया शिशुः ॥२७॥

भाषा—खांसे क्षीण हो नेत्र रोग होंय देहमें दुर्गंधि आवै वमन होय और दस्त हों यह शीत पूतना से पीडित बालकके लक्षण जानै ॥

मुखमंडिकाग्रहके लक्षण कहते हैं ॥

प्रसन्नवर्णवदनः शिराभिरभि संवृतः ॥

मूत्रगन्धिश्च बह्वाशी मुखमण्डिकया भवेत् ॥ ॥

भाषा-कांति सुन्दर होय और देहकी कांति श्रेष्ठ होय शिराओंसे बंधा देह होय उसके देहमें मूत्रकीसी दुर्गंधि आवै, यह बालक बहुत भक्षणकरे यह मुख मण्डिका ग्रह से पीडित बालकके लक्षण जानै ॥

नैगमेयग्रहके लक्षण कहते हैं।

छर्दिस्पन्दनकंठास्यशोषमूर्च्छाविगन्धिताः ॥

ऊर्ध्वं पश्येद्दशेद्दन्तान्नैगमेयग्रहं वदेत् ॥२९॥

भाषा—वमन, कंप, कंठ, मुखका सूखना, मूर्च्छा, दुर्गंधि, ऊपरको देखना, दांतोंको चबाना इन लक्षणोंसे नैगमेयग्रहकी बाधा कहै।

वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसुनु शा० सोहनलाल

विद्या भूषण विरचितायां माधव सुबोधिन्यां

बालरोग निदानं समाप्तम्।

अथ विषरोग निदानम् ।

स्थावरं जंगमं चैव द्विविधं विषमुच्यते ॥
मूलाद्यात्मकमाद्यं स्यात्परं सर्पादिसम्भवम् ॥ १ ॥

भाषा-स्थावर और जंगमदो प्रकारका विषहोताहै तथा मूलात्मक स्थावर और सर्पादिकोंसे जो प्रगट हो वह जंगम विष कहाता है ॥

आद्य स्थाविरात्मक दश प्रकारसे सुश्रुतमें इस प्रकार कहा है ।

मूलं पत्रं फलं पुष्पं त्वक्क्षीरं सार एव च ॥
निर्यासो धातवश्चैव कन्दश्च दशमः स्मृतः ॥

भाषा-जड़, पात, फल, फूल, छाल, दूध रस, गोंद, धातु और कंद ये दश स्थावर विष हैं । तहां क्लीतक, अश्वमार, गुंज,सुगंध गर्गर, करघाट विद्युच्छिखा और विजया यह आठ मूल विष हैं । विषपत्रिका लम्बासुर दारुक, करम्भ महाकरंभ ये पांच पत्रविष कहेहैं।कुमुद्वती,वेणुका,करम्भ.महाकरम्भ,कर्कोटक, रेणुक, खद्योतक, चमरी, इभगन्धा, सर्पघाति, नन्दन, सारपाकिनी यह बारह फलविष कहे हैं । वेत्र,कदंब, वल्लीज, करम्भ, महाकरम्भ ये पांच पुष्पविष हैं । अंत्रपाचक कर्तरीय, शैलेय, करम्भ, नन्दन, करघाट ये सात त्वचा रसके (गोंद के) विष हैं । कुमुदघ्नी,स्नुही,जालक्षीरी ये तीन दूधके विष हैं । फेनाश्मभस्म और हरिताल ये दो धातु विषहैं । कालकूट,वत्सनाभ,सर्षपक पालक, कर्दमक, वैराटक,मुस्तक महा विष हैं पर्पौंडरीक,मूलक, हलाहल शृंगी विष, मर्कटक ये तेरह कंदविष हैं यह प्राणो को नष्ट करने वाले हैं यह सब मिलकर स्थावर विष पचपन होते हैं ॥

समासेन मया यानि विस्तरस्तेषु वक्ष्यते ॥
जंगमस्य विषस्योक्तान्यधिष्ठानानि षोडश ॥

जंगम विषके स्थान सोलह प्रकारके हैं दृष्टि,श्वास, दांत, नख, मूत्र विष्ठा शुक्र, लार, आर्तव मुख, संदंश, पर्दित गुदा, हड्डी, पित्त शूकशव ये सोलह स्थान हैं ॥

तहां दृष्टि, निश्वास विष दिव्य हैं सो दिव्य सर्पादिकोंका जानना मोम विष सर्प दष्टविष है । बिल्ली मगर व्याध आदि यह दंष्ट्रनख विष जानने आदि

पदसे कुत्ता,कदर,मेढ़क,मच्छी,जलगोधिका, जंबूक,पंचालक,छिपकली मौहार की मक्खी ,पीली मक्खी, ततैया, इनसे आदि ले ये जानवर जानने चाहिये पिच्चिट कौण्डिन्य आदि इन जानवरोंके विष्ठा और मूत्रमें विष होता है शुक्र में विष वाले मूसे होते हैं मकरी आदि जो कीट हैं सो लूता कहाते हैं इनके लार मूत्र विष्ठा मुख नख शुक्र आर्तव इनमें विष होता है विच्छू ततैया राजिलमछली उच्चिटिंग समुद्रका विच्छू इनकी पूंछमें जो कांटाहोता हैं उसमें विष होता है चित्रशीर्षक शतदारुक शारिका आदि इन के मूत्रपुरीषमें विष जानना । मक्खी, कणत्र, जोंक इनके मुख और काटने में विषहै । विषसे मरे हुए की हड्डी,सर्पकी हड्डी,विषियल मछली इनकी हड्डीमें विष है। शकुलीनामकी मछली रक्तराजो और चरकी नामकी मछली इन के पित्तमें विष है । सूक्ष्मतुंड चेंटी बहर कनखजूरा शूक भौंरा तोता इनके तुण्ड अर्थात् मुखके अग्रभागमें विष है । कीट और सर्प इनके मरे देहमें विष है इसका विशेष विस्तार सुश्रुतके कल्प स्थान में देखना चाहिये ॥

यहां जंगमविषके सामान्य लक्षण कहते हैं ॥

निद्रा तन्द्रां क्लमं दाहमपाकं रोमहर्षणम् ॥
शोथं चैवातिसारं च कुरुते जंगमं विषम् २॥

भाषा-निद्रा तन्द्रा क्लम दाह अन्नका पाक न होना रोमांच शोथ और अतिसार इन बातों को जंगमविष पैदा करता है ॥

स्थावरविषके सामान्य लक्षण कहते हैं ॥

स्थावरं तु ज्वरं हिक्कां दन्तहर्षं गलग्रहम् ॥
फेनच्छर्द्यरुचिश्वासं मूर्च्छां च कुरुते भृशम् ॥३॥

भाषा-स्थावर विष तो ज्वर हिचकी,दांतोंका घिसना, गलेका घिरना, झागसे मिलीरद,अरुचि,श्वास और अत्यन्त मूर्च्छाइन बातोंको पैदा करता है

विष देनेवालेके लक्षण कहते हैं ॥

इंगितज्ञो मनुष्याणां वाक्चेष्टामुखवैकृतैः ॥
जानीयाद्विषदातारमेभिर्लिंगैश्च बुद्धिमान् ॥ ४ ॥
न ददात्युत्तरं पृष्टो विवक्षुर्मोहमेति च ॥
अपार्थं बहुसंकीर्णं भाषते चापि मूढवत् ॥ ५ ॥

हसत्यकस्मात्स्फोटयेदंगुली विलिखेन्महीम् ॥
वेपथुश्चास्य भवति त्रस्तश्चान्योऽन्यमीक्षते ॥ ६ ॥
विवर्णवक्रो ध्यामश्च नखैःकिंचिच्छिनत्त्यपि ॥
आलभेतासनं दीनःकरणे च शिरोरुहम् ॥ ७ ॥
वर्त्तते विपरीतं च विषदाता विचेतनः ॥

भाषा-बोलने चालने तथा मुखकी चेष्टा इनसे मनुष्य तथा आगे जो कहते हैं इन लक्षणों से विषके देनेवाले मनुष्यको बुद्धिमान जानले । सो इसप्रकार जो मनुष्य विष दे उससे कोई बात पूछे तो वह उत्तर न दे और जब बोलने की इच्छा करै तब मोहको प्राप्त हो अर्थात् घबड़ाजावै तथा कदाचित बोले भी तो निरर्थक और बहुत अस्पष्ट बोले अकस्मात् हँसे हाथकी उँगली चट कावै पृथ्वीमें रेखा काढ़े भयसे काँपै और डरकर चारों ओर बारंबार सबकी तरफ देखे मुखकी चेष्टा जाती रहै और काला होजाय नखोंसे कुछ तिनका आदि तोड़े गरीबके समान एकही स्थानपर बैठा रहै माथेपर हाथ फेरै और उलटी दशा होय और होश हवास दुरुस्त न रहैं विष देनेवाला ऐसा होजाताहै

प्रमोद से अपयोग किये मूलादि विषोंके लक्षण कहते हैं ॥

उद्वेष्टनं मूलविषैः प्रलापो मोह एव च ॥ ८ ॥
जृम्भणं वेपनं श्वासो मोहःपत्रविषेण तु ॥
मुखशोथः फलविषैर्दाहोऽन्नद्वेष एव च ॥ ९ ॥
भवत्युपविषैश्छर्दिराध्मान श्वास एव च ॥
त्वक्सारनिर्यासविषैरुपयुक्तैर्भवन्ति हि ॥ १० ॥
आस्यदौर्गन्ध्यपारुष्यशिरोरुक्कफसंस्रवा ॥
फेनागमः क्षीरविषैर्विड्भेदो गुरु गात्रता ॥ ११ ॥
हृत्पीडनं धातुविषैर्मूर्च्छा दाहश्च तालुनि ॥
प्रायेण कालघातीनि विषाण्येतानि निर्दिशेत् ॥ १२ ॥

भाषा-मूलविषसे हाथ पैरोंमें पीडा और मोह होता है पत्र विषसे जँभाई कंप श्वास और मोह होता है । फलविषसे मुखपर सूजन दाह अन्नमें अरुचि

होताहै पुष्पविषसे वमन अफरा और श्वास होताहै। छाल रस गोंद इनसे मुखमें दुर्गंधि अंगमें खरदरापन मस्तकशूल और मुखके मार्ग कफ गिरे दुग्धविषसे झाग आवे दस्त होय और जीभ जकड जावे। धातुविषसे हृदय में पीड़ा होय मूर्च्छा आवे तालुएमें दाह होय ये सब विष बहुधाकरके काला न्तरमें मारनेवाले होतेहैं ॥

जहरसे बुझे हुए हथियार से मरनवाले के लक्षण कहते हैं।

सद्यःक्षतं पच्यते यस्य जन्तोः स्रवेद्रक्तं पच्यते चाप्यभीक्ष्णम् ॥
कृष्णीभूतं क्लिन्नमत्यर्थपूति क्षतान्मांसं शीर्यते यस्यचापि॥१३
तृष्णा मूर्च्छा ज्वरदाहौ च यस्य दिग्धाहतं मनुजं तं व्यवस्येत्॥
लिंगान्येतान्येव कुर्यादमित्रैर्व्रणे विषं यस्य दत्तं प्रमादात्॥१४

भाषा—जिस जीवका घाव शीघ्रही पक जाय और उसमें रक्त बहै और बार२ पके और उस घाव में से काला सड़ा अत्यन्त दुर्गंधियुक्त मांस गिर के निकले जिस में प्यास मूर्च्छा ज्वर दाह ये लक्षण मिलें उस मनुष्यको विषमें बुझे व लेप किये हुए हथियार से चोट खाया हुआ निश्चय करे घावमें दुश्मनों ने जिसके विष डाला हो वा असावधानी से घावमें जहर गिरगया होय उसके भी यहीं लक्षण होते हैं ॥

जिसने विष पीया होवे उसके लक्षण कहतेहैं

सपीतं गृह धूमाभं पुरीषं योतिसार्यते ॥
फेनमुद्वमते चापि विष पीतं तमादिशेत् ॥ १५ ॥

भाषा-पीलापन लिये घरके धूआं जैसा दस्त जिस मनुष्यके आवे मुँह सें झाग आवै उसको विषं पीयाहुआ कहे ॥

स्थावरविषका वर्णन करके जंगमोंमें अत्यन्त तीक्ष्णता के कारण सर्पविषभयंकर होताहै इससे उस विषका जिसमें आ-श्रय ऐसे सर्पोंका वर्णन करते हैं ॥

वातपित्तकफात्मानो भोगिमण्डलिराजिलाः ॥
यथाक्रमं समाख्याता द्व्यन्तरा द्वंद्वरूपिणः ॥

भाषा-भोगी मण्डली, राजिल ये सांप क्रम से वात पित कफ की

प्रकृतिवाले हैं और जो व्यंतर अर्थात् जो दो जातिके सर्प और सर्पिणीसे पैदा हुए हैं वे व्यंतर कहाते हैं । उनकी प्रकृति द्वंद्वज है अर्थात जिस जिस प्रकारके सर्प सर्पणीसे प्रगटहों उसी उसी प्रकारकी प्रकृति उनकी तुल्य होतीहै । व्यतिकर जन्य सर्पोंको बताते हैं जैसे फणी फनवाले सर्पसे मण्डलिनी सांपिनमें गोनस होते हैं मण्डली व गोनस सर्पसे फणिनी सांपिन में काले नाग होते हैं ऐसे और भी सर्पों की जातिका सांकर्य समझना ॥

भोगी आदि सर्पके काटने पर वातादिकोंके लक्षण कहते हैं ॥

दंशो भोगिकृतः कृष्णः सर्ववातविकार कृत् ॥
पीतो मण्डलजिः शोथो मृद्धः पित्तविकारवान ॥ १७ ॥
राजिलोत्थो भवेद्दंशः स्थिरशोथश्च पिच्छिलः ॥
पाण्डुःस्निग्धोऽतिसान्द्रासृक् सर्वश्लेष्माविकारवान् ॥१८

भाष-भोगी सर्पका काटा हुआ सब वायुके विकारों को पैदा करता है और काटने की जगह काली हो मण्डली सर्पके काटनेसे पैदा हुआ क्षत सूजन युक्त पीला काटनेकी जगह नर्माई हो और पित्तके जितने विकार हों उन सबोंको पैदा करता है । राजिलका दंश चिकना, पीले रंगका वा गाढ़ा तथा उसकी सूजन कठोर होय । उसमें गाढ़ा रुधिर निकले तथा सब प्रकारके कफ विकार हों ये लक्षण राजिलसर्पके काटनेकेहैं ॥

किसी खास जगह में खास नक्षत्र में काटनेके तथा विशिष्ट नक्षत्र
में काटने के असाध्य लक्षण कहते हैं ।

अश्वत्थदेवायतनश्मशानवल्मीकसंध्यासु चतुष्पथेषु ॥
याम्ये च दष्टाः परिवर्जनीया ऋक्षे शिरामर्मसु ये च दष्टाः

भाषा-पीपलके वृक्षके नीचे देवताओंका मन्दिर श्मशान बाँमी संध्याकाल (प्रातः और सायंकालकी संधि) चौराहेमें भरणीनक्षत्रमें, चकार से आर्द्रा आश्लेषा,मूल, मघा,कृतिका इन नक्षत्रों का ग्रहण करना चाहिये जैसा और जगह कहाहै " चैत्या यतन वल्मीक श्मशा नेषु चतुष्पथे ॥ आर्द्रा श्लेषा मघा मूल कृत्तिका भरणीषुच ॥ पंचम्यां सन्ध्यायोर्दंशो मर्मस्वाशु हरेषुच ॥ दष्टाःकष्टेन जीवन्ति यदि दूतादि सम्पदः,, इसप्रकार जानना और शिरानाड़ीके मर्मस्थलमें सर्पके काटे हुए आदमियोंकी चिकित्सा न करै अर्थात् वे मनुष्य बचें नहीं ॥

गर्मी होनेसे विषका जोर होता है उसके लक्षण कहते हैं ॥

दर्वीकराणां विषमाशु हन्ति सर्वाणि चोष्णे द्विगुणा भवन्ति॥

भाषा—दर्वीकर नागका विष तत्काल प्राणनाश करै और सर्व विष गर्मी के योगसे दुगुना जोर करते हैं ॥

अजीर्णपित्तातपपीडितेषु बालेषु वृद्धेषु बुभुक्षितेषु ॥ २० ॥
क्षीणेक्षते मेहिनि कुष्ठदुष्टे रूक्षेऽबले गर्भवतीषु चापि ॥

भाषा—अजीर्ण पित्त और सूर्य की धूप इनसे पीडित, बालक वृद्ध भूखा और जो क्षीण होगया हो, उरःक्षता वाला, प्रमेहवाला, कोढी, रूखा, निर्बल और गर्भिणी इनकी सर्पके काटने से तत्काल मृत्यु होजाती है ॥

सर्वथात्याज्य लक्षण कहते हैं ॥

शस्त्रक्षते यस्य न रक्तमेति राज्यो लताभिश्च न सम्भवन्ति॥
शीताभिरद्भिश्च न रोमहर्षो विषाभिभूतं परिवर्जयेत्तम् ॥
जिह्मं मुखं यस्य च केशशातो नासावसादश्च सकंठभंगः ॥
रक्तः सकृष्णः श्वयथुश्च दंशे हन्वोःस्थिरत्वं च विवर्जनीयः
वर्तिर्घना यस्य निरेति वक्त्राद्रक्तं स्रवेदूर्ध्वमधश्च यस्य ॥
दंष्ट्राभिघाताश्चतुरश्च यस्य तं चापि वैद्यः परिवर्जयेच्च ॥
उन्मत्तमत्यर्थमुपद्रुतं वा हीनस्वरं चाप्यथवा विवर्णम् ॥ २४
सारिष्टमत्यर्थमवेगिनं च ज्ञात्वा नरं तत्र न कर्म कुर्यात् ॥

भाषा—जिसको विषका अमल चढ़गया हो शस्त्रके घाव करनेसे जिसके रुधिर न निकले अथवा चाबुक वगैरह मारनेसे अंग उपड़े नहीं और ठंडे शीतल पानीके शरीर पर पटकने से रोमांच न हों ऐसे विषसे पीडित पुरुष को त्यागदेवै अर्थात् ऐसे जहर चढ़े हुए को छोड़ देवै और जिसका मुख टेढ़ा और स्तब्धहोजाय बालछूतेही टूट टूटकर गिरें नाकटेढ़ीहोजाय, नार नीचे को झुकपडे ऊंची न होय और काटनेकी जगह में सूजन होय तथा वह दंश लाल अथवा काला होय तथा स्थिर होय ऐसे रोगीको छोड़ देना चाहिये तथा जिस मनुष्य के मुँहसे गाढी लारकी बत्तीसी गिरै और नाक मुखके मार्ग तथा गुदाके मार्गसे रुधिर निकसै झड़ै और जिसके चार दांत गड़गए होंय

उसको छोड़ देय । अत्यन्त उन्मत्त होगया हो अथवा ज्वर अतिसार आदि उपद्रवों से युक्त हो पीडित हो हीन स्वर होगया हो जिसके देहका रंग मंदा होगया हो अरिष्टों से अत्यन्त युक्त,जिसको वेग नहीं हो ऐसा अथवा विष्टा मूत्रादि वेगरहित ऐसे विषवाले पुरुषको जानकर वैद्य उस रोगीके विषय कोई उपचार न करै क्योंकि वह अत्यन्त असाध्य है ॥

स्थावर जंगम विषही जीर्णता आदि विशेषणोंसे दूषी विष इस नाम को धारण करते हैं उनको कहते हैं ॥

जर्णिं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा दावाग्निवातातपशोषितं वा ॥
स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं विषं हि दूषीविषतामुपैति ॥

भाषा—जो विष पुराना होगया हो अथवा विषकी नाशक औषधी से हतवीर्य होनेसे अथवा सरदी गरमी अग्नि इनसे सूखी हुई अथवा जो स्वभावसें गुण रहित हैं ऐसे स्थावर जंगमात्मक विष दूषीविषताको प्राप्त होतेहैं॥

दूषीविषके लक्षण कहते हैं ॥

वीर्याल्पभावान्न निपातयेत्तत्कफान्वितं वर्षगणानुबंधि२६॥
तेनार्दितो भिन्नपुरीषवर्णो विगंधिवैरस्ययुतः पिपासी ॥
मूर्च्छाभ्रमं गद्गदवाग्वमित्वं विचेष्टमानोऽरतिमाप्नुयाद्वा२७

भाषा-अल्पवीर्य होनेके कारण वह दूषी विष मारक नहीं होता कफ युक्त हुआ मन्द हुआ गरमी आदि गुण जिसका ऐसा नष्ट नहीं करता है पाक न होनेसे बहुत दिन तक देह में स्थिर भी रहा आता है उष्णादि गुण मंद होकर बहुत वर्षपर्यंत विष रूप होकर रहते हैं । उस विषसे पीडित हुआ पुरुषके फटा२ दस्त आवे ऐसा होताहै, उसका वर्ण पलट जाय,उसके मुखसे बुरी दुर्गंधि निकले, उसके मुखका स्वाद जाता रहे, प्यास लगे,मूर्छा आवे, भ्रम होय, बोलते समय अक्षर साफ जिसके न निकले वमन करे, विरुद्ध चेष्टा करे और उसको चैन नहीं पड़ता है यह लक्षण होते हैं ॥

स्थान विशेष से उसके विशिष्ट लक्षण कहते हैं ।

आमाशयस्थे कफवातरोगी पक्वाशयस्थेऽनिलपित्तरोगी ॥
भवेत्समुद्ध्वस्तशिरोरुहांगो विलूनपक्षस्तु यथा विहंगः ॥३०॥

भाषा-पूर्वोक्त उस दूषी विषके आमाशयमें स्थित होनेपर कफवातके

रोगसें युक्त होय और पक्काशयमें स्थित होनेपर वातापित्तजन्य विकार युक्त होय तथा वह रोगी ऊपर को हाथ उठाये रहे वा बाल ऊपरको उठजांय और गिरजांय जैसा जिस पखेरूके पंख उड़ जातेहैं वैसा होता है जैसा अळम्बायन में " सीदन्ति केशा लोमानि तास्मिन् पक्काशयंगतें" इस प्रकार कहा है ॥

रसादि धातुगत उस दूषीविषके लक्षण कहते हैं ।

स्थितंरसादिष्वथवायथोक्तान्करोतिधातुप्रभवान् विकारान् ॥
कोपंचशीतानिलदुर्दिनेषु यात्याशु पूर्वं शृणुतस्य रूपम् २९॥
निद्रा गुरुत्वं च विजृम्भणं च विश्लेषहर्षावथवांगमर्दम् ॥
ततः करोत्यन्नमदाविपाकावरोचकं मण्डलकोठजन्म ॥३१॥
मांसक्षयं पादकरप्रशोथं मूर्छां तथा छर्दिमथातिसारम् ॥
दूषीविषंश्वासतृषा ज्वरांश्चकुर्यात्प्रवृद्धिं जठरस्यचापि॥३२॥
उन्मादमन्यज्जनयेत्तथान्यदनाह मन्यत्क्षपयेच्च शुक्रम् ॥
गाद्गद्यमन्यं जनयेच्च कुष्ठं तांस्तान्विकरांश्च बहुप्रकारान् ३२

भाषा-दूषीविषके प्रभावसे निद्रा, भारीपन, जंभाई, अंग, शिथिल, रोमांच, अंगोंका टूटना ये प्रथम होकर तदनंतर भोजनके उपरान्तहर्ष होना, अन्न पचे नहीं, अरुचि, देहमें चकत्ते तथा गांठ उठे. मांसक्षय, हाथ पैरोंमें सूजन मूर्छा, वमन, दस्त, श्वास, प्यास, ज्वर, उदररोग ये विकार होंय तथा अनेक प्रकारके रोग होंय सो इस प्रकार किसीसे उन्माद रोग होय, और किसीसे अफरा होय, कोई नपुंसकत्व करे और कोई गद्गदवाणी करे, कोई कुष्ठरोग करे और विसर्प विस्फोटक आदि अनेक प्रकारके रोग होंय ॥

दूषीविषकी निरुक्ति कहते हैं ॥

दूषितं देशकालान्न दिवास्वप्नैरभीक्ष्णशः ॥
यस्मात्संदूषियेद्धातूं स्तस्माद्दूषीविषं स्मृतम् ॥
साध्य मात्मवतः सद्योयाप्यं सम्वत्सरोत्थितम् ॥
दूषीविष मसाध्यं स्यात् क्षीणस्याहितसेविनः ॥३४॥

भाषा-देश बहुत वायु शीत वर्षायुक्त अनूप आदि) काल (ठंड

वायुसे युक्त दुर्दिन आदि) अन्न (जव तिल कुलथी आदि) और दिन का सोना इनसें वारम्वार दूषित हुआ विष धातुओंको दूषित करे,इसीसे इसको दूषीविष कहतेहैं संयोगज विषे दो प्रकारकाहै एक सविषविष कृत्रिमहै और दूसरा निर्विष द्रव्य कृतहै वह गरसंज्ञकहै जैसा वृद्ध कश्यपने " संयोगजंच द्विविधं तृतीयं विष मुच्यते। गरः स्यादविषं तत्र सविषंकृत्रिमं मतं ॥" इस प्रकार कहाहै इसही प्रकार रसायन विषय में चरकने" दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे" इस तरह कहाहै॥ होश हवास जिसके दुरुस्त हों वह साध्यहै और संवत्सर जिसे पैदा हुए हुआ होय वह यत्नसाध्यहै और क्षीण तथाअहित सेवन करनें वाले के दूषी विष असाध्य होता है॥

इन दोनों विषके लक्षण कहते हैं॥

सौभाग्यार्थं स्त्रियः स्वेदंरजो नानांगजान्मलान् ॥
शत्रुप्रयुक्तांश्चगरान्प्रयच्छंत्यन्नमिश्रितान् ॥३५॥
तैः स्यात्पाण्डुः कृशोऽल्पाग्निर्ज्वरश्चास्योपजायते ॥
मर्मप्रधमनाध्मानं हस्तयोः शोथलक्षणम् ॥३६॥
जाठरं ग्रहणीदोषो यक्ष्मगुल्मक्षयज्वराः ॥
एवंविधस्य चान्यस्य व्याधेर्लिंगानि निर्दिशेत् ॥३७॥

भाषा-अपना सौभाग्य (ऐश्वर्य) बना रहे इसके लिये औरतें खोटें स्त्री पुरुषों.की सलाहसे अपने पुरुषको पसीना, आर्तव (रजोदर्शनका रुधिर) तथा अपनी देहके अनेक अंगोंसे पैदा हुए मैलोंको अन्नमें मिलाकर खिलाती हैं और गरविष अन्नमें मिलाकर खवातीहै तब इनसे मनुष्य पीला और कृष और अग्नि मंद वाला होता है और ज्वर उसके पैदा होता है सब मर्मोंमें पीड़ा,पेट फूल जाय, हाथोंमें सूजन, उदररोग, ग्रहणीरोग, राजयक्ष्मा, गुल्म क्षय ज्वर इनसे आदिले और व्याधिके भी लक्षण उस में मिलतेहैं ऐसा जाने ॥

इस समय लूता विषोंको घोरविषपन दिखाने को उसके लक्षण कहतेहैं।

यस्माल्लूनं तृणं प्राप्ता मुनेः प्रस्वेदबिंदवः ॥
तस्माल्लूतास्तु भाष्यन्ते संख्यया ताश्च षोडश ॥३८॥

भाषा—यहां एक कथाहै कि विश्वामित्र वसिष्ठ की काम धेनु जबरन लेकर चले उस वख्त वसिष्ठजी कुपित हुए उनने भीतर गुस्सा की आगसे भवकते हुए कोलोंकी तरह सुर्ख हुए लोचनों से सूर्य को देखा तब उन की भृकुटियों से उत्पन्न हुआ भंयकर ललाट का पसीना प्रचण्ड रूप धारण कर टपका वह चुटी हुई घास के ठूंडों पर गिरा जो गायके लिये पड़ेथे वहांसे लूता की उत्पत्ति है वह लूता सोलह प्रकार का जानना जैसा सुश्रुत में त्रिमण्डला तथा श्वेता कपिला पीतकास्तथा ॥ लाला मूत्र विषारक्ता कठिना चाष्टमाः स्मृता ॥सौवर्णिका लाज वर्णा जालिन्येकपदीतथा ॥ कृष्णाग्नि वक्र काण्डाच माला गुण्यष्टमी मत । इस प्रकार कहा है ॥

उनके सामान्य लक्षण कहते हैं ।

ताभिर्दष्टे दंशकोथप्रवृत्तिःक्षतजस्य च ॥
ज्वरो दाहोऽतिसारश्च गदाः स्युश्च त्रिदोषजाः ॥ ३९ ॥
पिडिका विविधाकारा मण्डलानि महान्ति च ॥
शोथा महान्तो मृदवो रक्तश्यावश्चलास्तथा ॥ ४० ॥
सामान्यं सर्वलूतानामेतद्दंशस्य लक्षणम् ॥

भाषा—उन मकडियोंके काटने से जगहमें सडावट हो और उसमेंसे रुधिर बहे, ज्वर, दाह, अतिसार और त्रिदोषज तथा अनेक प्रकार के फोडा बडे बड़े चकत्ते, नरम, लाल, काली नीली और चंचल ऐसी सुजन होय इत्यादि लक्षण होते हैं । इस प्रकार सर्व लूताओंके सामान्य लक्षण जानने ॥

त्रिमण्डलादि ८ दूषीविषलूताउनके काटनेके लक्षण कहतेहैं ।

दंशमध्ये तु यत्कृष्णं श्यावं वा जालकाचितम् ॥४१॥
ऊर्ध्वाकृति भृशं पाकं क्लेदकोथज्वरान्वितम् ॥
दूषी विषाभिलूताभिस्तद्दष्टमिति निर्दिशेत् ॥ ४२ ॥

भाषा—दंशके मध्य में काला अथवा पीला अथवा हरा जालके सदृश ऊंचा होकर शीघ्र पके तथा उसमेंसे दुर्गंधियुक्त लस्सा बहे, उसमें ज्वरहोय उसको दूषीविष अथवा लूता का काटा हुआ कहे ॥

सौवर्णिक आदि ८ असाध्य प्राणहरों के लक्षण कहतेहैं

शोथाः श्वेताऽसिता रक्ताः पीताः सपिटिका ज्वराः ॥

प्राणन्तिकाभिर्जायन्ते दाहहिक्काशिरोग्रहाः ॥ ४३ ॥

भाषा—लूताओं से काटा स्थान सफेद काला लाल पीला हो जाय और रोगीको ज्वर आवे, दाह होय हिचकी आवे मस्तक में शूल होय यह लक्षण प्राणहर लूताओं से होते हैं ॥

मूषक आदि के काटने से आखुदूषी विष लक्षण कहते हैं ।

आदंशाच्छोणितं पाण्डु मण्डलानि ज्वरोऽरुचिः ॥
लोमहर्षश्च दाहश्चाप्याखुदूषीविषार्दिते ॥ ४४ ॥

भाषा—पीला लोहू निकले शरीर में चकत्ता पड़ जाय,ज्वर हो, अरुचि हो, रोमांच और दाह होजाय यह लक्षण होते हैं आखुविष से यहां मूसेका शुक्र विषजानना जैसा " शुक्रं पतति यत्रैषां शुक्र स्पृष्टाः स्पृशन्ति यत् " कहाहै॥

प्राणहर मूषिका के लक्षण कहते हैं ।

मूर्च्छांगशोथवैवर्ण्यं क्लेदो मन्दश्रुति ज्वरः ॥
शिरोगुरुत्वं लालासृक्छर्दिश्चासाध्यमूषिकैः ॥ ४५ ॥

भाषा—मूर्च्छा अंग का सुजना देहमें बदरंग क्लेद मंदा सुनपडना ज्वर माथे का भारी पन लार और रुधिर इनकी वमन होय यह लक्षण असाध्य प्राणहर मूसे के विषके होतेहैं ॥

करकेटा आदि के काटेके लक्षण कहते हैं ।

कार्ष्ण्यं श्यावत्वमथवा नानावर्णत्वमेव वा ॥
मोहोऽथवर्चसो भेदा दष्टे स्यात्कृकलासकैः ॥ ४६ ॥

भाषा—करकेटा आदिके काटने से देहका रंग काला अथवा अनेक तरह का होय तथा उस रोगी के मोह हो और दस्त खराब फटार आवे तो यह लक्षण होते हैं ॥

वृश्चिक बिषके लक्षण और उसके विषके आधार की संख्या कहतेहैं

दहत्यग्निरिवादौ तु भिनत्तीवोर्ध्वमाशु च ॥
वृश्चिकस्य विषं याति पश्चाद्दंशेऽवतिष्ठति ॥ ४७ ॥
दष्टोऽसाध्यस्तु हृद्घ्राणरसनोपहतो नरः ॥
मांसैः पतद्भिरत्यर्थं वेदनार्तो जहात्यसून् ॥ ४८ ॥

भाषा-बिच्छू का विष पहिले अग्नि की तरह जलन पैदा करै और ऊपर को चढ़ता हुआ शरीर को फोड़तासा मालूम हो पीछे डस काटने की जगह सेही वेदना करै ॥ हृदय नाक जीभ इनमें बिच्छू से काटा गया मनुष्य असाध्य होताहै जब मांस गिरने लगे और वेदनासे पीडित होयतब वह प्राणोंको को छोड़ देता है ॥

कणभदष्टके लक्षण कहते हैं।

विसर्पः श्वयथुः शूलं ज्वरश्छर्दिरथापि च ॥
लक्षणं कणभैर्दष्टे दंशश्चैवात्रसीदति ॥ ४९ ॥

भाषा-कणभ नाम के कीड़े के काटने से बिसर्प, सूजन, शूल, ज्वर वमन ये लक्षण होतेहैं और वह काटने का स्थान खराब होजाता है ॥

उच्चिटिंग के काटेके विषके लक्षण कहते हैं।

हृष्टरोमोच्चिटिंगेन स्तब्धलिंगो भृशार्तिमान् ॥
दष्टः शीतोदकेनेव सिक्तान्यंगानि मन्यते ॥५०॥

भाषा—झींगर के काटनेसे देहमें रोमांच होय, लिंग जकड जाय, घोर पीड़ा हो ठंडे जलसे सींचे की नाईं अंग होजाय ऐसा मानै ॥

मेंडक के बिषके लक्षण कहते हैं ॥

एकदंष्ट्रार्दितः शूनः सरुजः पीतकः सतृट् ॥
छर्दिर्निद्रा च सविषैर्मण्डूकैर्दष्टलक्षणम् ॥५१॥

भाषा—सविष जो मेंढ़का उनसे काटे हुएके यह लक्षण होते हैं स्वभाव से एक डाढ से ही जो काटता है उससे सूजता है पीड़ा सहित पीला रंग प्यास होती है छर्दि और निद्रा यह होते हैं ॥

विषैली मछली के विषके लक्षण कहते हैं।

मत्स्यास्तु सविषाः कुर्युर्दाहं शोथं रुजं तथा ॥

भाषा-विषैली मछली काटनेसे दाह सूजनऔर पीड़ाआदि विकार पैदा होताहै

सविष जोंक के लक्षण कहते हैं ॥

कण्डू शोथं ज्वरं मूर्च्छा सविषास्तु जलौकसः ॥५२॥

भाषा-विषैली जोंक काटनेसे खुजली, सूजन ज्वर और मूर्च्छाये लक्षण करती है ॥

छिपकली के विषके लक्षण कहते ह ।

विदाहं श्वयथुं तोदं स्वेदं च गृहगोधिका ॥

भाषा-छिपकली काटैतौदाह होय सूजन, नोचनेकीसीपीड़ा और पसीना इनको पैदा करती है ॥

खजूरा के विषके लक्षण कहते हैं ।

दंशे स्वेदं रुजं दाहं कुर्याच्छतपदीविषम् ॥५३॥

भाषा—कानखजूरा काटै तो काटनेके स्थानमें पसीना आवै शूल होय और दाह होय ।

मच्छर के विषके लक्षण कहते हैं ।

कण्डूमान्मशकैरीषच्छोथः स्यान्मन्दवेदनः ॥
असाध्यकीटसदृशमसाध्यमशकक्षतम् ॥५४॥

भाषा—मच्छरोंसे अर्थात् मच्छर व डासों के काटनेसें खुजार युक्त हो कुछ २ सूजन हो थोड़ी पीड़ा होय, यहां पांच प्रकारके मच्छर होतेहैं उनमें पार्वतीय मच्छर का घाव असाध्य होता है जैसा सुश्रुत में "पार्वतीयैस्तुकीटैश्च प्राण हरै स्तुल्य लक्षणः" इस प्रकार कहा है पर्वतके ऊपर रहने वाले मच्छर अथवा डांसके काटनेसे क्षत असाध्य कीटके समान असाध्य है ॥

मक्खी के दंशके लक्षण कहते हैं ।

सद्यःप्रस्राविणी स्यावा दाहमूर्च्छाज्वरान्विता ॥
पिडिका मक्षिकादंशे तासां तु स्थविकाऽसुहृत ॥५५॥

भाषा—विषैल मक्खीके काटनेमें वह जगह शीघ्र फुन्सी युक्त और शीघ्र पीप बहने लगे दाह मूर्च्छा ज्वर इनसे युक्त होय इनमें स्थविका नाम मक्खी प्राण हरनेवाली होती है ॥

चतुष्पदादिकोंके विषके साधारण लक्षण ।

चतुष्पद्भिर्द्विपद्भिर्वा नखदन्तविषं च यत् ॥
शूयते पच्यते चापि स्रवति ज्वरयत्यपि ॥५६॥

भाषा-व्याघ्र आदि चौपाए और बनमनुष्य वानरादि द्विपाये इनके नख दांतोंका जो विष वह सूजे पके बहै तथा ज्वर को पैदा करता है ॥

विषातुर कैसे निर्विष हो उसके लक्षण कहते हैं ।

प्रशान्तदोषं प्रकृतिस्थधातुमन्नाभिकांक्ष सममूत्रविट्कम् ॥
प्रसन्नवर्णेन्द्रियचित्तचेष्टं वैद्योऽवगच्छेदविषं मनुष्यम् ॥८७॥

भाषा-दोष जिसका शांति हो गयाहों प्रकृतिमें धातु स्थित हो किसी प्रकार की तकलीफ नहो अन्नमें इच्छा हो मूत्र विष्ठा विकार राहितहो सुन्दर रंग इन्द्रिय और चित्त चेष्टा ठीक हो इस प्रकार के मनुष्य को वैद्य विष रहित जाने ॥

इति श्री विषरोगनिदानं समाप्तम् ।

माधव निदानं समाप्तम्

अथ परिशिष्टम् ।

प्रायः सबही रोगों का निदान आचार्यवर्य श्रीमन्माधवकरने बहुत तलाश कर लिखा है किन्तु बहुत से रोग ऐसे हैं जो आगे पीछे होने की वजह से उनने नहीं लिखे पीछे तलाश करने पर परिशिष्ट में कुछ रोगों का समावेश किया है यों तो बहुत से रोग चरक सुश्रुत आदि में माधव से विशेष हैं परन्तु उनको इस में न देकर यहां देखने को ही छोड़ दिये हैं जो दो तीन मूल ग्रन्थ के परिशिष्ट भाग में लिखे हैं उनको ही इस में देतेहैं

अथ स्नायुक निदानम् ।

उसकी सम्प्राप्ति कहते हैं ।

शाखासु कुपितो दोषः शोथं कृत्वा विसर्पवत् ॥
भिनत्ति तत्क्षते तत्र सोष्म स्नायुं विशोष्य च ॥ १
कुर्यात्तन्तुनिभं जीवं वृत्तं श्वेतंद्युतिं वहिः ॥
शनैः शनैःक्षताघात् छेदात्कोपमुपैत्ति त च ॥२॥
तत्पाताच्छोथशान्तिः स्यात्पुनःस्थानान्तरे भवेत् ॥
स स्नायुकेति विख्यातः क्रियोक्ताऽत्र विसर्पवत् ॥ ३ ॥

भाषा-दोष (वात पित्तादि) शाखा(नाड़ी) ओंको प्राप्त हो कुपित होकर विसर्प रोग की तरह सूजन पैदा करके घाव करदे तब उस घाव में गरमी

सहित स्नायुको सुखा कर डोरा की तरहके गोल सफेद रंग वाले जीव (काड) को बाहर करे अर्थात् उस में से बाहर निकलने लगे धीरे २ घाव से वह निकलता है यथा जिस समय वह निकले उस समय रुई या लकड़ी पर उस को लपेट ऊपर से पट्टी बांध ने से धीरे २ वह निकल आता है और यदि उसको तोड़ दो तो वह बड़े कोपको प्राप्त होता है यानी भीतरही भीतर फैल कर रोग को बडा गम्भीर कर देता है जब वह भीतर रह जाता है तब वहां से सूजन पटक जाती है और दूसरे स्थान पर सूजन उठ आती है उस को स्नायुक रोग कहते हैं भाषा में इसको नारू या नहरुआ कहते हैं यहां विसर्प रोग की तरह क्रिया कही है ॥

प्रमाद से टूटे नहरुआ के लक्षण ।

वाह्वोर्यदि प्रमादेन त्रुटयते जंघयोरपि ॥
संकोचं खञ्जतां चैव छिन्नतन्तुः करोत्यसौ ॥ ४ ॥

भाषा-यदि असावधानी से बाहुओं (हाथों) में वा जांघोंमें नहरुआ टूट जावै तब वह टूटे तन्तु (शरीर) वाला शरीर का सिकुडना और पैरों में लूलापन पैदा करता है ।

वातादि दोषों से उत्पन्न हुए नहरुआ के लक्षण कहते हैं ॥

वातेन श्यावरूक्षः सरुगथ दहनान्नीलपीतः सदाहो
ऽथ श्वेतः श्लेमणा स्यात् पृथुगरिमयुतो॥

भाषा-वायुके कोप से जो नहरुआ निकलता है वह कालौंच लिये हुए और रूखापन लेता हुआ पीडा युक्त होता है और पित्तसे जो नहरुआ निकलता है वह नीलापन व पीलापन लिये हुए हो और उसमें जलन ज्यादा होय तथा जो कफसे नहरुआ होता है वह केवल सफेद रंगका होता है मोटा और भारापन लिये होता है ॥

द्विदोष से पैदा हुए स्नायुके लक्षण कहते हैं ॥

अथ द्विदोषो द्विलिंगी ॥

भाषा-दोर दोषों से जो स्नायुक पैदा होताहै उसमें दो दो दोषोंके लक्षण मिलते हैं ॥

रक्तजन्य नहरुआके लक्षण कहते हैं ॥

रक्तेनारक्तकान्तिः समाधिक दहनो ॥

भाषा-रुधिरके विकारसे जो नहरुआ होता है उसकी कान्तिं लालरंग वाली होतीहै तथा उसमें जलन बहुत ज्यादा होती है ॥

त्रिदोषजन्य स्नायुके लक्षण कहते हैं ॥

-अथाखिलैः सर्वलिंगैः ॥
रोगोऽ साष्टधेत्थं मुनिभिरभिहितःस्नायु कस्तन्तुकीटः॥

भाषा-जिसमें सम्पूर्ण लक्षण मिलते हों उसको त्रिदोष जन्य कहते हैं इसप्रकार यह नहरुरोग मुनियोंने आठ तरह का कहाहै यह स्नायुके एक सूत के समान कीड़ा होता है जिसका अच्छी तरह परिचय पाहिले नहरुआ के नामसे दे चुकेहैं ॥

इति श्रीस्नायुक निदानं समाप्तम्

अथ फिरंग रोग निदानं ॥

फिरंग संज्ञके देशे बाहुल्ये नैव यद्भवेत् ॥
तस्मात्फिरंग इत्युक्तो व्याधिर्व्याधिविशारदैः ॥
गंधरोगः फिरङ्गोऽयं जायतेदेहिनां ध्रुवम् ॥
फिरंगिनोऽगंसंस्पर्शात् फिरंगिण्याः प्रसंगतः ॥ २ ॥
व्याधिरागंतुजो ह्येष दोषाणामत्र संक्रमः ॥
भवेत्तल्लक्षयेत्तेषां लक्षणै भिषजांवरः ॥ ३ ॥
फिरंगस्त्रिविधोज्ञेयो बाह्य आभ्यन्तरस्तथा ॥
बहिरन्तर्भवश्चापि तेषां लिंगानि च ब्रुवे ॥ ४

भाषा-फिरंग संज्ञक जो देश (यूरोप) उसमें यह रोग बहुतायतसेहोता है इससे व्याधि जानने में चतुर वैद्योंने यह रोग फिरंग है ऐसा कहाहै यह फिरंग रोग गंधरोगहै यह मनुष्योंके फिरंगी के अंग स्पर्श से तथा फिरंगनके साथ भोग करनेसे होता है यह आगंतुज रोग है इसमें दोषोंका संक्रम (विचरना) होता है तब उसके लक्षणोंसे श्रेष्ठ वैद्य उसको पहिचानै यह

फिरंग रोग तीन प्रकारकाहै वाह्य और आभ्यन्तर और वाह्य अभ्यन्तर उनके लक्षणोंको कहता हूँ ॥

वाह्य फिरंग के लक्षण कहते हैं ।

तत्रवाह्यः फिरंगः स्याद्विस्फोट सदृशोऽल्परुक् ॥
स्फुटितो व्रणवद्वेद्यैः सुखसाध्योऽपि सोमतः ॥ ५ ॥

भाषा–उस फिरंग में वाह्यफिरंग जो है वह विस्फोटकके तुल्य है थोड़ी तकलीफ होतीहै और जब वह फूटता है तब फोड़े की तरह का होजाता है वह सुख साध्य कहा है ॥

आभ्यन्तर फिरंग के लक्षण कहते हैं ।

सन्धिष्वाभ्यन्तरः स स्यादामवात इव व्यथाम् ॥
शोफं च जनये देष कष्टसाध्यो बुधैःस्मृतः ॥ ६ ॥

भाषा—आभ्यन्तर जो फिरंग है वह हाडोंके जोड़ोंमें आमवात कीसी तकलीफ करते हैं और सूजन पैदा करै अर्थात् उसमें सूजन हो यह पंडितों ने कष्ट साध्य कहाहै ॥

फिरंग रोगके उपद्रव कहते हैं ॥

कार्श्यं व लक्षयो नासाभंगो वह्नेश्च मन्दता ॥
अस्थिशोषोऽस्थि वक्रत्वं फिरंगोपद्रवा अमी ॥ ७ ॥

भाषा–कृशता बलकानाश, नाकका बैठना अग्नि मांद्य हाडोंका सूखना व हाडोंका टेढ़ा होना यह फिरंग उपद्रव होते हैं ॥

उसका साध्यासाध्य लक्षण कहते हैं ॥

वहिर्भवो भवेत्साध्यो नवीनो निरुपद्रवः ॥
आभ्यन्तरस्तुकष्टेन साध्यः स्यादयमामयः ॥ ८ ॥॥
बहिरन्त भवेश्चापि क्षीणस्योपद्रवैर्युतः ॥
व्याप्तो व्याधिरसाध्योऽयमित्याहुर्मुनयःपुराः ॥ ९ ॥

भाषा–नया उपद्रवरहित वाह्य फिरंग रोग साध्य होता है और यहरोग जो आभ्यन्तर होता है वह कष्टसाध्य होताहै और चाहे वाह्य हो या आभ्यन्तर हो क्षीण पुरुषके हो और उसके उपद्रवों से युक्त यह व्याधि असाध्य है ऐसा ऋषि पहिले कहते हुए ॥ इति श्री फिरंगरोग निदानं समाप्तम् ॥

अथ सोमरोग निदानं ॥

स्त्रीणापति प्रसंगेन शोकाच्चापिश्रमादपि ॥
अतिसारकयोगाद्वा गरयोगात्तथैवच ॥ १ ॥
आपः सर्व शरीरस्थाःक्षुभ्यन्ति प्रस्रवन्ति च ॥
तस्थास्ताः प्रच्युताः स्थानान्मूत्रमार्गं व्रजन्ति हि ॥
प्रसन्ना विमलाः शीतानिर्गन्धानीरुजःसिताः ॥
स्रवन्तिचातिमात्रंताः सानशक्नोति दुर्बला ॥ २ ॥
वेगं धारयितुं तासां न विन्दति सुखंक्वचित् ॥

भाषा—अत्यन्त मैथुन करने से शोकसे और मिहनत करनेसे अतिसार होनेसे तथा जहरके प्रयोगसे खान या खिलानेसे स्त्रियोंके सब शरीरमें स्थित जो जल अर्थात् सप्त धातु गत जल वह सब चलायमान होकरपेशाबके द्वारा उस स्त्रीके निकलते हैं वह स्वच्छ निर्मल ठंडे गन्धरहित उतरते समय तकलीफ जिनमें न होय सफेद ऐसे अत्यन्त पेशाब के रूप में निकलतेहैं तब वह दुर्बल हुई स्त्री उनके वेगको नहीं रोक सक्ती और उसको कभी चैन नहीं मिलता है ॥

सोमरोगके लक्षण कहते हैं ॥

शिरः शिथिलिता तस्या मुखं तालु च शुष्यति ॥ ४ ॥
मूर्छा जृम्भा प्रलापश्च त्वग्रूक्षा चाति मात्रतः ॥
भक्ष्यै र्भोज्यैश्च पेयैश्च न तृप्तिं लभते क्वचित् ॥

भाषा—जिस स्त्रीके यह सोमरोग होता है उसके शिरमें शिथिलता हो, मुख वा तालु सूखने लगे मोह हो जम्भाई आवै अट्टसट्ट बोलै त्वचा (ऊपर की खाल) अत्यन्त रूखी होजाय भक्ष्य (चना चबेना) भोज्य (मोहन भोगपूरी वगैरह) और पीने के पदार्थ दूध जल आदि इनसे उस स्त्री की कभी तृप्ति नहीं होती है ॥

सोमरोगकी निरुक्ति कहतैं हैं ॥

सन्धारणा च्छरीरस्य ता आपः सोम संज्ञिताः ॥

ततः सोमक्षयात् स्त्रीणां सोमरोग इति स्मृतः ॥६॥

भाषा-शरीर में सर्वधातु गतजो जल वह शरीरको बनाये रखते हैं इस से उनको सोम कहते हैं स्त्रियों की उस सोमके क्षीण नष्ट होनेसे सोमरोग ऐसा कहा है ॥

भूपाल्लब्धमनोरथोऽखिलरुजां निर्णाशकः सन्मतिः
राजीवायतलोचनो धनपतिर्भूपस्वभावो बुधः ॥
दक्षो रोग विनाशनेऽमृत करो विद्वन्मनो रञ्जकः।
आयुर्वेद विदां समाज मुकुटो ऽभूत्पूर्ण चन्द्राभिधः ॥१॥
तत्सूनु विंदितागमोद्विजगुरुः प्रख्यात कीर्तिर्महान् ॥
झल्लास्वामि महोदयोऽखिल गुणाधारो प्रतापान्वितः ॥
ग्रन्थार्णां रचने चमत्कृत मतिः श्लाघ्यः कतीनाम् जनैः
आस्ते सम्प्रति वैद्य कर्म निरतो वार्धक्य मानन्दयन् ॥२॥

तस्यात्मजः सोहनलाल शर्म्मा
सम्मानितो यो जगतां गुरुभ्याम्
व्याख्यातवान् रोग विनिश्च यस्य
गम्भीर वाक्यै विंवृतिं सुबोधिनीम्

इति श्री वैद्यराज पाठकोपाह्व पं० पूर्णचन्द्रदेव तनूज वैद्यराज झल्लास्वामि सूरिसूनुना वैद्यदक्ष पौराणिकरत्न वाणीभूषण विद्याभूषणादि विविधोपाधिधारिणा काशीस्थ राजकीय विद्यामन्दिराल्लब्ध योग्यता प्रमाणपत्रेण श्री शास्त्रिं सोहनलाल पाठकेन विरचितायां माधवनिदानस्य सुबोधिन्यां टीकायां सोमरोग निदानं समाप्तम् ग्रन्थश्चायं समाप्तः ॥